जीव विज्ञान

जीव विज्ञान

कक्षा 12

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

© NCERT
not to be republished

प्रथम संस्करण
फरवरी 2007 माघ 1928

पुनर्मुद्रण
सितंबर 2007 भाद्र 1929
जनवरी 2009 पौष 1930
दिसंबर 2009 पौष 1931
जनवरी 2011 माघ 1932

PD 5T KBG

© *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007*

₹ **115.00**

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा अभिनव प्रिंटस, के-37, उद्योग नगर औद्योगिक क्षेत्र, रोहतक रोड़, दिल्ली 110 041 द्वारा मुद्रित।

ISBN 81-7450-680-2

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन सी ई आर टी, प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108ए 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बैंगलूर 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग	:	*नीरजा शुक्ला*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*शिव कुमार*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार अधिकारी	:	*गौतम गांगुली*
संपादन सहायक	:	*के.बी. गौड़*
उत्पादन सहायक	:	*राजेश पिप्पल*

सज्जा एवं आवरण
श्वेता राव

चित्रांकन
ललित कुमार मौर्या

© NCERT not to be republished

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हक़ीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

रा.शै.अ.प्र.प. इस पुस्तक की रचना के लिए बनायी गयी पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् विज्ञान एवं गणित पाठ्यपुस्तक सलाहकार समूह के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर जयंत विष्णु नार्लीकर और इस पुस्तक के मुख्य सलाहकार, प्रोफ़ेसर के. मुरलीधर, जंतु विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के द्वारा समिति के कार्यों का मार्गदर्शन करने के लिए विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग

© NCERT not to be republished

देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित रा.शै.अ.प्र. परिषद् टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली

20 नवंबर 2006

© NCERT not to be republished

प्राक्कथन

जीव विज्ञान जीवन का संपूर्ण अध्ययन है। पिछले 1000 वर्षों के दौरान प्राकृतिक विज्ञान के रूप में जीव विज्ञान का विस्तार कई दृष्टिकोण से रोचक है। इसके विस्तार का एक पहलू परिवर्तनशीलता के महत्त्व पर बल देता है। प्रारंभ में यह जीवन के विभिन्न रूपों का अध्ययन था। समस्त अभिलिखित जीवित रूपों की पहचान, नामावली, वर्गीकरण एक लंबे समय तक वैज्ञानिकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता रहा। इस अध्ययन में उनके आवास (प्राणियों के संदर्भ में) तथा उनके व्यवहार को शामिल किया गया है। बाद के वर्षों में शरीरक्रिया विज्ञान आंतरिक आकारिकी अथवा शरीर अध्ययन के केंद्र बिंदु बने हैं। प्राकृतिक चयन द्वारा विकास संबंधित डार्विन के विचारों ने पूर्ण रूप से इस प्रत्यक्ष ज्ञान को ही बदल डाला। डार्विन के इस विकासवाद में सूत्र विहीन एवं वर्णात्मक प्राचीन जीव विज्ञान सिद्धांतों तक ही सीमित रह गई है।

19वीं तथा 20वीं शताब्दी में भौतिकी तथा रसायन विज्ञान जीव विज्ञान के ही अनुप्रयुक्त अथवा प्रायोगिक विषय थे तथा जीव रसायन ने नए विज्ञान के रूप में शीघ्र ही जीव विज्ञान के क्षेत्र में प्रमुखता हासिल कर ली। एक ओर जीव रसायन ने शरीरक्रिया विज्ञान को संघटित किया और इसका समानार्थक रूप ले लिया। दूसरी ओर इससे संरचनात्मक जीव विज्ञान मूलतः आण्विक जीव विज्ञान (जीव बृहद्‌णु की संरचना) का जन्म हुआ। बरनल, पॉलिंग, वाटसन एवं क्रिक, हॉगकिंस, पैरट्ज़ एवं कैंड्रीव, डैलबर्क, ल्यूरिया, मोनॉड, बीडल एवं टैटम, लैडरबर्ग, ब्रीनर, बैंजर, नरैन्बर्ग, खुराना, मैक्लीन्टक, सैंगर, कोहन, बायर, कॉर्नबर्ग (पिता एवं पुत्र), लेडर, केम्बॉन तथा दूसरों के अनुसंधान कार्यों ने आण्विक जीव विज्ञान के आधुनिक संस्करण का प्रतिपादन किया है जो आण्विकीय स्तर पर जीवन प्रक्रम का अध्ययन कराता है।

काफ़ी समय तक जनसाधारण का विज्ञान के प्रति जो ज्ञान था; वह भौतिकी तथा रसायन विज्ञान प्रधान था। आज मनुष्य का जीवन भौतिकी, रसायन विज्ञान तथा इनसे संबद्ध उत्पादन उद्योग में हुए विकास से प्रभावित हुआ है। शनैः-शनैः जीव विज्ञान ने भी अपने पैर पसारे और मानव कल्याण के लिए अपने उपयोगों को प्रदर्शित किया। आर्युविज्ञानीय चिकित्सा विशेषकर निदान के क्षेत्र में, हरित क्रांति तथा हाल में उभरता हुआ जैव प्रौद्योगिकी तथा इन विषयों की सफलता की कहानियों ने जन साधारण को जीव विज्ञान के बारे में जानकारियाँ प्राप्त करने के लिए बाध्य किया। एकस्व नियमों के कारण जीव विज्ञान के राजनैतिक अधिकार क्षेत्र एवं जीव विज्ञान के व्यावसायिक मूल्य प्रत्यक्ष रूप से सामने आ गए।

शताब्दी से भी अधिक समय तक संस्थापित तथा तथाकथित लघुकृत जीव विज्ञान ने कृत्रिम युद्ध लड़ा। सच्चाई तो यह है कि दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। पारिस्थितिकी ने दोनों सादृश्यों को संबद्ध किया तथा जीव विज्ञान को समाकलित करने में बल दिया। यहाँ रूप तथा प्रक्रम दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। पारितंत्र जीव विज्ञान ने गणितीय उपायों का प्रयोग करते हुए जीव विज्ञान के दोनों पहलुओं का आधुनिक संश्लेषण किया है।

जीव विज्ञान की कक्षा 11 तथा 12 की पाठ्यपुस्तक में इन जीव विज्ञानीय विचारों के सूत्रों को वास्तव में प्रतिबिंबित किया गया है। कक्षा 11 की पाठ्यपुस्तक में जहाँ आकारिकीय, वर्गिकी तथा शरीरक्रिया विज्ञान के आण्विक एवं कोशिकीय पक्ष को प्रस्तुत किया गया। वहीं कक्षा 12 की पाठ्यपुस्तक में मानव एवं पुष्पीय पादपों में प्रजनन, वंशागति के सिद्धांत, आनुवंशिकीय पदार्थों की प्रकृति तथा उनके कार्यों, मानव कल्याण में जीव विज्ञान का योगदान, जैव प्रौद्योगिकी के प्रक्रमों तथा इनके उपयोगों एवं उपलब्धियों आदि का वर्णन है। कक्षा 12 की पुस्तक में, एक ओर तो जीन से विकासवाद के संबंध तथा दूसरी ओर पारिस्थितिकी अन्योन्य क्रिया, जनसंख्या का बर्ताव तथा परितंत्र के बारे में बताया गया है। अत्यंत महत्त्वपूर्ण तो यह है कि एन सी एफ-2005 के मार्गदर्शन का पूर्णरूपेण अनुपालन किया गया है। अधिगम का कुल बोझ काफी हद तक कम करने का प्रयास किया गया है तथा पर्यावरणीय पहलूओं, किशोरों

© NCERT not to be republished

की समस्याओं तथा जनन स्वास्थ्य को कुछ विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। कक्षा 11 तथा 12 के जीव विज्ञान की पाठ्यपुस्तक का समग्र अध्ययन विद्यार्थियों को समर्थ बनाएगा; जैसे —

(क) जीव विज्ञानीय पदार्थों की विविधता से अंतरंग होना।

(ख) जीव जगत में डार्विन के विकास प्रक्रम के प्रदर्शन को सराहना तथा उसमें विश्वास करना।

(ग) जीवित संघटकों की परिवर्तनात्मक अवस्था को समझना; जैसे पादपों, जंतुओं तथा सूक्ष्मजीवों के समस्त शरीरक्रिया प्रक्रमों का आधार उपापचय है।

(घ) वंशागत समलक्षणी प्रतिकृतियन के दिशानिर्देशन तथा साथ ही साथ विकासशील प्रक्रम में माध्यम की भूमिका प्रदान करने वाले आनुवंशिक पदार्थ की सरंचना तथा कार्य को समझना।

(ङ) मानव कल्याण के लिए जीव विज्ञान की विस्तृत भूमिका की सराहना करना।

(च) जीवित प्रक्रमों के भौतिक-रसायन आधार को प्रदर्शित करना तथा इसी प्रकार जीवों के बर्ताव को समझने में न्यूनीकरण की सीमाओं की अनुभूति करना।

(छ) सभी जीवित जीव एक दूसरे से आनुवंशिक पदार्थ के साझेदारी के आधार द्वारा संबंधित हैं, इस अनुभूति के सहज प्रभाव का अनुभव करना।

(ज) जीवित जीवों के अस्तित्व तथा उत्तरजीविता के लिए संघर्ष की कहानी को जीव विज्ञान द्वारा स्पष्ट करना।

लेखन शैली में अवगम्य संबंधी परिवर्तन देखे जा सकते हैं। अधिकांश अध्यायों का लेखन आसान संवाद-शैली में किया गया है ताकि विद्यार्थी निरंतर विषय पर ही केंद्रित रहे जबकि कुछ अध्यायों में विषय वस्तु पर विशिष्ट टिप्पणी हैं। प्रत्येक अध्याय के अंत में अनेक प्रश्न दिए गए है। जिनमें कुछ के उत्तर आपको पाठ्य सामग्री में नहीं मिलेंगे; अतः विद्यार्थियों को ऐसे प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को शिक्षकों से परामर्श लेकर पूरक पाठ्य सामग्री का अध्ययन करना होगा।

मैं प्रोफ़ेसर कृष्ण कुमार, निदेशक, रा.शै.अ.प्र.प., प्रोफ़ेसर जी. रविन्द्र, संयुक्त निदेशक, रा.शै.अ.प्र.प. तथा प्रोफ़ेसर हुकुम सिंह, अध्यक्ष, डी ई एस एम; रा.शै.अ.प्र.प., के प्रति उनके लगातार प्रोत्साहन के लिए कृतज्ञ हूँ।

मैं डॉ बी.के. त्रिपाठी, रीडर, डी ई एस एम, रा.शै.अ.प्र.प. की हार्दिक प्रशंसा करना चाहूँगा जिनके समन्वयक के रूप में अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप कक्षा 11 तथा 12 की जीव विज्ञान पाठ्यपुस्तकें तैयार हुईं। टीम के सभी सदस्यों, विशेषज्ञों तथा समीक्षकों, विद्यालयी शिक्षकों तथा हिंदी अनुवादकों व सहयोगियों आदि, ने इस पुस्तक को तैयार कराने में अपना अथक योगदान दिया है। मैं इन सभी के प्रति अपना धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। मैं वास्तव में मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा गठित निगरानी समिति के सदस्यों के प्रति आभारी हूँ। इन्हीं के मूल्यवान सुझावों की सहायता से ही पुस्तक में सुधार किए गए हैं और पुस्तक अपने अंतिम स्वरूप तक पहुँच पाई है। यह पुस्तक एन सी एफ-2005 की मार्गदर्शिका को ध्यान में रखकर विशेषकर अधिगम के बोझ को कम करने की नीति पर बल देते हुए तैयार की गई है। हमें आशा है कि पुस्तक पठन-पाठन में भाग लेने वालें सभी भागीदारों की अपेक्षाओं को पूरा करेगी। भावी सुधारों के लिए सभी सुझावों का सदैव स्वागत है।

के. मुरलीधर
मुख्य सलाहकार

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष- विज्ञान एवं गणित पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति
जे.वी. नार्लीकर, *इमेरिटस प्रोफ़ेसर*, अंतर-विश्वविद्यालय केंद्र - खगोल विज्ञान और खगोल भौतिकी, पुणे

मुख्य सलाहकार
के. मुरलीधर, आचार्य जंतु विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सदस्य
अजीत कुमार कवठेकर, *प्रवाचक* (वनस्पति विज्ञान), श्री वेंक्टेश्वर कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
एन.वी.एस.आर.के. प्रसाद, *प्रवाचक* (वनस्पति विज्ञान), श्री वेंक्टेश्वर कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
एम.एम. चतुर्वेदी, *आचार्य*, जंतु विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
एल.सी. राय, *आचार्य*, वनस्पति विज्ञान विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
के. सरथ चंद्रन, *प्रवाचक (जंतु विज्ञान)*, श्री वेंक्टेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
जे.पी. गौर, *आचार्य*, वनस्पति विज्ञान विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
जे.एस. विरदी, *प्रवाचक*, सूक्ष्म जीव विज्ञान विभाग, साउथ कैम्पस, दिल्ली विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली
टी.आर. राव, *आचार्य (अवकाश प्राप्त)*, स्कूल ऑफ इंवॉयरमेंटल स्टडीज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
दिनेश कुमार, *प्रवाचक*, विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली
बी.एन. पांडेय, *प्राचार्य*, आर्डिनेंस फैक्टरी हायर सेकेंडरी स्कूल, देहरादून
बी.बी.पी. गुप्ता, *आचार्य*, जंतु विज्ञान विभाग, नार्थ-ईस्टर्न हिल यूनीवर्सिटी, शिलांग
वी.के. काकरिया, *प्रवाचक*, श्रेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल
वी.वी. आनंद, *प्रवाचक*, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, मैसूर
शांती चंद्रशेखरन, *प्रधान वैज्ञानिक*, आनुवंशिकी विभाग, आई.ए.आर.आई., नयी दिल्ली
शारदेंदु, *प्रवाचक*, वनस्पति विज्ञान विभाग, साइंस कालेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना
संगीता शर्मा, *पी.जी.टी (जीव विज्ञान)*, केंद्रीय विद्यालय, जेएनयू., नयी दिल्ली
सावित्री सिंह, *प्राचार्य*, आचार्य नरेंद्र देव कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
सिमिंदर के. ठुकराल, सहायक आचार्य, रा.शै.अ.प्र.प. सूचना तकनीकी संस्थान, नयी दिल्ली
सी.वी. सिमरे, *प्रवक्ता*, विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली
सुनयना शर्मा, *प्रवक्ता (जीव विज्ञान)*, राजकीय प्रतिभा विकास विद्यालय, द्वारका, नयी दिल्ली

हिंदी अनुवादक

एन.एस. चौहान, *पूर्व सह शिक्षा अधिकारी*, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, एम.एच.आर.डी., नयी दिल्ली
दयानंद पंत, *पूर्व उपनिदेशक*, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, एम.एच.आर.डी., नयी दिल्ली
बालकृष्ण सिन्हा, *पूर्व वैज्ञानिक अधिकारी*, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, एम.एच.आर.डी., नयी दिल्ली
हरीश कुमार, *पूर्व अध्यक्ष*, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, एम.एच.आर.डी., नयी दिल्ली
कवींद्र नाथ तिवारी, *प्रवाचक (वनस्पति विज्ञान)*, महिला महाविद्यालय, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
बी.एन. पांडेय, *प्राचार्य*, आर्डीनेस फैक्टरी हायर सेकेंडरी स्कूल, देहरादून

सदस्य-समन्वयक
बी.के. त्रिपाठी, *प्रवाचक*, विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र.प., नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

आभार

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् जीव विज्ञान, कक्षा 12 की पाठ्यपुस्तक निर्माण में योगदान देने वाले सभी व्यक्तियों एवं संगठनों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती है। परिषद् के.आर. शिवन्ना, *पूर्व आचार्य*, वनस्पति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; एस.के, सैदापुर, *आचार्य*, जंतु विज्ञान विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय धारवाड़; वाणी ब्रह्मचारी, *आचार्य*, अंबेदकर सेंटर, फॉर बायोमेडिकल रिसर्च, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; ए. एन. लाहिड़ी मजूमदार, *आचार्य*, बोस इंस्टीट्यूट कोलकाता; अनिल त्रिपाठी, *आचार्य*, जैव तकनीकी विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी; जे.एल.जैन, *वरिष्ठ फिजिसियन*, डब्ल्यू.यू.एस. हेल्थ सेंटर, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली; को कक्षा 11 की पुस्तक के विकास में सहयोग हेतु आभार व्यक्त करती है। इसके साथ ही परिषद् के.आर. शिवन्ना तथा आई.आई.टी. कानपुर के टी.सुब्रामनियम, *सह आचार्य*, द्वारा पुस्तक में प्रयुक्त किए जाने वाले फोटोग्राफ प्रदान करने के लिए विशेष आभारी है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् उन लोगों का हृदय से आभार प्रकट करती है जिन्होंने पुस्तक की समीक्षा में ए.एस. दीक्षित, *प्रवाचक*, जंतु विज्ञान विभाग, नार्थ–ईस्टर्न हिल यूनिवर्सिटी, शिलांग; एस.एल. वर्ते, *प्रवक्ता*, विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् नयी दिल्ली; सुषमा जयरथ, *प्रवाचक*, महिला–शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली; मोना यादव, *प्रवक्ता*, महिला–शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली; पूनम ए. कांत, *प्रवाचक* (जंतु विज्ञान), आचार्य नरेंद्र देव कालेज, नयी दिल्ली; सुवर्णा फोंसेसा ए ऐटो, *जी आई टीचर* (जीव विज्ञान), कार्मेल हायर सेकेंडरी स्कूल, वी.एच.ई.एल., भोपाल; ईशवंत कौर, *पी.जी.टी.* (जीव विज्ञान), डी.एम. स्कूल, आर.आई.ई. भोपाल; ए.के. सिंह, *पी.जी.टी.* (जीव विज्ञान), केंद्रीय विद्यालय कैंट, वाराणसी; आर.पी. सिंह, *प्रवक्ता* (जीव विज्ञान), राजकीय प्रतिभा विकास विद्यालय, किशनगंज, दिल्ली; एम.के. तिवारी, *पी.जी.टी.* (जीव विज्ञान), केंद्रीय विद्यालय, मंदसौर, मध्यप्रदेश; ए.के. गांगुली, *पी.जी.टी.* (जीव विज्ञान), जवाहर नवोदय विद्यालय, रोशनाबाद, हरिद्वार; चैताली दीक्षित, *पी.जी.टी.* (जीव विज्ञान), सेंट एंथोनीज हायर सेकेंडरी स्कूल (डॉन बॉस्को), शिलांग तथा अभिषेक चारी, आचार्य नरेंद्र देव कालेज, नयी दिल्ली ने भागीदारी निभायी। इसके साथ ही परिषद् हिंदी अनुवाद की समीक्षा के लिए एन.पी. सिंह, *सह आचार्य* (जंतु विज्ञान), राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर; एम.पी. शर्मा, *प्रवक्ता* (जंतु विज्ञान), बी.बी.डी. राजकीय कालेज, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर; पी.आर. यादव, *प्रवाचक*, जंतु विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कालेज, मुजफ्फर नगर; पी.एम. त्रिपाठी, *एस.आर.ओ.*, आर.ई.सी. सेंट्रल शिक्षक बोर्ड, छुटमलपुर, सहारनपुर; विनय श्रीवास्तव, *आचार्य*, जैव विज्ञान विभाग, वरकतुल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल की आभारी है।

परिषद् डा. हुकुम सिंह, *आचार्य* एवं *विभागाध्यक्ष*, विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र. परिषद् के बहुमूल्य योगदान हेतु अत्यधिक आभारी है।

इसके साथ ही परिषद् कंप्युटर अनुभाग के *प्रभारी*, श्री दीपक कपूर; *डी.टी.पी. ऑपरेटर*, सीमा मेहमी नरेन्द्र कुमार एवं मोहम्मद इस्माइल, नरगिस इस्लाम; *प्रति संपादक*, अमरसिंह सचान; *प्रूफरीडर*, श्रीमती अर्चना उपाध्याय तथा डी.ई.एस.एम. के ए.पी.सी. कार्यालय तथा डी.ई.सी.एम. एवं रा.शै.अ.प्र. परिषद् के प्रशासकीय कर्मचारियों के प्रति हार्दिक रूप से आभार व्यक्त करती है।

इस पुस्तक के निर्माण में प्रकाशन विभाग, रा.शै.अ.प्र. परिषद् का प्रयास प्रशंसनीय है।

© NCERT not to be republished

विषय सूची

आमुख *iii*

प्राक्कथन *v*

ईकाई छः

जनन **1-74**

अध्याय 1 जीवों में जनन 3

अध्याय 2 पुष्पी पादपों में लैंगिक जनन 20

अध्याय 3 मानव जनन 45

अध्याय 4 जनन स्वास्थ्य 63

ईकाई सात

आनुवंशिकी तथा विकास **75-153**

अध्याय 5 वंशागति तथा विविधता के सिद्धांत 77

अध्याय 6 वंशागति के आणविक आधार 103

अध्याय 7 विकास 136

ईकाई आठ

मानव कल्याण में जीव विज्ञान **154-207**

अध्याय 8 मानव स्वास्थ्य तथा रोग 156

अध्याय 9 खाद्य उत्पादन में वृद्धि की कार्यनीति 179

अध्याय 10 मानव कल्याण में सूक्ष्म जीव 195

© NCERT not to be republished

ईकाई नौ

जैव प्रौद्योगिकी 208–235

अध्याय 11 जैव प्रौद्योगिकी–सिद्धांत व प्रक्रम 210

अध्याय 12 जैव प्रौद्योगिकी एवं उसके उपयोग 225

ईकाई दस

पारिस्थिकी 236–312

अध्याय 13 जीव और समष्टियाँ 238

अध्याय 14 पारितंत्र 263

अध्याय 15 जीव विविधतता एवं संरक्षण 282

अध्याय 16 पर्यावरण के मुद्दे 294

पूरक पाठ्य सामग्री 313–316

© NCERT not to be republished

ईकाई छः
जनन

अध्याय 1
जीवों में जनन

अध्याय 2
पुष्पी पादपों में लैंगिक जनन

अध्याय 3
मानव जनन

अध्याय 4
जनन स्वास्थ्य

जीव विज्ञान पृथ्वी पर जीवन की गाथा/कहानी का सार/निचोड़ है। यद्यपि व्यष्टि जीव का निश्चित रूप से अंत होता है वहीं प्रजातियाँ लाखों वर्षों तक अस्तित्व में रहती हैं, जब तक कि उन्हें प्राकृतिक अथवा मानवोद्भवी विलुप्ति के खतरे की आशंका नहीं होती। जनन एक प्रकार से जीव संबंधी प्रक्रिया का रूप ले लेता है जिसमें बिना प्रजातियाँ लंबे समय तक जीवित नहीं रह सकतीं। प्रत्येक व्यष्टि लैंगिक अथवा अलैंगिक साधनों का प्रयोग करते हुए अपने पीछे अपनी संतति छोड़ जाती है लैंगिक जनन की क्रियाविधि नये रूपभेद को विकसित करने में सहायक होती है, अतः उत्तरजीविता लाभ की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। यह ईकाई जीवित जीवों में होने वाली जनन प्रक्रियाओं के सामान्य सिद्धांतों के बारे में जानकारी देती है तथा पुष्पीय पादपों तथा मानवों में इस प्रक्रिया को उनसे संबद्ध उदाहरणों सहित व्यापक रूप से समझाती है। मानव जनन स्वास्थ्य तथा जनन के जीव विज्ञान को समझने तथा जनन संबंधी बीमारियों से किस प्रकार बचा जा सकता है पर सापेक्ष महत्त्व प्रस्तुत किया गया है।

© NCERT not to be republished

पंचानन महेश्वरी
(1904-1966)

पंचानन महेश्वरी का जन्म जयपुर (राजस्थान) में नवंबर 1904 में हुआ। वे केवल भारतवर्ष के ही नहीं बल्कि समस्त विश्व के अत्यंत ही प्रतिष्ठित ख्यातिप्राप्त वनस्पतिविद् रहे हैं उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से वह इलाहाबाद गये जहाँ से उन्होंने डॉक्टर ऑफ साइंस की उपाधि प्राप्त की। कॉलेज के दिनों से ही वह एक अमरीकन मिशनरी अध्यापक डॉ. डब्ल्यू ड्जिऑन से प्रेरणा लेकर वनस्पति विज्ञान विशेषकर आकारिकी के अध्ययन में रुचि लेनी शुरु की। इनके शिक्षक ने एक बार अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया कि यदि उनका कोई विद्यार्थी प्रगति करके उनसे भी ऊपर निकल जाता है तो उन्हें इससे अत्याधिक संतोष प्राप्त होगा। अध्यापक के इन शब्दों ने पंचानन को प्रोत्साहित किया और वह उनसे पूछ बैठे कि बदले में उनके लिए वह क्या कर सकते हैं।

उन्होंने भ्रूण विज्ञानीय पहलुओं पर कार्य किया तथा वर्गिकी में भ्रूण विज्ञानीय लक्षणों के उपयोग को लोकप्रिय किया। इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में वनस्पति विज्ञान विभाग की स्थापना की थी यह विभाग आज ऊतक संवर्धन तथा भ्रूण विज्ञान में अनुसंधान का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र है। इन्होंने अपरिपक्व भ्रूण के कृत्रिम संवर्धन पर कार्य आरंभ करने की आवश्यकता पर भी बल दिया। इन दिनों 'ऊतक संवर्धन' ने विज्ञान के क्षेत्र में ऐतिहासिक घटना का रूप ले लिया है। टेस्ट ट्यूब (परखनली) निषेचन तथा अंत:अंडाश्यी परागण पर इनके इस कार्य के कारण विश्वभर में इनकी जयजयकार हुई। रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन ने इन्हें (FRS) फैलोशिप, इंडियन साइंस एकेड्मी तथा अन्य उत्कर्ष संस्थानों ने इन्हें सम्मानित किया। इन्होंने सामान्य शिक्षा को प्रोत्साहित किया तथा स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया। एनसीईआरटी ने वर्ष 1964 में हायर सैकेंडरी स्कूल के लिए जीव विज्ञान की पहली पुस्तक इन्हीं के नेतृत्व में प्रकाशित की।

© NCERT not to be republished

अध्याय 1

जीवों में जनन

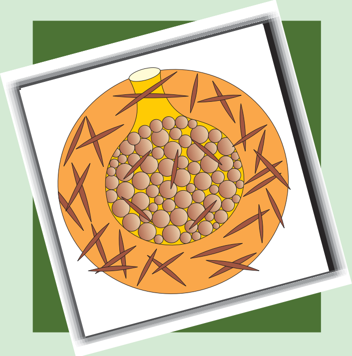

1.1 अलैंगिक जनन

1.2 लैंगिक जनन

प्रत्येक जीव केवल कुछ निश्चित समय तक ही जीवित रह सकता है। जीव के जन्म से उसकी प्राकृतिक मृत्यु तक का यह काल, उस जीव की **जीवन अवधि** को निरूपित करता है। चित्र 1.1 में कुछ जीवों की जीवन अवधि दिखाई गई है। *बहुत से अन्य जीवों के चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। इन चित्रों को देखकर; इनके बारे में पता लगाकर दिए गए रिक्त स्थान में आपको उनकी जीवन अवधि के बारे में लिखना है।* चित्र 1.1 में निरूपित जीव की जीवन अवधि का परीक्षण कीजिए। क्या यह दोनों बातें रोचक एवं कौतूहल पूर्ण नहीं हैं कि यह अवधि कम से कम एक दिन या फिर अधिक से अधिक कुछ हज़ार वर्ष हो सकती हैं? इन दोनों चरम सीमाओं के मध्य अधिकांश जीवित जीवों की जीवन अवधि बनी रहती है। आप शायद इस बात पर ध्यान देंगे कि किसी जीव की जीवन अवधि का आवश्यक रूप से आकार (साइज) से संबंध नहीं है; कौआ और तोता के आकार में कोई अंतर नहीं होता, फिर भी इन दोनों के जीवन अवधि में बहुत अंतर होता है। ठीक इसी प्रकार से आम के वृक्ष की जीवन अवधि पीपल के वृक्ष की तुलना में बहुत कम होती है। जीवन अवधि भले ही कितनी ही हो, परंतु प्रत्येक जीव की मृत्यु सुनिश्चित है। दूसरे शब्दों में; यह कह सकते हैं कि एक कोशीय जीवों को छोड़कर कोई भी जीव अमर नहीं है। *हम क्यों कहते हैं कि एक कोशीय जीव की प्राकृतिक मृत्यु नहीं होती?* इस वास्तविकता को जानते हुए क्या आपको आश्चर्य नहीं होता कि हज़ारों वर्षों से पृथ्वी पर पादपों तथा पशु-पक्षियों की विभिन्न स्पीशीज़ की विशाल संख्या विद्यमान है? जीवित जीवों में कुछ प्रक्रियाएँ अवश्य ही ऐसी हैं जिनसे यह निरंतरता सुनिश्चित होती है। हाँ, यहाँ हम जनन का उल्लेख कर रहे हैं जिसे हम निश्चित मानते हैं।

चित्र 1.1 कुछ जीवों की अनुमानित जीवन अवधि

© NCERT not to be republished

जीवों में जनन को यहाँ एक जीव विज्ञानीय प्रक्रम के रूप में परिभाषित किया गया है; जिसमें एक जीव अपने समान एक छोटे से जीव (संतति) को जन्म देता है। संतति में वृद्धि होती है, उनमें परिपक्वता आती है तथा इसके बाद वह नयी संतति को जन्म देती है। इस प्रकार जन्म, वृद्धि तथा मृत्यु चक्र चलता रहता है। जनन प्रजाति में एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी में निरंतरता बनाए रखती है। आप बाद में अध्याय 5 (आनुवंशिकता और विविधता के सिद्धांत) में अध्ययन करेंगे कि किस प्रकार आनुवंशिक विविधता जनन के दौरान सृजित या वंशागत होती हैं।

जीव विज्ञानीय संसार में व्यापक विविधता पाई जाती है तथा प्रत्येक जीव अपने को बहुगुणित करने तथा संतति उत्पन्न करने के लिए अपनी ही विधि विकसित करता है। जीव किस प्रकार से जनन करता है उसके वास, उसकी आंतरिक शरीर क्रिया विज्ञान तथा अन्य कई कारक सामूहिक रूप से उत्तरदायी हैं। जनन प्रक्रिया दो प्रकार की होती है जो एक अथवा दो जीवों के बीच भागीदारी पर आधारित रहती है। जब संतति की उत्पत्ति एकल जनक द्वारा युग्मक (गैमीट) निर्माण की भागीदारी के साथ अथवा इसकी अनुपस्थिति में हो तो वह जनन **अलैंगिक** कहलाता है। जब दो जनक (विपरीत लिंग वाले) जनन प्रक्रिया में भाग लेते हैं तथा नर और मादा युग्मक (गैमीट) में युग्मन होता है तो यह **लैंगिक जनन** कहलाता है।

1.1 अलैंगिक जनन

इस विधि में एकल जीव (जनन) संतति उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। इसके परिणामस्वरूप जो संतति उत्पन्न होती है; वह केवल एक दूसरे के समरूप ही नहीं, बल्कि अपने जनक के एकदम समान होती है। *क्या यह संतति आनुवंशिक रूप से भी एक समान अथवा भिन्न होती है?* अकारिकीय तथा आनुवंशिक रूप से एक समान जीवों के लिए **क्लोन** शब्द की रचना की गई है।

आइए! जीवों के विभिन्न वर्गों के मध्य पाए जाने वाले अलैंगिक जनन के विस्तृत रूप का अध्ययन करें। अलैंगिक जनन सामान्य रूप से एकल जीव, पादप तथा जीव (अपेक्षाकृत साधारण जीव) आदि में पाया जाता है। प्रजीव तथा एक केंद्रकीय जीव

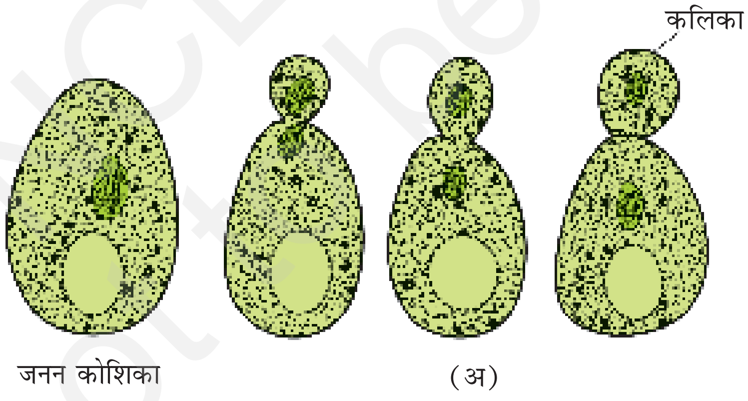

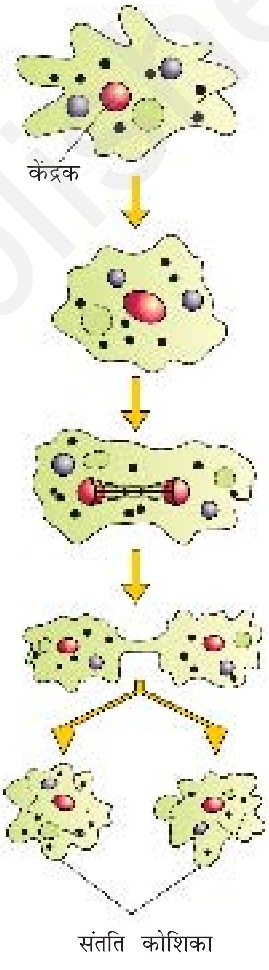

चित्र 1.2 एक कोशिकीय जीव में कोशिका विभाजन (अ) यीस्ट में मुकुलन (ब) *अमीबा* में द्विखंडन

(प्रोटिस्टा एवं मोनेरा) में जनक कोशिका दो में विभक्त होकर नए जीवों को जन्म देती हैं (चित्र 1.2)। अत: इन जीवों में **कोशिका विभाजन** एक प्रकार से जनन की क्रिया विधि है। बहुत से एकल-कोशिका जीव **द्विखंडन** से उत्पन्न होते हैं, जिनमें एक कोशिका

© NCERT not to be republished

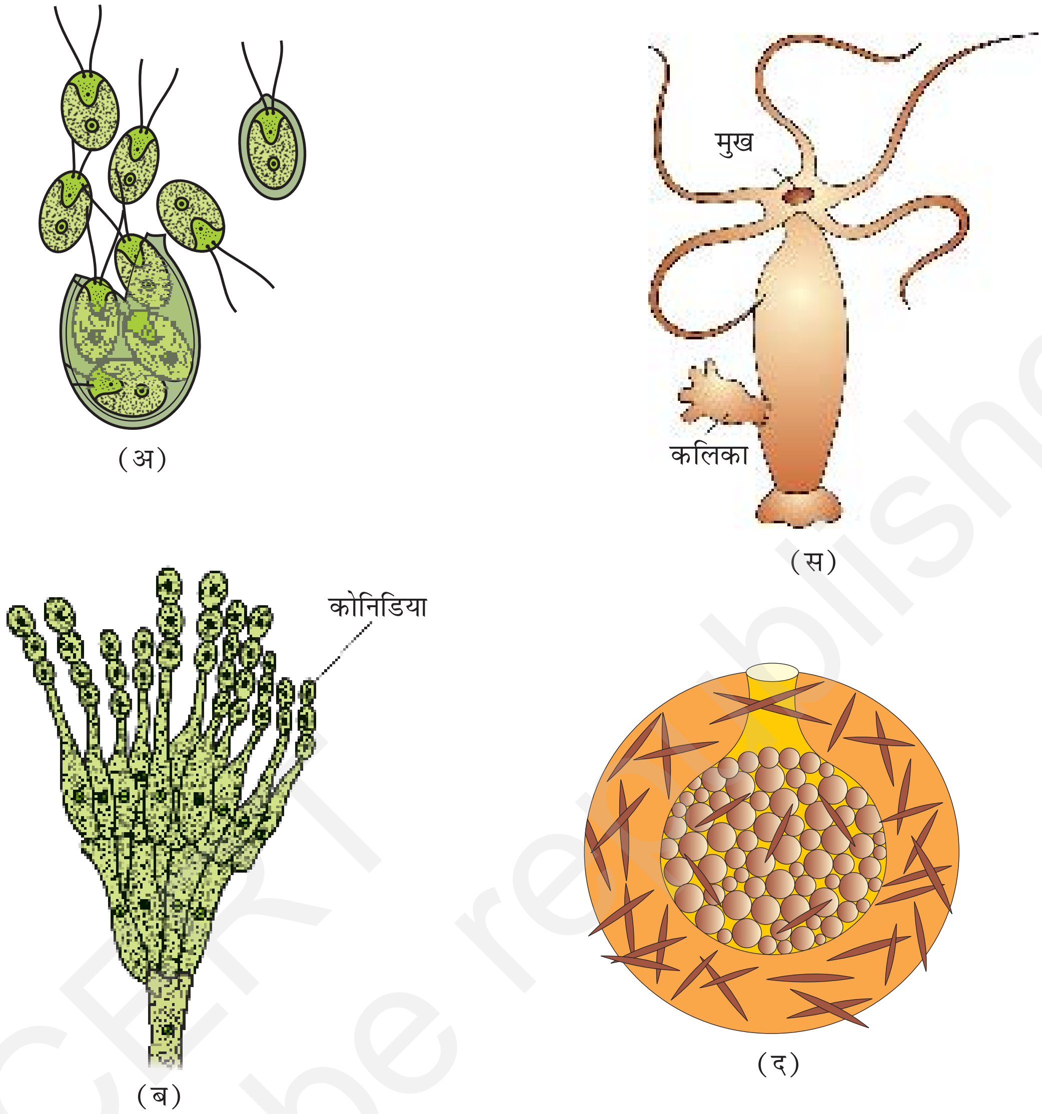

चित्र 1.3 अलैंगिक प्रजनन संरचना (अ) क्लैमिडोमोनास में अलैंगिक चल बीजाणु (ब) *पैनीसीलियम* की कोनिडिया (स) *हाइड्रा* में कलिका (द) स्पंज में स्पंज

दो भागों में विभक्त हो जाती है और प्रत्येक भाग एक वयस्क जीव के रूप में तीव्रता पूर्वक वृद्धि कर जाता है (जैसे *अमीबा*, *पैरामीसियम* आदि)। यीस्ट में यह विभाजन एक समान नहीं होता तथा छोटी **कलिकाएँ** उत्पन्न हो जाती हैं जो प्रारम्भ में तो जनक कोशिका से जुड़ी रहती हैं और बाद में अलग हो कर नए यीस्ट जीव में परिपक्व हो जाती हैं।

फंजाई जगत के सदस्य तथा साधारण पादप जैसे शैवाल विशेष अलैंगिक जननीय संरचनाओं द्वारा जनन करते हैं (चित्र 1.3)। इन संरचनाओं में अत्यंत ही सामान्य संरचनाएँ अलैंगिक चलबीजाणु (जू स्पोर्स) हैं जो सामान्यत: सूक्ष्मदर्शीय चलनशील संरचनाएँ होती हैं। अन्य सामान्य अलैंगिक जनन संरचनाएँ **कोनिडिया** (*पैनीसिलम*), **कलिका** (*हाइड्रा*) तथा **जैम्यूल** (*स्पंज*) होते हैं।

© NCERT not to be republished

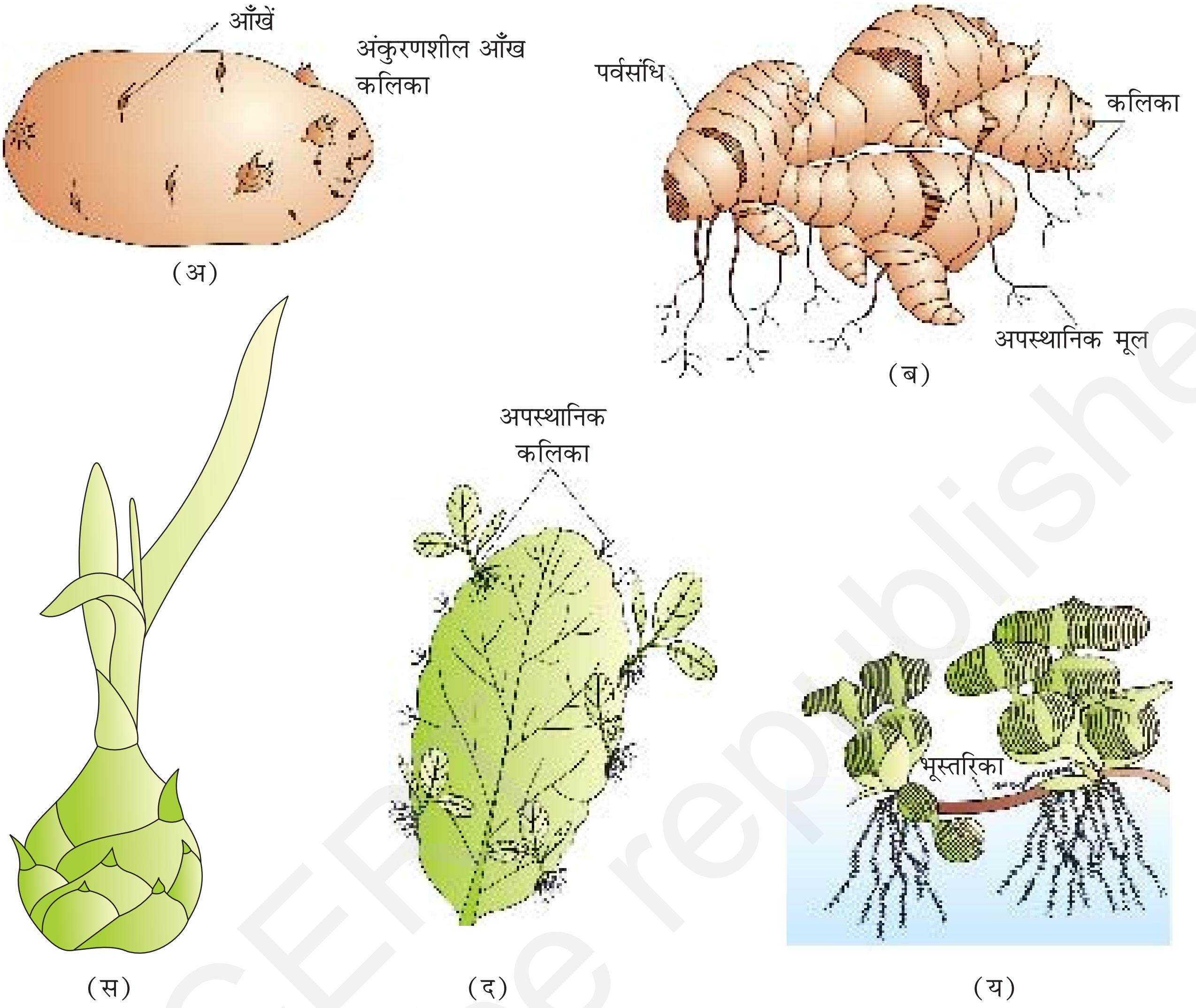

चित्र 1.4 पुष्पीय पादपों में कायिक प्रवर्धन (अ) आलू की आँख (ब) अदरक का प्रकंद (स) *अगैव* का बुलबिल (द) *ब्रायोफिलम* की पर्ण कलिकाएँ (य) जल हायसिंथ की भूस्तरिका

कक्षा 11 में आपने पादपों के कायिक जनन के बारे में अवश्य ज्ञान प्राप्त किया होगा। आपका क्या विचार है कि कायिक जनन भी एक प्रकार का अलैंगिक जनन है? आप ऐसा क्यों सोचते हैं? क्या क्लोन शब्द कायिक जनन से उत्पन्न संतति के लिए उपयोज्य है।

जबकि जंतुओं तथा अन्य साधारण जीवों में **अलैंगिक** शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप से तथा पादपों में इस शब्द का प्रयोग निरंतर किया जाता है। पादपों में **कायिक प्रवर्धन** की इकाई जैसे **उपरिभूस्तारी** (सर) **प्रकन्द**, (सरजोम) **सकरकन्द**, **बल्व**, **भूस्तरी** (औफ सेंट) सभी नयी संतति को पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं (चित्र 1.4)। ये संरचनाएँ **कायिक प्रवर्ध** (प्रोपेग्यूल) कहलाती हैं, चूँकि इन संरचनाओं के निर्माण में दो जनक भाग नहीं लेते, अतः यह अलैंगिक जनन ही होगा।

© NCERT not to be republished

आपने निश्चित तौर पर जलाशयों की 'महाविपत्ति' (वाटर हायासिंथ) अथवा 'बंगाल के आतंक' के बारे में अवश्य सुना होगा। यह कुछ भी नहीं, बल्कि जलीय पादप वाटर हायसिंथ है जो ठहरे जल में सर्वाधिक वृद्धि करने वाला खरपतवार है। यह जल से ऑक्सीजन खींच लेता है जिसके परिणामस्वरूप मछलियाँ मर जाती हैं। आप इसके बारे में और अधिक अध्याय 13 और 14 में पढ़ेंगे। आपको जानकर रोचक लग सकता है कि इस पादप का भारतवर्ष में आगमन मात्र इसमें सुंदर आकार के पुष्प तथा पत्तियों के कारण हुआ। यद्यपि यह कायिक प्रवर्धन द्रुतगति से कर सकता है और अल्प समय में ही संपूर्ण जलाशय पर फैल जाता है और अपने आप से जलाशय को ढक देता है और इससे छुटकारा पाना बहुत ही कठिन होता है।

क्या आप इस तथ्य से परिचित हैं कि आलू, गन्ना, केला, अदरक, डहैलिया जैसे पादपों की खेती किस प्रकार की जाती है? क्या आपने आलू के कंद पर स्थित कलिका (जिसे आँख भी कहते हैं) से, और केले तथा अदरक के प्रकंद से नन्हा सा पादप निकलता हुआ देखा है? जब आप ध्यान पूर्वक उपर्युक्त सूचीबद्ध पादपों में से विकसित होने वाले पादपकों (प्लांटलेट्स) की उत्पत्ति स्थानों का निर्धारण करने का प्रयत्न करेंगे तब आप पाएँगे कि यह अधिकतर इन पादपों के रूपांतरित स्तंभों में उपस्थित **प्रर्वसंधियों** (नोड्स) से उत्पन्न होती हैं, जब यह पर्वसंधियाँ नमीयुक्त मृदा अथवा जल के संपर्क में आती हैं तब इनके मूल (रूट्स) तथा नए पादप उत्पन्न होते हैं। ठीक इसी प्रकार *पत्थरचटा* (ब्रायोफिलम) की पत्तियों में कटे किनारों से अपस्थानिक (एडवेंटिसियस) कलिकाएँ उत्पन्न होती हैं। माली लोग तथा किसान पादपों के इस गुण सामर्थ्य का पूरा लाभ उठाते हुए ऐसे पादपों का बड़े पैमाने पर प्रवर्धन करते हैं।

ध्यान देने योग्य एक रोचक बात यह है कि अपेक्षाकृत साधारण जीवों में अलैंगिक जनन ही जनन की सामान्य विधि है; जैसे कि शैवाल तथा फंजाई और ये प्रतिकूल परिस्थितियों के आरंभन से पूर्व जनन की लैंगिक विधि की ओर बढ़ने लगती हैं । *यह पता करें कि किस प्रकार लैंगिक जनन प्रतिकूल परिस्थितियों में इन जीवों को जीवित रहने में सहायता करता है? लैंगिक जनन ऐसी परिस्थितियों में सफलतापूर्वक क्यों संपन्न होता है?* उच्च श्रेणी के पादपों में दोनों विधियों —*अलैंगिक* (कायिक) तथा लैंगिक द्वारा जनन देखा गया है। दूसरी ओर, अधिकांश जंतुओं में जनन की केवल लैंगिक विधि ही होती है।

1.2 लैंगिक जनन

लैंगिक जनन के अंतर्गत एक से जीव अथवा अभिमुख (विपरीत) लिंग वाले भिन्न जीवों द्वारा नर तथा मादा युग्मक (गैमीटों) का निर्माण शामिल है। यह युग्मक आपस में मिलकर युग्मनज (जाइगोट) का निर्माण करते हैं जिससे आगे चलकर नए जीव का निर्माण होता है। यह अलैंगिक जनन की तुलना में एक विस्तृत, जटिल तथा धीमी प्रक्रिया है। नर तथा मादा युग्मकों के युग्मन से जो लैंगिक जनन संपन्न होता है उसके परिणामस्वरूप जो संतति उत्पन्न होती है, वह अपने जनकों के अथवा आपस में भी समरूप नहीं होती है।

पादप, जंतु अथवा फंजाई जैसे वैविध्यपूर्ण जीवों के अध्ययन से पता चलता है कि यद्यपि यह बाह्य आकारिकी, आंतरिक संरचनाओं और शरीर क्रिया विज्ञान में एक-दूसरे से अलग हैं परंतु जब यह लैंगिक प्रजनन के लिए एक-दूसरे के निकट आते हैं, तब

© NCERT not to be republished

वह एक जैसे पैटर्न को अपनाते हैं, यह एक आश्चर्य की बात है। आइए सबसे पहले उन सामान्य विशिष्टताओं पर चर्चा करें जो इन विविध जीवों में सामान्य हैं।

सभी जीव अपने जीवन में वृद्धि की एक निश्चित अवस्था एवं परिपक्वता तक पहुँचते हैं। इसके पश्चात् ही लैंगिक जनन कर सकते हैं। वृद्धि का यह काल **किशोर अवस्था** की **प्रावस्था** कहलाता है। पादपों में यह **कायिक प्रावस्था** कहलाती है। यह प्रावस्था विभिन्न जीवों में अलग अवधि की होती है।

किशोरावस्था/कायिक प्रावस्था की समाप्ति ही जनन प्रावस्था का आरंभ है। इस प्रावस्था को उच्च पादपों में आसानी से तब देखा जा सकता है जब उनके पुष्प आने लगते हैं। *गेंदा, धान, गेहूँ, नारियल, आम आदि पेड़ों पर पुष्प लगने में कितना समय लगता है? कुछ पादपों में पुष्पीकरण एक से अधिक बार होता है। तब इस अंतरपुष्पन की अवधि को क्या कहेंगे — किशोरावस्था अथवा वयस्कता?*

अपने क्षेत्र में लगे कुछ वृक्षों का निरीक्षण करो। क्या प्रति वर्ष इन वृक्षों पर उसी माह में पुष्प लगते हैं; जिस माह में पिछले वर्ष लगे थे? आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि आम, सेब, कटहल आदि जैसे फल 'मौसमी' होते हैं? क्या कुछ पादप ऐसे भी हैं; जिनमें वर्ष भर पुष्पीकरण होता रहता है तथा कुछ में मौसम के आधार पर पुष्प निकलते हैं? पादप वार्षिक तथा द्विवार्षिक किस्मों के होते हैं और यह सभी स्पष्टतः कायिक, जनन तथा जीर्यमान प्रावस्थाओं को प्रदर्शित करते हैं; परंतु बहुवर्षीय जातियों में इन प्रावस्थाओं को स्पष्ट रूप से पारिभाषित करना कठिन होता है। कुछ पादप असामान्य रूप से पुष्पीकरण की क्रियाविधि को प्रदर्शित करते हैं। इनमें से कुछ जैसे बाँस की जाति के पादप अपने पूरे जीवन काल में सामान्यतः 50–100 वर्षों के बाद केवल एक बार पुष्प पैदा करते हैं। परिणामस्वरूप एक बड़ी संख्या में फल उत्पन्न होते हैं और मर जाते हैं। एक अन्य पादप, *स्ट्रोबिलैन्थस कुन्यिआना* (नीलाकुरेन्जी) 12 वर्षों में एक बार पुष्प उत्पन्न करता है। आप में से अधिकांशतः यह जानते होंगे कि इस पादप ने सितंबर–अक्टूबर 2006 के दौरान इतने पुष्प पैदा किए जिसके परिणामस्वरूप केरल, कर्नाटक तथा तमिलनाडू के पहाड़ी क्षेत्रों में सड़क के किनारे पर पुष्पों का कालीन-सा बिछा दिखाई पड़ा, जिस दृश्य से सैलानियों की एक बहुत बड़ी संख्या इनकी ओर आकर्षित होती है। अधिकतर प्राणियों की किशोरावस्था की समाप्ति उनके प्रजनन व्यवहार के पूर्व उनकी शारीरिकी एवं आकारिकी के बदलाव से प्रकट होती है। विभिन्न जीवों में जनन प्रावस्था भी विविध अवधि की होती है।

क्या आप मानव में पाए जाने वाले परिवर्तनों की सूची तैयार कर सकते हैं जिनसे जनन परिपक्वता का पता लग सके?

प्राणियों में, उदाहरणार्थ; पक्षी क्या वर्ष भर अंडे देते रहते हैं? अथवा क्या यह किसी मौसम से संबद्ध घटनाक्रम है? मेंढक और छिपकली में ये प्रक्रिया कैसे होती है? आप देखेंगे कि प्रकृति में रहने वाले पक्षी केवल विशेष मौसम के आने पर ही अंडे देते हैं। यद्यपि संरक्षण में रखे जाने वाले पक्षियों (जैसा कि कुक्कुट फ़ार्म में) में वर्ष भर अंडे देने की क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। ऐसे मामलों में अंडे देने का कार्य जनन क्रिया से संबंधित न होकर; इसकी बड़े पैमाने पर व्यापार के लिए उत्पत्ति है जो मात्र मानव कल्याण ही कहा जा सकता है।

© NCERT not to be republished

जनन प्रावस्था के दौरान अपरास्तनी मादा के अंडाशय की सक्रियता में चक्रिक तथा सहायक वाहिका और हार्मोन में परिवर्तन आने लगते हैं। नॉन प्राइमेट स्तनधारियों जैसे गाय, भेड़, चूहों, हिरन, कुत्ता, चीता, आदि में जनन के दौरान ऐसे चक्रिक परिवर्तन देखे गए हैं इन्हें **मदचक्र** (ओएस्ट्रस साइकिल) कहते हैं; जबकि प्राइमेटों (बन्दर, ऐप्स, मनुष्य) में यह **ऋतुस्राव चक्र** कहलाता है। अधिकांश स्तनधारियों विशेषकर जो प्राकृतिक रूप से वनों में रहते हैं; अपने जनन प्रावस्था के दौरान अनुकूल परिस्थितियों में ऐसे चक्रों का प्रदर्शन करते हैं। इसी कारण इन्हें ऋतुनिष्ठ अथवा मौसमी प्रजनक कहते हैं। अधिकांशत: स्तनधारी अपने पूर्ण जनन काल में जनन के लिए सक्रिय होते हैं। इसी कारण इन्हें सतत प्रजनक कहते हैं।

इस तथ्य से सभी परिचित हैं कि हम सभी आयु में बढ़ते हैं (यदि हम लम्बी आयु तक जीवित रहें); *परंतु वृद्ध होने का क्या अर्थ है?* प्रजनन आयु की समाप्ति को जीर्णता या वृद्धावस्था के मापदंड के रूप में माना जा सकता है। शरीर में जीवन की अवधि के अंतिम चरण में सहवर्ती परिवर्तन (जैसे उपापचयों का मंद गति से होना) होने लगते हैं। वृद्धावस्था अंतत: मृत्यु तक ले जाती है।

पादप तथा प्राणियों दोनों ही में तीनों प्रावस्थाओं के बीच संक्रमण के लिए हार्मोन उत्तरदायी पाए गए हैं। हार्मोन तथा कुछ विशेष पर्यावरणीय कारकों के बीच परस्पर क्रियाएँ जीवों की जनन क्रियाओं तथा व्यवहारिक अभिव्यक्तियों को नियंत्रित करती हैं।

लैंगिक जनन की कुछ घटनाएँ — परिपक्वता अवस्था प्राप्त करने के पश्चात् सभी लैंगिक जनन करने वाले जीव कुछ घटनाएँ एवं प्रक्रियाएँ प्रदर्शित करते हैं; जिनमें महत्त्वपूर्ण मूलभूत समानता होती है। यद्यपि लैंगिक जनन से संबद्ध संरचनाएँ जीवों में एकदम भिन्न होती हैं। यद्यपि विस्तृत एवं जटिल होने के बावजूद जीवों में लैंगिक जनन की घटनाएँ एक नियमित क्रम का अनुपालन करती हैं। लैंगिक जनन, एक प्रजाति के नर एवं मादा द्वारा उत्पन्न युग्मक के युग्मन (अथवा युग्मनज निषेचन तथा भ्रूणोद्भव) द्वारा विशिष्टीकृत होता है। सुविधा के लिए क्रमबद्ध घटनाओं को तीन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं **निषेचन-पूर्व**, **निषेचन** तथा **निषेचन-पश्चात्** में विभक्त किया जा सकता है।

1.2.1 निषेचन-पूर्व घटनाएँ

इसके अंतर्गत युग्मकों के संयोजन से पूर्व की सारी घटनाएँ सम्मिलित होती हैं। निषेचन पूर्व की दो प्रमुख घटनाएँ **युग्मकजनन** (गैमेटोजेनिसिस) तथा युग्मक स्थानांतरण (गैमेटो ट्रांसफर) हैं।

1.2.1.1 युग्मक जनन

जैसा कि आप जानते हैं; **युग्मक जनन** नर तथा मादा दो प्रकार के युग्मकों की गठन प्रक्रिया को संदर्भित करता है। युग्मक एक प्रकार से अगुणित कोशिकाएँ होती हैं। कुछ शैवालों में दो युग्मक देखने में एक दूसरे के समान दिखाई पड़ते हैं। इसी कारण वह **समयुग्मकी** (या समयुग्मक) (चित्र 1.5 अ) कहलाते हैं; क्योंकि इनकी एकरूपता के कारण हम इन्हें नर तथा मादा युग्मकों के रूप में श्रेणीबद्ध नहीं कर सकते। हालाँकि

© NCERT not to be republished

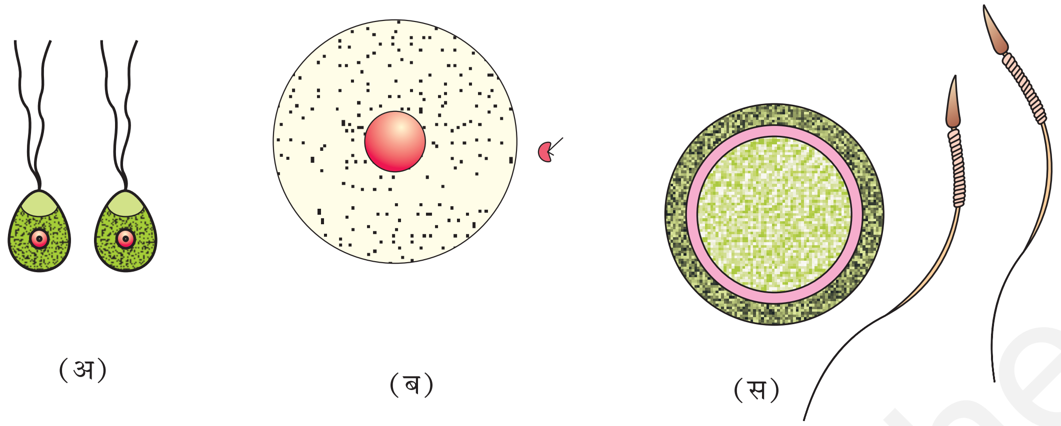

चित्र 1.5 युग्मकों की किस्में — (अ) *क्लैडोफोरा* (एक शैवाल) के समयुग्मक (ब) *फ्यूक्स* (एक शैवाल) के विषम युग्मक (स) मानव के विषम युग्मक

अधिकतर लैंगिक प्रजनक जीवों द्वारा आकारिकी रूप से स्पष्ट दो प्रकार के (**विषम युग्मक**) पैदा किए जाते हैं इस प्रकार के जीवों में नर युग्मकों को **पुमणु** या **शुक्राणु** कहते हैं; जबकि मादा युग्मकों को **अंड** अथवा **डिंब** (चित्र 1.5 स) कहते हैं।

जीवों में लैंगिकता — सामान्यत: जीवों में लैंगिक जनन के दौरान दो विभिन्न समष्टियों के युग्मकों में युग्मन होता है। परंतु यह सदा के लिए सत्य तथ्य नहीं है। *यदि आप कक्षा 11 के उदाहरणों का स्मरण करें तो क्या स्वत: निषेचन की प्रक्रिया को पहचान सकते हैं।* यद्यपि पादपों में इसके उदाहरण प्रस्तुत करना आसान है। पादप में नर तथा मादा दोनों जनन संरचनाएँ पाई जाती हैं; परंतु जब एक ही पादप में दोनों नर तथा मादा जनन संरचनाएँ पाई जाएँ तो वह 'द्विलिंगी' (चित्र 1.6 स, य) अथवा जब वह भिन्न पादपों पर हों 'एक लिंगी' (चित्र 1.6 द) कहलाता है। बहुत-सी फंजाई तथा पादपों में द्विलिंगी स्थिति को उल्लिखित करने के लिए **उभय लिंगाश्रयी** तथा **समथैलसी** शब्द का प्रयोग करते हैं। एकलिंगता की स्थिति को उल्लिखित करने के लिए **एकलिंगाश्रयी** तथा **विषमथैलसी** शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं। पुष्पीय पादपों में एक लिंगी नर पुष्प पुंकेसरी होता है अर्थात् पुंकेसर (परागकण) वहन करने वाला जबकि मादा पुष्प **स्त्रकेसर** अर्थात् **स्त्रीकेसर** धारण किए रहता है। कुछ पुष्पीय पादपों में एक अकेला पादप उभयलिंगाश्रयी (नर या मादा दोनों लिंगी) हो सकता है और इनमें पैदा होने वाले पुष्प एकलिंगी तथा द्विलिंगी दोनों हो सकते हैं; जबकि मादा पुष्प स्त्रकेसर अर्थात् स्त्रीकेसर धारण करता है। उभयलिंगाश्रयी पादपों के कुछ उदाहरण कुकरविटों तथा नारियल वृक्ष हैं; जबकि पपीता तथा खजूर एकलिंगाश्रयी के उदाहरण हैं। *उन युग्मक प्रकारों के नाम लिखें जो पुंकेसरी एवं स्त्रीकेसरी पुष्पों से बनते हैं।*

इसी प्रकार से प्राणियों में क्या होता है? क्या सभी प्रजातियों की व्यष्टि में नर अथवा मादा (**एकलिंगी**) (चित्र 1.6 ब) पाए जाते हैं? अथवा जिनमें दोनों लिंग एक साथ एक ही प्राणी (**द्विलिंगी**) में पाए जाते हैं। *आप संभवत: अनेक एकलिंगीय प्राणी प्रजातियों की सूची बना सकते हैं।* प्राणियों में केंचुए (चित्र 1.6 अ) स्पंज, टेपवर्म तथा जोंक द्विलिंगी प्राणियों के प्रारूपिक उदाहरण हैं इनमें नर तथा मादा जनन अंग दोनों ही (**उभयलिंगी/द्विलिंगी**) एक प्राणी में पाए जाते हैं। तिलचट्टा एकलिंगी प्राणी का उदाहरण है।

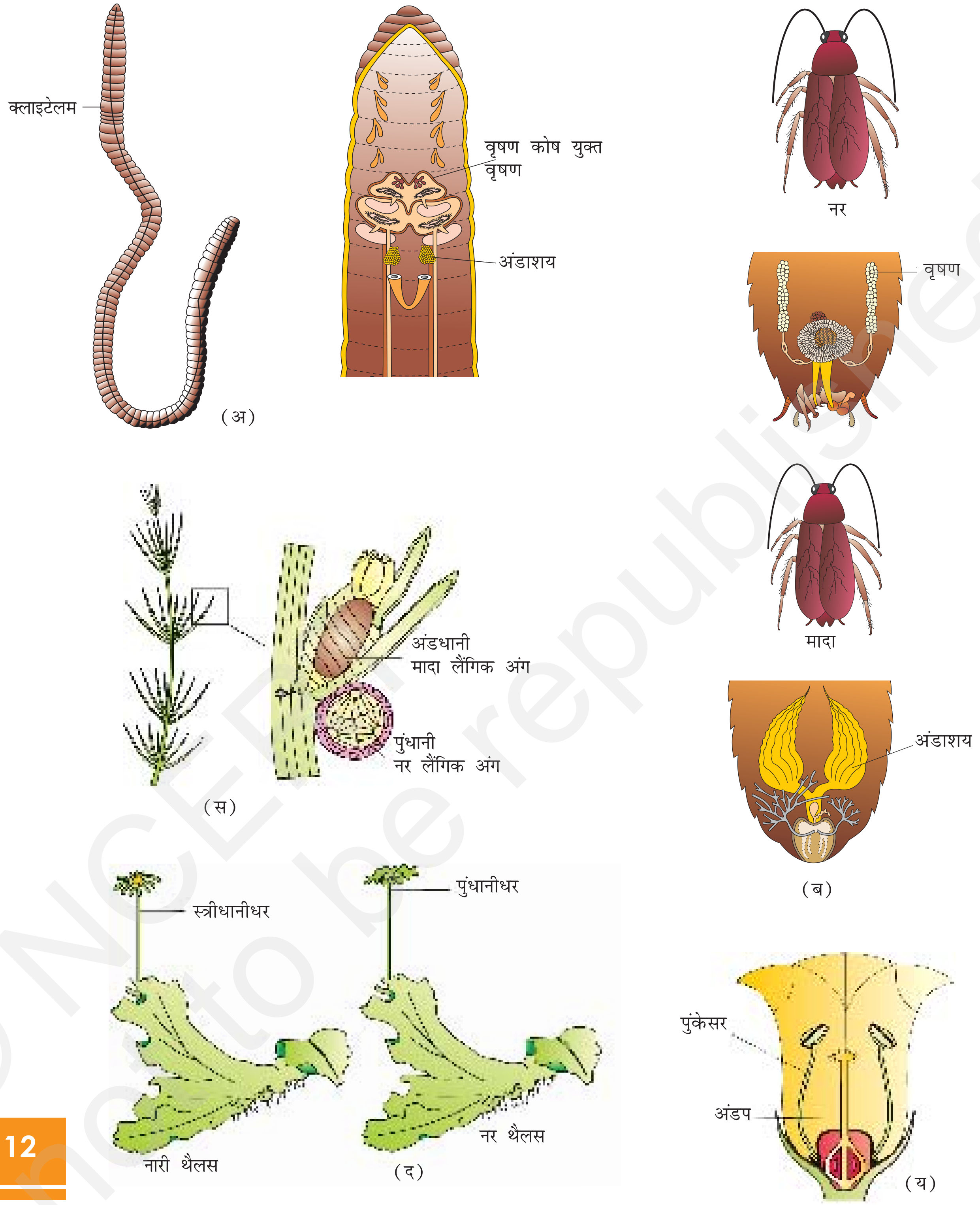

चित्र 1.6 जीवों में लैंगिकता की विविधता (अ) द्विलिंगी प्राणी (केंचुआ) (ब) एक लिंगी प्राणी (कॉकरोच) (स) उभय लिंगाश्रयी (कारा) पादप (द) एक लिंगाश्रयी पादप (मारककेन्शिया) (य) द्विलिंगी पुष्प (शकरकंद)

© NCERT not to be republished

सारणी 1.1 अर्धसूत्राणुओं (क्रोमोसोम) में (द्विगुणित 2n) गुणसूत्रों की संख्या तथा कुछ जीवों में (अगुणित n) संख्या को रिक्त स्थानों में भरें

जीव का नाम	**अर्ध सूत्राणु (2n) में गुणसूत्रों की संख्या**	**युग्मकों में गुणसूत्रों की संख्या (n)**
मनुष्य	46	23
घरेलू मक्खी	12	—
चूहा	—	21
कुत्ता	78	—
बिल्ली	—	19
फल मक्खी	8	—
ओफिओग्लौसम	—	630
सेब	34	—
धान	—	12
मक्का	20	—
आलू	—	24
तितली	380	—
प्याज	—	16

युग्मक संरचना के दौरान कोशिका विभाजन — सभी विषम युग्मकी प्रजातियों में युग्मक प्रायः दो प्रकार के होते हैं जो **नर** तथा **मादा** कहलाते हैं। **युग्मक अगुणित** होते हैं; चाहे उनके जनक जिससे वह उत्पन्न हुए हैं; वह अगुणित हो अथवा द्विगुणित ही क्यों न हो। एक गुणित जनक सूत्री विभाजन (समसूत्रण) के द्वारा युग्मक उत्पन्न करते हैं। *क्या इसका अर्थ यह है कि जो जीव अगुणित होते हैं उनमें अर्धसूत्री विभाजन कभी भी संपन्न नहीं होता?* उस शैवाल के जीवन चक्र के चार्ट को ध्यान से देखें जिसे आपने कक्षा 11 (अध्याय 3) में देखा था ताकि आपको उपयुक्त उत्तर मिल सके।

बहुत से जीव जिनका संबंध मोनेरा, फंजाई, शैवाल तथा ब्रायोफ़ाइट से है; वह **अगुणित** पादप काय होते हैं और वे जीव जिनका संबंध टेरीडोफ्राइटा, जिम्नोस्पर्म, ऐंजिओस्पर्म तथा अधिकांश प्राणी जिनमें मनुष्य भी शामिल है; उनकी जनकीय काय **द्विगुणित** होती है।

यह स्पष्ट हो चुका है कि **अर्धसूत्री विभाजन** जो न्यूनकारी विभाजन है और जहाँ द्विगुणित काय अगुणित युग्मकों को उत्पन्न करता है। द्विगुणित जीवों में अर्धसूत्री कोशिका, अर्धसूत्री विभाजन से होकर गुजरती है। अर्धसूत्री विभाजन के अंत में गुण सूत्रों का केवल एक सेट प्रत्येक **युग्मक** से निगमित करता है।

सारणी 1.1 का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तथा जीवों के द्विगुणित एवं अगुणित गुणसूत्रों की संख्या को भरें। *क्या आपको यहाँ अर्धसूत्री कोशिका अर्धसूत्राणु (2n) और युग्मकों के गुणसूत्र (n) के बीच कोई संबंध दिखाई पड़ता है?*

© NCERT not to be republished

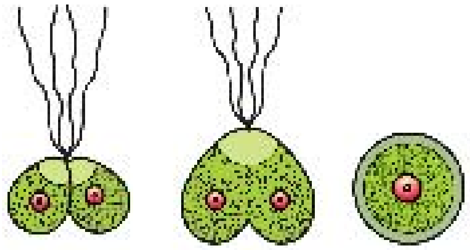

(अ)

(ब)

चित्र 1.7 (अ) शैवाल में समयुग्मकी संपर्क
(ब) पुष्प के वर्तिकाग्र पर अंकुरित परागकण

1.2.1.2 युग्मक स्थानांतरण

इनके निर्माण के पश्चात् नर तथा मादा युग्मक कायिक रूप से एक दूसरे के निकट आते हैं ताकि युग्मन (निषेचन) की क्रिया सफलतापूर्वक संपन्न हो सके। *क्या आपको कभी आश्चर्य नहीं होता कि ये युग्मक आपस में कैसे मिलते हैं?* अधिकतर जीवों में नर युग्मक चलनशील तथा मादा अचल तथा स्थान बद्ध होते हैं। कुछ फंजाई और शैवालों में असाधारण रूप से दोनों किस्मों के युग्मक चलनशील (चित्र 1.7 अ) होते हैं। इन्हें एक माध्यम की आवश्यकता होती है जिसमें होकर नर युग्मक गति करता है। अधिकांश साधारण पादपों जैसे शैवाल, ब्रायोफ़ाइटा तथा टेरीडोफ़ाइटा में जल ही माध्यम होता है जिसमें होकर युग्मकों का स्थानांतरण संपन्न होता है। नर युग्मकों की एक बहुत बड़ी संख्या यद्यपि मादा युग्मक तक पहुँचने में असमर्थ होती है। तथापि परिवहन के दौरान नर युग्मकों की हानि को पूरा करने के लिए नर युग्मक मादा युग्मकों की तुलना में कई हज़ार गुणा अधिक संख्या में पैदा होते हैं।

बीजीय पादपों में पराग कण नर युग्मकों के वाहक के रूप में कार्य करते हैं तथा अंडप में अंड होता है। परागकण परागकोश में उत्पन्न होते हैं; अतः निषेचन संपन्न हो; उससे पहले ही यह परागकण वर्तिकाग्र (चित्र 1.7 ब) में स्थानांतरित हो जाने चाहिए। द्विलिंगियों में स्वतः निषेचणीय पादप जैसे मटर में परागकणों का वर्तिकाग्र पर स्थानांतरण अपेक्षाकृत सरल होता है; क्योंकि इनमें परागकोश तथा वर्तिकाग्र एक दूसरे के निकट स्थित रहते हैं। परागकण जैसे ही झड़ने लगते हैं; उसके तुरंत बाद ये वर्तिकाग्र के संपर्क में आते हैं। परपरागणित पादपों में (जिसमें एकलिंगाश्रयी पादप शामिल हैं) इस विशिष्ट घटना को **परागण** (पोलीनेशन) कहते हैं। इसमें वर्तिकाग्र पर परागकणों का स्थानांतरण सुगमता पूर्वक संपन्न हो जाता है। परागकण वर्तिकाग्र पर अंकुरित होते हैं तथा परागनली नर युग्मकों को अपने साथ लेती हुई अंडप के भीतर प्रवेश कर जाती है। अंड के पास नर युग्मकों को अपने से बाहर निकाल देती है। एकलिंगाश्रयी प्राणियों में चूँकि नर तथा मादा युग्मक विभिन्न व्यष्टियों (जीवों) में बनते हैं। ऐसे में जीव को युग्मकों के स्थानांतरण के लिए एक विशेष प्रकार की क्रियाविधि विकसित करनी पड़ती है। लैंगिक जनन में इस सर्वाधिक विशिष्ट घटना के लिए निषेचन हेतु सफलतापूर्वक स्थानांतरण तथा युग्मकों का साथ-साथ आना अनिवार्य होता है।

1.2.2. निषेचन

लैंगिक जनन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं रोमांचक घटना संभवतः युग्मक का युग्मन है। यह प्रक्रिया **युग्मक संलयन** (साइनगैमी) कहलाती है जिसके परिणामस्वरूप

© NCERT not to be republished

द्विगुणित युग्मन (जाइगोट) का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया के लिए भी **निषेचन** (फर्टिलाइजेशन) का बहुधा प्रयोग किया जाता है। यद्यपि युग्मक संलयन तथा निषेचन शब्दों का प्रयोग बहुधा होता रहता है; हालांकि ये एक दूसरे के पूरक हैं।

परंतु तब क्या होगा यदि युग्मक संलयन संपन्न ही न हो पाए? हालाँकि; कुछ जीवों में जैसे कि रोटीफर्स में, मधुमक्खियों और यहाँ तक कुछ छिपकलियों तथा पक्षी (टर्की) आदि में बिना निषेचन अर्थात् नर युग्मक के युग्मन के बिना ही मादा युग्मक नए जीव के निर्माण हेतु विकसित होने लगता है। इस प्रकार की घटना **अनिषेक जनन** (पार्थेनो जेनिसिस) कहलाती है।

युग्मक संलयन कहाँ संपन्न होता है? — अधिकतर जलीय जीवों में जैसे अधिकतर शैवालों तथा मछलियों और यहाँ तक कि जल-स्थल चर प्राणियों में युग्मक-संलयन बाहरी माध्यम (जल) में अर्थात् जीव के शरीर के बाहर संपन्न होता है। इस प्रकार के युग्मक-संलयन को **बाह्य निषेचन** (इक्स्टर्नल फर्टिलाइजेशन) कहा जाता है। बाह्य निषेचन करने वाले जीव दो लिंगों में व्यापक समकालिता प्रदर्शित करते हैं तथा बाहरी माध्यम (जल) युग्मक संलयन के अवसर को बढ़ाने के लिए काफी संख्या में युग्मक निर्मुक्त करते हैं। ऐसा 'बौनी फिश' एवं मेंढकों में होता है। जहाँ भारी संख्या में संतानें पैदा होती हैं; परंतु इसमें सबसे बड़ी कमी यह है कि इनकी संतानें शिकारियों का शिकार होने जैसी नाजुक स्थिति से गुजरती हैं और वयस्क होने तक उनकी उत्तरजीविता काफी जोखिम पूर्ण होती है।

बहुत सारे स्थलीय जीवों में जैसे कि फंजाई, उच्च श्रेणी के प्राणी जैसे — सरीसृप, पक्षी तथा स्तनधारी एवं अधिकतर पादप (ब्रायोफ़ाइटस, टेरिडोफ़ाइटस, जिम्नोस्पर्म तथा ऐंजिओस्पर्म) में युग्मक संलयन जीव शरीर के भीतर संपन्न होता है। अत: यह प्रक्रिया **आंतरिक निषेचन** (इंटरनल फर्टिलाइजेशन) कहलाती है। इन सभी जीवों में, अंडे की रचना मादा के शरीर के भीतर होती है; जहाँ पर वह नर-युग्मक से संगलित कर जाते हैं। आंतरिक निषेचन प्रदर्शित करने वाले जीवों में नर युग्मक चलनशील होते हैं और उन्हें अंडे के साथ युग्मन करने के लिए अंडे तक पहुँचना होता है। इस प्रक्रम हेतु जो शुक्राणु पैदा होते हैं, उनकी संख्या विशाल होती है; परंतु जो अंडे उत्पन्न होते हैं; उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम होती है। बीजीय पादपों में यद्यपि अचलनशील नर युग्मक पराग नली द्वारा मादा युग्मक तक पहुँचते हैं।

1.2.3 निषेचन पश्च घटनाएँ

लैंगिक जनन में होने वाली घटनाओं के पश्चात् ही युग्मनज का निर्माण होता है। यही **पश्च-निषेचन घटनाएँ** कहलाती हैं।

1.2.3.1 युग्मनज

द्विगुणित युग्मनज का निर्माण सभी लैंगिक जनन करने वाले जीवों में सर्वव्यापी है। बाह्य निषेचन करने वाले सभी जीवों में युग्मज का निर्माण बाह्य माध्यम (प्राय: जल) में होता है। जबकि वह जीव जिनमें आंतरिक निषेचन होती है; उनके शरीर के भीतर युग्मनज की संरचना होती है।

© NCERT not to be republished

युग्मनज के आगे का विकास जीव के अपने जीवन चक्र तथा वहाँ के पर्यावरण पर निर्भर करता है। फंजाई एवं शैवाल से संबद्ध जीवों में युग्मनज एक मोटी भित्ति को विकसित करते हैं जो उनकी शुष्कन तथा क्षति से रक्षा करती है। यह अंकुरण से पूर्व काफी समय तक विश्रांति काल में रहते हैं। द्विगुणित जीवन चक्र वाले जीवों में (11वीं कक्षा की पुस्तक देखें) युग्मनज अर्ध-सूत्रण द्वारा विभाजित होकर अगुणित अंडाणु का निर्माण होता है जो अगुणित व्यष्टि के रूप में वृद्धि करता है। *आप अपनी 11वीं कक्षा की पुस्तक का अध्ययन करें और पता लगाएँ कि द्विगुणितक एवं समद्विगुणिता गुणितक हैप्लो-डिप्लोनटिक जीवन चक्र वाले जीवों में युग्मनज किस प्रकार से विकास करता है?*

युग्मनज एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के जीव के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी है जो प्रजातियों की निरंतरता को सुनिश्चित करती है। प्रत्येक लैंगिक प्रजनक जीव यहाँ तक कि मानव जीवन की शुरुआत एक एकल कोशिका-युग्मनज के रूप में होती है।

1.2.3.2 भ्रूणोद्भव

भ्रूणोद्भव युग्मनज से **भ्रूण** (embryo) के विकास की प्रक्रिया को संदर्भित करता है। भ्रूणोद्भव के दौरान युग्मनज कोशिका विभाजन (समसूत्रण) तथा **कोशिका विभेदीकरण** से गुजरता है। भ्रूण विकास के दौरान जहाँ कोशिका विभाजन से कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि होती है, वहीं **कोशिका विभेदीकरण** से कोशिकाओं के समूह एक निश्चित रूपांतरणों से गुजरकर विशेषीकृत ऊतकों एवं अंगों की रचना करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप जीव का निर्माण होता है। आप पिछली कक्षा में कोशिका विभाजन तथा विभेदीकरण की प्रक्रिया के विषय में अध्ययन कर चुके हैं।

प्राणियों को **अंड प्रजक** तथा **सजीव प्रजक** श्रेणियों में विभक्त किया गया है जो इस तथ्य पर आधारित है कि युग्मनज ने मादा जनक के शरीर के बाहर विकास किया है अथवा भीतर अर्थात् उसका जन्म निषेचित या अनिषेचित अंडों के द्वारा हुआ अथवा शिशु के रूप में प्रसव से जन्म हुआ। अंड प्रजक प्राणियों जैसे कि सरीसृप वर्ग तथा पक्षी आदि के द्वारा **पर्यावरण** के सुरक्षित स्थान पर निषेचित अंडे दिए जाते हैं जो कठोर **कैल्सियमयुक्त कवच** से ढके रहते हैं; जो एक निश्चित निवेशन अवधि के पश्चात् स्फुटन द्वारा नए शिशु को जन्म देते हैं। जबकि दूसरी ओर सजीव प्रजक जीवों में (अधिकतर स्तनधारी जिसमें मानव शामिल हैं) मादा जीव के शरीर के भीतर युग्मनज विकसित होकर शिशु का विकास करता है और एक निश्चित अवधि एवं विकास के चरणों को पूरा करने के बाद मादा जीव के शरीर से प्रसव द्वारा पैदा किए जाते हैं। भ्रूणीय सही देखभाल तथा संरक्षण के कारण सजीव प्रजक जीवों के उत्तर जीवित रहने के सुअवसर बढ़ जाते हैं।

पुष्पीय पादपों में युग्मनज का निर्माण बीजांड के अंदर होता है। निषेचन के पश्चात् पुष्प के बाह्य दल पंखुड़ी तथा पुंकेसर मुरझा कर झड़ जाते हैं। *क्या आप एक ऐसे पादप का नाम बता सकते हैं जिनमें बाह्य दल पुष्प में जुड़े रहते हैं?* यद्यपि स्त्रीकेसर पादप से जुड़ा रहता है। युग्मनज भ्रूण में तथा बीजांड बीज में विकसित हो जाता है। **अंडाशय** फल के रूप में विकसित होती है जो आगे चलकर फल की भित्ति का निर्माण करती है इसे

© NCERT not to be republished

फलभित्ति (pericarp) कहते हैं। इसका कार्य फल को सुरक्षा प्रदान करना है (चित्र 1.8)। विकिरण के पश्चात् बीज अनुकूल परिस्थितियों के आने पर अंकुरित होता है तथा नए पादप को जन्म देता है।

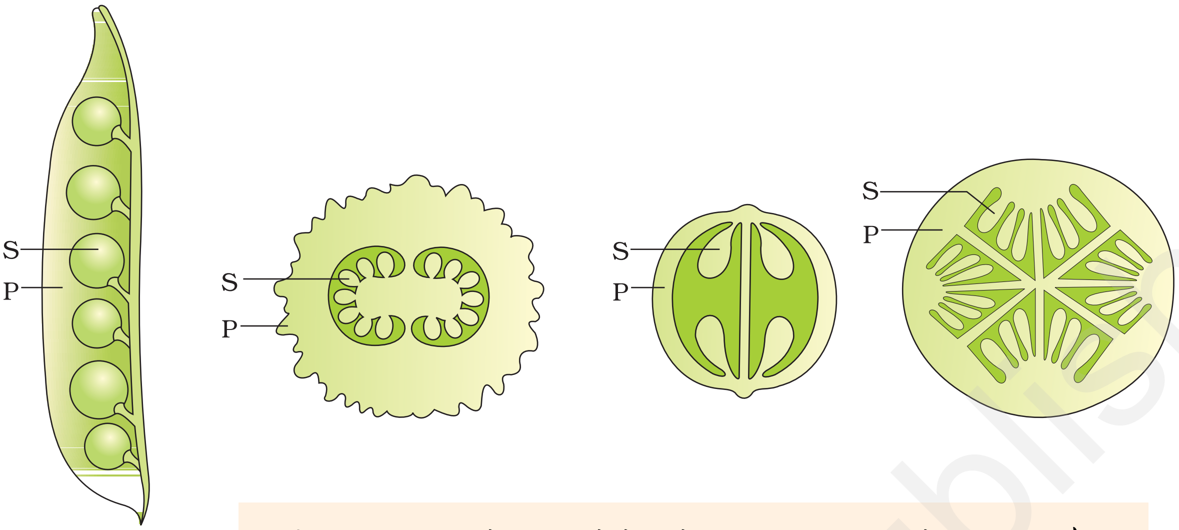

चित्र 1.8 कुछ फलों की किस्मों में बीज़ों तथा संरक्षी फलभित्ति को दिखाया गया है।

सारांश

जनन एक प्रजाति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रहने योग्य बनाता है। जीवों के जनन को व्यापक रूप से दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है — अलैंगिक तथा लैंगिक जनन। अलैंगिक जनन के अंतर्गत युग्मक का निर्माण अथवा युग्मकों का युग्मन शामिल नहीं है। ऐसे जीव जिनके शरीर की संरचना अपेक्षाकृत साधारण होती है; उनमें यह सामान्य रूप से पाए जाते हैं; जैसे — कवक, शैवाल तथा कुछ अकशेरूकी प्राणि। अलैंगिक प्रजनन द्वारा निर्मित संतति एक समान होते हैं। इन्हें क्लोन भी कहा जा सकता है। अधिकांशत: शैवालों तथा कवकों में चलबीजाणु, कोनिडिया आदि सामान्य अलैंगिक संरचनाएँ होती हैं। मुकुलन तथा जिम्मूल निर्माण प्राणियों में सामान्य अलैंगिक विधि देखी गई है।

प्रोकेरिऔट तथा एककोशीय जीव जनक कोशिका के कोशिका विभाजन अथवा द्विखंडन युग्मन से उत्पन्न होते हैं। अनेक जलीय जीवों, पुष्पीय पादपों की स्थलीय प्रजातियों की संरचनाएँ जैसे उपरिभूस्तारी, प्रकंदों, अंत:भूस्तारी कंदों एवं भूस्तरिका आदि में नयी संतानों को पैदा करने की क्षमता होती है। इस प्रकार के अलैंगिक जनन की विधि को कायिक प्रवर्धन कहते हैं।

लैंगिक जनन के अंतर्गत युग्मकों का निर्माण तथा युग्मन शामिल है। अलैंगिक जनन की तुलना में यह एक जटिल एवं धीमी प्रक्रिया है। अधिकांश उच्चश्रेणी के प्राणी पूर्णत: लैंगिक विधि द्वारा जनन करते हैं। लैंगिक जनन की घटना को निषेचन पूर्व, निषेचन तथा निषेचन के बाद की घटना में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है। निषेचन-पूर्व घटना के अंतर्गत युग्मकजनन तथा युग्मक स्थानांतरण जबकि निषेचन-पश्च में युग्मक का निर्माण तथा भ्रूणोद्भव को ही शामिल किया गया है।

© NCERT not to be republished

जीव द्विलिंगी अथवा एकलिंगी हो सकते हैं। पादपों में लैंगिक विविधता अपेक्षाकृत अधिक होती है। विशेषकर पुष्पीय पादपों में, क्योंकि यह विविध प्रकार के पुष्पों को उत्पन्न कर सकते हैं। पादपों को उभयलिंगाश्रयी एवं एकलिंगाश्रयी में परिभाषित किया गया है। हालाँकि पुष्प द्विलिंगी एवं एकलिंगी हो सकते हैं।

युग्मक प्राकृतिक रूप से सदैव अगुणित होते हैं और प्राय: अगुणित जीवों को छोड़कर; जहाँ युग्मकों का निर्माण समसूत्रण द्वारा होता है। यह समसूत्री विभाजन के प्रत्यक्ष उत्पाद माने जाते हैं।

लैंगिक जनन में नर युग्मक का स्थानांतरण वास्तव में एक अपरिहार्य घटना है। यह द्विलिंगी जीवों में अपेक्षाकृत सरल होती है। एकलिंगी प्राणियों में यह मैथुन द्वारा संपन्न होती है। पुष्पीय पादपों में एक विशेष प्रक्रिया जिसे परागण कहते हैं, पराग कणों का स्थानांतरण होता है।

युग्मक संलयन (निषेचन) नर एवं मादा युग्मकों के मध्य संपन्न होता है। युग्मक संलयन जीव की काय के बाहर अथवा अंदर कहीं भी हो सकता है। युग्मक संलयन के परिणामस्वरूप एक विशेष कोशिका जिसे युग्मनज कहते हैं, का निर्माण होता है।

युग्मनज से भ्रूण के विकास की प्रक्रिया भ्रूणोद्भज कहलाती है। प्राणियों में इसके निर्माण के तुरंत बाद युग्मनज बनने लगता है। प्राणि अंडप्रजक या सजीव प्रजक दोनों हो सकते हैं। सजीव प्रजक जीवों में भ्रूणीय संरक्षण एवं भली प्रकार से देखभाल को अच्छा समझा गया है।

पुष्पी पादपों में निषेचन के पश्चात् अंडाशय फल में विकसित होता है तथा बीजांड परिपक्व होकर बीज बनता है। फल के भीतर परिपक्व बीज अगली पीढ़ी का संचारक भ्रूण होता है।

अभ्यास

1. जीवों के लिए जनन क्यों अनिवार्य है?
2. जनन की अच्छी विधि कौन-सी है और क्यों?
3. अलैंगिक जनन द्वारा उत्पन्न हुई संतति को क्लोन क्यों कहा गया है?
4. लैंगिक जनन के परिणामस्वरूप बने संतति को जीवित रहने के अच्छे अवसर होते हैं। क्यों? क्या यह कथन हर समय सही होता है?
5. अलैंगिक जनन द्वारा बनी संतति लैंगिक जनन द्वारा बनी संतति से किस प्रकार से भिन्न है?
6. अलैंगिक तथा लैंगिक जनन के मध्य विभेद स्थापित करो। कायिक जनन को प्रारूपिक अलैंगिक जनन क्यों माना गया है?
7. कायिक प्रवर्धन से क्या समझते हैं? कोई दो उपयुक्त उदाहरण दो।
8. व्याख्या करें (क) किशोर चरण (ख) प्रजनक चरण (ग) जीर्णता चरण या जीर्णावस्था
9. अपनी जटिलता के बावजूद बड़े जीवों ने लैंगिक प्रजनन को पाया है; क्यों?
10. व्याख्या करके बताएँ कि अर्धसूत्री विभाजन तथा युग्मकजनन सदैव अंतरसंबंधित (अंतर्बद्ध) होते हैं।

© NCERT not to be republished

11. प्रत्येक पुष्पिय पादप के भाग को पहचानें तथा लिखें कि वह अगुणित (n) है या द्विगुणित (2_n)।
    (क) अंडाशय ____________________
    (ख) परागकोश ____________________
    (ग) अंडा (या डिंब) ____________________
    (घ) पराग ____________________
    (च) नर युग्मक ____________________
    (छ) युग्मनज ____________________
12. बाह्य निषेचन की व्याख्या करें। इसके नुकसान बताएँ?
13. जूस्पोर (अलैंगिक जल बीजाणु) तथा युग्मनज के बीच विभेद करें?
14. युग्मक जनन एवं भ्रूणोद्भव के बीच अंतर स्पष्ट करें?
15. एक पुष्प में निषेचन-पश्च परिवर्तनों की व्याख्या करें?
16. एक द्विलिंगी पुष्प क्या है? अपने आस-पास से पाँच द्विलिंगी पुष्पों को एकत्र करें और अपने शिक्षक की सहायता से इनके सामान्य (स्थानीय) एवं वैज्ञानिक नाम पता करें?
17. किसी भी कुकरबिट पादप के कुछ पुष्पों की जाँच करें और पुंकेसरी एवं स्त्रीकेसरी पुष्पों को पहचानने की कोशिश करें? क्या आप अन्य एकलिंगी पौधों के नाम जानते हैं?
18. अंडप्रजक प्राणियों की संतानों का उत्तर जीवन (सरवाइवल) सजीव प्रजक प्राणियों की तुलना में अधिक जोखिमयुक्त क्यों होता है? व्याख्या करें।

© NCERT not to be republished

अध्याय 2

पुष्पी पादपों में लैंगिक प्रजनन

2.1 पुष्प — आवृतबीजियों का एक आकर्षक अंग

2.2 निषेचन-पूर्व-संरचनाएँ एवं घटनाएँ

2.3 दोहरा निषेचन (द्वि-निषेचन)

2.4 निषेचन-पश्च-संरचनाएँ एवं घटनाएँ

2.5 असंगजनन एवं बहुभ्रूणता

क्या हम भाग्यशाली नहीं है कि पादप लैंगिक प्रजनक हैं? असंख्य प्रकार के पुष्प, जिन्हें हम आनंद से टक-टकी लगाकर देखते, सूँघते हैं तथा जिनकी महक से हम मदहोश हो जाते हैं और उनके भरपूर रंग आदि यह सभी बातें उसके लैंगिक प्रजनन में सहायक होती हैं। पुष्प का अस्तित्व मात्र हमारे उपयोग के लिए नहीं है। सभी पुष्पीपादप लैंगिक प्रजनन प्रदर्शित करते हैं। पुष्पक्रमों, पुष्पों तथा पुष्पी अंगों की संरचना की विविधता पर एक दृष्टि डालें तो वे अनुकूलन की एक व्यापक परिधि को दर्शाते हैं ताकि लैंगिक जनन का अंतिम उत्पाद, फल और बीज की रचना सुनिश्चित हो सके। आइए इस अध्याय में आकारिकी, संरचना तथा पुष्पी पादपों (आवृतबीजियों) में लैंगिक जनन के प्रक्रम को समझें।

2.1 पुष्प-आवृतबीजियों का एक आकर्षक अंग

प्राचीन काल से ही पुष्पों के साथ मानव का एक निकटस्थ संबंध रहा है। मानव के लिए पुष्प सौंदर्य विषयक, आभूषणात्मक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व की वस्तु रहा है। ये मानव द्वारा प्रेम, अनुराग, प्रसन्नता, विषाद एवं शोक आदि की अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने के प्रतीक रहे हैं। *कम से कम ऐसे पाँच पुष्पों की सूची बनाएँ जिनका आभूषणात्मक (श्रृंगारिक) महत्त्व हो तथा जिन्हें घर एवं*

© NCERT not to be republished

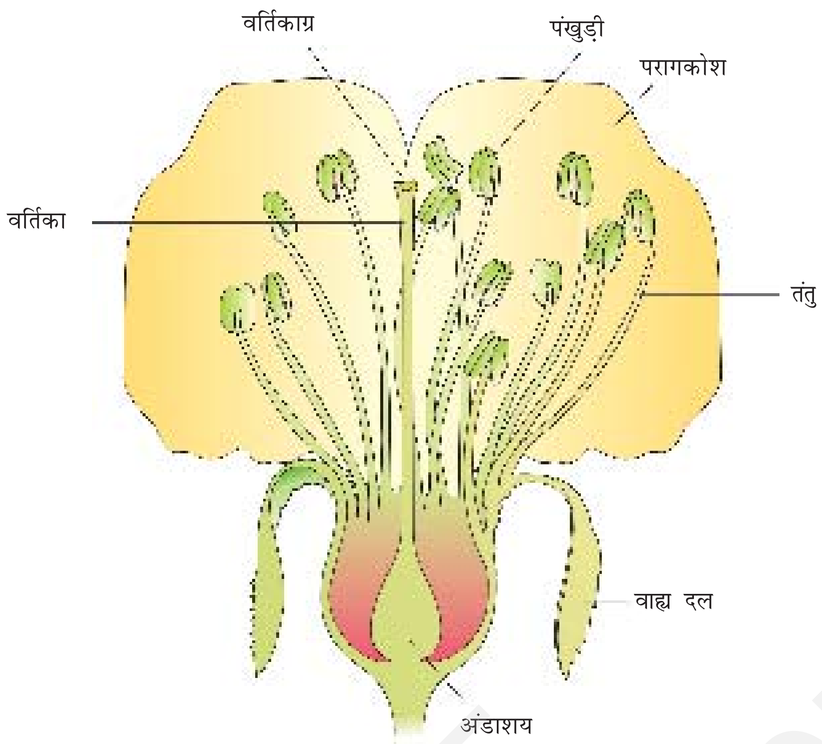

चित्र 2.1 पुष्प के एल.एस. का आरेखीय निरूपण

बगीचों में उगाया जाता हो। आप पाँच उन पुष्पों का भी पता करें, जिन्हें आपके परिवार द्वारा सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्सवों के दौरान उपयोग किया जाता हो। क्या आपने कभी पुष्पों की खेती (फ्लोरीकल्चर) या पुष्पकृषि के बारे में सुना है — इसका क्या तात्पर्य है?

एक जीव वैज्ञानिक के लिए पुष्प, आकारिकीय एवं भ्रौणिकीय (भ्रूणीय) आश्चर्य तथा लैंगिक जनन स्थल है। आपने कक्षा 11 में एक पुष्प के विभिन्न अंगों के बारे में अध्ययन किया है। चित्र 2.1 आपको एक प्ररूपी पुष्प के विशिष्ट अंगों को पुन: स्मरण करने में सहायक होगा। क्या आप एक पुष्प के दो अंगों के नाम बता सकते हो जिनमें लैंगिक जनन विकास के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वाली दो इकाईयाँ होती हैं?

2.2 निषेचन-पूर्व-संरचनाएँ एवं घटनाएँ

पादप में वास्तविक रूप से पुष्प विकसित होने से पूर्व यह तय हो जाता है कि पादप में पुष्प आने वाले हैं। अनेकों हार्मोनल तथा संरचनात्मक परिवर्तनों की शुरुआत होने लगती है, जिसके फलस्वरूप पुष्पीय आद्यक (फ्लोरल प्राइमोंडियम) के मध्य विभेदन एवं अग्रिम विकास प्रारम्भ होते हैं। पुष्पक्रम की रचना होती है, जो पुष्पी कलिकाएँ और बाद में पुष्प को धारण करती हैं। पुष्प में नर एवं मादा जनन संरचनाएँ-पुमंग तथा जायांग

© NCERT not to be republished

विभेदित एवं विकसित रहती हैं। आप याद करें कि पुमंगों से भरपूर पुंकेसरों का गोला (एक चक्कर) नर जनन अंग का तथा जायांग स्त्री (मादा) जनन अंग का प्रतिनिधित्व करता है।

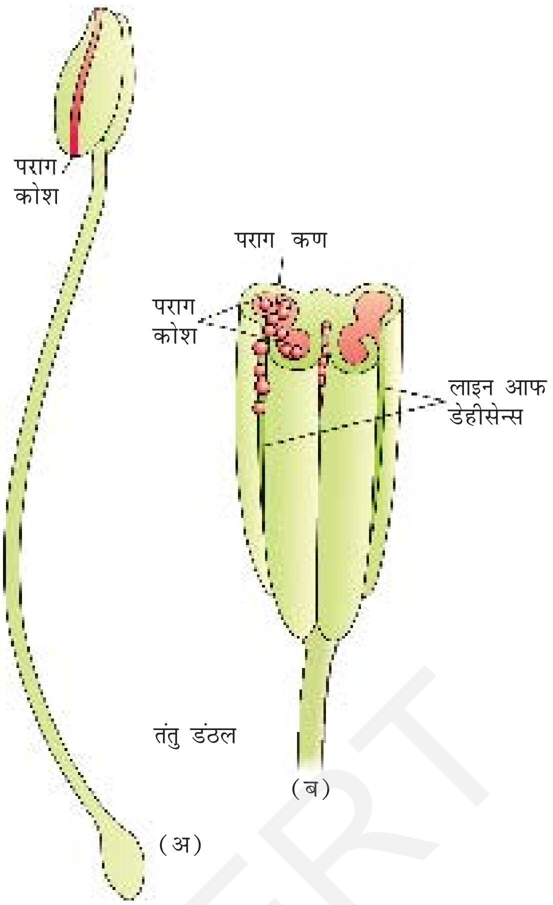

चित्र 2.2 (अ) एक प्रारुपिक पुंकेसर (ब) एक पराग कोश वर्ग 3 विमतीय काल

2.2.1 पुंकेसर, लघुबीजाणुधानी तथा परागकण

चित्र 2.2 (अ) एक विशिष्ट (प्रारूपी) **पुंकेसर** दो भागों में विभक्त रहता है—इसमें लंबा एवं पतला **डंठल तंतु** (फिलामेंट) कहलाता है तथा अंतिम सिरा सामान्यत: द्विपालिक संरचना **परागकोश** कहलाता है। तंतु का समीपस्थ छोर पुष्प के पुष्पासन या पुष्पदल से जुड़ा होता है। पुंकेसरों की संख्या एवं लंबाई विभिन्न प्रजाति के पुष्पों में भिन्न होती है। अगर आप दस पुष्पों (प्रत्येक भिन्न प्रजाति) से एक-एक पुंकेसर एकत्र करें और उन्हें एक स्लाइड पर रखें तो आप देखेंगे कि इनके आकार में बहुत भिन्नता है, जो प्रकृति में विद्यमान है। एक विच्छेदन सूक्ष्मदर्शी से प्रत्येक पुंकेसर का सावधानीपूर्वक अवलोकन तथा स्पष्ट चित्र के माध्यम से विभिन्न पुष्पों में परागकोशों के जुड़ाव एवं आकार की व्यापकता को समझा जा सकता है।

एक प्रारूपिक आवृतबीजी परागकोश **द्विपालित** होते हैं। तथा प्रत्येक पाली में दो कोष्ठ होते हैं, अर्थात् ये **द्विकोष्ठी** होते हैं (चित्र 2.2 ब)। प्राय: एक अनुलंब खांच प्रवारक (कोष्ठ) को अलग करते हुए लंबवत् गुजरता है। आइए परागकोश (चित्र 2.3 ब) के एक अनुप्रस्थ काट में विभिन्न प्रकार के ऊत्तकों तथा अनेक संयोजन को समझें। एक परागकोश की द्विपालित प्रकृति, परागकोश के अनुप्रस्थ काट में बहुत ही पृथक या सुव्यक्त होती है। परागकोश एक चार दिशीय (चतुष्कोणीय) संरचना होती है जिसमें चार कोनों पर **लघुबीजाणुधानी** समाहित होती है, जो प्रत्येक पालि में दो होती हैं। यह लघुबीजाणुधानी आगे विकसित होकर **परागपुटी** (पोलेन सैक्स) बन जाती है। यह अनुलंबवत् एक परागकोश की लंबाई तक विस्तारित होते हैं और परागकणों से ठसाठस भरे होते हैं।

लघुबीजाणुधानी की संरचना — एक अनुप्रस्थ काट में, एक प्ररूपी लघुबीजाणुधानी बाह्य रूपरेखा में लगभग गोलाई में प्रकट होती है। यह सामान्यत: चार भित्तिपर्तो से आवृत होती है (चित्र 2.3 ब) (एपीडर्मीस) बाह्यत्वचा, एंडोथेसियम (अंतस्थीसियम), मध्यपर्त तथा टेपीटम बाहर की ओर की तीन पर्तें संरक्षण प्रक्रिया का कार्य करती हैं तथा परागकोश के स्फुटन में मदद कर परागकण अवमुक्त करती हैं। इसकी सबसे आंतरिक पर्त **टेपीटम** होती है। यह विकासशील परागकणों को पोषण देती है। टेपीटम की कोशिकाएँ सघन जीवद्रव्य (साइटोप्लाज्म) से भरी होती हैं और सामान्यत: एक से अधिक

© NCERT not to be republished

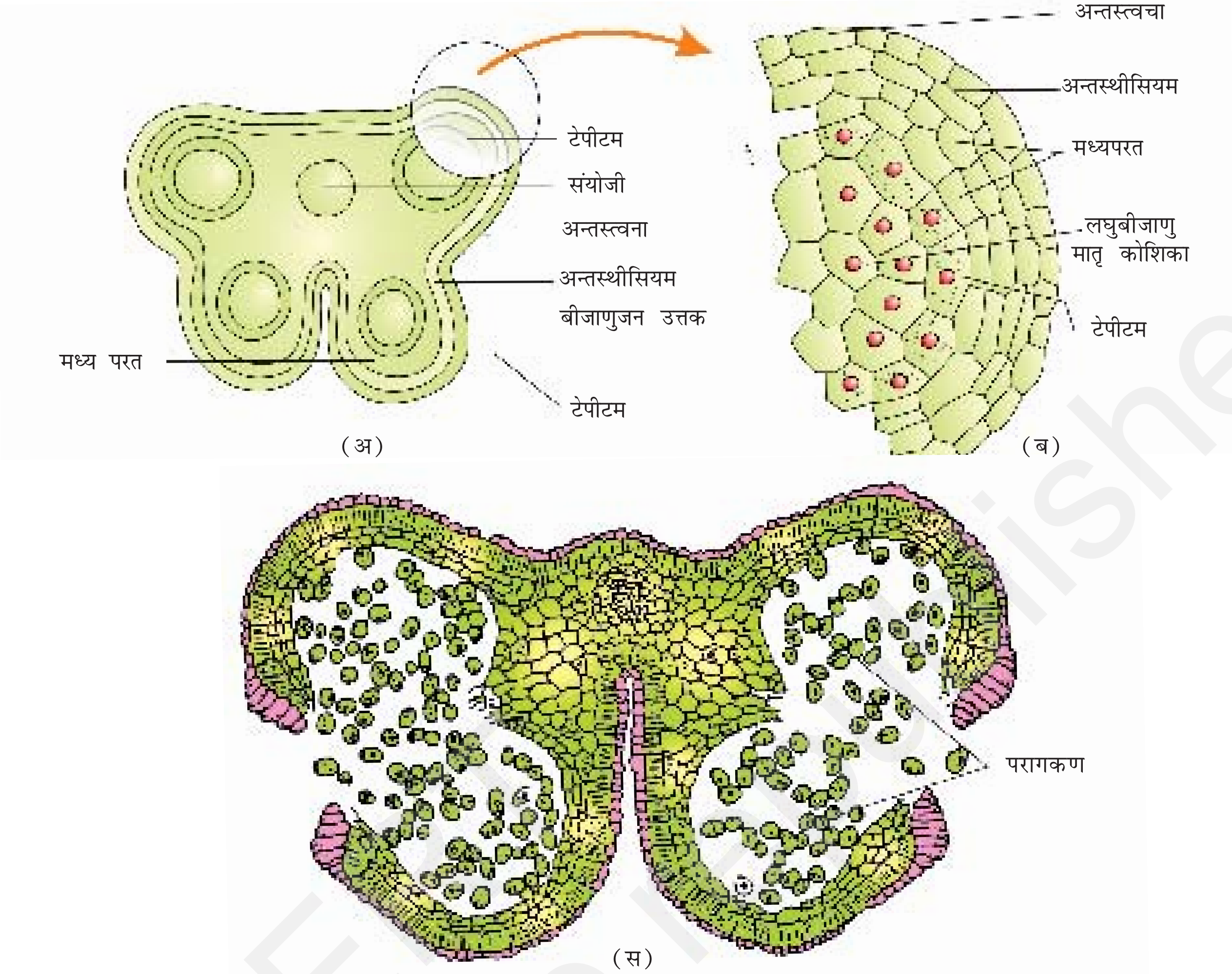

चित्र 2.3 (अ) एक आवश्यक परागकोश का अनुप्रस्थकाट; (ब) भित्तिपर्तों को प्रदर्शित करते हुए एक लघुबीजाणुधानी का विस्तरित परिदृश्य (स) एक स्फुटित परागकोश

केंद्रकों से युक्त होती है। *क्या आप यह सोच सकते हैं कि किस प्रकार से एक टेपीटल कोशिका द्विकेंद्रकीय बन सकती है?*

जब एक परागकोश अपरिपक्व होता है तब घने सुसंबद्ध सजातीय कोशिकाओं का समूह जिसे **बीजाणुजन ऊत्तक** कहते हैं, लघुबीजाणुधानी के केंद्र में स्थित होता है।

लघुबीजाणुजनन — जैसे-जैसे परागकोश विकसित होता है, बीजाणुजन ऊत्तकों की कोशिकाएँ अर्धसूत्री विभाजन द्वारा सूक्ष्म बीजाणु चतुष्टय बनाती हैं। *चतुष्टय की कोशिकाओं की सूत्रगुणता क्या होगी?*

जैसाकि बीजाणुजन ऊत्तक की प्रत्येक कोशिका एक लघुबीजाणु चतुष्टय की वृद्धि करने में सक्षम होती है। प्रत्येक कोशिका एक सक्षम पराग मातृकोशिका होती है। एक पराग मातृकोशिका से अर्धसूत्री विभाजन द्वारा लघुबीजाणु के निर्माण की प्रक्रिया को **लघुबीजाणुधानी** कहते हैं। जैसा कि लघुबीजाणु रचना के समय चार कोशिकाओं के समूह में व्यवस्थित होते हैं उन्हें **लघुबीजाणु चतुष्टय/चतुष्क** कहते हैं (चित्र 2.3 अ)। जैसे ही परागकोश परिपक्व एवं स्फुरित होता है तब लघुबीजाणु

© NCERT not to be republished

(अ)

चित्र 2.4 कुछ परागकणों का इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शीय परदृश्य परागकण

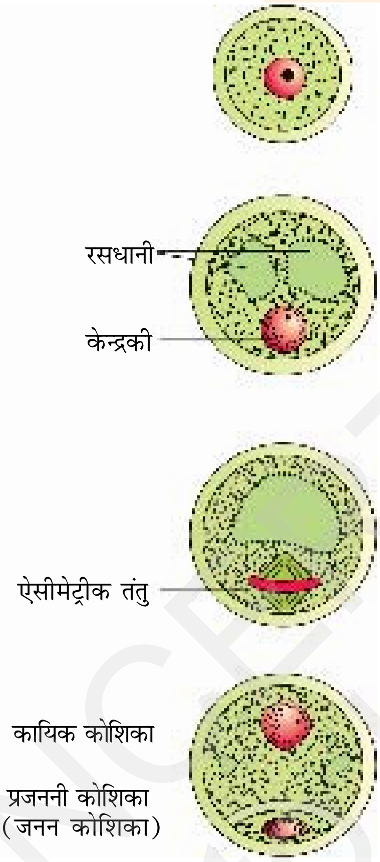

(ब)

चित्र 2.5 (अ) एक परागकण चुतुष्क का परिर्वाधित दृश्य (ब) एक लघुबीजाणु का एक परागकण के रूप में परिपक्व होने के विभिन्न चरण

एक-दूसरे से विलग हो जाते हैं और **परागकणों** (चित्र 2.3 अ) के रूप में विकसित हो जाते हैं। प्रत्येक लघुबीजाणुधानी के अंदर कई हजार लघुबीजाणु और परागकण निर्मित होते हैं, परागकण जो परागकोश के स्फुटन के साथ मुक्त होते हैं। (2.3 स)

परागकण — नर युग्मकोद्भव का प्रतिनिधित्व करता है। यदि आप *हिबिसकस* (गुड़हल) या किसी अन्य पुष्प के खुले परागकोश को छूते हैं तो आप अपनी अंगुलियों में पीले रंग के पाउडर जैसे परागकणों को पाते हैं। एक काँच की स्लाइड पर एक बूँद पानी डालकर उस पर यह परागकण छिड़कें और एक सूक्ष्मदर्शी में देखें। आप निश्चित रूप से आश्चर्य चकित हो जाएँगे कि विभिन्न प्रकार की प्रजातियों के परागकण विन्यास—आकार, रूप, रंग, एवं बनावट में भिन्न दिखते हैं

परागकण सामान्यत: गोलाकार (गोलीय) होते हैं, जिनका व्यास लगभग 25-50 माइक्रोमीटर होता है इनमें सुस्पष्ट रूप से दो पर्तो वाली भित्ति होती है। कठोर बाहरी भित्ति को **बाह्यचोल** कहते हैं जो कि स्पोरोपोलेनिन से बनी होती है, जो सर्वाधिक ज्ञात प्रतिरोधक कार्बनिक सामग्री है। यह उच्चताप तथा सुदृढ़ अम्लों एवं क्षारों के सम्मुख टिक सकती है। अभी तक ऐसा कोई एंजाइम पता नहीं चला है जो स्पोरोपोलेनिन को निम्नीकृत कर सकें। परागकण के बाह्यचोल में सुस्पष्ट द्वारक या रंध्र होते हैं जिन्हें **जननछिद्र** कहते हैं। जहाँ पर स्पोरोपोलेनिन अनुपस्थित होते हैं। परागकण जीवाश्मों की भाँति बहुत अच्छे से संरक्षित होते हैं; क्योंकि उनमें स्पोरोपोलेनिन की उपस्थिति होती है। बाह्यचोल में प्रतिमानों एवं डिजाइनों की एक आकर्षक सारणी (स्तंभों की पक्तियाँ) प्रदर्शित की गई हैं (चित्र 2.4)। *आप का क्या विचार है? बाह्यचोल सख्त (कठोर) होना चाहिए? जनन छिद्र के क्या कार्य हैं?*

परागकण की आंतरिक भित्ति को **अंत:चोल** कहा जाता है। यह एक पतली तथा सतत् पर्त होती है जो सेलूलोज एवं पेक्टिन की बनी होती है। परागकण का जीवद्रव्य (साइटोप्लाज्म) एक प्लाज्मा भित्ति से आवृत होता है। जब परागकण परिपक्व होता है तब उसमें दो कोशिकाएँ — **कायिक कोशिका** तथा **जनन कोशिका** समाहित होती है (चित्र 2.5 ब)। कायिक कोशिका बड़ी होती है जिसमें प्रचुर खाद्य भंडार तथा एक विशाल अनियमित आकृति का केंद्रक होता है। **जनन कोशिका** छोटी होती है तथा कायिक कोशिका के जीव

द्रव्य में तैरती रहती है। यह तुर्कु आकृति, घने जीवद्रव्य और एक केंद्रक वाला है। 60 प्रतिशत से अधिक आवृतबीजी पादपों के परागकण इस दो कोशीय चरण में झड़ते या संगलित होते हैं। शेष प्रजातियों में जनन कोशिका सम-सूत्री विभाजन द्वारा विभक्त होकर परागकण के झड़ने से पहले (तीन-चरणीय) दो नर युग्मकों को बनाते हैं।

अनेक प्रजातियों के परागकण कुछ लोगों में गंभीर एलर्जी एवं श्वसनी वेदना पैदा करते हैं जो कभी-कभी चिरकालिक श्वसन विकार — दमा, श्वसनी शोथ आदि के रूप में विकसित हो जाती है। यह बताया जा सकता है कि भारत में आयातित गेहूँ के साथ आने वाली गाजर-घास या **पार्थेनियम** की उपस्थिति सर्वव्यापक हो गई हैं, जो परागकण एलर्जी कारक है।

परागकण पोषणों से भरपूर होते हैं। हाल के वर्षों में आहार संपूरकों के रूप में पराग गोलियों (टैबलेट्स) के लेने का प्रचलन बढ़ा है। पश्चिमी देशों में; भारी मात्रा में पराग उत्पाद गोलियों एवं सीरप के रूप में बाजारों में उपलब्ध हैं। पराग खपत का यह दावा है कि यह खिलाड़ियों एवं धावक अश्वों (घोड़ों) की कार्यदक्षता में वृद्धि करता है (चित्र 2.6)।

चित्र 2.6 पोलन उत्पाद

परागकण जब एक बार झड़ते हैं तो ये अपनी जीवनक्षमता (अंकुर क्षमता) खोने से पहले वर्तिकाग्र पर गिरते हैं जहाँ यदि आवश्यकता हुई तो निषेचन करते हैं। आपके विचार से परागकण में जीवन क्षमता कितने समय तक रहती है? कौन सा परागकण कितने समय तक जीवनक्षम रहता है, बहुत विविधताएँ पाई जाती हैं, बहुत हद तक यह विद्यमान तापमान एवं आर्द्रता पर निर्भर करता है। कुछ अनाजों जैसे धान एवं गेहूँ में; परागकण अपनी जीवन क्षमता बहुत जल्दी लगभग 30 मिनट में ही खो देते हैं जबकि गुलाबवत् (रोजेसी) लेग्यूमिनोसी तथा सोलैनेसी आदि कुछ सदस्यों में परागकणों की जीवन क्षमता महीनों तक बनी रहती है। आपने शायद सुना हो कि कृत्रिम गर्भाधान के लिए मानव सहित बहुत से जानवरों के वीर्य / शुक्राणुओं का भंडारण किया जाता है। बहुत से प्रजाति के परागकणों को द्रव नाइट्रोजन (-196^{0}C) में कई वर्षों तक भंडारित करना सम्भव है। इस प्रकार से भंडारित पराग का प्रयोग बीज भंडार (बैंक) की भाँति पराग भंडारों (बैंकों) के रूप में फसल प्रजनन कार्यक्रम में किया जा सकता है।

© NCERT not to be republished

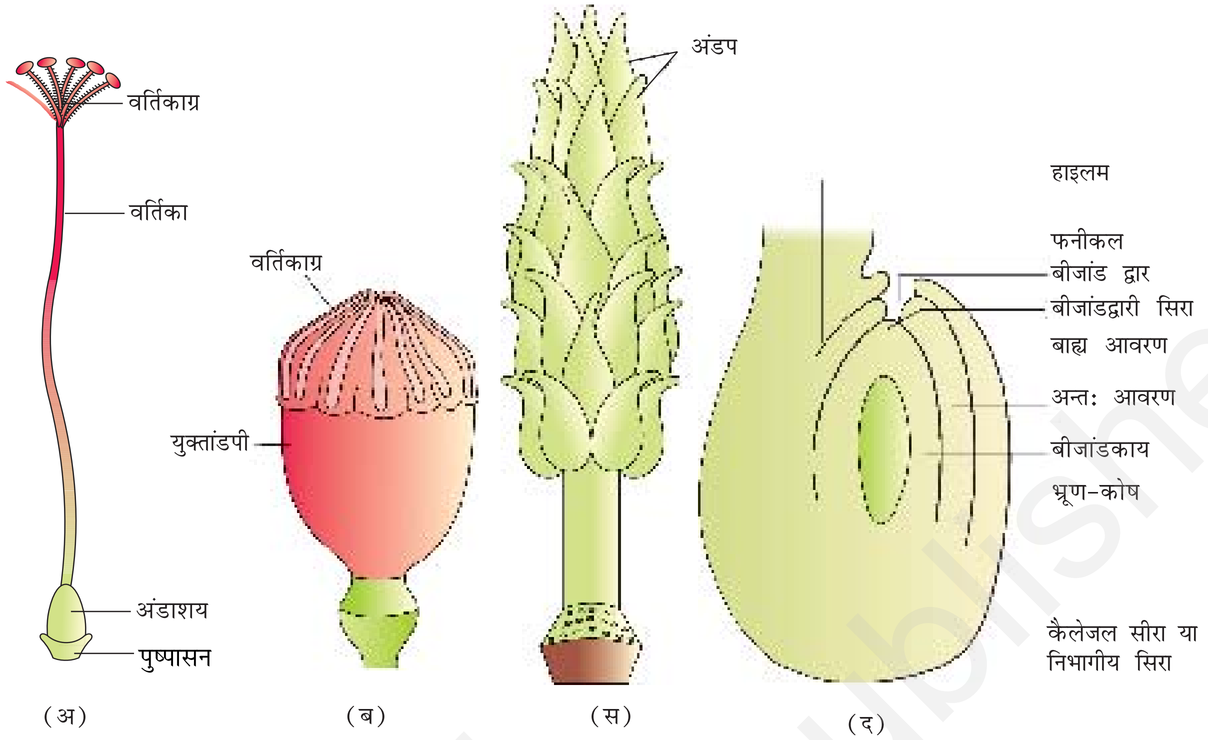

चित्र 2.7 (अ) *गुड़हल* के एक विच्छेदित पुष्प में स्त्रीकेसर का प्रदर्शन (अन्यपुष्पीय अंग निकाले गए) दर्शाया गया है (ब) *पैपावर* के बहुअंडपी, युक्तांडपी स्त्रीकेसर, (स) *माइचेलिया* के बहुअंडपी, वियुक्तांडपी स्त्रीकेसर (द) एक प्ररूपी प्रतीय बीजांड का चित्रात्मक दृश्य

2.2.2 स्त्रीकेसर, गुरूबीजाणुधानी (बीजांड) तथा भ्रूणकोश

जायांग पुष्प के स्त्री जनन अंग का प्रतिनिधित्व करता है। जायांग एक स्त्रीकेसर (**एकांडपी**) या बहु स्त्रीकेसर (**बहुअंडपी**) हो सकते हैं। जहाँ पर ये एक से अधिक होते हैं; वहाँ स्त्रीकेसर आपस में संगलित (**युक्तांडपी**) हो सकते हैं (चित्र 2.7 ब) या फिर वे आपस में स्वतंत्र (**वियुक्तांडपी**) (चित्र 2.7 स)। प्रत्येक स्त्रीकेसर में तीन भाग होते हैं (चित्र 2.7 अ), **वर्तिकाग्र, वर्तिका,** तथा **अंडाशय**। वर्तिकाग्र, परागकणों के अवतरण मंच का काम करता है। वर्तिका एक दीर्घीकृत पतला (इकहरा) भाग है जो वर्तिका के नीचे होता है। स्त्रीकेसर के आधार पर उभरा (फूला) हुआ भाग **अंडाशय** होता है। अंडाशय के अंदर एक **गर्भाशयी गुहा** (कोष्ठक) होती है। गर्भाशयी गुहा के अंदर की ओर **अपरा** (नाड़) स्थित होती है। आप कक्षा 11 में पढ़ी हुई **अपरा** की परिभाषा एवं प्रकारों का स्मरण करें। अपरा से उत्पन्न होने वाली दीर्घ बीजाणुधानी सामान्यतः **बीजांड** कहलाती है। एक अंडाशय में बीजांडों की संख्या एक (गेहूँ, धान, आम) से लेकर अनेक (पपीता, तरबूज तथा आर्किड) तक हो सकती है।

गुरूबीजाणुधानी (बीजांड) — आइए एक प्ररूपी आवृत्तबीजी बीजांड की (चित्र 2.7 द) संरचना से परिचित होवें। बीजांड एक छोटी सी संरचना है जो एक वृंत या डंठल, जिसे **बीजांडवृंत** कहते हैं, द्वारा अपरा से जुड़ी होती है। बीजांड की काया

© NCERT not to be republished

बीजांडवृंत्त के साथ **नाभिका** नामक क्षेत्र में संगलित होती है। अत: यह नाभिका बीजांड एवं बीजांडवृंत्त के संधि बिंदु का प्रतिनिधित्व करती है। प्रत्येक बीजांड में एक या दो **अध्यावरण** नामक संरक्षक आवरण होते हैं। यह अध्यावरण बीजांड को चारों ओर से घेरे होता है, केवल **बीजांडद्वार** नामक आयोजित छोटे से रंध्र को छोड़कर अध्यावरण बीजांड को चारों तरफ से घेरे रहता है। बीजांडद्वारी सिरे के ठीक विपरीत **निभाग** (कैलाजा) होता है जो बीजांड के आधारी भाग का प्रतिनिधित्व करता है।

अध्यावरणी से घिरा हुआ कोशिकाओं का एक पुंज होता है, जिसे **बीजांडकाय** कहते हैं। केंद्रक की कोशिकाओं में प्रचुरता से आरक्षित आहार सामग्री होती है। बीजांडकाय भ्रूण कोश या मादा युग्मकोद्‌भिद् बीजांडकाय में स्थित होता है। एक बीजांड में, सामान्यत: एक अकेला भ्रूणकोश होता है जो न्यूनकारी विभाजन द्वारा एक गुरूबीजाणु से निर्मित होता है।

गुरूबीजाणु जनन — **गुरूबीजाणुमातृकोशिकाओं** से गुरूबीजाणुओं की रचना के प्रक्रम को **गुरूबीजाणुजनन** कहते हैं। बीजांड प्राय: एक अकेले गुरूबीजाणु मातृ कोशिका से बीजांडकाय के बीजांडद्वारी क्षेत्र में विलग होते हैं। यह एक बड़ी कोशिका है जो सघन जीवद्रव्य से समाहित एवं एक सुस्पष्ट केंद्रक युक्त होती है। गुरूबीजाणुमातृकोशिका अर्धसूत्री विभाजन से गुजरती है। *गुरूबीजाणु मातृकोशिका का अर्धसूत्रीविभाजन से गुजरने का क्या महत्त्व है?* अर्धसूत्रीविभाजन के परिणाम स्वरूप चार **गुरूबीजाणुओं** का उत्पादन होता है (चित्र 2.8 अ)

स्त्री (मादा) युग्मकोद्‌भिद् — अधिकांश पुष्पी पादपों में गुरूबीजाणुओं में से एक **कार्यशील** होता है जबकि अन्य तीन अपविकसित (अपभ्रष्ट) हो जाते हैं। (चित्र 2.8 ब) केवल **कार्यशील गुरूबीजाणु स्त्री (मादा) युग्मकोद्‌भिद् (भ्रूणकोश)** के रूप में विकसित होता है। एक अकेले गुरूबीजाणु से भ्रूणकोश के बनने की विधि को **एक-बीजाणुज** विकास कहा जाता है। *बीजांडकाय की कोशिकाओं, गुरूबीजाणु मातृ कोशिका क्रियाशील गुरूबीजाणु तथा मादा युग्मकोद्‌भिद् की सूत्रगुणता क्या होगी?*

आइए! भ्रूणकोश के निर्माण का थोड़ा और विस्तार से अध्ययन करें (चित्र 2.8 ब) क्रियाशील गुरूबीजाणु के केंद्रक समसूत्री विभाजन के द्वारा दो केंद्रकी (न्युक्लीआई) बनाते हैं, जो विपरीत ध्रुवों को चले जाते हैं और **2-न्युकिल्येट (केंद्रीय)** भ्रूणकोश की रचना करते हैं। दो अन्य क्रमिक समसूत्री केंद्रकीय विभाजन के परिणामस्वरूप **4-केंद्रीय (न्युकिल्येट)** और तत्पश्चात् **8-केंद्रीय (न्युकिल्येट)** भ्रूणकोश की संरचना करते हैं। यहाँ पर यह ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि ये सूत्री विभाजन सही अर्थों में मुक्त केंद्रक (न्युकिलयर) है, जो केंद्रकीय विभाजन से तुरंत ही कोशिका भित्ति रचना द्वारा नहीं अनुपालित किया जाता है। 8-न्युकिल्येट चरण के पश्चात् कोशिका भित्ति की नींव पड़ती है, जो विशिष्ट (प्ररूपी) **मादा युग्मकोद्‌भिद्** या **भ्रूणकोश** के संगठन का रूप लेती है। भ्रूणकोश के भीतर कोशिकाओं के वितरण का अवलोकन कीजिए (चित्र 2.8 ब, स) आठ में से 6-न्युक्लीआई भित्ति कोशिकाओं से घिरी होती हैं और कोशिकाओं में संयोजित रहते हैं। शेष बचे दो न्युक्लीआई **ध्रुवीय न्यूक्लीआई** कहलाते हैं, जो अंडउपकरण के नीचे बड़े **केंद्रीय कोशिका** में स्थित होते हैं।

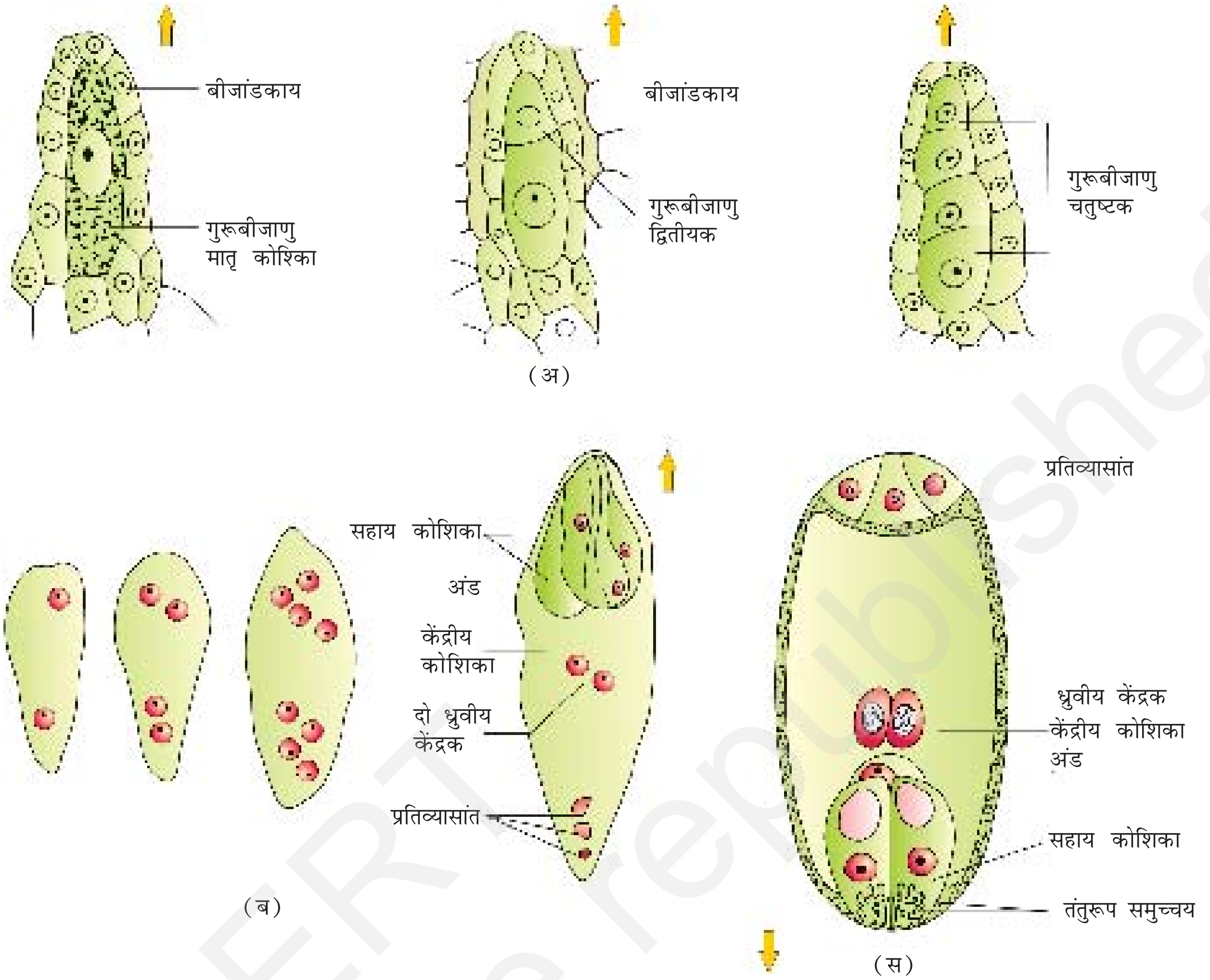

चित्र 2.8 (अ) बीजांड के अंग — एक व्यापक गुरूबीजाणु मातृ कोशिका, एक डीयाड तथा एक गुरूबीजाणु का ट्रेटाड (चतुष्टक) प्रदर्शित है; (ब) भ्रूण कोश के 1, 2, 4 तथा 8 न्युक्लियेट चरण तथा एक परिपक्व भ्रूण कोश; (स) परिपक्व भ्रूण कोश का एक आरेखीय प्रस्तुतीकरण (↑ बीजांड का बीजांडद्वार शीर्ष दिखाता है)।

भ्रूणकोश के अन्दर कोशिकाओं का वितरण विशिष्टता पूर्ण होता है। बीजांडद्वारी सिरे पर तीन कोशिकाएँ एक साथ समूहीकृत होकर **अंडउपकरण** या समुच्चय का निर्माण करती हैं। इस अंड (समुच्चय) उपकरण के अंतर्गत दो **सहाय कोशिकाएँ** तथा एक **अंडकोशिका** निहित होती है। बीजांडद्वारी छोर, जिसे तंतुरूप समुच्चय कहते हैं, पर एक विशेष सहाय कोशिकीय स्थूलन होने लगता है जो सहाय कोशिकाओं में पराग नलिकाओं को दिशा निर्देश प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तीन अन्य कोशिकाएँ निभागीय (कैलाजल) छोर पर होती हैं, **प्रतिव्यासांत** (एँटीपोडाल) कहलाती है। वृहद केंद्रीय कोशिका, जैसा कि पहले बताया गया है, में दो ध्रुवीय न्युकलीआई होती हैं।

इस प्रकार से, एक प्ररूपी आवृतबीजी भ्रूण कोश परिपक्व होने पर यद्यपि **8-न्युकिलीकृत** वस्तुत: **7 कोशिकीय** होता है।

© NCERT not to be republished

2.2.3 परागण

पूर्ववर्ती भाग में आप पढ़ चुके हैं कि पुष्पीय पादपों में नर एवं मादा युग्मक क्रमशः परागकण एवं भ्रूणकोश में पैदा होते हैं। चूँकि दोनों ही प्रकार के युग्मक अचल हैं अतः निषेचन संपन्न होने के लिए दोनों को ही एक साथ लाना होता है। यह कैसे सम्पन्न हो?

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए **परागण** एक प्रक्रम है। परागकणों (परागकोश से झड़ने के पश्चात्) का स्त्रीकेसर के वर्तिकाग्र तक स्थानांतरण या संचारण को **परागण** कहा जाता है। परागण की प्राप्ति के लिए पुष्पी पादपों ने एक आश्चर्य जनक अनुकूलन व्यूह विकसित किया है। ये परागण को प्राप्त करने के लिए बाह्य कारकों का उपयोग करते हैं। *क्या आप इस समय अधिक से अधिक बाहरी कारकों की सूची बना सकते हैं?*

परागण के प्रकार — पराग के स्रोत को ध्यान में रखते हुए, परागण को तीन प्रकारों में बाँटा जा सकता है।

(क) ***स्वयुग्मन (ओटोगैमी)*** — एक ही (उसी) पुष्प में परागकोश से वर्तिकाग्र तक परागकणों का स्थानांतर है (चित्र 2.9 अ)। इस प्रकार का परागण उसी पुष्प के अन्दर होता है। एक सामान्य पुष्प में, जहाँ परागकोश एवं वर्तिकाग्र खुलता एवं अनावृत होता है; वहाँ पूर्ण स्वयुग्मन अपेक्षाकृत दुर्लभ होता है। इस प्रकार के पुष्पों में स्वयुग्मन के लिए पराग एवं वर्तिकाग्र की विमुक्ति के लिए क्रमशः समकालिकता की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही परागकोश एवं वर्तिकाग्र को एक-दूसरे के पास अवस्थित होना चाहिए, ताकि स्व-परागण संपन्न हो सके। कुछ पादप जैसे कि *वायोला* (सामान्य पानसी), *ओक्जेलीस* तथा *कोमेलीना* (कनकौआ) दो प्रकार के पुष्प पैदा करते हैं— **उन्मीलपरागणी** पुष्प; अन्य प्रजाति के पुष्पों के समान ही होते हैं, जिसके परागकोश एवं वर्तिकाग्र अनावृत होते हैं तथा **अनुन्मील्य परागणी** पुष्प कभी भी अनावृत नहीं होते हैं (चित्र 2.9 स) इस प्रकार के पुष्पों में, परागकोश एवं वर्तिकाग्र एक-दूसरे के बिल्कुल नजदीक स्थित होते हैं। जब पुष्प कलिका में परागकोश स्फुटित होते हैं तब परागकण वर्तिकाग्र के सम्पर्क में आकर परागण को प्रभावित करते हैं। अतः अनुन्मील्य परागणी पुष्प सदैव स्वयुग्मक होते हैं क्योंकि यहाँ पर वर्तिकाग्र पट क्रास या पर-परागण अवतरण के अवसर नहीं होते हैं।

(अ)

(ब)

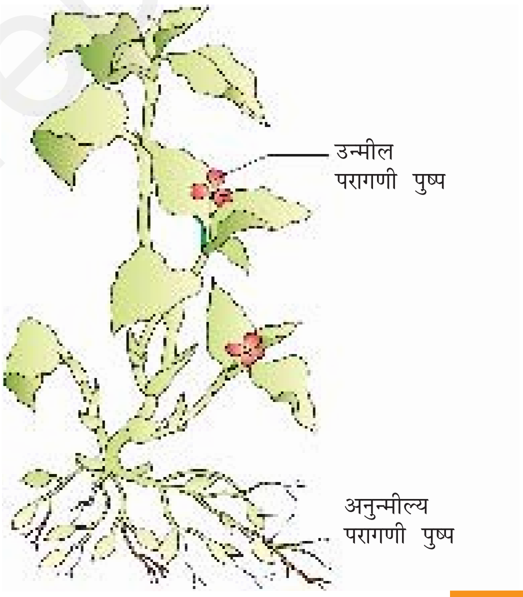

(स)

चित्र 2.9 (अ) स्वपरागित पुष्प (ब) परपरागित पुष्प (स) अनुन्मील्य परागणी पुष्प

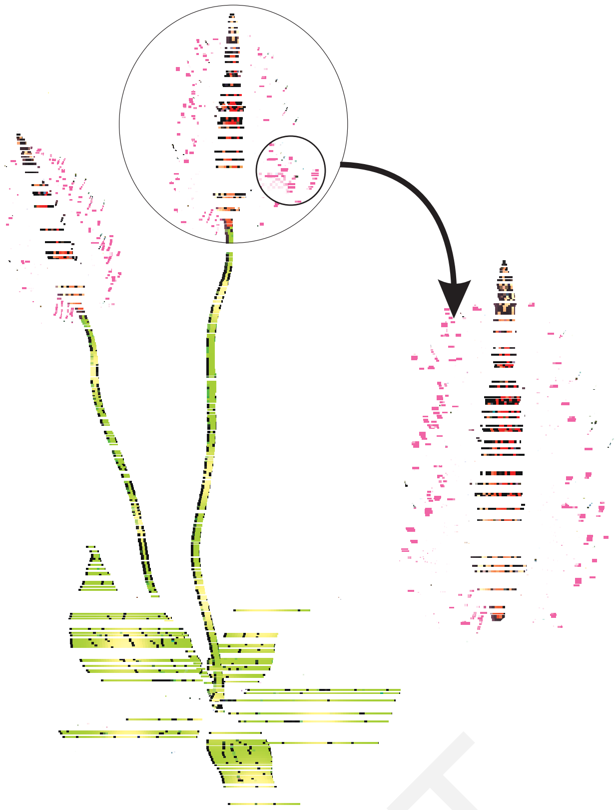

चित्र 2.10 वायु परागित पादप संघनित पुष्पक्रम तथा स्पष्ट अनावृत पुंकेसर को दर्शाते हुए।

उन्मील परागणी पुष्प सुनिश्चित रूप से (यहाँ तक कि परागण की अनुपस्थित में) बीज पैदा करते हैं। क्या आप सोचते हैं कि अनुन्मील्य पौधों को इससे फायदे हैं या हानि? क्यों?

(ख) ***सजातपुष्पी परागण*** — एक ही पादप के एक पुष्प के परागकणों का दूसरे पुष्प के वर्तिकाग्रों तक का स्थानांतरण है। यद्यपि सजातपुष्पी परागण क्रियात्मक रूप से पर परागण है जिसमें एक कारक (एजेंट) सम्मिलित होता है। सजातपुष्पी परागण लगभग स्वयुग्मन जैसा ही है; क्योंकि इसमें परागकण उसी पादप से आते हैं।

(ग) ***परनिषेचन*** — इसमें भिन्न पादपों के पराग कोश से भिन्न पादपों के वर्तिकाग्र तक परागकणों का स्थानांतरण होता है (चित्र 2.9 ब)। मात्र यह ही केवल एक प्रकार का परागण है, जिसमें परागण के समय आनुवंशिकत: भिन्न प्रकार के परागकणों का आगमन होता है।

परागण के अभिकर्मक या कारक — पौधे परागण के कारक या अभिकर्मक के रूप में दो अजीवीय (वायु एवं जल) तथा एक जीवीय (प्राणि) कारक (एजेंट) का उपयोग कर लक्ष्य प्राप्त करते हैं। अधिकतर पौधे परागण के लिए जीवीय कारकों का उपयोग करते हैं। बहुत कम पौधे अजीवीय कारकों का उपयोग करते हैं। वायु तथा जल दोनों ही कारकों में परागकण का वर्तिकाग्र के संपर्क में आना महज संयोगात्मक घटना है। इस प्रकार की अनिश्चितता तथा परागकणों के ह्रास से जुड़े 'तथ्यों' की क्षतिपूर्ति हेतु पौधे, बीजांडों की तुलना में, असंख्य मात्रा में परागकण उत्पन्न करते हैं।

अजीवीय परागण में वायु द्वारा परागण सर्वाधिक सामान्य परागण है। इसके साथ ही वायु परागण हेतु हल्के तथा चिपचिपाहट रहित परागकणों की जरूरत होती है ताकि वे हवा के झोकों के साथ संचारित हो सकें। वे अक्सर बेहतर अनावृत पुंकेसर से युक्त होते हैं (ताकि वे आसानी से हवा के बहाव में प्रसारित हो सकें) तथा वृहद एवं प्राय: पिच्छ वर्तिकाग्र युक्त होते हैं ताकि आसानी से वायु के उड़ते परागणों को आबद्ध किया जा सके (चित्र 2.10) वायु परागित पुष्पों में प्राय: प्रत्येक अंडाशय में एक अकेला बीजांड तथा एक पुष्प क्रम में असंख्य पुष्प गुच्छ होते हैं। इसका एक जाना-पहचाना उदाहरण भुट्टा (कोर्नकैव) हैं — आप जो फुंदने (टैसेल) देखते हैं वे कुछ और नहीं, बल्कि वर्तिकाग्र और वर्तिका है जो हवा में झूमते हैं ताकि परागकणों को आसानी से पकड़ सकें। घासों में वायु परागण सर्वथा सामान्य है।

पुष्पीपादपों में पानी द्वारा परागण काफी दुर्लभ है। यह लगभग 30 वंशों तक सीमित है, वह भी अधिकतर एकबीजपत्री पौधों में। इसके विपरीत, आप स्मरण करें कि निम्नपादप समूह जैसे — एलगी, ब्रायोफ़ाइट्स तथा टेरिडोफ़ाइट्स आदि के नर युग्मकों के

© NCERT not to be republished

परिवहन (संचार) का नियमित साधन जल ही है। यह विश्वास किया जाता है कि कुछ ब्रायोफ़ाइट एवं टैरिडोफ़ाइट्स का विस्तार केवल इसलिए सीमित है, क्योंकि नर युग्मकों के परिवहन एवं निषेचन हेतु जल की आवश्यकता होती है। जल परागित पादपों के कुछ उदाहरण **वैलिसनैरिया** तथा **हाइड्रिला** जो कि ताजे पानी में उगते हैं और अनेकों समुद्र जलीय घासें जैसे — **जोस्टेरा** आदि हैं। सभी जलीय पौधे जल को परागण के लिए उपयोग में नहीं लाते हैं। अधिकांश जलीय पौधे जैसे कि वाटर हायसिंथ एवं वाटरलिली (मुकुदनी) पानी के सतह पर पैदा होते हैं; और इनका परागण कीटों एवं वायु से होता है, जैसा कि अधिकतर थलीय पादपों में होता है। एक प्रकार के जलीय परागण में मादा पुष्प एक लंबे डंठल (वृंत) द्वारा जल की सतह पर आ जाते हैं और नर पुष्प या परागकण पानी की सतह पर अवमुक्त होकर आ जाते हैं उदाहरणार्थ — *बैलीसनेरिया* लंबे डंठल के साथ जल धाराओं में निष्क्रिय रूप से बहते रहते हैं (चित्र 2.11 अ)। इनमें से कुछेक संयोगात्मक रूप से मादा पुष्प एवं वर्तिकाग्र तक पहुँच जाते हैं। एक अन्य समूह के जलीय परागण वाले पादपों; जैसे कि समुद्री घासों (सीग्रासेस) में मादा पुष्प जल के सतह के नीचे ही पानी में डूबा रहता है और परागकणों को जल के अंदर ही अवमुक्त किया जाता है। इस प्रकार की बहुत सारी प्रजातियों के परागकण लंबे, फीते जैसे होते हैं तथा जल के भीतर निष्क्रिय रूप से बहते रहते हैं, इनमें से कुछेक वर्तिकाग्र तक पहुँच जाते हैं और परागण पूरा होता है। जल परागित अधिकतर प्रजातियों में परागकणों को पानी के भीतर गीले श्लेष्मक आवरण द्वारा संरक्षित रखा जाता है।

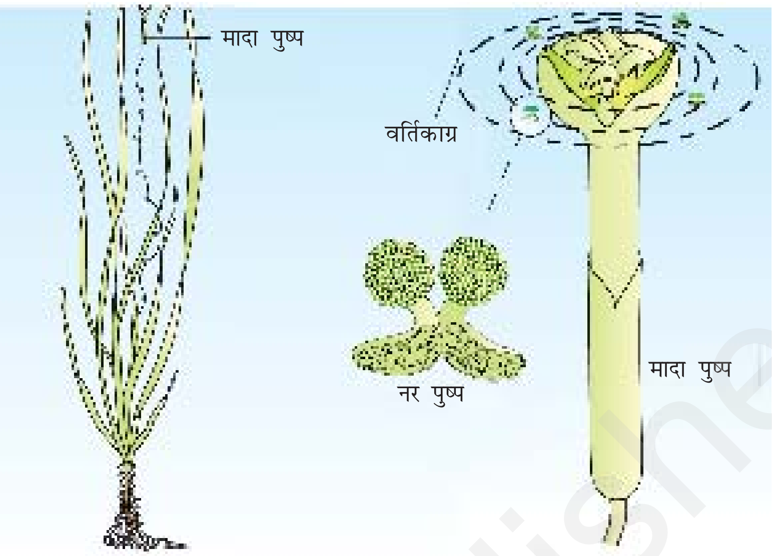

(अ)

(ब)

चित्र 2.11 (अ) वैलिसनेरिया में जल द्वारा परागण
(ब) कीट परागण

वायु एवं जल परागित पुष्प न तो बहुत रंग युक्त होते हैं और न ही मकरंद पैदा करते हैं। इसका क्या कारण हो सकता है?

अधिकतर पुष्पीय पादप परागण के लिए प्राणियों को परागण कर्मक/कारक के रूप में उपयोग करते हैं। मधुमक्खियाँ, भौंरे, तितलियाँ, बर्र, चीटियाँ, शलभ या कीट, पक्षी

© NCERT not to be republished

(शकखोरा तथा गुंजनपक्षी) तथा चमगादड़ आदि सामान्य परागणीय अभिकर्मक हैं। प्राणियों में कीट-पतंग विशेष रूप से मधुमक्खी, प्रधान जीवीय परागण कर्मक हैं। यहाँ तक कि बड़े नर — वानरगण के प्राणी (लीमर या लेम्यूर) वृक्षवासी (शाखा चारी) कृंतक और यहाँ तक कि सरीसृपवर्ग (गीको छिपकली तथा उपवन छिपकली) भी कुछ प्रजाति के पादपों के परागण के लिए सक्रिय पाए गए हैं। प्राय: प्राणि परागित पादपों के पुष्प एक विशिष्ट प्रजाति के प्राणि के लिए विशेष रूप से अनुकूलित होते हैं।

अधिकतर कीट परागित पुष्प बड़े, रंगीन पूर्ण सुगंध युक्त तथा मकरंद से भरपूर होते हैं। जब पुष्प छोटे होते हैं तब अनेक पुष्प एक पुष्पवृंत में समूह बद्ध होकर अधिक उभर आते हैं। प्राणि रंगों एवं/अथवा सुगंध (महक) के कारण पुष्पों की ओर आकर्षित होते हैं। मक्खियों एवं बीटलों से परागणित होने वाले पुष्प मलिन गंध स्रावित करते हैं, जिससे ये प्राणी आकर्षित होते हैं। प्राणियों से भेंट जारी रखने के लिए पुष्पों को कुछ लाभ या पारितोषिक उपलब्ध कराना होता है। मकरंद और परागकण फूलों द्वारा प्रदत्त आम पारितोषिक हैं। इस पारितोषिकों को पाने के लिए प्राणि आगंतुकों को परागकोश तथा वर्तिकाग्र के संपर्क में आना पड़ता है। प्राणि के शरीर पर परागकणों का एक आवरण सा चढ़ जाता है, जो प्राणि परागित फूलों में प्राय: चिपचिपा होता है। जब परागकणों से लिप्त प्राणि वर्तिकाग्र के संपर्क में आता है तो यह परागण पूरा करता है।

कुछ पुष्प प्रजातियों में यह पुरस्कार अंडा देने की सुरक्षित जगह के रूप में होता है। एक उदाहरण **एमोरफोफेलस** का लंबोतर पुष्प (पुष्प स्वत: लगभग 6 फुट ऊँचा होता है)। ठीक ऐसा ही एक सह-संबंध शलभ की एक प्रजाति और **युका** पादप के बीच होता है जहाँ दोनों ही प्रजाति-शलभ एवं पादप बिना एक दूसरे के बिना अपना जीवन चक्र नहीं पूरा कर सकते हैं। इसमें शलभ अपने अंडे पुष्प के अंडाशय के कोष्ठक में देती है। जबकि इसके बदले में वह शलभ द्वारा परागित होता है। शलभ का लारवा अंडे से बाहर तब आता है जब बीज विकसित होना प्रारंभ होता है।

क्यों न आप निम्नलिखित पादपों (या कोई भी जो उपलब्ध हो) के पुष्पों का अवलोकन करें जैसे खीरा, आम, पीपल, धनिया, पपीता, प्याज, लोबिया, कपास, तंबाकू, गुलाब, नींबू, यूकेलिप्टस, केला आदि। यह पता करने की कोशिश करें कि इन पुष्पों के पास कौन से प्राणि आते हैं और क्या वे परागण कर सकते हैं? आप को धैर्य के साथ कुछ दिनों तक, भिन्न-भिन्न समयों पर उन्हें देखना होगा। आप यह देखने की भी कोशिश करें कि क्या उस पुष्प तक आने वाले (भ्रमणकारी) प्राणि तथा एक पुष्प की विशिष्टता के बीच कोई सह सम्बद्धता है या नहीं। परागकोश एवं वर्तिकाग्र के संपर्क में आने वाले भ्रमणकर्ता प्राणि का ध्यानपूर्वक अवलोकन करें जो परागण को पूरा करता हो। बहुत सारे कीट या भ्रमणकर्ता बिना परागण किए पराग या मकरंद का भक्षण कर लेते हैं। अत: ऐसे आगंतुकों या भ्रमणकारियों को पराग/मकरंद दस्यु के रूप में संदर्भित किया जाता है। आप शायद परागणकारियों को पहचान सके या न पहचान सकें, पर आप निश्चित रूप से अपने प्रयास में आनंद प्राप्त करेंगे।

बहि:प्रजनन युक्तियाँ — अधिकतर पुष्पीय पादप उभयलिंगी पुष्पों एवं परागकणों को उत्पन्न करते हैं जो बहुत हद तक उसी पुष्प के वर्तिकाग्र के संपर्क में आते हैं। निरंतर

© NCERT not to be republished

स्व परागण के फलस्वरूप प्रजनन में अन्तः प्रजनन अवनमन होता है। पुष्पीय पादपों ने बहुत सारे ऐसे साधन या उपाय विकसित कर लिए हैं जो स्वपरागण को हतोत्साहित एवं परपरागण को प्रोत्साहित करते हैं। कुछ प्रजातियों में पराग अवमुक्ति एवं वर्तिकाग्र ग्राह्यता समकालिक नहीं होती है या तो वर्तिकाग्र के तैयार होने से पहले ही पराग अवमुक्त कर दिए जाते हैं या फिर परागों के झड़ने से काफी पहले ही वर्तिकाग्र ग्राह्य बन जाता है। कुछ प्रजातियों में परागकोश एवं वर्तिकाग्र भिन्न स्थानों पर अवस्थित होते हैं। जिससे उसी पादप में पराग वर्तिकाग्र के संपर्क में नहीं आ पाते हैं। दोनों ही युक्तियाँ स्वयुग्मन रोकती हैं। अन्तः प्रजनन रोकने का तीसरा साधन स्व-असामंजस्य है। यह एक वंशानुगत प्रक्रम तथा स्वपरागण रोकने का उपाय है। उसी पुष्प या उसी पादप के अन्य पुष्प से जहाँ बीजांड के निषेचन को पराग अंकुरण या स्त्रीकेसर में परागनलिका वृद्धि को रोका जाता है। स्वपरागण को रोकने के लिए एक अन्य साधन है, एकलिंगीय पुष्पों का उत्पादन। अगर एक ही पौधे पर नर एवं मादा दोनों ही पुष्प उपलब्ध हो जैसे — एरंड, मक्का (उभयलिंगाश्रयी), यह स्वपरागण को रोकता है न कि सजातपुष्पी परागण को।

अन्य बहुत सारी प्रजातियों जैसे पपीता में नर एवं मादा पुष्प भिन्न पादपों पर होते हैं अर्थात् प्रत्येक पादप या तो मादा या नर है (एकलिंगाश्रयी)। यह परिस्थिति स्वपरागण तथा सजातपुष्पी परागण दोनों को अवरोधित करती हैं।

पराग-स्त्रीकेसर संकर्षण (पारस्परिकक्रिया) — परागण बिल्कुल सही प्रकार के परागकणों का स्थानांतरण सुनिश्चित नहीं कराता है (ठीक उसी प्रजाति का सुयोग्य पराग वर्तिकाग्र तक पहुँचे)। प्रायः गलत प्रकार के पराग भी उसी वर्तिकाग्र पर आ पड़ते हैं (जिसमें ये, या तो उसी पादप से होते हैं या फिर अन्य पादप से; (यदि वह स्व परागण के अयोग्य है)। स्त्रीकेसर में यह सक्षमता होती है कि वह पराग को पहचान सके कि वह उसी वर्ग के सही प्रकार का पराग (सुयोग्य) है या फिर गलत प्रकार का (अयोग्य) है। यदि पराग सही प्रकार का होता है तो स्त्रीकेसर उसे स्वीकार कर लेता है तथा परागण-पश्च घटना के लिए प्रोत्साहित करता है जो कि निषेचन की ओर बढ़ता है। यदि पराग गलत प्रकार का होता है तो स्त्रीकेसर वर्तिकाग्र पर पराग अंकुरण या वर्तिका में पराग नलिका वृद्धि रोककर पराग को अस्वीकार कर देता है। एक स्त्रीकेसर द्वारा पराग के पहचानने की सक्षमता उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति द्वारा अनुपालित होती है, जो परागकणों एवं स्त्रीकेसर के बीच निरंतर संवाद का परिणाम है। इस संवाद की मध्यस्थता स्त्रीकेसर तथा पराग के रासायनिक घटकों के संकर्षण द्वारा होता है। अभी हाल ही में कुछ वनस्पति विज्ञानियों ने स्त्रीकेसर एवं पराग के घटकों को पहचाना है तथा उनके बीच संकर्षण (परस्परक्रिया) को स्वीकृति या अस्वीकृति के अनुपालन से जाना है।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है; सुयोग्य परागण के अनुपालन में; परागकण वर्तिकाग्र पर जनित होते हैं ताकि एक जनन छिद्र के माध्यम से एक परागनलिका उत्पन्न हो (चित्र 2.12 अ)। पराग नलिका वर्तिकाग्र तथा वर्तिका के ऊतकों के माध्यम से वृद्धि करती है और अंडाशय तक पहुँचती है (चित्र 2.12 ब, स)। आप याद करें कि कुछ पादपों में परागकण दो कोशीय स्थिति में (एक कायिक कोशिका तथा दूसरी जनन कोशिका) झड़ते हैं।

© NCERT not to be republished

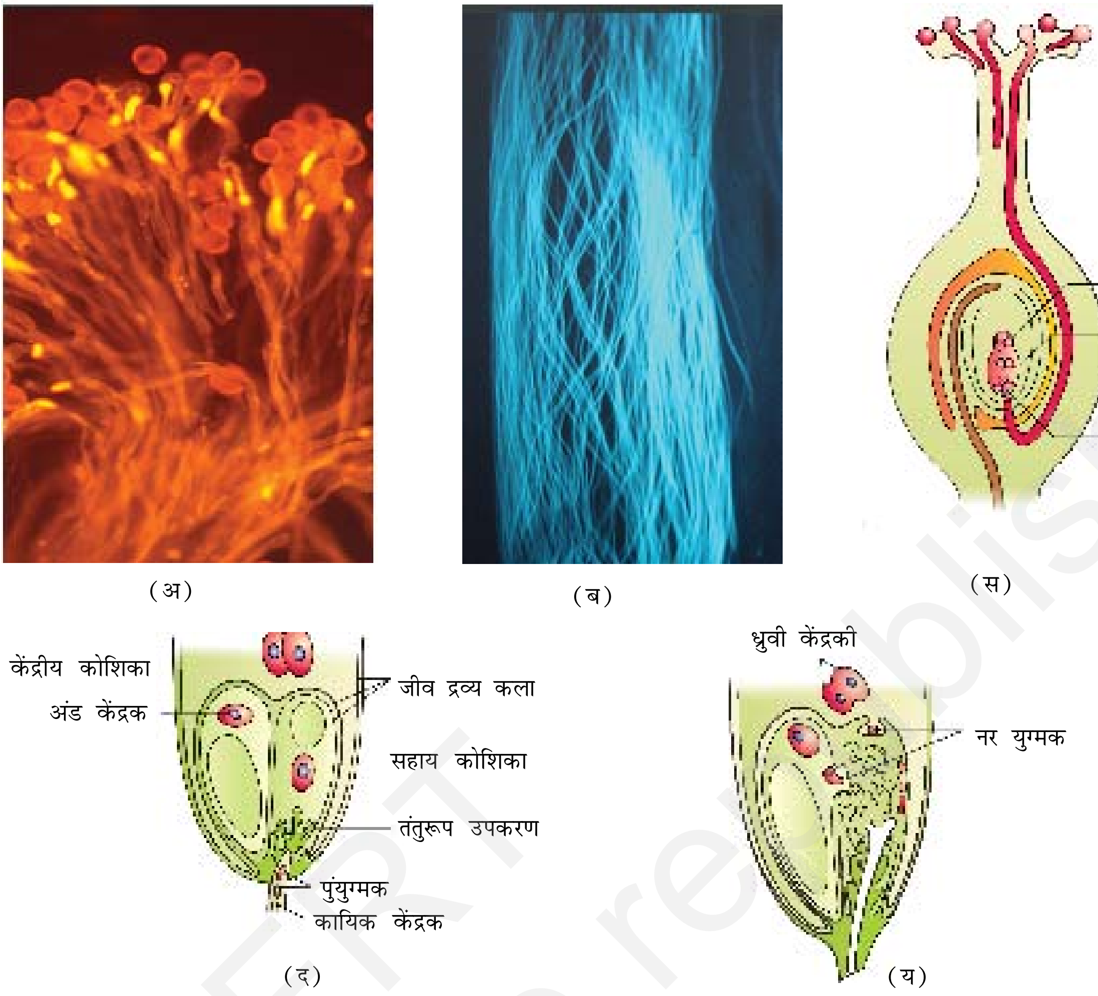

चित्र 2.12 (अ) परागकणों का वर्तिकाग्र पर अंकुरण (ब) वर्तिका में पराग नलिकाओं की वृद्धि (स) स्त्रीकेसर के अनुप्रस्थ (लंब) काट में पराग नलिका की वृद्धि दिख रही है, (द) एक अंड सम्मुचय के वृहद् दृश्य पटल पर एक सहाय कोशिका के तंतुमय सम्मुचय में पराग नलिका का प्रवेश दिखता है। (इ) एक सहाय कोशिका में नर युग्मक का स्खलन एवं शुक्राणु की गतिशीलता — जो एक अंडे में तथा दूसरी केंद्रीय कोशिका में हैं।

इस प्रकार के पादपों में जनन कोशिका विभाजित होती है और वर्तिकाग्र में परागनलिका की वृद्धि के दौरान दो नर युग्मकों की रचना करती है। जिन पादपों में पराग तीन कोशीय स्थिति में होते हैं, वहाँ परागनलिका शुरूआत से ही दो नर युग्मकों को ले जाती है।

परागनलिका अंडाशय में पहुँचने के पश्चात्, बीजांड द्वार के माध्यम से बीजांड में प्रविष्ट करती है और तत्पश्चात् तंतुमय समुच्चय के माध्यम से एक सहाय कोशिका में प्रविष्ट करती है (चित्र 2.12 द, इ)। हाल ही के बहुत सारे अध्ययन यह दर्शाते हैं कि सहाय कोशिका के बीजांडद्वारी हिस्से पर उपस्थित तंतुरूपसमुच्चय पराग नलिका के प्रवेश को दिशा निर्देशित करती है। वर्तिकाग्र पर पराग अवस्थित होने से लेकर बीजांड में पराग नलिका के प्रविष्ट होने तक की सभी घटनाओं को परागस्त्रीकेसर संकर्षण के नाम से

संबोधित किया जाता है। जैसा कि पहले भी बताया गया है **पराग-स्त्रीकेसर संकर्षण** एक गतिक प्रक्रम है जिसमें पराग पहचान के साथ पराग को प्रोन्नति या अवनति द्वारा अनुपालन सम्मिलित है। इस क्षेत्र के बारे में ज्ञान प्राप्त करने से पादप प्रजनकों को पराग-स्त्रीकेसर संकर्षण के हेर-फेर में, यहाँ तक कि अयोग्य परागण से अपेक्षित संकर (जाति) प्राप्त करने में मदद प्राप्त होगी।

आप एक काँच की पट्टी (स्लाइड) पर जल शर्करा घोल (10 प्रतिशत घोल) की एक बूँद पर मटर, चना (चिकपी), *क्रोटालेरिया*, बालसम (गुलमेंहदी) तथा *विनका* (सदाबहार) के पुष्पों से कुछ पराग झाड़ कर गिराने के पश्चात् पराग जनन का अध्ययन आसानी के साथ कर सकते हैं। स्लाइड पर इन्हें रखने के 15 से 30 मिनट के बाद स्लाइड को कम शक्ति (लो पावर) के लेंस वाले सूक्ष्मदर्शी यंत्र पर रखकर अवलोकित करें। बहुत संभव है कि आप परागकणों से निकलती हुई पराग नलिकाओं को देख पाएँ।

जैसा कि आप अध्याय-9 में पादप जनन के बारे में पढ़ेंगे कि एक प्रजनक भिन्न प्रजातियों के संकरण (क्रासिंग) में तथा वाणिज्यिक रूप से सर्वोत्तम श्रेणी के अपेक्षित विशिष्टता वाले जनन सम्पाक् में रूचि रखते हैं। **कृत्रिम संकरीकरण** फसल की उन्नति या प्रगतिशीलता कार्यक्रम के लिए एक प्रमुख उपागम है। इस प्रकार के संकरण प्रयोगों हेतु, यह सुनिश्चित करना महत्त्वपूर्ण है कि केवल अपेक्षित परागों का उपयोग परागण के लिए किया जाए तथा वर्तिकाग्र को संदूषण (अनापेक्षित परागों) से बचाया जाए। यह उपलब्धि केवल बोरावस्त्र तकनीक (बैगिंग टेकनीक) तथा विपुंसन तकनीक द्वारा पाई जा सकती है।

यदि कोई मादा जनक द्विलिंगी पुष्पधारण करता है तो पराग के प्रस्फुटन से पहले पुष्प कलिका से पराग कोश के निष्कासन हेतु एक जोड़ा चिमटी का इस्तेमाल आवश्यक होता है। इस चरण को **विपुंसन** के रूप में संदर्भित किया जाता है। विपुंसित पुष्पों को उपयुक्त आकार की थैली से आवृत किया जाना चाहिए जो सामान्यत: बटर पेपर (पतले कागज़) की बनी होती है। ताकि इसके वर्तिकाग्र को अवांछित परागों से बचाया जा सके। इस प्रक्रम को **बैगिंग** (या **बोरा-वस्त्रावरण**) कहते हैं। जब बैगिंग (वस्त्रावृत) पुष्प का वर्तिकाग्र सुग्राह्यता को प्राप्त करता है तब नर अभिभावक से संग्रहीत पराग कोश के पराग को उस पर छिटका जाता है और उस पुष्प को पुन: आवरित करके, उसमें फल विकसित होने के लिए छोड़ दिया जाता है।

यदि मादा जनक एकलिंगीय पुष्प को पैदा करता है तो विपुंसन की आवश्यकता नहीं होती है। पुष्पों के खिलने से पूर्व ही उन्हें आवृत कर दिया जाता है। जब वर्तिकाग्र सुग्राह्य बन जाता है तब अपेक्षित पराग के उपयोग द्वारा परागण करके पुष्प को पुन: आवृत (रिबैगाड) कर दिया जाता है।

2.3 दोहरा निषेचन (द्वि-निषेचन)

एक सहायकोशिका में प्रवेश करने के पश्चात् पराग नलिका द्वारा सहायकोशिका के जीव द्रव्य में दो नर युग्मक अवमुक्त किए जाते हैं। इनमें से एक नर युग्मक अंड कोशिका की ओर गति करता है और केंद्रक के साथ संगलित होता है, जिससे **युग्मक संलयन**

© NCERT not to be republished

पूर्ण होता है। जिसके परिणाम में एक द्विगुणित कोशिका **युग्मनज** (जाइगोट) की रचना होती है। दूसरा नर युग्मक केंद्रीय कोशिका में स्थित दो ध्रुवीय न्युक्ली (केंद्रिकी) की ओर गति करता है और उनसे संगलित होकर त्रिगुणित **(प्राइमरी इंडोस्पर्म न्युक्लियस (प्राथमिक भ्रूणपोष केंद्रक)** बनाता है। जैसा कि इसके अन्तर्गत तीन अगुणितक न्युक्ली (केंद्रिकी) सम्मिलित होते हैं। अत: इसे **त्रिसंलयन** कहते हैं (चित्र 2.13 अ)। चूँकि एक भ्रूण पुटी (भ्रूणकोश) में दो प्रकार के संलयन (संगलन), युग्मकसंलयन तथा त्रिसंलयन स्थान लेते हैं अत: इस परिघटना को **दोहरा निषेचन** कहा जाता है। जो कि पुष्पी पादपों के लिए एक अनूठी घटना है। त्रिसंलयन के पश्चात् केंद्रीय कोशिका **प्राथमिक भ्रूणपोष कोशिका** बन जाती है तथा **भ्रूणपोष** के रूप में विकसित होने लगती है जबकि युग्मनज एक **भ्रूण** के रूप में विकसित होता है।

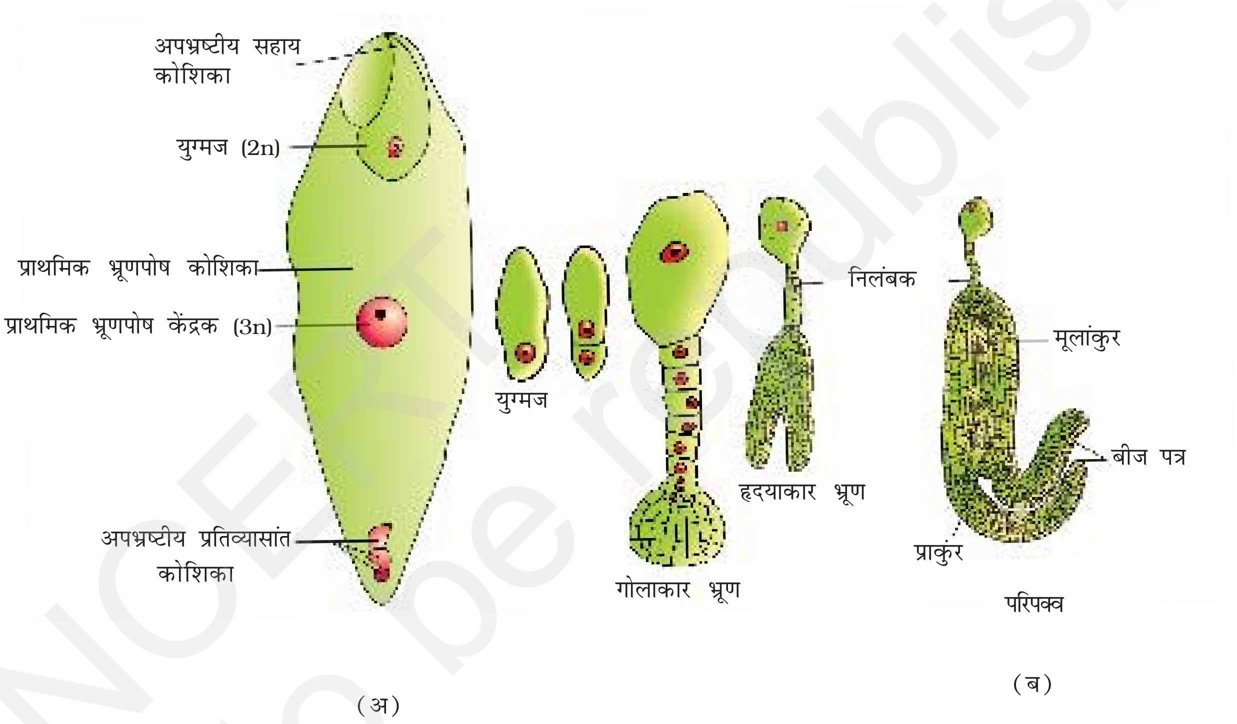

चित्र 2.13 (अ) एक निषेचित भ्रूण कोश (पुटी) युग्मनज तथा प्राथमिक भ्रूणपोष केंद्रिकी को दर्शाता है। (ब) एक द्विबीज पत्री में भ्रूण विकास के चरण

2.4 निषेचन — पश्च-संरचनाएँ एवं घटनाएँ

ऊपर वर्णित किए गए दोहरे निषेचन के अनुपालन या अनुहरण में भ्रूण पोष एवं भ्रूण के विकास की अगली घटनाक्रम में; बीजांड के परिपक्व होकर बीज में बदलने तथा अंडाशय को फल के रूप में विकसित होने की सभी घटनाओं को सामूहिक रूप में **निषेचन-पश्च घटना** के नाम से जाना जाता है।

© NCERT not to be republished

2.4.1 भ्रूणपोष

भ्रूणपोष का विकास भ्रूण विकास के रूप में बढ़ता है। क्यों? प्राथमिक भ्रूणपोष कोशिका बार-बार विभाजित होती है तथा एक त्रिगुणित भ्रूणपोष ऊतक की रचना करते हैं। इन ऊतकों की कोशिकाएँ संरक्षित खाद्य सामग्री से पूरित होती हैं और विकासशील भ्रूण की पोषकता के लिए उपयोग किए जाते हैं। सर्वाधिक सामान्य प्रकार के प्राथमिक भ्रूणपोष केंद्रक नामक भ्रूणपोष विकास उत्तरोत्तर केंद्रकी (न्युकिलयर) विभाजन से गुजर कर मुक्त न्युक्ली (केंद्रकी) के रूप में पैदा होता है। भ्रूणपोष के विकास की इस अवस्था को फ्रीन्युकिलयर इंडोस्पर्म अर्थात् मुक्त केंद्रकी भ्रूणपोष कहते हैं। इसके सापेक्ष ही कोशिका भित्ति रचना स्थान लेती है और भ्रूणपोष कोशकीय बन जाता है। कोशिकीकरण से पहले मुक्त न्युक्लीआइयों की संख्याओं में व्यापक भिन्नता होती है। एक कच्चे नारियल का पानी, जिससे आप परिचित हैं, और कुछ नहीं भी, बल्कि यह मुक्त केंद्रकी भ्रूणपोष (जो हजारों न्युक्ली से बना) है और इसके आस-पास का सफेद गूदा (गिरी) कोशकीय भ्रूणपोष होता है।

बीज के परिपक्व होने से पहले भ्रूणपोष पूरी तरह से विकासशील भ्रूण (जैसे — मटर, मूँगफली, सेम आदि) द्वारा उपभोग कर लिया जाता है या फिर परिपक्व बीज में विद्यमान रहता है (जैसे — अरंडी और नारियल) और इसे बीज अंकुरण के समय इस्तेमाल किया जाता है। *यदि अरंडी, मटर, सेम, मूँगफली आदि के बीज या नारियल के फल को खोले और प्रत्येक में भ्रूणपोष को देखें और पता करें, क्या भ्रूण पोष अनाजों — गेहूँ, चावल तथा मक्का में विद्यमान है?*

2.4.2 भ्रूण

भ्रूण भ्रूणकोश या पुटी के बीजांडद्वारी सिरे पर विकसित होता है; जहाँ पर युग्मनज स्थित होता है। अधिकतर युग्मनज तब विभाजित होते हैं जब कुछ निश्चित सीमा तक भ्रूणपोष विकसित हो जाता है। यह एक प्रकार का अनुकूलन है ताकि विकासशील भ्रूण को सुनिश्चित पोषण प्राप्त हो सके। यद्यपि बीज में व्यापक भिन्नता होती है। भ्रूण विकास (**भ्रूणोद्भव**) की प्रारंभिक अवस्था (चरण) एक बीजपत्री तथा द्विबीजपत्री दोनों ही में समान होती है (चित्र 2.13)। युग्मनज **प्राक्भ्रूण** के रूप में वृद्धि करता है और इसके सापेक्ष ही **गोलाकार, हृदयाकार तथा परिपक्व भ्रूण** में वृद्धि करता है।

एक प्ररूपी द्विबीजपत्री भ्रूण (चित्र 2.14 अ) में एक **भ्रूणीय अक्ष** (धुरी) तथा दो **बीजपत्र** समाहित होते हैं। बीजपत्र के स्तर से ऊपर भ्रूणीय अक्ष की प्रोटीन (एपीकाटील) **बीजपत्रोपरिक** होती है जो **प्रांकुर** या स्तंभ सिरे पर प्राय: समाप्त होती है। **बीजपत्राधार** में बीजपत्रों के स्तर से नीचे

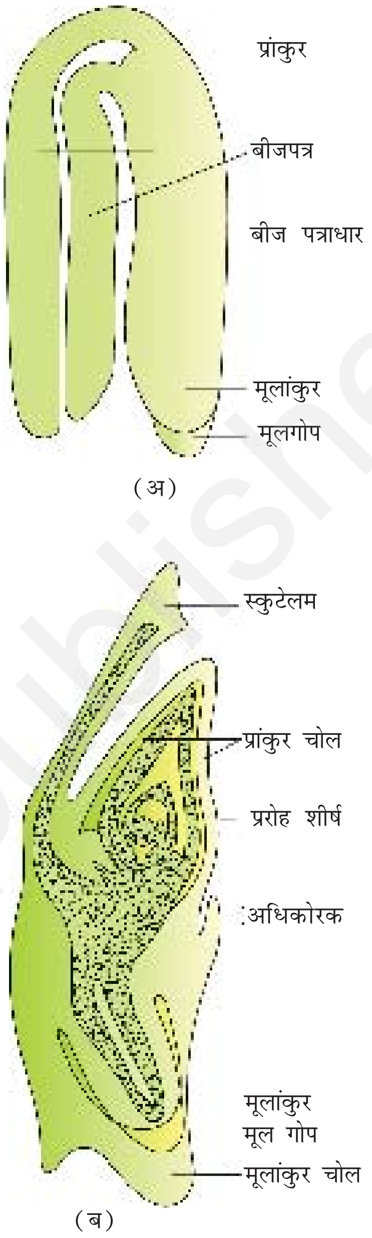

चित्र 2.14 (अ) एक प्ररूपी द्विबीजपत्री भ्रूण (ब) एक घास के भ्रूण का अनुप्रस्थ काट

© NCERT not to be republished

बेलनाकार प्रोटीन, जो कि **मूलांत सिरा** या मूलज के शीर्षांत पर समाप्त होती है। यह मूलशीर्ष एक ढक्कन द्वारा आवृत होती है, जिसे **मूल गोप** कहते हैं।

एकबीजपत्रीय-भ्रूण (चित्र 2.14 ब) केवल एक बीजपत्र होता है। घास परिवार में बीजपत्र को **स्कुटेलम (प्रशल्क)** कहते हैं। जो भ्रूणीय अक्ष के एक तरफ (पार्श्व की ओर) स्थित होता है। इसके निचले सिरे पर भ्रूणीय अक्ष में एक गोलाकार और मूल आवरण एक बिना विभेदित पर्त से आवृत्त होता है। जिसे (कोलियोराइजा) **मूलांकुर चोल** कहते हैं। स्कुटेलम के जुड़ाव के स्तर से ऊपर, भ्रूणीय अक्ष के भाग को बीजपत्रोपरिक कहते हैं। बीजपत्रोपरिक में प्ररोह शीर्ष तथा कुछ आदि कालिक (आद्य) पर्ण होते हैं, जो एक खोखला-पणीर्य संरचना को घेरते हैं, जिसे **प्रांकुरचोल** कहते हैं।

जल में कुछ बीजों (जैसे कि गेहूँ, मक्का, मटर, चना, मूंगफली को रात भर पानी में भिगोएँ। इसके बाद बीजों को छीलें और खोलें तथा भ्रूण एवं बीज के विभिन्न भागों का अवलोकन करें।

2.4.3 बीज

आवृतबीजियों में, लैंगिक जनन का अंतिम परिणाम बीज होता है। इसको प्रायः एक निषेचित बीजांड के रूप में वर्णित किया जाता है। बीज फलों के अंदर पैदा होते हैं। एक बीज में विशिष्ट रूप से बीज आवरण, बीजपत्र तथा एक भ्रूण अक्ष (अँखुआ) समाहित होता है। भ्रूण का बीजपत्र (चित्र 2.15 अ) एक सरल संरचना होती है। प्रायः आरक्षित आहार भंडारण के कारण फूली हुई एवं स्थूल होती है (जैसा कि लेग्युमस में)। परिपक्व बीज **गैर-एल्बुमिनियस** अथवा **एल्बुमिनियस** हो सकता है। गैर-एल्बुमिनियस बीज में अवशिष्ट भ्रूणपोष नहीं होता है; क्योंकि भ्रूण विकास के दौरान यह पूर्णतः उपभुक्त कर लिया जाता है (जैसे - मटर, मूँगफली)। एल्बुमिनियस बीजों में भ्रूणपोष का कुछ भाग शेष रह जाता है क्योंकि भ्रूण विकास के दौरान इसका पूर्णतः उपभोग नहीं हो पाता है (जैसे कि गेहूँ, मक्का, बाजरा, अरंड, सूरजमुखी आदि)। कभी-कभार कुछ बीजों में जैसे कि काली मिर्च तथा चुकंदर में बीजांडकाय (न्यूसैलस) भी शेष रह जाता है। अवशिष्ट उपस्थित बीजांडकाय **परिभ्रूण पोष** होता है।

बीजांड (अंडाशय) का अध्यावरण बीज के ऊपर सख्त संरक्षात्मक आवरण बन जाता है (चित्र 2.15 अ)। बीज के आवरण में बीजांडद्वार एक छोटे छिद्र के रूप में रह जाता है। बीज अंकुरण के समय यह ऑक्सीजन एवं जल के प्रवेश को सुगम बनाता है। जैसे-जैसे बीज परिपक्व होता है, उसके अंदर जल की मात्रा घटने लगती है तथा बीज अपेक्षाकृत शुष्क होता जाता है। फलस्वरूप सामान्य चयापचयी क्रिया धीमी पड़ने लगती है। भ्रूण निष्क्रियता की दशा में प्रवेश कर जाता है, जिसे **प्रसुप्ति** कहते हैं या यदि अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध (पर्याप्त नमी, आर्द्रता, ऑक्सीजन तथा उपयुक्त तापमान) होती है तो वे अंकुरित हो जाते हैं।

जैसे-जैसे बीजांड परिपक्व होकर बीज बनते हैं अंडाशय एक फल के रूप में विकसित हो जाता है अर्थात् बीजांड का बीज के रूप में तथा अंडाशय का फल के रूप में रूपांतरण साथ-साथ चलता है। अंडाशय की दीवार, फल की दीवार (छिलके) के रूप

© NCERT not to be republished

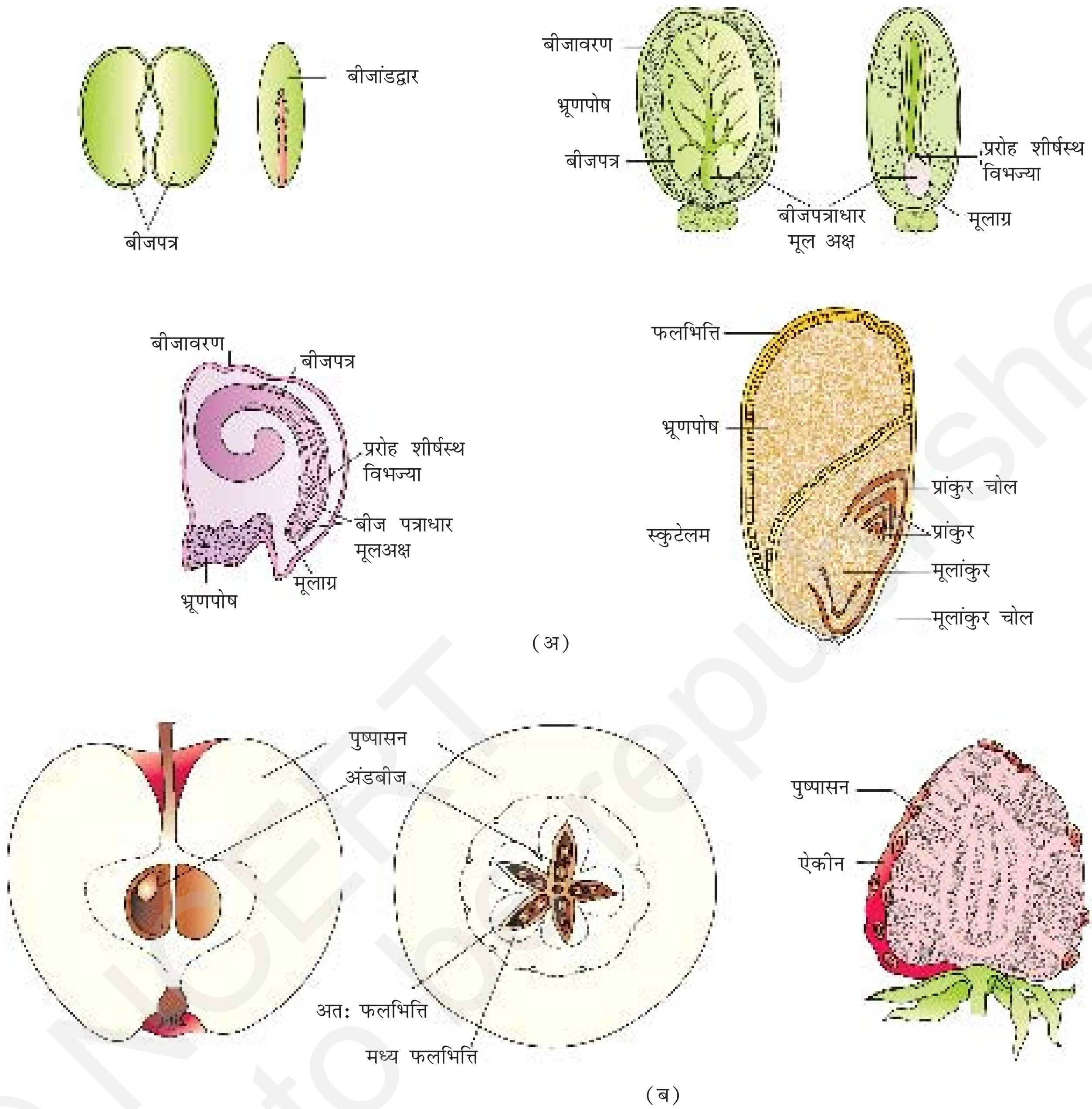

चित्र 2.15 (अ) कुछ बीजों की संरचना (ब) सेब एवं स्ट्राबेरी के आभासी फल

में विकसित होती है जिसे **फलभित्ति** कहते हैं। फल अमरूद, आम, संतरे आदि की भाँति गूदेदार हो सकते हैं अथवा मूँगफली, सरसों आदि की भाँति शुष्क भी हो सकते हैं। बहुत सारे फलों ने अपने बीजों के परिक्षेपण हेतु विविध क्रिया विधियाँ विकसित की हैं। आप फलों के वर्गीकरण एवं उनके परिक्षेपण क्रियाओं को याद करें जिसे आपने पहले की कक्षाओं में पढ़ा है। *क्या एक अंडाशय के अन्दर बीजांड की संख्या तथा फलों के अन्दर बीजों की संख्या के बीच कोई संबंध है?*

© NCERT not to be republished

अधिकतर पादपों में, जब तक अंडाशय से फल विकसित होता है, उसके अन्य पुष्पीय अंश अपह्रासित एवं झड़ जाते हैं। हालाँकि, कुछेक प्रजातियों में; जैसे कि सेब, स्ट्राबेरी (रसभरी), अखरोट आदि में फल की रचना में पुष्पासन भी महत्त्वपूर्ण भागीदारी निभाता है। इस प्रकार के फलों को (मिथ्या) **आभासी फल** कहते हैं (चित्र 2.15 ब)। अधिकतर फल केवल अंडाशय से विकसित होते हैं और उन्हें **यथार्थ या वास्तविक फल** कहते हैं। यद्यपि अधिकतर प्रजातियों में फल निषेचन का परिणाम होते हैं; परंतु कुछ ऐसी प्रजातियाँ भी हैं जिनमें बिना निषेचन के फल विकसित होते हैं। ऐसे फलों को **अनिषेकजनितफल** कहते हैं। इसका एक उदाहरण केला है। अनिषेक फलन को वृद्धि हार्मोन्स के प्रयोग से प्रेरित किया जा सकता है और इस प्रकार के फल बीज रहित होते हैं।

बीज आवृतबीजियों को अनेक लाभ प्रस्तावित करते हैं। पहला, जबकि प्रजनन प्रक्रिया जैसे कि परागण एवं निषेचन जल आदि से स्वतंत्र हैं, बीज की रचना काफी निर्भरता पूर्ण है। इसके साथ ही बीज नए पर्यावासों में प्रसारण हेतु बेहतर अनुकूलित रणनीतियों से युक्त होते हैं तथा प्रजाति को अन्य क्षेत्रों में बसने में मदद करते हैं। जैसा कि इनमें पर्याप्त आरक्षित आहार भंडार होता है, अल्पवयस्क नवोद्भिद तब तक पोषण देते हैं, जब तक कि वह स्वयं ही प्रकाश संश्लेषण न करने लगे। युवा भ्रूण को कठोर बीज-आवरण संरक्षण प्रदान करता है। लैंगिक प्रजनन का उत्पाद होने की वजह से, ये नवीन जेनेटिक (वंशीय) सम्पाक् को पैदा करते हैं जो विविधता का रूप लेते हैं।

बीज हमारी कृषि का आधार है। बीज के भंडारण हेतु परिपक्व बीज का निर्जलीकरण एवं प्रसुप्ति बहुत ही महत्त्वपूर्ण है; जिसे पूरे वर्ष भर खाद्यान्न के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है तथा अगले मौसम के लिए फसल के रूप में उगाया भी जा सकता है। *क्या आप बीज के बिना या उस बीज के बिना —जो तुरंत ही अंकुरित हो जाता है और भंडारित न किया जा सकता हो — खेती की कल्पना कर सकते हैं?*

बीज के परिक्षेपण (छितराने) के बाद, वह कितने समय तक जीवित रह सकता है? यह अवधि पुनः व्यापक रूप से भिन्न होती है। कुछ प्रजातियों में बीज अपनी जीवन क्षमता कुछ महीनों में ही खो देते हैं। बहुसंख्य प्रजातियों के बीज कई वर्षों तक जीवनक्षम रहते हैं। कुछ बीज तो सैकड़ों वर्षों तक जीवित रह सकते हैं। यहाँ पर विश्व के प्राचीन जीवन सक्षम बीजों के अनेक रिकार्ड उपलब्ध हैं। एक प्राचीन बीज ल्यूपाइन **ल्युपिनस आर्कटीकस** है, जिसे आर्कटिक टुंड्रा से खनित किया गया था। एक अनुमानित रिकार्ड 10,000 वर्ष की प्रसुप्ति के बाद बीज अंकुरित एवं पुष्पित हुआ था। हाल ही का एक रिकार्ड 2000 वर्ष पुराने खजूर के जीवन क्षम बीज-**फोयेनिक्स डैक्टीलीफेरा** का है जिसे मृत सागर के पास किंग हैराल्ड के महल की पुरातात्विक खुदाई के दौरान खोज पाया गया था।

पुष्पी पादपों के लैंगिक प्रजनन के बारे में एक संक्षिप्त अध्ययन पूरा करने के बाद, यह अधिक सार्थक प्रयास होगा कि कुछ पुष्पी पादपों की विशाल उत्पादकीय क्षमता का परिज्ञान निम्नलिखित प्रश्नों को पूछकर प्राप्त किया जाए — एक भ्रूण पुटी (कोश) में कितने अंडे मौजूद होते हैं? एक बीजांड में कितने भ्रूण कोश (पुटी) मौजूद होते हैं? एक

© NCERT not to be republished

अंडाशय में कितने बीजांड मौजूद होते हैं? एक प्ररूपी (विशिष्ट) पुष्प में कितने अंडाशय होते हैं? एक पादप पर कितने पुष्प मौजूद होते हैं? और ऐसे ही प्रश्न...। क्या आप कुछ ऐसे पादपों के बारे में सोच सकते हैं जिनके फलों में बहुत भारी संख्या में बीज मौजूद होते हैं? इस प्रकार की श्रेणी में आर्किड फल आते हैं और प्रत्येक फल में 1000 लघु बीज समाहित होते हैं। इसी प्रकार के मामले कुछ परजीवी प्रजाति के फल जैसे कि ***ओरोबैंकी*** *तथा* ***स्ट्राइगा*** *हैं। क्या आपने फाइकस (अंजीर) का लघु या सूक्ष्म बीज देखा है? एक छोटे से अंजीर (फाइकस) के बीज से कितना विशाल पादप तैयार होता है। प्रत्येक अंजीर का पौधा कितने लाख बीज पैदा करता है? क्या किसी अन्य उदाहरण की कल्पना कर सकते हैं जहाँ इस प्रकार के एक लघु बीज ने वर्षों तक इस तरह का विशाल जैव समूह पैदा किया हो?*

2.5 असंगजनन एवं बहुभ्रूणता

यद्यपि, सामान्य तौर पर बीज निषेचन के परिणाम हैं; कुछेक पुष्पी पादपों जैसे कि *एस्ट्रेर्सिया* तथा घासों ने बिना निषेचन के ही बीज पैदा करने की प्रक्रिया विकसित कर ली है; जिसे **असंगजनन** कहते हैं। *बिना निषेचन के पैदा हुए फल को क्या कहते हैं?* इस प्रकार से, असंगजनन अलिंगीय प्रजनन है जो लैंगिक प्रजनन का अनुहारक है। असंगजननीय बीजों के विकास के सैकड़ों तरीके हैं। कुछ प्रजातियों में द्विगुणित अंडकोशिका का निर्माण बिना अर्धसूत्री विभाजन के होता है, जो बिना निषेचन के ही भ्रूण में विकसित हो जाता है। प्राय: कई अवसरों पर, जैसा कि बहुत सारे नींबू वंश (सिट्रस) तथा आम की किस्मों में भ्रूणकोश (पुटी) के आस पास की कुछ बीजांड कायिक कोशिकाएँ विभाजित होने लगती हैं और भ्रूणकोश में प्रोद्‌बधी (प्रोट्रूड) होती हैं तथा भ्रूण के रूप में विकसित हो जाती हैं। इस प्रकार की प्रजातियों में प्रत्येक बीजांड में अनेक भ्रूण होते हैं। एक बीज में एक से अधिक भ्रूण की उपस्थिति को **बहुभ्रूणता** कहते हैं। *संतरे के कुछ बीजों को लें और उन्हें मरोड़ें तथा प्रत्येक बीज के भिन्न-भिन्न आकार एवं आकृति के तमाम भ्रूणों का अवलोकन करें। प्रत्येक बीज के भ्रूणों की गणना करें। असंगजनन भ्रूणों की आनुवंशिक प्रकृति क्या होगी? क्या उन्हें क्लोन (एकपूर्वजक) कहा जा सकता है?*

बहुत से हमारे खाद्य एवं शाक फसलों की संकर किस्मों को उगाया गया है। संकर किस्मों की खेती ने उत्पादकता को विस्मयकारी ढंग से बढ़ा दिया है। संकर बीजों की एक समस्या यह है कि उन्हें हर साल उगाया (पैदा किया) जाना चाहिए। यदि संकर किस्म का संगृहीत बीज को बुआई करके प्राप्त किया गया है तो उसकी पादप संतति पृथक्कृत होगी और वह संकर बीज की विशिष्टता को यथावत नहीं रख पाएगा। यदि यह संकर (बीज) असंगजनन से तैयार की जाती है तो संकर संतति में कोई पृथक्करण की विशिष्टताएँ नहीं होंगी। इसके बाद किसान प्रतिवर्ष फसल-दर-फसल संकर बीजों का उपयोग जारी रख सकते हैं और उसे प्रतिवर्ष संकर बीजों को खरीदने की जरूरत नहीं पड़ेगी। संकर बीज उद्योग में असंगजन की महत्ता के कारण दुनिया भर में, विभिन्न प्रयोगशालाओं में असंगजनन की आनुंवशिकता को समझने के लिए शोध और संकर किस्मों में असंगजनित जीन्स को स्थानांतरित करने पर अध्ययन चल रहे हैं।

© NCERT not to be republished

सारांश

पुष्प आवृत बीजियों में लैंगिक जनन के आधार हैं। पुष्पों में, पुंकेसरों के पुमंग-संगति नर जनन अंग का प्रतिनिधित्व करते हैं जबकि स्त्रीकेसर के जायांग-संगति मादा जनन अंगों का प्रतिनधित्व करते हैं।

एक प्ररूपी परागकोश द्विपालिक, द्विकोष्ठी तथा चतुष्क बीजाणुधानी होता है। परागकण लघुबीजाणुधानी के अंदर विकसित होते हैं। चार भित्ति पर्तें-अंतस्त्वचा, अंतस्थीसियम, मध्य पर्त (सतह) और टेपीटम लघुबीजाणुधानी को आवृत किए होती हैं। बीजाणुजनऊतक की कोशिकाएँ लघुबीजाणुधानी के केन्द्र में अवस्थित अर्धसूत्री विभाजन से गुजरते हुए लघुबीजाणुओं की रचना करती हैं। प्रत्येक लघुबीजाणु व्यष्टि रूप में परागकण के रूप में विकसित होता है।

परागकण नर युग्मकजनन पीढ़ी (जनन) का प्रतिनिधित्व करते हैं। परागकणों में दो सतही भित्ति होती है जो बाहर बाह्यचोल तथा अंदर की ओर अंतश्चोल कहलाती है। बाह्यचोल स्पोरोलेनिन का बना होता है और जनन छिद्र युक्त होता है। परागकण में अवनमन के समय दो कोशिकाएँ (कायिककोशिका तथा जननकोशिका) या तीन कोशिकाएँ (एक कायिककोशिका तथा दो नर युग्मक) हो सकती हैं।

स्त्रीकेसर में तीन अंग होते हैं — वर्तिकाग्र, वर्तिका तथा अंडाशय। अंडाशय में बीजांड उपस्थित होते हैं। बीजांड में एक डंठल होता है, जिसे कीपिका (फंकल) कहते हैं तथा दो संरक्षात्मक अध्यावरण तथा एक द्वार जिसे बीजांडद्वार कहते हैं, होता है। बीजांडकाय में स्थित केंद्रीय ऊतक है; जहाँ प्रप्रसूतक विभाजित होता है। प्रप्रसूतक कोशिका; गुरूबीजाणु मातृ कोशिका अर्धसूत्री विभाजन से विभाजित होते हुए एक गुरूबीजाणु भ्रूण कोश (पुटी) (एक स्त्री युग्मकोद्‌भिद) की रचना करते हैं। एक परिपक्व भ्रूणकोश 7-कोशकीय एवं 8-न्युकिलिएट होते हैं। बीजांड द्वारी शीर्ष पर अंड उपकरण (एप्रेटस) में दो सहायकोशिकाएँ तथा एक अंड कोशिका समाहित होती है। निभाग छोर पर तीन प्रतिव्यासांत होते हैं। केंद्र में दो ध्रुवीय न्युकली (केंद्रिकी) के साथ एक वृहद् केंद्रीय कोशिका होती है।

परागण एक प्रक्रम है, जिसमें परागकण परागकोश से वर्तिकाग्र तक स्थानांतरित होते हैं। परागण एजेंट (कारक) या तो आजीवीय (हवा एवं पानी) होते हैं या फिर जीवीय (प्राणि वर्ग) होते हैं।

पराग-स्त्रीकेसर संकर्षण के अंतर्गत वे सभी घटनाएँ शामिल होती है जो वर्तिकाग्र पर परागकण के अवनमन (झड़ने) से शुरु होकर भ्रूणकोश की परागनली में (जब पराग सुयोग्य होते हैं) प्रवेश या पराग के संदमन (जब पराग अयोग्य होता है) तक की क्रिया होती है। इसके आगे सुयोग्य परागण, वर्तिकाग्र पर परागकण का अंकुरित होना, और परिणाम स्वरूप पराग नलिका का वर्तिका के माध्यम से वृद्धि करना, बीजांड में प्रवेश और अंत में एक सहाय कोशिका में दो नर युग्मकों का विसर्जन होता है। आवृतबीजी दोहरा निषेचन प्रदर्शित करते हैं क्योंकि प्रत्येक भ्रूणकोश में दो संगलन या संलयन (फ्युजन) मुख्यत: युग्मकसंलयन तथा त्रिसंलयन होते हैं।

© NCERT not to be republished

इन संलयनों (संगलनों) का परिणाम द्विगुणित युग्मनज तथा त्रिगुणित प्राथमिक भ्रूणपोष केंद्रक (प्राथमिक भ्रूणपोष कोशिका) का परिणाम होता है। यह युग्मनज, भ्रूण तथा प्राथमिक भ्रूणपोष कोशिका, भ्रूणपोष ऊतक गठित करते हैं। भ्रूणपोष का निर्माण सदैव भ्रूण के विकास को आगे बढ़ाता है।

विकासशील भ्रूण कई विभिन्न चरणों से गुजरता है, जैसे कि प्राक्भ्रूण, गोलाकार तथा हृदयाकार आकृति चरण और इसके बाद परिपक्वता। परिपक्व द्विबीजपत्री भ्रूण के अंदर दो बीजपत्र तथा प्रांकुरचोल सहित एक भ्रूणीय अक्ष तथा एक बीजपत्राधार होता है। एक बीजपत्री के भ्रूण में एक अकेला बीजपत्र होता है। निषेचन के बाद, अंडाशय फल के रूप में तथा बीजांड बीज के रूप में विकसित होता है।

असंगजनन नामक एक परिघटना कुछ आवृतबीजियों में, विशेष रूप से घास कुल में पाई गई है। यह बिना निषेचन के बीज रचना का परिणाम है। बागवानी एवं कृषि विज्ञान में असंगजनन के बहुत सारे लाभ हैं।

कुछ आवृतबीजी अपने बीज में एक से अधिक भ्रूण उत्पन्न करते हैं। इस परिघटना या दृश्य प्रवंच को बहुभ्रूणता कहा जाता है।

अभ्यास

1. एक आवृतबीजी पुष्प के उन अंगों के नाम बताएँ; जहाँ नर एवं मादा युग्मकोद्भिद का विकास होता है?
2. लघुबीजाणुधानी तथा गुरूबीजाणुधानी के बीच अंतर स्पष्ट करें? इन घटनाओं के दौरान किस प्रकार का कोशिका विभाजन संपन्न होता है? इन दोनों घटनाओं के अंत में बनने वाली संरचनाओं के नाम बताएँ?
3. निम्नलिखित शब्दावलियों को सही विकासीय क्रम में व्यवस्थित करें—

   परागकण, बीजाणुजन ऊतक, लघुबीजाणुचतुष्क, परागमातृ कोशिका, नर युग्मक
4. एक प्ररूपी आवृतबीजी बीजांड के भागों का विवरण दिखाते हुए एक स्पष्ट एवं साफ सुथरा नामांकित चित्र बनाएँ।
5. आप मादा युग्मकोद्भिद् के एकबीजाणुज विकास से क्या समझते हैं?
6. एक स्पष्ट एवं साफ सुथरे चित्र के द्वारा परिपक्व मादा युग्मकोद्भिद के 7-कोशीय, 8-न्युकिलयेट (केंद्रक) प्रकृति की व्याख्या करें।
7. उन्मील परागणी पुष्पों से क्या तात्पर्य है? क्या अनुन्मीलिय पुष्पों में परपरागण संपन्न होता है? अपने उत्तर की सतर्क व्याख्या करें?
8. पुष्पों द्वारा स्व-परागण रोकने के लिए विकसित की गई दो कार्यनीति का विवरण दें।

© NCERT not to be republished

9. स्व अयोग्यता क्या है? स्व-अयोग्यता वाली प्रजातियों में स्व-परागण प्रक्रिया बीज की रचना तक क्यों नहीं पहुँच पाती है?
10. बैगिंग (बोरावस्त्रावरण) या थैली लगाना तकनीक क्या है? पादप जनन कार्यक्रम में यह कैसे उपयोगी है?
11. त्रि-संलयन क्या है? यह कहाँ और कैसे संपन्न होता है? त्रि-संलयन में सम्मिलित न्युक्लीआई का नाम बताएँ।
12. एक निषेचित बीजांड में; युग्मनज प्रसुप्ति के बारे में आप क्या सोचते हैं?
13. इनमें विभेद करें—
    (क) बीजपत्राधार और बीजपत्रोपरिक
    (ख) प्राँकुर चोल तथा मूलाँकुर चोल
    (ग) अध्यावरण तथा बीजचोल
    (घ) परिभ्रूण पोष एवं फल भित्ति
14. एक सेव को आभासी फल क्यों कहते हैं? पुष्प का कौन सा भाग फल की रचना करता है।
15. विपुंसन से क्या तात्पर्य है? एक पादप प्रजनक कब और क्यों इस तकनीक का प्रयोग करता है?
16. यदि कोई व्यक्ति वृद्धिकारकों का प्रयोग करते हुए अनिषेकजनन को प्रेरित करता है तो आप प्रेरित अनिषेक जनन के लिए कौन सा फल चुनते और क्यों?
17. परागकण भित्ति रचना में टेपीटम की भूमिका की व्याख्या करें।
18. असंगजनन क्या है और इसका क्या महत्त्व है?

© NCERT not to be republished

अध्याय 3

मानव जनन

3.1 पुरुष जनन तंत्र

3.2 स्त्री जनन तंत्र

3.3 युग्मकजनन

3.4 आर्तव चक्र

3.5 निषेचन एवं अंतर्रोपण

3.6 सगर्भता एवं भ्रूण परिवर्धन

3.7 प्रसव एवं दुग्धस्रवण

जैसाकि आप जानते हैं मानव लैंगिक रूप से जनन करने वाला और सजीवप्रजक या जरायुज प्राणी है। मानवों में जनन घटना के अंतर्गत युग्मकों की रचना (युग्मकजनन) अर्थात् पुरुष में शुक्राणुओं तथा स्त्री में अंडाणु का बनना, स्त्री जनन पथ में शुक्राणुओं का स्थानांतरण (वीर्यसेचन) और पुरुष तथा स्त्री के युग्मकों का संलयन (निषेचन) जिसके कारण युग्मनज (जाइगोट) का निर्माण होता है, शामिल हैं। इसके बाद कोरकपुटी (ब्लास्टोसिस्ट) की रचना तथा परिवर्धन और इसका गर्भाशय की दीवार से चिपक जाना (अंतर्रोपण), भ्रूणीय परिवर्धन (गर्भावधि) और शिशु के जन्म (प्रसव) की क्रियाएँ घटित होती हैं। आपने पढ़ा है कि ये जनन घटनाएँ यौवनारंभ के पश्चात् सम्पन्न होती हैं। पुरुष और स्त्री के बीच महत्त्वपूर्ण रूप से जनन घटनाएँ होती हैं; उदाहरण के लिए एक वृद्ध पुरुष में भी शुक्राणु बनना जारी रहता है, लेकिन स्त्रियों में अंडाणु की रचना 50 वर्ष की आयु के लगभग समाप्त हो जाती है। आइये, हम मानव में स्त्री और पुरुष के जनन तंत्रों की चर्चा करते हैं।

3.1 पुरुष जनन तंत्र

पुरुष जनन तंत्र शरीर के श्रोणि क्षेत्र (पेल्विस रीजन) में अवस्थित होता है (चित्र 3.1 अ)। इसके अंतर्गत एक जोड़ा **वृषण, सहायक**

© NCERT not to be republished

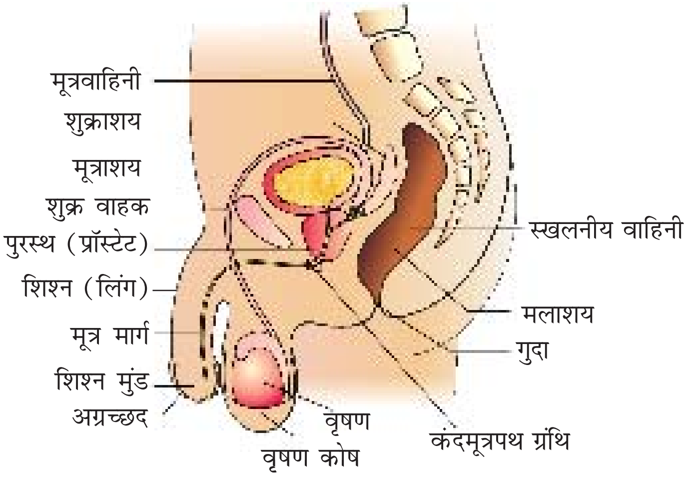

चित्र 3.1 (अ) पुरुष जनन तंत्र को दर्शाने वाला श्रोणि क्षेत्र का आरेखीय काट

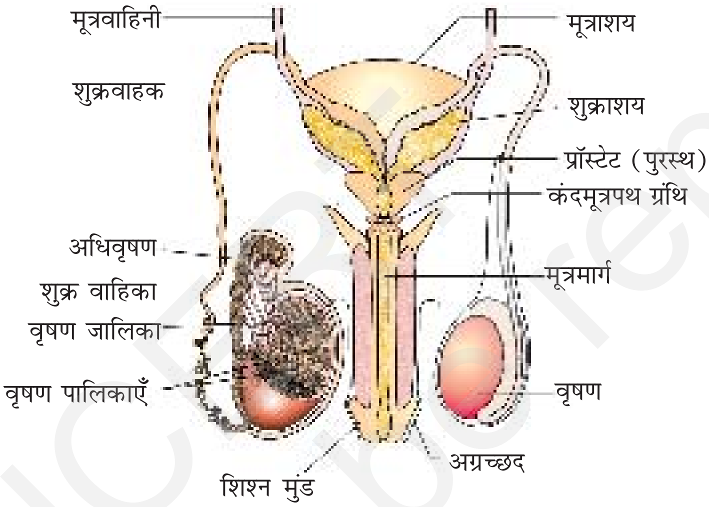

चित्र 3.1 (ब) पुरुष जनन तंत्र का आरेखीय दृश्य (आंतरिक संरचनाओं को दर्शाने के लिए वृषण का अनुदैर्ध्य काट

नलिकाओं के साथ-साथ एक जोड़ी **ग्रंथियाँ** तथा **बाह्य जननेंद्रिय** शामिल होते हैं।

शरीर में वृषण उदर गुहा के बाहर एक **थैली/धानी** में स्थित होते हैं जिसे **वृषणकोष** (स्क्रोटम) कहते हैं। वृषणकोष वृषणों के तापमान को (शरीर के तापमान से 2-2.5 डिग्री सेंटीग्रेड) कम रखने में सहायक होता है जो शुक्राणुजनन के लिए आवश्यक है। वयस्कों में प्रत्येक वृषण अंडाकार होता है, जिसकी लम्बाई लगभग 4 से 5 सेमी. और चौड़ाई लगभग 2 से 3 सेमी. होती है। वृषण सघन आवरण से ढका रहता है। प्रत्येक वृषण में लगभग 250 कक्ष होते हैं जिन्हें **वृषण पालिका** (टेस्टिकुलर लोब्युल्स) कहते हैं (चित्र 3.1 ब)।

प्रत्येक वृषण पालिका के अंदर एक से लेकर तीन अति कुंडलित **शुक्रजनक नलिकाएँ** (सेमिनिफेरस ट्यूबुल्स) होती हैं जिनमें शुक्राणु पैदा किए जाते हैं। प्रत्येक शुक्रजनक नलिका का भीतरी भाग दो प्रकार की कोशिकाओं से स्तरित होती हैं, जिन्हें **नर जर्म कोशिकाएँ** (शुक्राणुजन / स्पर्मेटोगोनिया) और **सर्टोली कोशिकाएँ** कहते हैं (चित्र 3.2)। नर जर्म कोशिकाएँ अर्धसूत्री विभाजन (या अर्धसूत्रण) के फलस्वरूप शुक्राणुओं का निर्माण करती हैं जबकि सर्टोली कोशिकाएँ जर्म कोशिकाओं को पोषण प्रदान करती हैं। शुक्रजनक नलिकाओं के बाहरी क्षेत्र को **अंतराली अवकाश** (इंटरस्टीशियल स्पेस) कहा जाता है। इसमें छोटी-छोटी रुधिर वाहिकाएँ और **अंतराली कोशिकाएँ** (इंटरस्टीशियल सेल्स) या **लीडिग कोशिकाएँ** (इंटरस्टीशियल सेल्स) होती हैं (चित्र 3.2)। लीडिग कोशिकाएँ **पुंजन** (एंड्रोजन) नामक वृषण हार्मोन संश्लेषित व स्रवित करती हैं। यहाँ पर कुछ अन्य कोशिकाएँ भी होती हैं जो प्रतिरक्षात्मक कार्य करने में सक्षम होती हैं।

पुरुष लिंग सहायक नलिकाओं के अंतर्गत **वृषण जालिकाएँ** (रेटे टेस्टिस), **शुक्र वाहिकाएँ** (वास इफेरेंशिया), **अधिवृषण** (ऐपिडिडिमिस) तथा **शुक्रवाहक** (वास डेफेरेंस)

© NCERT not to be republished

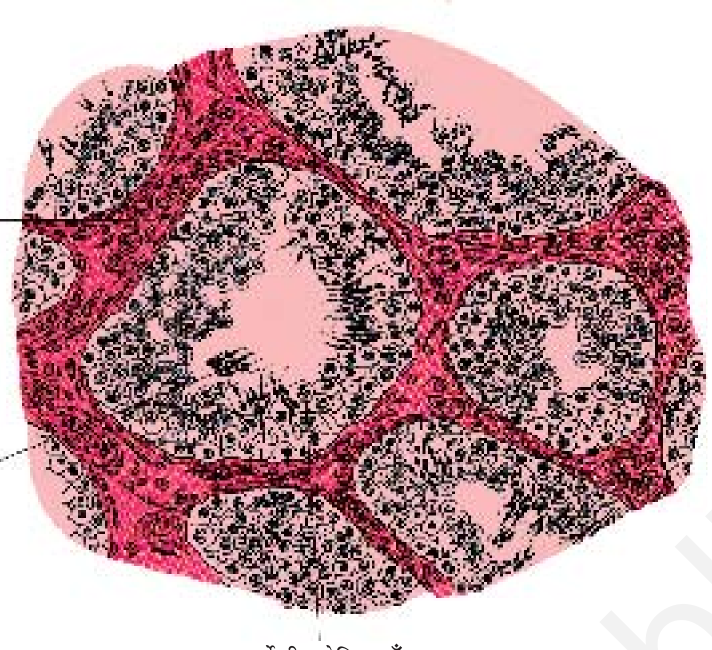

चित्र 3.2 शुक्रजनक नलिकाओं के आरेखीय काट का एक दृश्य

होते हैं, (चित्र 3.1 ब)। वृषण की शुक्रजनक नलिकाएँ वृषण नलिकाओं के माध्यम से शुक्रवाहिकाओं में खुलती हैं। यह शुक्रवाहिका वृषण से चलकर अधिवृषण में खुलती हैं, जो प्रत्येक वृषण के पश्च सतह पर स्थित होती है। यह अधिवृषण शुक्रवाहक की ओर बढ़ते हुए उदर की ओर ऊपर जाती हैं और मूत्राशय के ऊपर की ओर लूप बनाती है। इसमें शुक्राशय से एक वाहिनी आती है और मूत्र मार्ग में स्खलनीय वाहिनी के रूप में खुलती है (चित्र 3.1 अ)। ये नलिकाएँ वृषण से प्राप्त शुक्राणुओं का भंडारण तथा मूत्र मार्ग से इनका बाहर स्थानांतरण करती हैं। मूत्रमार्ग मूत्राशय से निकल कर पुरुष के शिश्न (पेनिस) के माध्यम से गुजरता हुआ बाहर की ओर एक छिद्र के रूप में खुलता है जिसे **मूत्राशय मुख** (यूरेथ्रल मीऐटस) कहते हैं।

शिश्न, पुरुष की बाहरी जननेन्द्रिय है (चित्र 3.1 अ, ब)। यह विशेष प्रकार के ऊतकों का बना होता है जो शिश्न के उद्घर्षण या उठान (इरेक्शन) में सहायता प्रदान कर वीर्यसेचन (इंसेमिनेशन) को सुगम बनाता है। शिश्न का अंतिम वर्धित भाग शिश्न मुंड (ग्लांस पेनिस) कहलाता है जो एक ढीली त्वचा से ढका होता है, जिसे **अग्रच्छद** (फोरस्किन) कहते हैं।

पुरुष लिंग की सहायक ग्रंथियों (चित्र 3.1 अ, ब) के अंतर्गत एक जोड़ा **शुक्राशय**, एक **पुरस्थ** (प्रोस्टेट) ग्रंथि तथा एक जोड़ा **बल्बोयूरेथ्रल ग्रंथियाँ** शामिल होती हैं। इन ग्रंथियों का स्राव शुक्रीय (सेमिनल) प्लाज्मा का निर्माण करता है जो फ्रुक्टोज (फल शर्करा), कैल्सियम तथा कुछ प्रकिण्व (एंजाइम्स) से भरपूर होता है। बल्वोयूरेथ्रल ग्रंथियों का स्राव मैथुन के दौरान शिश्न में स्नेहन (लूब्रिकेशन) प्रदान करने में भी सहायक होता है।

© NCERT not to be republished

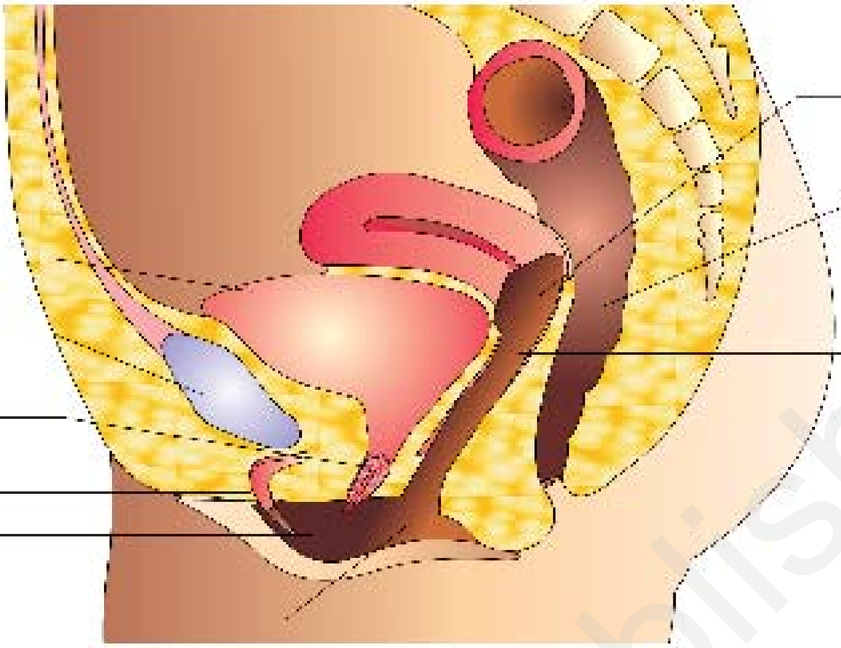

चित्र 3.3 (अ) स्त्री श्रोणि प्रदेश का जनन तंत्र दर्शाने वाला आरेखीय काट

3.2 स्त्री जनन तंत्र

स्त्री जनन तंत्र के अन्तर्गत एक जोड़ा **अंडाशय** (ओवरी) के साथ-साथ एक जोड़ा **अंडवाहिनी** (ओविडक्ट), एक **गर्भाशय** (यूटेरस), एक **गर्भाशय ग्रीवा** (सर्विक्स) तथा एक **योनि** (वेजाइना) और **बाह्य जननेन्द्रिय** (एक्सटर्नल जेनिटेलिया) (चित्र 3.3 अ) शामिल होते हैं जो श्रोणि क्षेत्र में होते हैं। जनन तंत्र के ये सभी अंग एक जोड़ा **स्तन ग्रंथियों** (मैमरी ग्लैंड्स) के साथ संरचनात्मक तथा क्रियात्मक रूप में संयोजित होते हैं;

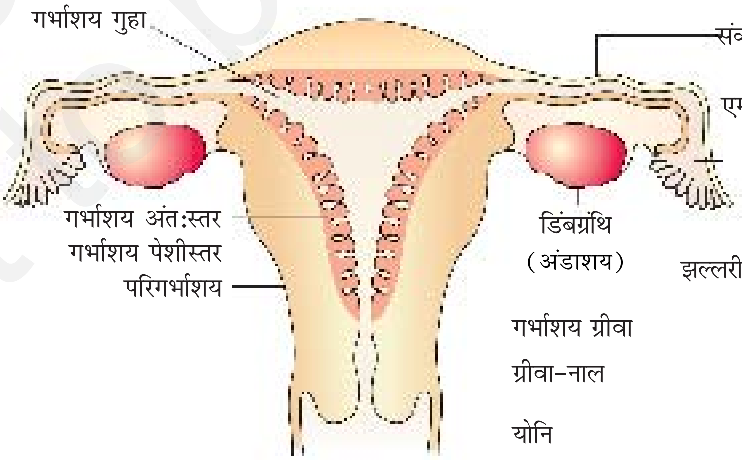

चित्र 3.3 (ब) स्त्री जनन तंत्र का आरेखीय-काट दृश्य

© NCERT not to be republished

जिसके फलस्वरूप अंडोत्सर्ग, (ओव्यूलेशन), निषेचन (फर्टिलाइजेशन), सगर्भता (प्रेगनेन्सी), शिशुजन्म तथा शिशु की देखभाल की प्रक्रियाओं में सहायता मिलती है।

अंडाशय स्त्री के प्राथमिक लैंगिक अंग हैं जो स्त्री युग्मक (अंडाणु/ओवम) और कई स्टेरॉयड हॉर्मोन (अंडाशयी हार्मोन) उत्पन्न करते हैं। उदर के निचले भाग के दोनों ओर एक-एक अंडाशय स्थित होता है (चित्र 3.3 ब)। प्रत्येक अंडाशय की लम्बाई 2 से 4 से.मी. के लगभग होती है और यह श्रोणि भित्ति तथा गर्भाशय से स्नायुओं (लिगामेंट्स) द्वारा जुड़ा होता है। प्रत्येक अंडाशय एक पतली उपकला (एपिथिलियम) से ढका होता है जो कि अंडाशय पीठिका (ओवेरियन स्ट्रोमा) से जुड़ा होता है। यह पीठिका दो क्षेत्रों-एक परिधीय वल्कुट (पेरिफेरल कॉर्टेक्स) और एक आंतरिक मध्यांश (मेडुला) में विभक्त होता है।

अंडवाहिनियाँ (**डिम्बवाहिनी नलिका/फेलोपियन नलिका**), गर्भाशय तथा योनि मिलकर स्त्री सहायक नलिकाएँ बनाती हैं। प्रत्येक डिम्बवाहिनी नली लगभग 10-12 से.मी. लम्बी होती है, जो प्रत्येक अंडाशय की परिधि से चलकर गर्भाशय तक जाती है (चित्र 3.3 ब)। अंडाशय के ठीक पास डिंबवाहिनी का हिस्सा कीप के आकार का होता है, जिसे **कीपक** (इंफन्डीबुलम) कहा जाता है। इस कीपक के किनारे अंगुलि सदृश्य प्रक्षेप (प्रोजेक्शन) होते हैं, जिसे झालर (फिंब्री) कहते हैं। अंडोत्सर्ग के दौरान अंडाशय से उत्सर्जित अंडाणु को संग्रह करने में ये झालर सहायक होते हैं। कीपक आगे चलकर अंडवाहिनी के एक चौड़े भाग में खुलता है, जिसे **तुंबिका** (एंपुला) कहते हैं। अंडवाहिनी का अंतिम भाग **संकीर्ण पथ** (इस्थमस) में एक संकरी अवकाशिका (ल्यूमेन) होती है, जो गर्भाशय को जोड़ती है।

गर्भाशय केवल एक होता है और इसे बच्चादानी (वुम्ब) भी कहते हैं। गर्भाशय का आकार उल्टी रखी गई नाशपाती जैसा होता है। यह श्रोणि भित्ति से स्नायुओं द्वारा जुड़ा होता है। गर्भाशय एक पतली ग्रीवा द्वारा योनि में खुलता है। ग्रीवा की गुहा को **ग्रीवा नाल** (सर्वाइकल कैनाल) कहते हैं (चित्र 3.3 ब), जो योनि के साथ मिलकर जन्म-नाल (बर्थ कैनाल) की रचना करती है। गर्भाशय की भित्ति, ऊतकों की तीन परत वाली होती है। बाहरी पतली झिल्लीमय स्तर को **परिगर्भाशय** (पेरिमैट्रियम), मध्य मोटी चिकनी पेशीय स्तर को **गर्भाशय पेशी स्तर** (मायोमैट्रियम) और आंतरिक ग्रंथिल स्तर को **गर्भाशय अंतःस्तर** (एंडोमैट्रियम) कहते हैं, जो गर्भाशय गुहा को स्तरित करती हैं। आर्तव चक्र (मेन्सट्रुअल साइकिल) के दौरान गर्भाशय के अंतः स्तर में चक्रीय परिवर्तन होते हैं, जबकि गर्भाशय पेशीस्तर में प्रसव के समय काफी तेज संकुचन होते हैं।

स्त्री के बाह्य जननेंद्रिय के अन्तर्गत जघन शैल (मौंस प्यूबिस), वृहद भगोष्ठ (लेबिया मैजोरा), लघु भगोष्ठ (लेबिया माइनोरा), योनिच्छद (हाइमेन) और भगशेफ (क्लाइटोरिस) आदि होते हैं (चित्र 3.3 अ)। **जघन शैल** वसामय ऊतकों से बनी एक गद्दी सी होती है जो त्वचा और जघन-बालों से ढँकी होती है। **वृहद भगोष्ठ** ऊतकों का माँसल वलन (फोल्ड) है, जो जघन शैल से नीचे तक फैले होते हैं और योनिद्वार को घेरे रहते हैं। **लघु भगोष्ठ** ऊतकों का एक जोड़ा वलन होता है और यह वृहद भगोष्ठ के नीचे स्थित होता है। योनि का द्वार प्रायः एक पतली झिल्ली, जिसे **योनिच्छद**

© NCERT not to be republished

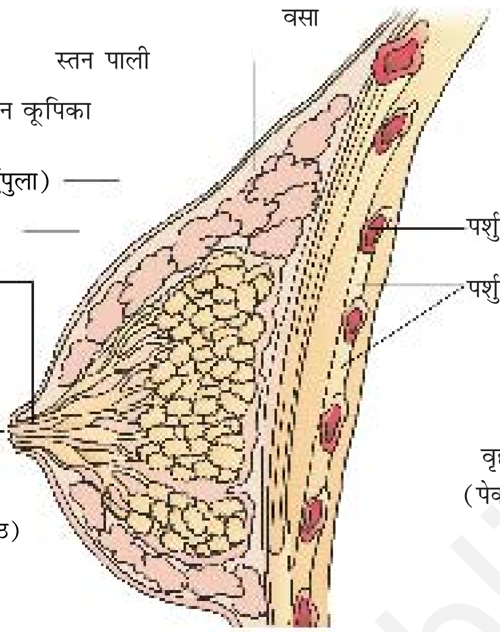

चित्र 3.4 स्तन ग्रंथि का आरेखीय-काट दृश्य

कहते हैं, से आंशिक रूप से ढका होता है। **भगशेफ** एक छोटी सी अंगुलि जैसी संरचना होती है जो मूत्र द्वार के ऊपर दो वृहद भगोष्ठ के ऊपरी मिलन बिन्दु के पास स्थित होती है। योनिच्छद प्रायः पहले मैथुन (संभोग) के दौरान फट जाता है। *हालाँकि यह आवरण कभी-कभी तेज धक्के या अचानक गिरने से भी फट सकता है। इसके अलावा योनि टैम्पॉन को घुसेड़ने या फिर घोड़े पर चढ़ने या साइकिल चलाने, आदि खेल कूद की सक्रिय भागीदारी से भी फट सकता है। कुछ औरतों का योनिच्छद संभोग के बाद भी बना रहता है। इसलिए योनिच्छद के होने अथवा न होने की बात को किसी स्त्री के कौमार्य (वर्जिनिटी) या यौन अनुभवों का वास्तविक सूचक नहीं माना जाना चाहिए।*

कार्यशील स्तन ग्रंथि सभी मादा स्तनधारियों का अभिलक्षण है। स्तन ग्रंथियाँ (स्तन) युग्म संरचना हैं जिनमें ग्रंथिल ऊतक और विभिन्न मात्रा में वसा होते हैं। प्रत्येक स्तन का ग्रंथिल ऊतक 15-20 **स्तन पालियों** (मैमरी लोब्स) में विभक्त होता है। इसमें कोशिकाओं के गुच्छ होते हैं जिन्हें कूपिका कहते हैं (चित्र 3.4)। कूपिकाओं की कोशिकाओं से दुग्ध स्रवित होता है और जो कूपिकाओं की गुहाओं (अवकाशिकाओं) में एकत्र होता है। कूपिकाएँ स्तन नलिकाओं में खुलती हैं। प्रत्येक पालि की नलिकाएँ मिलकर **स्तनवाहिनी** (मैमरी डक्ट्स) का निर्माण करती हैं। कई स्तन वाहिनियाँ मिलकर एक वृहद स्तन तुंबिका बनाती है जो **दुग्ध वाहिनी** (लैक्टिफेरस डक्ट) से जुड़ी होती हैं जिससे की दूध स्तन से बाहर निकलता है।

3.3 युग्मकजनन

प्राथमिक लैंगिक अंग — पुरुषों में वृषण और स्त्रियों में अंडाशय युग्मकजनन (गैमीटोजेनेसिस) विधि द्वारा क्रमशः नर युग्मक यानी शुक्राणु और मादा युग्मक यानी अंडाणु उत्पन्न करते

© NCERT not to be republished

हैं। वृषण में, अपरिपक्व नर जर्म कोशिकाएँ (शुक्राणुजन/स्पर्मेटोगोनिया-बहुवचन; एकवचन-स्पर्मेटोगोनियम) **शुक्रजनन** (स्पर्मेटोजेनेसिस) द्वारा शुक्राणु उत्पन्न करती हैं जो कि किशोरावस्था के समय शुरू होती है। शुक्रजनक नलिकाओं (सेमिनिफेरस ट्यूब्यूल्स) की भीतरी भित्ति में उपस्थित **शुक्राणुजन** समसूत्री विभाजन (माइटोटिक डिविजन) द्वारा संख्या में वृद्धि करते हैं। प्रत्येक शुक्राणुजन द्विगुणित होता है और उसमें 46 गुणसूत्र (क्रोमोसोम) होते हैं। कुछ शुक्राणुजनों में समय-समय पर अर्धसूत्री विभाजन या अर्धसूत्रण (मिओटिक डिविजन) होता है जिनको **प्राथमिक शुक्राणु कोशिकाएँ** (प्राइमरी स्पर्मेटोसाइट्स) कहते हैं। एक प्राथमिक शुक्राणु कोशिका प्रथम अर्धसूत्री विभाजन (न्यूनकारी विभाजन) को पूरा करते हुए दो समान अगुणित कोशिकाओं की रचना करते हैं, जिन्हें **द्वितीयक शुक्राणु कोशिकाएँ** (सेकेंडरी स्पर्मेटोसाइट्स) कहते हैं। इस प्रकार उत्पन्न प्रत्येक कोशिका में 23 गुणसूत्र होते हैं। द्वितीयक शुक्राणु कोशिकाएँ, दूसरे अर्धसूत्री विभाजन से गुजरते हुए चार बराबर अगुणित **शुक्राणुप्रसू** (स्पर्मेटिड्स) पैदा करते हैं (चित्र 3.5)। *शुक्राणुप्रसुओं में गुणसूत्रों की संख्या कितनी होनी चाहिए?* शुक्राणुप्रसू रूपांतरित होकर शुक्राणु (स्पर्मेटोजोआ/स्पर्म) बनाते हैं और इस प्रक्रिया को **शुक्राणुजनन** (स्पर्मिओजेनेसिस) कहा जाता है। शुक्राणुजनन के पश्चात् शुक्राणु शीर्ष सर्टोली कोशिकाओं में अंत:स्थापित (इंबेडेड) हो जाता है और अंत में जिस प्रक्रिया द्वारा शुक्राणु, शुक्रजनक नलिकाओं से मोचित (रिलीज) होते हैं, उस प्रक्रिया को (**वीर्यसेचन**) स्पर्मिएशन कहते हैं।

शुक्रजनन प्रक्रिया किशोरावस्था / यौवनारंभ से होने लगती है क्योंकि इस दौरान गोनैडोट्रॉपिन रिलीजिंग हार्मोन (जीएनआरएच) के स्रवण में काफी वृद्धि हो जाती है। आपको याद होगा कि यह एक **अधश्चेतक** (हाइपोथैलमिक) हॉर्मोन है। गोनैडोट्रॉपिन रिलीजिंग हार्मोन के स्तर में वृद्धि के कारण यह अग्र पीयूष ग्रंथि (एंटिरियर पिट्यूटरी ग्लैंड) पर कार्य करता है तथा दो गोनैडोट्रॉपिन हॉर्मोन-**पीत पिंडकर** (ल्यूटिनाइजिंग हार्मोन/एल एच) और **पुटकोद्दीपक हॉर्मोन** (फॉलिकल स्टिमुलेटिंग हॉर्मोन / एफ एस एच) के स्रवण को उद्दीपित करता है। एल एच लीडिग कोशिकाओं पर कार्य करता है और पुंजनों (एंड्रोजेन्स) के संश्लेषण और स्रवण को उद्दीपित करता है। इसके बदले में पुंजन शुक्राणुजनन की प्रक्रिया को उद्दीपित करता है। एफ एस एच सर्टोली कोशिकाओं पर कार्य करता है और कुछ घटकों के स्रवण को उद्दीपित करता है, जो शुक्राणुजनन की प्रक्रिया में सहायता करते हैं।

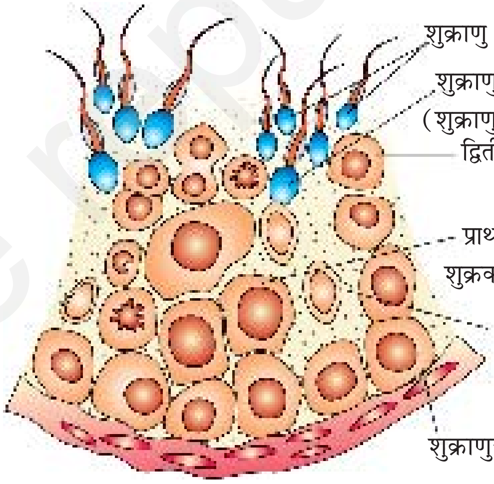

चित्र 3.5 शुक्रजनक नलिकाओं (वर्धित) के आरेखीय काट का एक दृश्य

आइए! हम एक शुक्राणु की संरचना की जाँच करें। यह एक सूक्ष्मदर्शीय संरचना है जो एक **शीर्ष** (हेड), **ग्रीवा** (नेक), एक **मध्य खंड** (मिड्ल पीस) और एक **पूँछ**

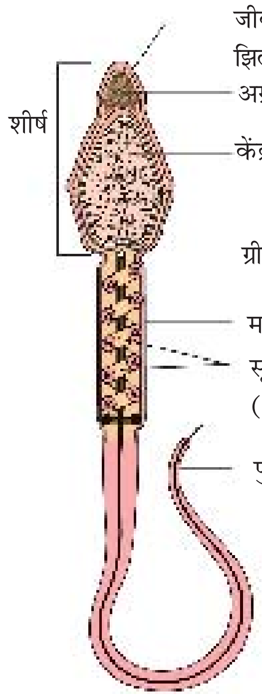

चित्र 3.6 शुक्राणु की संरचना

(टेल) की बनी होती है (चित्र 3.6)। एक प्लाज्मा झिल्ली शुक्राणु की पूरी काया (बॉडी) को आवृत्त किए रहती है। शुक्राणु के शीर्ष में एक दीर्घीकृत (इलांगेटेड) अगुणित केंद्रक (हेप्लॉयड न्यूक्लियस) होता है तथा इसका अग्रभाग एक टोपीनुमा संरचना से आवृत होता है जिसे **अग्रपिंडक** (एक्रोसोम) कहते हैं। यह अग्रपिंडक उन प्रकिण्वों (एंजाइम्स) से भरा होता है, जो अंडाणु के निषेचन में मदद करते हैं। शुक्राणु के मध्य खंड में असंख्य सूत्रकणिकाएँ (माइटोकॉन्ड्रिया) होती हैं, जो पूँछ को गति प्रदान करने के लिए ऊर्जा उत्पन्न करती हैं जिसके कारण शुक्राणु को निषेचन करने के लिए आवश्यक गतिशीलता प्रदान करना सुगम बनाता है। मैथुन क्रिया के दौरान पुरुष 20 से 30 करोड़ शुक्राणु स्खलित करता है सामान्य उर्वरता (अबंधता) से लगभग 60 प्रतिशत शुक्राणु निश्चित रूप से सामान्य आकार और आकृति वाले होने चाहिए। इनमें से कम से कम 40 प्रतिशत आवश्यक रूप से सामान्य जनन क्षमता के लिए तीव्र गतिशीलता प्रदर्शित करते हैं।

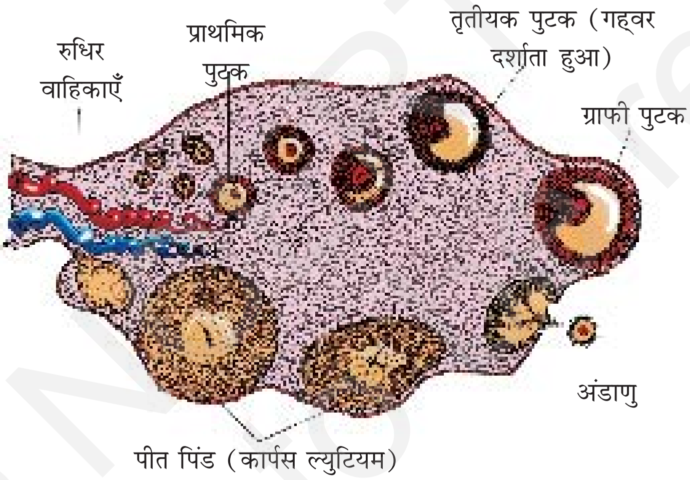

चित्र 3.7 अंडाशय के आरेखीय काट का एक दृश्य

शुक्रजनक नलिकाओं से मोचित (रिलीज्ड) शुक्राणु सहायक नलिकाओं द्वारा वाहित (ट्रांसपोर्टेड) होते हैं। शुक्राणुओं की परिपक्वता एवं गतिशीलता के लिए अधिवृषण, शुक्रवाहक, शुक्राशय तथा पुरस्थ ग्रंथियों का स्रवण भी आवश्यक है। शुक्राणुओं के साथ-साथ शुक्राणु प्लाज्मा मिलकर **वीर्य** (सीमेन) बनाते हैं। पुरुष की सहायक नलिकाओं और ग्रंथियों के कार्य को वृषण हार्मोन (एंड्रोजेंस) बनाये रखता है।

एक परिपक्व मादा युग्मक के निर्माण की प्रक्रिया को **अंडजनन** (ऊजेनेसिस) कहते हैं, जोकि पुरुष के शुक्राणुजनन से स्पष्ट रूप से भिन्न है। अंडजनन की शुरूआत भ्रूणीय परिवर्धन चरण के दौरान होती है जब कई मिलियन मातृ युग्मक कोशिकाएँ यानि **अंडजननी** (ऊगोनिया) प्रत्येक भ्रूणीय अंडाशय के अंदर विनिर्मित होती हैं। जन्म के बाद अंडजननी का निर्माण और उसकी वृद्धि नहीं होती है। इन कोशिकाओं में विभाजन शुरू हो जाता है और अर्धसूत्री विभाजन के पूर्वावस्था-1 (प्रोफेज-1) में प्रविष्ट होती हैं और इस अवस्था में स्थायी तौर पर अवरूद्ध रहती हैं। इन्हें **प्राथमिक अंडक** (प्राइमरी ऊसाइटस) कहते हैं। उसके बाद प्रत्येक प्राथमिक अंडक कणिकामय कोशिकाओं (ग्रेनुलोसा सेलस्) की परत से आवृत्त होती है और इन्हें **प्राथमिक पुटक** (प्राइमरी फॉलिकिल) कहा जाता है (चित्र 3.7)। एक प्रक्रिया द्वारा इन पुटकों की भारी

© NCERT not to be republished

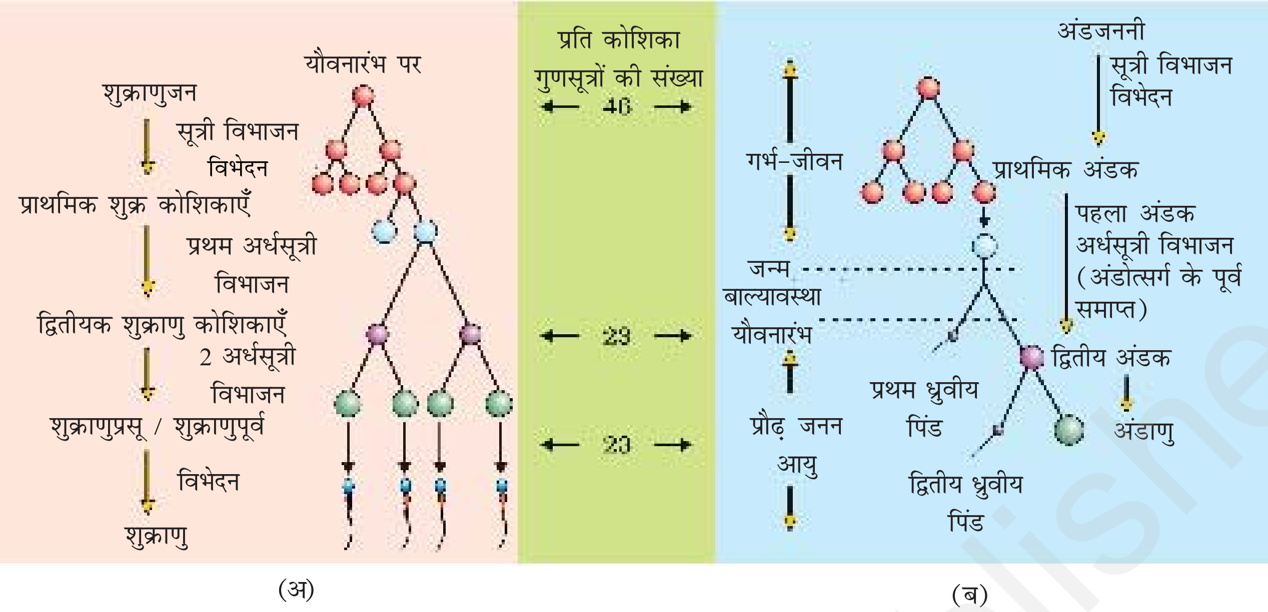

चित्र 3.8 शुक्रजनन एवं अंडजनन का आरेखीय निरूपण

मात्रा में जन्म से यौवनारम्भ तक ह्रास होता रहता है; इसलिए यौवनारम्भ के समय प्रत्येक अंडाशय में केवल 60 हजार से 80 हजार प्राथमिक पुटक ही शेष बचते हैं। यह प्राथमिक पुटक कणिकामय कोशिकाओं के और अधिक परतों से आवृत्त हो जाते हैं तथा एक और नए प्रावरक (थिकल) स्तर से घिर जाते हैं जिसे द्वितीयक पुटक कहते हैं।

यह द्वितीयक पुटक जल्द ही एक तृतीय पुटक में परिवर्तित हो जाता है। जिसकी तरल से भरी गुहा को **गह्वर** (एंट्रम) कहा जाता है, यह इसका एक विशिष्ट लक्षण है। **प्रावरक स्तर** (थीका लेयर) अंतर प्रावरक (थीका इंटरना) और बाह्य प्रावरक (थीका एक्सटरना) में गठित होता है। इस समय आपका ध्यान इस ओर खींचना महत्त्वपूर्ण होगा कि तृतीय पुटक के भीतर प्राथमिक अंडक के आकार में वृद्धि होती है और इसका पहला अर्धसूत्री विभाजन पूरा होता है। यह एक असमान विभाजन है, जिसके फलस्वरूप वृहत अगुणित **द्वितीयक अंडक** तथा एक लघु प्रथम ध्रुवीय पिंड की रचना होती है (चित्र 3.8 ब)। द्वितीयक अंडक, प्राथमिक अंडक के पोषक से भरपूर कोशिका प्रद्रव्य (साइटोप्लाज्म) की मात्रा को संचित रखती है। *क्या आप इसके किसी लाभ के बारे में सोच सकते हैं? क्या पहले अर्धसूत्री विभाजन से उत्पन्न प्रथम ध्रुवीय पिंड में और अधिक विभाजन होता है या इसमें ह्रास हो जाता है?* वर्तमान में हम इसके बारे में सुनिश्चित रूप से बहुत कुछ नहीं कह सकते हैं। तृतीय पुटक आगे चलकर परिपक्व पुटक या **ग्राफी पुटक** (ग्रैफियन फॉलिकिल) में परिवर्तित हो जाता है (चित्र 3.7) द्वितीयक अंडक अपने चारों ओर एक नई झिल्ली का निर्माण करता है जिसे पारदर्शी **अंडावरण** (जोना पेल्यूसिडा) कहते हैं। अब ग्राफी पुटक फटकर द्वितीयक अंडक (अंडाणु) को अंडाशय से मोचित करता है, इस प्रक्रिया को **अंडोत्सर्ग** (ओवुलेशन) कहा जाता है। *क्या आप शुक्रजनन और अंडजनन के बीच प्रमुख अंतरों को पहचान सकते हैं?* यहाँ पर शुक्रजनन और अंडजनन के बारे में नीचे एक आरेखीय प्रस्तुति दी गई है (चित्र 3.8 अ, ब)।

© NCERT not to be republished

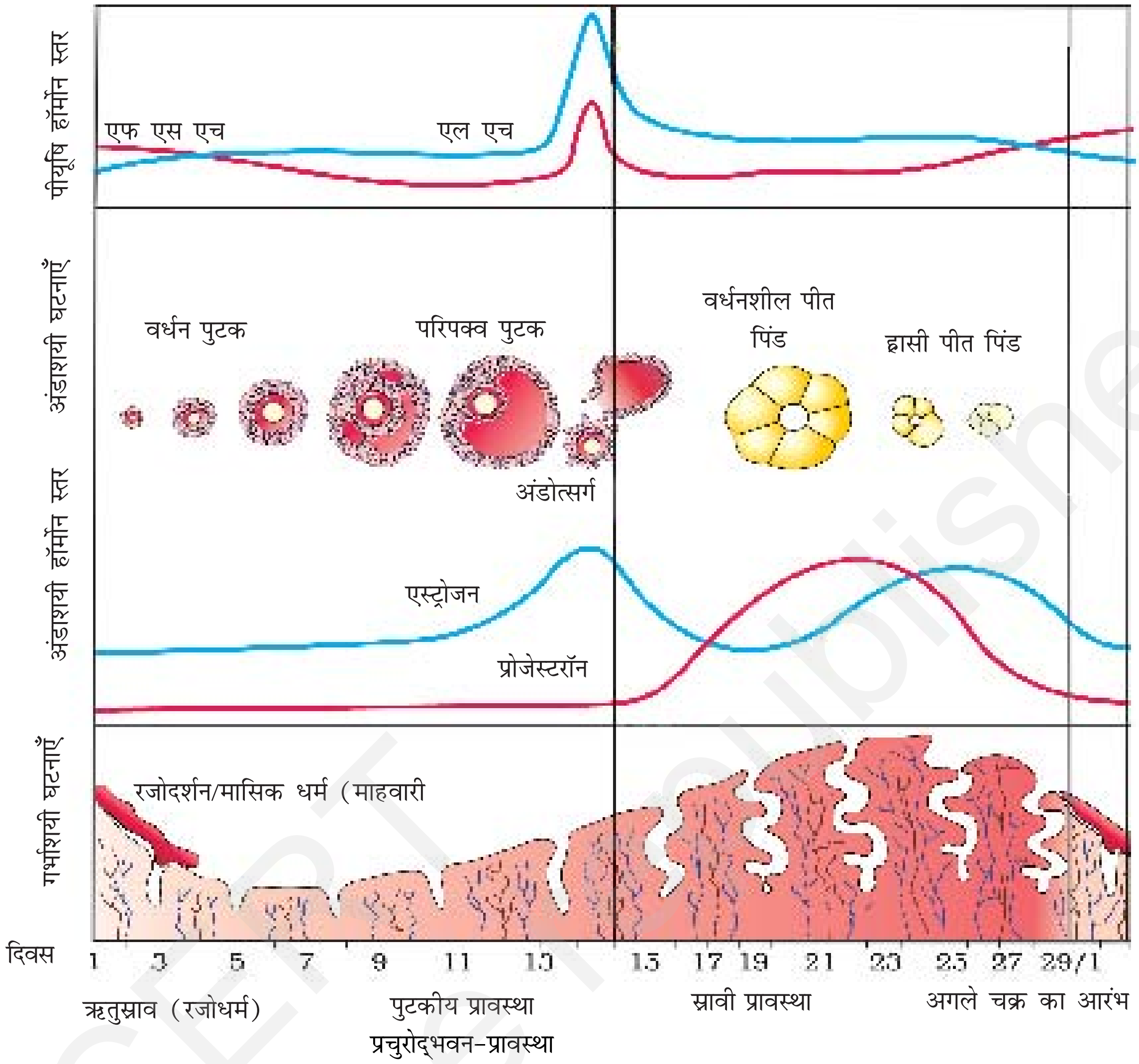

चित्र 3.9 आर्तव चक्र के दौरान विभिन्न घटनाओं का आरेखीय निरूपण

3.4 आर्तव चक्र

मादा प्राइमेटों (यानी बंदर, कपि एवं मनुष्य आदि) में होने वाले जनन चक्र को आर्तव चक्र (मेन्सट्रुअल साइकिल) या सामान्य जनों की भाषा में मासिक धर्म या माहवारी कहते हैं। प्रथम ऋतुस्राव/रजोधर्म (मेन्सट्रुएशन) की शुरूआत यौवनारंभ पर शुरू होती है, जिसे **रजोदर्शन** (मेनार्के) कहते हैं। स्त्रियों में यह आर्तव चक्र प्रायः 28/29 दिनों की अवधि के बाद दोहराया जाता है, इसीलिए एक रजोधर्म से दूसरे रजोधर्म के बीच घटना चक्र को **आर्तव चक्र** (मेन्सट्रुअल साइकिल) कहा जाता है। प्रत्येक आर्तव चक्र के मध्य में एक अंडाणु उत्सर्जित किया जाता है या अंडोत्सर्ग होता है। आर्तव चक्र की प्रमुख घटनाओं को चित्र 3.9 में दर्शाया गया है। आर्तव चक्र की शुरूआत आर्तव प्रावस्था से होती है जबकि रक्तस्राव होने लगता है। यह रक्तस्राव 3-5 दिनों तक जारी रहता है। गर्भाशय से इस रक्तस्राव का कारण गर्भाशय की अंत:स्तर परत और उसकी रक्त वाहिनियों के नष्ट

होना है जो एक तरल का रूप धारण करता है और योनि से बाहर निकलता है। रजोधर्म तभी आता है जब मोचित अंडाणु निषेचित नहीं हुआ हो। रजोधर्म की अनुपस्थिति गर्भ धारण का संकेत है। यद्यपि इसके अन्य कारण जैसे— तनाव, निर्बल स्वास्थ्य आदि भी हो सकते हैं। आर्तव प्रावस्था के बाद पुटकीय प्रावस्था आती है। इस प्रावस्था के दौरान गर्भाशय के भीतर के प्राथमिक पुटक में वृद्धि होती है और यह एक पूर्ण ग्राफी पुटक बन जाता है तथा इसके साथ-साथ गर्भाशय में प्रचुरोद्भवन (प्रोलिफरेशन) के द्वारा गर्भाशय अंत:स्तर पुन: पैदा हो जाता है। अंडाशय और गर्भाशय के ये परिवर्तन पीयूष ग्रंथि तथा अंडाशयी हॉर्मोन की मात्रा के स्तर में बदलावों से प्रेरित होते हैं (चित्र 3.9)। पुटक प्रावस्था के दौरान गोनैडोट्रॉपिन (एल एच एवं एफ एस एच) का स्रवण धीरे-धीरे बढ़ता है। यह स्राव पुटक परिवर्धन के साथ-साथ वर्धमान पुटक द्वारा ऐस्ट्रोजन के स्रवण को उद्दीपित करता है। एल एच तथा एफ एस एच दोनों ही आर्तव चक्र के मध्य (लगभग 14वें दिन) अपनी उच्चतम स्तर को प्राप्त करते हैं। मध्य चक्र के दौरान एल एच का तीव्र स्रवण जब अधिकतम स्तर पर होता है, तो इसे एल एच सर्ज कहा जाता है। यह ग्राफी पुटक को फटने के लिए प्रेरित करता है, जिसके कारण अंडाणु मोचित हो जाता है यानी **अंडोत्सर्ग** (ओवुलेशन) होता है। अंडोत्सर्ग के पश्चात् पीत प्रावस्था होती है, जिसके दौरान ग्राफी पुटक का शेष बचा हुआ भाग **पीत पिंड** (कार्पस ल्युटियम) का रूप धारण कर लेता है (चित्र 3.9)। यह पीत पिंड भारी मात्रा में प्रोजेस्ट्रॉन स्रवित करता है, जो कि गर्भाशय अंत:स्तर को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। इस प्रकार गर्भाशय अंत:स्तर निषेचित अंडाणु के अंतर्रोपण (इम्प्लांटेशन) तथा सगर्भता की अन्य घटनाओं के लिए आवश्यक है। सगर्भता के दौरान आर्तव चक्र की सभी घटनाएँ बंद हो जाती हैं इसीलिए इस समय रजोधर्म नहीं होता है। जब निषेचन नहीं होता है, तो पीत पिंड में ह्रास होता है और यह अंत:स्तर का विखंडन करता है, जिससे कि फिर से रजोधर्म का नया चक्र शुरू हो जाता है यानी माहवारी पुन: होती है। स्त्री में यह आर्तव चक्र 50 वर्ष की आयु के लगभग बंद हो जाता है इस स्थिति को **रजोनिवृत्ति** (मीनोपॉज) कहा जाता है। इस प्रकार रजोदर्शन से लेकर रजोनिवृत्ति की अवस्था में चक्रीय रजोधर्म सामान्य जनन अवधि का सूचक है।

3.5 निषेचन एवं अंतर्रोपण

स्त्री एवं पुरुष के संभोग (मैथुन) के दौरान शिश्न द्वारा शुक्र (वीर्य) स्त्री की योनि में छोड़ा जाता है यानी वीर्यसेचन होता है। गतिशील शुक्राणु तेजी से तैरते हुए गर्भाशय ग्रीवा से होकर गर्भाशय में प्रवेश करते हैं और अंतत: अंडवाहिनी नली के संकीर्ण पथ (इस्थमस) तथा तुंबिका (एंपुला) के संधिस्थल तक पहुँचते हैं (चित्र 3.11 ब)। इसी बीच अंडाशय द्वारा मोचित अंडाणु भी इस संधिस्थल तक पहुँच जाता है, जहाँ निषेचन की क्रिया संपन्न होती है। निषेचन तभी हो सकता है यदि अंडाणु तथा शुक्राणु दोनों एक ही समय में तुंबिका-संकीर्णपथ के संधिस्थल पर पहुँच जाएँ। यही कारण है जिससे कि सभी संभोग क्रियाएँ निषेचन व सगर्भता की स्थिति में नहीं पहुँच पाती हैं।

© NCERT not to be republished

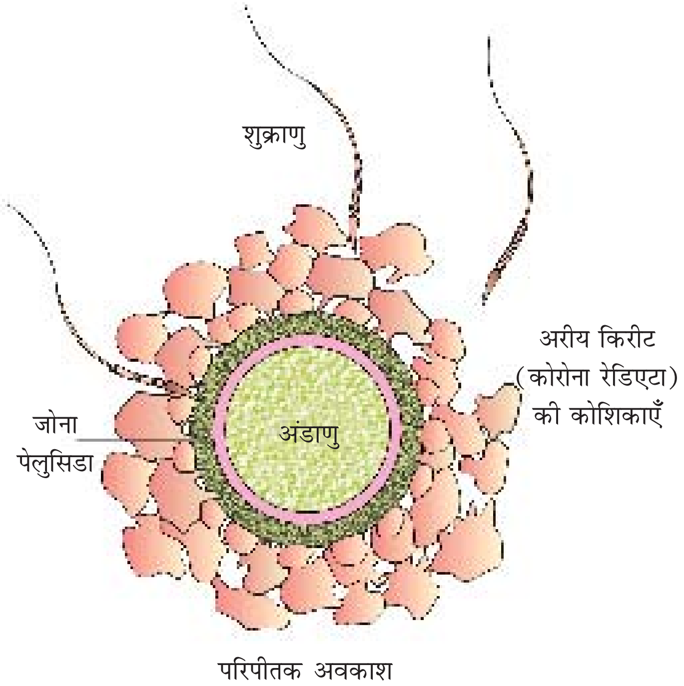

चित्र 3.10 कुछ शुक्राणुओं द्वारा घिरा हुआ अंडाणु

शुक्राणु के साथ एक अंडाणु के संलयन की प्रक्रिया को **निषेचन** (फर्टिलाइजेशन) कहते हैं। निषेचन के दौरान एक शुक्राणु अंडाणु के पारदर्शी *अंडावरण (जोना पेल्युसिडा)* स्तर के संपर्क में आता है (चित्र 3.10) और अतिरिक्त शुक्राणुओं के प्रवेश को रोकने हेतु उसके उक्त स्तर में बदलाव प्रेरित करता है। इस प्रकार यह सुनिश्चित हो जाता है कि एक अंडाणु को केवल एक ही शुक्राणु निषेचित कर सकता है। अग्रपिंडक का स्रवण शुक्राणु की पारदर्शी अंडावरण के माध्यम से अंडाणु के कोशिका द्रव्य (साइटोप्लाज्म) तथा प्लाज्मा भित्ति में प्रवेश करने में मदद करता है। यह द्वितीय अंडक के अर्धसूत्री विभाजन को प्रेरित करता है। दूसरा अर्धसूत्री विभाजन भी असमान होता है और इसके फलस्वरूप **द्वितीय ध्रुवीय पिंड** (सेकेंडरी पोलर बॉडी) की रचना होती है और एक अगुणित अंडाणु (डिंबाणु प्रसू या ऊओटिड) बनता है। शीघ्र ही शुक्राणु का अंडाणु के अगुणित केंद्रक के साथ संलयन (फ्युजन) होता है, जिससे कि द्विगुणित **युग्मनज** (जाइगोट) की रचना होती है। *एक युग्मनज में कितने गुणसूत्र होंगे?*

हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इसी चरण में शिशु के लिंग का निर्धारण यानी लड़का या लड़की का होना निश्चित हो जाता है। आइए! देखें यह कैसे होता है? जैसा कि आप जानते हैं कि स्त्री में गुणसूत्र का स्वरूप XX है तथा पुरुष में XY होता है। इसलिए स्त्री (अंडाणु) द्वारा उत्पादित सभी अगुणित युग्मकों में X लिंग गुणसूत्र होते हैं जबकि पुरुष युग्मकों (शुक्राणुओं) में लिंग गुणसूत्र या तो X या Y लिंग गुणसूत्र होते हैं। इसलिए 50 प्रतिशत शुक्राणु में X लिंग गुणसूत्र होते हैं और दूसरे 50 प्रतिशत शुक्राणु में Y लिंग गुणसूत्र होते हैं। इसलिए पुरूष एवं स्त्री युग्मकों के संलयन के पश्चात् युग्मनज में या तो XX या XY लिंग गुणसूत्र की संभावना होगी। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि X या Y लिंग गुणसूत्र वाले शुक्राणुओं में से कौन अंडाणु का निषेचन करता है। जिस युग्मनज में XX गुणसूत्र होंगे वह एक मादा शिशु (लड़की) के रूप में जबकि XY गुणसूत्र वाला युग्मनज नर शिशु (लड़का) के रूप में विकसित होगा। आप गुणसूत्र प्रतिमानों के बारे में और अधिक विस्तार से जानकारी अध्याय 5 में सीख सकेंगे। *इसी कारण कहा जाता है कि वैज्ञानिक रूप से यह कहना सत्य है कि एक शिशु के लिंग का निर्धारण उसके पिता द्वारा होता है न कि माता के द्वारा।*

समसूत्री विभाजन (**विदलन / क्लीवेज**) की शुरूआत तब हो जाती है जबकि युग्मनज अंडवाहिनी के संकीर्ण पथ (इस्थमस) से गर्भाशय की ओर बढ़ता है

© NCERT not to be republished

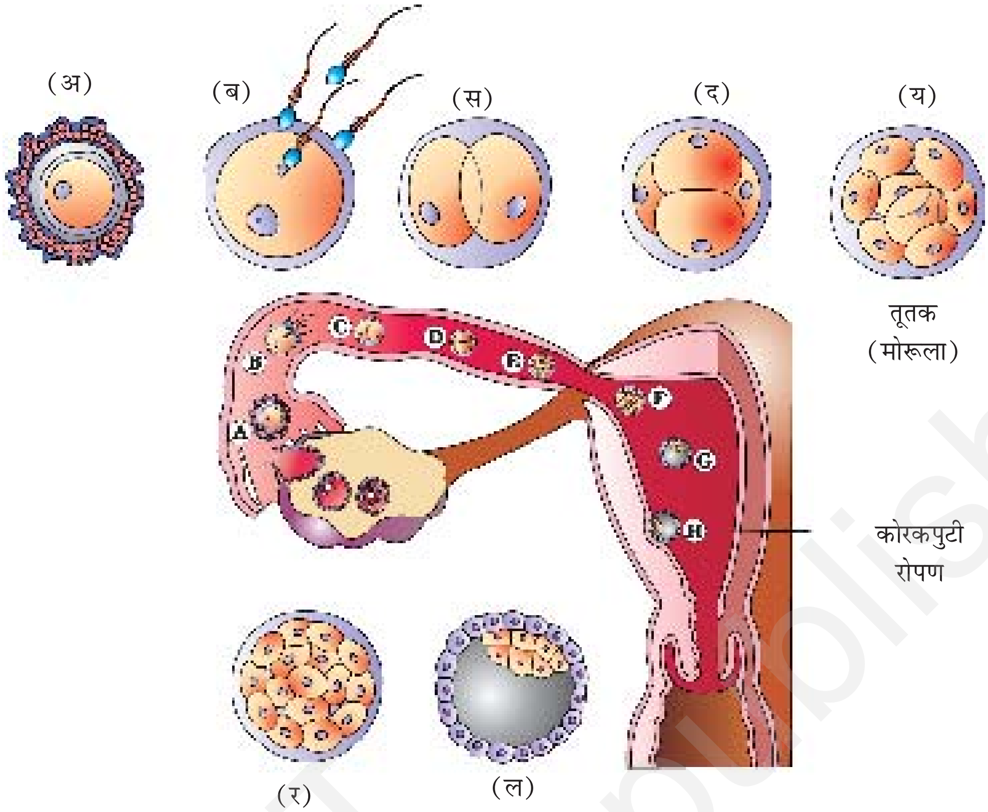

चित्र 3.11 अंडाणु का अभिगमन, निषेचन एवं डिम्बवाहिनी नली से होकर वर्धनशील भ्रूण का गुजरना

(चित्र 3.11) और तब यह 2, 4, 8, 16 संतति कोशिकाओं, जिसे **कोरकखंड** (ब्लास्टोमीयर्स) कहते हैं, की रचना करता है। 8 से 16 कोरकखंडों वाले भ्रूण को **तूतक** (मोरूला) कहते हैं (चित्र 3.11 य)। यह तूतक लगातार विभाजित होता रहता है और जैसे-जैसे यह गर्भाशय की ओर बढ़ता है, यह कोरकपुटी (ब्लास्टोसिस्ट) के रूप में परिवर्तित हो जाता है (चित्र 3.11 र)। एक कोरकपुटी में कोरकखंड बाहरी परत में व्यवस्थित होते हैं जिसे **पोषकोरक** (ट्रोफोब्लास्ट) कहते हैं। कोशिकाओं के भीतरी समूह, जो पोषकोरक से जुड़े होते हैं, उन्हें **अंतर कोशिका समूह** (इनर सेलमास) कहते हैं। अब पोषकोरक स्तर गर्भाशय अंत:स्तर से संलग्न हो जाता है और अन्तर कोशिका समूह भ्रूण के रूप में अलग-अलग या विभेदित हो जाता है। संलग्न होने के बाद गर्भाशयी कोशिकाएँ तेजी से विभक्त होती हैं और कोरकपुटी को आवृत्त कर लेती हैं। इसके परिणामस्वरूप कोरकपुटी गर्भाशय-अंत: स्तर में अन्त:स्थापित (इंबेडेड) हो जाती है (चित्र 3.11 ल)। इसे ही **अंतर्रोपण** (इम्प्लांटेशन) कहते हैं और बाद में यह सगर्भता का रूप धारण कर लेती है।

3.6 सगर्भता तथा भ्रूणीय परिवर्धन

भ्रूण के अंतर्रोपण के पश्चात् पोषकोरक पर अंगुली-जैसी संरचनाएँ उभरती हैं, जिन्हें **जरायु अंकुरक** (कोरिऑनिक विलाई) कहते हैं। ये जरायु अंकुरक गर्भाशयी ऊतक

© NCERT not to be republished

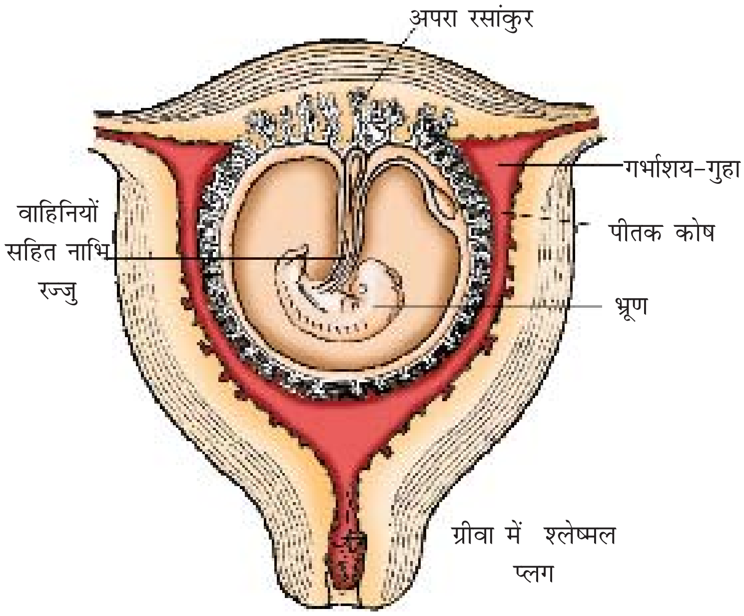

चित्र 3.12 गर्भाशय में अपरा दर्शाता हुआ मानव भ्रूण

और मातृ रक्त से आच्छादित होते हैं। जरायु अंकुरक और गर्भाशयी ऊतक एक दूसरे के साथ अंतरांगुलियुक्त (इंटरडिजिटेटेड) हो जाते हैं तथा संयुक्त रूप से परिवर्धनशील भ्रूण (गर्भ) और मातृ शरीर के साथ एक संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई को गठित करते हैं, जिन्हें **अपरा** (प्लैसेंटा) कहा जाता है (चित्र 3.12)।

अपरा, भ्रूण को ऑक्सीजन तथा पोषण की आपूर्ति एवं कार्बन डाइऑक्साइड तथा भ्रूण द्वारा उत्पन्न उत्सर्जी (एक्सक्रीटरी) अवशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने का कार्य करता है। यह अपरा एक नाभि रज्जु (अम्बिलिकल कॉर्ड) द्वारा भ्रूण से जुड़ा होता है, जो भ्रूण तक सभी आवश्यक पदार्थों को अंदर लाने तथा बाहर ले जाने के कार्य में मदद करता है। अपरा, अंत:स्रावी ऊतकों का भी कार्य करता है और अनेकों हॉर्मोन जैसे कि **मानव जरायु गोनैडोट्रॉपिन** (ह्यूमन कोरिऑनिक गोनैडोट्रॉपिन एच सी जी), **मानव अपरा लैक्टोजन** (ह्यूमन प्लेसेंटल लैक्टोजन -एच पी एल), **ऐस्ट्रोजन**, **प्रोजेस्टोजन**, आदि उत्पादित करता है। सगर्भता के उत्तरार्ध की अवधि में अंडाशय द्वारा **रिलैक्सिन** नामक एक हॉर्मोन भी स्रवित किया जाता है। हमें यह याद रखना चाहिए कि एच सी जी, एच पी एल और रिलैक्सिन स्त्री में केवल सगर्भता की स्थिति में ही उत्पादित होते हैं। इसके अलावा दूसरे हॉर्मोनों, जैसे ऐस्ट्रोजन, प्रोजेस्टोजन, कॉर्टिसॉल, प्रोलैक्टिन, थाइरॉक्सिन, आदि की भी मात्रा सगर्भता के दौरान माता के रक्त में कई गुणा बढ़ जाती है। इन हॉर्मोनों के उत्पादन में बढ़ोत्तरी होना भी भ्रूण वृद्धि, माता की उपापचयी क्रियाओं में परिवर्तनों तथा सगर्भता को बनाए रखने के लिए आवश्यक होता है।

अंतर्रोपण के तुरंत बाद अन्तर कोशिका समूह (भ्रूण) **बाह्यत्वचा** (एक्टोडर्म) नामक एक बाहरी स्तर और **अंतस्त्वचा** (एंडोडर्म) नामक एक भीतरी स्तर में विभेदित हो जाता है। इस बाह्य त्वचा और अंतस्त्वचा के बीच जल्द ही **मध्यजनस्तर** (मेजोडर्म) प्रकट होता है। ये तीनों ही स्तर वयस्कों में सभी ऊतकों (अंगों) का निर्माण करते हैं। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि इस अन्तर कोशिका समूह में कुछ निश्चित तरह की कोशिकाएँ, जिन्हें **स्टेम कोशिकाएँ** (स्टेम सेल्स) कहते हैं, समाहित रहती है, जिनमें यह क्षमता होती है कि वे सभी अंगों एवं ऊतकों को उत्पन्न कर सकती हैं।

सगर्भता के विभिन्न महीनों में भ्रूण परिवर्धन के प्रमुख लक्षण क्या होते हैं? मानव में सगर्भता की अवधि 9 महीने की होती है। क्या आप जानते हैं कि कुत्ते, हाथियों, बिल्लियों में यह अवधि कितने महीनों की होती है? पता करें। मानव में एक महीने की

© NCERT not to be republished

सगर्भता के बाद भ्रूण का हृदय निर्मित होता है। एक बढ़ते हुए भ्रूण का पहला संकेत स्टेथोस्कोप से उसके हृदय की धड़कनों को ध्यानपूर्वक सुना जा सकता है। सगर्भता के दूसरे माह के अन्त तक भ्रूण के पाद और अंगुलियाँ विकसित होती हैं। 12वें सप्ताह (पहली तिमाही) के अन्त तक, लगभग सभी प्रमुख अंग-तंत्रों की रचना हो जाती है, उदाहरण के लिए पाद एवं बाह्य जनन अंग अच्छी तरह विकसित हो जाते हैं। गर्भावस्था के पाचवें माह के दौरान गर्भ की पहली गतिशीलता और सिर पर बालों का उग आना सामान्यत: देखा जा सकता है। 24 वें सप्ताह के अन्त तक (दूसरी तिमाही), पूरे शरीर पर कोमल बाल निकल आते हैं, आँखों की पलकें अलग-अलग हो जाती हैं और बरौनियाँ बन जाती हैं। गर्भावस्था के 9 वें माह के अन्त तक गर्भ पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है और प्रसव के लिए तैयार हो जाता है।

3.7 प्रसव एवं दुग्धस्रवण

मानव में सगर्भता की औसत अवधि लगभग 9.5 माह होती है जिसे गर्भावधि (जेस्टेशन पीरियड) कहते हैं। सगर्भता के अंत में गर्भाशय के जोरदार संकुचनों के कारण गर्भ बाहर निकल आता है। गर्भ के बाहर निकलने की इस क्रिया को शिशु-जन्म या **प्रसव** (पारट्युरिशन) कहा जाता है। प्रसव एक जटिल तंत्रिअंत:स्रावी (न्यूरोइन्डोक्राइन) क्रियाविधि द्वारा प्रेरित होता है। प्रसव के लिए संकेत पूर्णविकसित गर्भ एवं अपरा से उत्पन्न होते हैं जो हल्के (माइल्ड) गर्भाशय संकुचनों को प्रेरित करते हैं जिन्हें **गर्भ उत्क्षेपन प्रतिवर्त** (फीटल इजेक्शन रेफलेक्स) कहते हैं। यह मातृ पीयूष ग्रंथि से ऑक्सीटोसिन के निकलने की क्रिया को सक्रिय बनाती है। ऑक्सीटोसिन गर्भाशय पेशी पर कार्य करता है और इसके कारण जोर-जोर से गर्भाशय सकुंचन होने लगते हैं। गर्भाशय संकुचन ऑक्सीटोसिन के अधिक स्रवण को उद्दीपित करता है। गर्भाशय संकुचनों तथा ऑक्सीटोसिन स्राव के बीच लगातार उद्दीपक प्रतिवर्त के कारण यह संकुचन तीव्र से तीव्रतर होता जाता है। इससे शिशु, माँ के गर्भाशय से जनन नाल द्वारा बाहर आ जाता है यानी प्रसव सम्पन्न हो जाता है। शिशु के जन्म के तुरन्त बाद ही अपरा भी गर्भाशय से बाहर निकल जाता है। *आप क्या सोचते हैं, डॉक्टर प्रसव को प्रेरित करने के लिए इंजेक्शन देता है?*

स्त्री की स्तन ग्रंथियों में सगर्भता के दौरान कई प्रकार के बदलाव आते हैं और सगर्भता के अंत तक इनसे दूध उत्पन्न होने लगता है। इस प्रक्रिया को **दुग्धस्रवण** (लैक्टेशन) कहते हैं। यह माँ को अपने नवजात शिशु की आहार पूर्ति कराने में मदद देता है। दुग्धस्रवण के आरंभिक कुछ दिनों तक जो दूध निकलता है उसे **प्रथम स्तन्य या खीस** (कोलोस्ट्रम) कहते हैं, जिसमें कई प्रकार के प्रतिरक्षी (एंटीबॉडी) तत्व समाहित होते हैं जो नवजात शिशु में प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न करने के लिए परम आवश्यक होते हैं। एक स्वस्थ शिशु की वृद्धि एवं विकास के लिए प्रसव के बाद आरंभ के कुछ माह तक शिशु को स्तनपान कराने की सलाह डॉक्टर देते हैं।

© NCERT not to be republished

सारांश

मानव लैंगिक रूप से जनन करने वाला एवं सजीवप्रजक या जरायुज (वीवीपेरस) है। इसके पुरुष जनन तंत्र में एक जोड़ा वृषण, नर लिंग सहायक नलिकाएँ, सहायक ग्रंथियाँ और बाह्य जननेंद्रिय शामिल होते हैं। प्रत्येक वृषण में लगभग 250 कक्ष होते हैं और इन्हें वृषण पालिका कहते हैं। प्रत्येक वृषण पालिका में एक से लेकर तीन तक उच्च कुंडलित शुक्रजनक नलिकाएँ होती हैं। प्रत्येक शुक्रजनक नलिका की भीतरी सतह शुक्राणुजनों और सर्टोली कोशिकाओं से स्तरित होती हैं। शुक्राणुजनों में अर्धसूत्री विभाजन के फलस्वरूप शुक्राणु का निर्माण होता है, जबकि सर्टोली कोशिकाएँ विभाजित होने वाली जर्म कोशिकाओं को पोषण प्रदान करती हैं। शुक्रजनक नलिकाओं के बाहर लीडिग कोशिकाएँ, वृषण हॉर्मोन (एंड्रोजेन) का संश्लेषण और स्रवण करती हैं। पुरुष के बाहरी जननेन्द्रिय को शिश्न कहा जाता है।

स्त्री जनन तंत्र के अंतर्गत एक जोड़ा अंडाशय, एक जोड़ा अंडवाहिनी, एक गर्भाशय, एक योनि, बाह्य जननेन्द्रिय और एक जोड़ा स्तन ग्रंथियाँ होती हैं। अंडाशय से मादा युग्मक (अंडाणु) तथा कुछ स्टेरॉयड हार्मोन (अंडाशयी हार्मोन) पैदा होते हैं। अंडाशयी पुटक अपने परिवर्धन के विभिन्न चरणों में पीठिका (स्ट्रोमा) में अन्तःस्थापित होते हैं। अंडवाहिनी, गर्भाशय और योनि, स्त्री की सहायक जनन नलिकाएँ हैं। गर्भाशय की दीवार में तीन स्तर होते हैं जिन्हें परिगर्भाशय स्तर, गर्भाशय पेशीस्तर और गर्भाशय अंतःस्तर कहते हैं। स्त्री के बाह्य जननेंद्रिय के अंतर्गत जघन शैल, वृहद् भगोष्ठ, लघु भगोष्ठ, योनिच्छद और भगशेफ़ शामिल हैं। स्त्री की स्तन ग्रंथियाँ उसकी एक गौण लैंगिक अभिलक्षण हैं।

शुक्राणुजनन के कारण शुक्राणु का निर्माण होता है जो पुरुष लिंग की सहायक नलिकाओं द्वारा वाहित किए जाते हैं। एक सामान्य मानव शुक्राणु में एक शीर्ष, ग्रीवा, मध्यखंड और एक पूँछ होती है। एक परिपक्व स्त्री युग्मक के निर्माण की प्रक्रिया अंडजनन कहलाती है। मादा प्राइमेटों के जनन चक्र को आर्तव चक्र कहते हैं। आर्तव चक्र की शुरूआत स्त्री के लैंगिक रूप से परिपक्व होने (यौवनारंभ) पर ही होती है। प्रति आर्तव चक्र में अंडोत्सर्ग के दौरान केवल एक अंडाणु मोचित होता है। आर्तव चक्र के दौरान अंडाशय तथा गर्भाशय में चक्रीय परिवर्तन पीयूषग्रंथि तथा अंडाशयी हॉर्मोनों के स्तर में बदलाव से प्रेरित होता है। मैथुन के अंत में शुक्राणु योनि से स्वयं संकीर्ण पथ तथा तुंबिका की संधि स्थल की ओर वाहित होते हैं। यहाँ शुक्राणु, अंडाणु का निषेचन करता है और उसके पश्चात् द्विगुणित युग्मनज की रचना होती है। शुक्राणु में मौजूद X या Y गुणसूत्र के कारण भ्रूण का लिंग निर्धारित होता है। युग्मनज में लगातार समसूत्री विभाजन होता है जिससे कि कोरकपुटी का निर्माण होता है। यह कोरकपुटी गर्भाशय की भित्ति में अंतर्रोपित हो जाती है जिसके फलस्वरूप गर्भधारण होता है। नौ महीने तक गर्भधारण के पश्चात् गर्भ पूर्णरूप से विकसित और प्रसव के लिए तैयार हो जाता है। शिशु-जन्म की प्रक्रिया को प्रसव कहा जाता है, जो एक जटिल तंत्रिअंतःस्रावी क्रियाविधि द्वारा प्रेरित होते हैं। जिसमें, कॉर्टिसॉल, एस्ट्रोजन और ऑक्सीटोसिन शामिल हैं, सगर्भता के दौरान स्तन ग्रंथियों में कई प्रकार के परिवर्तन होते हैं और शिशु जन्म के बाद इससे दुग्धस्रवण होता है। जन्म के बाद प्रारम्भ के कुछ महीनों तक माता द्वारा नवजात शिशु को दुग्धपान (स्तनपान) कराया जाता है।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:
   (क) मानव .... उत्पत्ति वाला है। (अलैंगिक/लैंगिक)
   (ख) मानव .... हैं। (अंडप्रजक, सजीवप्रजक, अंडजरायुज)
   (ग) मानव में .... निषेचन होता है। (बाह्य / आंतरिक)
   (घ) नर एवं मादा युग्मक .... होते हैं। (अगुणित / द्विगुणित)
   (ङ) युग्मनज .... होता है। (अगुणित / द्विगुणित)
   (च) एक परिपक्व पुटक से अंडाणु (ओवम) के मोचित होने की प्रक्रिया को .... कहते हैं।
   (छ) अंडोत्सर्ग (ओव्यूलेशन) .... नामक हॉर्मोन द्वारा प्रेरित (इनड्यूस्ड) होता है।
   (ज) नर एवं स्त्री के युग्मक के संलयन (फ्युजन) को .... कहते हैं।
   (झ) निषेचन .... में संपन्न होता है।
   (ञ) युग्मनज विभक्त होकर .... की रचना करता है जो गर्भाशय में अंतर्रोपित (इंप्लांटेड) होता है।
   (ट) भ्रूण और गर्भाशय के बीच संवहनी संपर्क बनाने वाली संरचना को .... कहते हैं।
2. पुरुष जनन-तंत्र का एक नामांकित आरेख बनाएँ।
3. स्त्री जनन-तंत्र का एक नामांकित आरेख बनाएँ।
4. वृषण तथा अंडाशय के बारे में प्रत्येक के दो-दो प्रमुख कार्यों का वर्णन करें।
5. शुक्रजनक नलिका की संरचना का वर्णन करें।
6. शुक्राणुजनन क्या है? संक्षेप में शुक्राणुजनन की प्रक्रिया का वर्णन करें।
7. शुक्राणुजनन की प्रक्रिया के नियमन में शामिल हॉर्मोनों के नाम बताएँ?
8. शुक्राणुजनन एवं वीर्यसेचन (स्परमियेशन) की परिभाषा लिखें।
9. शुक्राणु का एक नामांकित आरेख बनाएँ।
10. शुक्रीय प्रद्रव्य (सेमिनल प्लाज्मा) के प्रमुख संघटक क्या हैं?
11. पुरुष की सहायक नलिकाओं एवं ग्रंथियों के प्रमुख कार्य क्या हैं?
12. अंडजनन क्या है? अंडजनन की संक्षिप्त व्याख्या करें।
13. अंडाशय के अनुप्रस्थ काट (ट्रांसवर्स सेक्शन) का एक नामांकित आरेख बनाएँ।

© NCERT not to be republished

14. ग्राफी पुटक (ग्राफिएन फॉलिकिल) का एक नामांकित आरेख बनाएँ।
15. निम्नलिखित के कार्य बताएँ—
    (क) पीत पिंड (कॉर्पस ल्युटियम)
    (ख) गर्भाशय अंतःस्तर (इंडोमेट्रियम)
    (ग) अग्रपिंडक (एक्रोसोम)
    (घ) शुक्राणु पुच्छ (स्पर्म टेल)
    (च) झालर (फिम्ब्री)
16. सही या गलत कथनों को पहचानें —
    (क) पुंजनों (एंड्रोजेन्स) का उत्पादन सर्टोली कोशिकाओं द्वारा होता है। (सही/गलत)
    (ख) शुक्राणु को सर्ट्रोली कोशिकाओं से पोषण प्राप्त होता है। (सही/गलत)
    (ग) लीडिग कोशिकाएँ अंडाशय में पाई जाती हैं। (सही/गलत)
    (घ) लीडिग कोशिकाएँ पुंजनों (एंड्रोजेन्स) को संश्लेषित करती हैं। (सही/गलत)
    (ङ) अंडजनन पीत पिंड (कॉर्पस ल्युटियम) में संपन्न होता है। (सही/गलत)
    (च) सगर्भता (प्रेगनेंसी) के दौरान आर्तव चक्र (मेन्सट्रुअल साइकिल) बंद होता है। (सही/गलत)
    (छ) योनिच्छद (हाइमेन) की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति कौमार्य (वर्जिनिटी) या यौन अनुभव का विश्वसनीय संकेत नहीं हैं। (सही/गलत)
17. आर्तव चक्र क्या हैं? आर्तव चक्र (मेन्सट्रुअल साइकिल) का कौन से हॉर्मोन नियमन करते हैं?
18. प्रसव (पारट्युरिशन) क्या हैं? प्रसव को प्रेरित करने में कौन से हार्मोन शामिल होते हैं?
19. हमारे समाज में लड़कियाँ जन्म देने का दोष महिलाओं को दिया जाता है। बताएँ कि यह क्यों सही नहीं है?
20. एक माह में मानव अंडाशय से कितने अंडे मोचित होते हैं? यदि माता ने समरूप जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया हो तो आप क्या सोचते हैं कि कितने अंडे मोचित हुए होंगे? क्या आपका उत्तर बदलेगा यदि जन्मे हुए जुड़वाँ बच्चे, द्विअंडज यमज थे?
21. आप क्या सोचते हैं कि कुतिया, जिसने 6 बच्चों को जन्म दिया है, के अंडाशय से कितने अंडे मोचित हुए थे?

© NCERT not to be republished

अध्याय 4

जनन स्वास्थ्य

4.1 *जनन स्वास्थ्य-समस्याएँ और कार्यनीतियाँ*

4.2 *जनसंख्या विस्फोट और जन्म नियंत्रण*

4.3 *सगर्भता का चिकित्सीय समापन*

4.4 *यौन संचारित रोग*

4.5 *बंध्यता*

पिछले अध्याय में आपने जनन तंत्र (रिप्रोडक्टिव)और उसके प्रकार्यो के बारे में पढ़ा था। अब उससे जुड़े निकट शीर्षक अर्थात् जनन-स्वास्थ्य के बारे में चर्चा करेंगे। *हम जनन स्वास्थ्य शब्द से क्या तात्पर्य समझते हैं?* यह शब्द साधारणत: स्वस्थ जनन अंगों और उसके सामान्य प्रकार्यों से संबंधित है। वस्तुत: यह एक व्यापक परिप्रेक्ष्य को दर्शाता है, जिसके अंतर्गत जनन के भावनात्मक एवं सामाजिक पहलू जुड़े हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन—डब्ल्यू एच ओ) के अनुसार जनन स्वास्थ्य का अर्थ — जनन के सभी पहलुओं सहित एक संपूर्ण स्वास्थ्य अर्थात् शारीरिक, भावनात्मक, व्यवहारात्मक तथा सामाजिक स्वास्थ्य है। इसलिए, ऐसे समाज को जननात्मक रूप से स्वस्थ समाज कहा जा सकता है, जिसमें लोगों के जनन अंग शारीरिक रूप से और प्रकार्यात्मक रूप से सामान्य हों। यौन संबंधी सभी पहलुओं में जिनकी भावनात्मक और व्यावहारिक पारस्परिक क्रियाएँ सामान्य हों—जनन स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखने का क्या महत्त्व है और इसे पाने के लिए कौन सी विधियाँ अपनानी चाहिए? आइए, जाँच करें।

4.1 जनन स्वास्थ्य-समस्याएँ एवं कार्यनीतियाँ

विश्व में भारत ही पहला ऐसा देश था जिसने राष्ट्रीय स्तर पर संपूर्ण जनन-स्वास्थ्य को एक लक्ष्य के रूप में प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय

© NCERT not to be republished

कार्ययोजना और कार्यक्रमों की शुरूआत की। इन कार्यक्रमों को 'परिवार नियोजन' (अब परिवार कल्याण) के नाम से जाना जाता है और इनकी शुरूआत 1951 में हुई थी। पिछले दशकों में समय-समय पर इनका आवधिक मूल्यांकन भी किया गया। जनन संबंधित और आवधिक क्षेत्रों को इसमें सम्मिलित करते हुए बहुत उन्नत व व्यापक कार्यक्रम फिलहाल 'जनन एवं बाल स्वास्थ्य सेवा कार्यक्रम (आर सी एच)' के नाम से प्रसिद्ध है। इन कार्यक्रमों के अंतर्गत जनन संबंधी विभिन्न पहलुओं के बारे में लोगों में जागरूकता पैदा करते हुए और जननात्मक रूप से स्वस्थ समाज तैयार करने के लिए अनेक सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन दिए जा रहे हैं।

श्रव्य तथा दृश्य (ओडिओ-विजुअल) और मुद्रित सामग्री की सहायता से सरकारी एवं गैर सरकारी संगठन जनता के बीच जनन-संबंधी पहलुओं के प्रति जागरूकता पैदा करने कि लिए विभिन्न उपाय कर रहे हैं। उपर्युक्त सूचनाओं को प्रसारित करने में माता-पिता, अन्य निकट संबंधी, शिक्षक एवं मित्रों की भी प्रमुख भूमिका है। विद्यालयों में यौन शिक्षा की पढ़ाई को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, ताकि युवाओं को सही जानकारी मिल सके और बच्चे यौन संबंधी विभिन्न पहलुओं के बारे में फैली भ्रांतियों पर विश्वास न करें और उन्हें यौन संबंधी गलत धारणाओं से छुटकारा मिल सके। लोगों को जनन-अंगों, किशोरावस्था एवं उससे संबंधित परिवर्तनों, सुरक्षित और स्वच्छ यौन-क्रियाओं, यौन संचारित रोगों एवं एड्स के बारे में जानकारी, विशेषरूप से किशोर आयुवर्ग में जनन संबंधी स्वस्थ जीवन बिताने में सहायक होती है। लोगों को शिक्षित करना, विशेषरूप से जनन क्षम जोड़ी तथा वे लोग जिनकी आयु विवाह योग्य है, उन्हें उपलब्ध जन्म नियंत्रक (गर्भनिरोधक) विकल्पों तथा गर्भवती माताओं की देखभाल, माँ और बच्चे की प्रसवोत्तर (पोस्टनेटल) देखभाल आदि के बारे में तथा स्तनपान के महत्त्व, लड़का या लड़की को समान महत्त्व एवं समान अवसर देने की जानकारियों आदि से जागरूक स्वस्थ परिवारों का निर्माण होगा। अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि से होने वाली समस्याओं तथा सामाजिक उत्पीड़नों जैसे कि यौन दुरूपयोग एवं यौन संबंधी अपराधों आदि के बारे में जागरूकता पैदा करने की आवश्यकता है; ताकि लोग इन्हें रोकने एवं जननात्मक रूप से जिम्मेदार एवं सामाजिक रूप से स्वस्थ समाज तैयार करने के बारे में विचार करें और आवश्यक कदम उठाएँ।

जनन स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए विभिन्न कार्ययोजनाओं के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन के लिए मजबूत संरचनात्मक सुविधाओं, व्यावसायिक विशेषज्ञता, तथा भरपूर भौतिक सहारों की आवश्यकता होती है। लोगों को जनन संबंधी समस्याओं जैसे कि सगर्भता, प्रसव, यौन संचारित रोगों, गर्भपात, गर्भनिरोधकों, ऋतुस्राव (माहवारी) संबंधी समस्याओं, बंध्यता (बाँझपन) आदि के बारे में चिकित्सा सहायता एवं देखभाल उपलब्ध कराना आवश्यक है। समय-समय पर बेहतर तकनीकों और नई कार्यनीतियों को क्रियान्वित करने की भी आवश्यकता है; ताकि लोगों की अधिक सुचारू रूप से देखभाल और सहायता की जा सके। बढ़ती मादा भ्रूण हत्या की कानूनी रोक के लिए **उल्बवेधन** (ऐमीनोसैंटैसिस) जाँच (वर्धनशील भ्रूण के चारों ओर उल्ब तरल में गुणसूत्रीय प्रतिरूप के आधार पर

© NCERT not to be republished

भ्रूणीय लिंग निर्धारण) लिंग परीक्षण पर वैधानिक प्रतिबंध तथा व्यापक बाल प्रतिरक्षीकरण (टीका) आदि कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों को भी शामिल किया गया है।

जनन संबंधित विभिन्न क्षेत्रों पर अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाता है और सरकारी तथा गैर सरकारी एजेंसियाँ नई विधियाँ तलाशने या विद्यमान को ही बेहतर बनाने का काम करती हैं। क्या आप जानते हैं कि *'सहेली' नामक गर्भ-निरोधक गोली की खोज भारत में लखनऊ के केंद्रीय औषध अनुसंधान संस्थान (सेंट्रल ड्रग रिसर्च इन्स्टीट्यूट-सी डी आर आई)* ने की है।

यौन संबंधित मामलों के बारे में बेहतर जागरूकता, अधिकाधिक संख्या में चिकित्सा सहायता प्राप्त प्रसव तथा बेहतर प्रसवोत्तर देखभाल से मातृ एवं शिशु मृत्युदर में गिरावट आई है। लघु परिवार वाले जोड़ों की संख्या बढ़ी है। यौन संचारित रोगों की सही जाँच-पड़ताल तथा देखभाल और कुल मिलाकर सभी यौन समस्याओं हेतु बढ़ी हुई चिकित्सा सुविधाओं का होना आदि समाज के बेहतर जनन स्वास्थ्य की ओर संकेत देते हैं।

4.2 जनसंख्या विस्फोट और जन्म नियंत्रण

पिछली शताब्दी में, किए गए विभिन्न क्षेत्रों में चहुँमुखी विकास से लोगों के जीवन स्तर में महत्त्वपूर्ण रूप से सुधार हुआ है। हालाँकि, बेहतर जीवन दशाओं के साथ व्यापक स्वास्थ्य सुविधाएँ जनसंख्या वृद्धि में विस्फोटक प्रभाव डालती हैं। सन् 1900 ई. में पूरे विश्व की जनसंख्या लगभग 2 अरब (2000 मिलियन) थी जो सन् 2000 ई. तेजी से बढ़कर 6 अरब (6000 मिलियन) हो गई। ठीक यही प्रवृत्ति भारत में भी देखी गई। हमारी जनसंख्या; जो देश की आजादी के समय लगभग 350 मिलियन अर्थात् 35 करोड़ थी; वह सन् 2000 ई. में तीव्र जनसंख्या दर से एक अरब अर्थात् 1000 मिलियन से ऊपर पहुँच गई। इसका मतलब है कि आज दुनिया का हर छठा आदमी भारतीय है। इस सबका कारण संभवत: मृत्युदर में तीव्र गिरावट तथा **मातृ मृत्युदर** एवं **शिशु मृत्युदर** (इनफैंट मोर्टलिटी रेट) में कमी के साथ-साथ जनन आयु के लोगों की संख्या में वृद्धि हो रही है। हालाँकि हमने अपने जनन एवं बाल स्वास्थ्य सेवा कार्यक्रम के माध्यम से, इस जनसंख्या वृद्धि दर में कमी तो की; लेकिन यह कमी नाममात्र की हुई। 2001 ई. की जनगणना के अनुसार यह वृद्धि लगभग 1.7 प्रतिशत अर्थात् प्रति 1000 में 17 व्यक्ति प्रतिवर्ष थी। यद्यपि इस वृद्धि दर से 33 वर्षों के दौरान ही हमारी जनसंख्या दोगुनी हो सकती है। इस प्रकार की चेतावनीपूर्ण वृद्धि दर से मूलभूत आवश्यकताओं का नितांत अभाव हो सकता है; जैसे कि अन्न, आवास, कपड़े आदि। हमने भले ही इन मदों के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रगति भी की है। इसलिए सरकार पर यह दबाव था कि इस प्रकार की जनसंख्या वृद्धि दर को काबू में रखने के लिए गंभीर उपाय अपनाए जाएँ।

इस प्रकार की समस्या से निपटने के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपाय यह था कि लघु परिवार को बढ़ावा देने हेतु गर्भनिरोधक उपाय अपनाने के लिए प्रेरित किया जाए। आपने शायद संचार माध्यमों में विज्ञापनों के साथ-साथ सुखी परिवार को प्रदर्शित करते हुए पोस्टर एवं पर्चे भी देखे होंगे; जहाँ एक खुशहाल जोड़े के साथ दो बच्चों का परिवार *'हम दो हमारे दो'* नारे के साथ प्रदर्शित किया जाता है। बहुत सारे जोड़ों ने, विशेषरूप से शहरों के काम-काजी युवा दंपतियों ने *'हम दो हमारा एक'* का नारा अपनाया है। विवाह की

© NCERT not to be republished

वैधानिक आयु स्त्री के लिए 18 वर्ष तथा पुरुष के लिए 21 वर्ष सुनिश्चित है और इस समस्या से निपटने हेतु लघु परिवार के लिए जोड़ों को प्रोत्साहित किया जाता है। आइए! यहाँ पर कुछ सामान्य तौर पर इस्तेमाल होने वाले गर्भ निरोधकों के बारे में चर्चा करें।

एक आदर्श गर्भ निरोधक प्रयोगकर्ता के हितों की रक्षा करने वाला आसानी से उपलब्ध, प्रभावी तथा जिसका कोई अनुषंगी प्रभाव या दुष्प्रभाव नहीं हो या हो भी तो कम से कम। इसके साथ ही यह उपयोगकर्ता की कामेच्छा, प्रेरणा तथा मैथुन में बाधक न हो। आजकल व्यापक परिधि के गर्भ निरोधक साधन जैसे कि आसानी से उपलब्ध हैं; उन्हें मोटे तौर पर निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे प्राकृतिक/परंपरागत, रोध (बैरियर), आईयूडीज (कापर टी) मुँह से लेने योग्य गर्भ निरोधक, टीका रूप में, अंतर्रोप तथा शल्य क्रियात्मक विधियाँ।

प्राकृतिक विधियाँ — ये विधियाँ अंडाणु (ओवम) एवं शुक्राणु के संगम को रोकने के सिद्धांत पर कार्य करती हैं। इनमें से एक उपाय **आवधिक संयम** है जिसमें एक दंपति माहवारी चक्र के 10वें से 17वें दिन के बीच की अवधि, के दौरान मैथुन से बचते हैं जिसे अंडोत्सर्जन की अपेक्षित अवधि मानते हैं। इस अवधि के दौरान निषेचन एवं उर्वर (गर्भधारण) के अवसर बहुत अधिक होने के कारण इसे निषेच्य अवधि भी कहा जाता है। इस तरह से, इस दौरान मैथुन (सहवास) न करने पर गर्भाधान से बचा जा सकता है। **बाह्य स्खलन** या **अंतरित मैथुन** (कोइटस इन्ट्रप्सन) एक अन्य विधि है जिसमें पुरुष साथी संभोग के दौरान वीर्य स्खलन से ठीक पहले स्त्री की योनि से अपना लिंग बाहर निकाल कर वीर्यसेचन से बच सकता है। **स्तनपान अनार्तव (लैक्टेशनल एमेनोरिया)** विधि भी इस तथ्य पर निर्भर करती है कि प्रसव के बाद, स्त्री द्वारा शिशु को भरपूर स्तनपान कराने के दौरान अंडोत्सर्ग और आर्तव चक्र शुरू नहीं होता है। इसलिए जितने दिनों तक माता शिशु को पूर्णतः स्तनपान कराना जारी रखती है (इस दौरान शिशु को माँ के दूध के अलावा, ऊपर से पानी या अतिरिक्त दूध भी नहीं दिया जाना चाहिए। यह अवधि 4–6 माह की होती है), गर्भधारण के अवसर लगभग शून्य होते हैं। यह विधि प्रसव के बाद ज्यादा से ज्यादा 6 माह की अवधि तक ही कारगर मानी गई है। चूँकि उपर्युक्त विधियों में किसी दवा या साधन का उपयोग नहीं होता, अतः इसके दुष्प्रभाव लगभग शून्य के बराबर हैं। हालाँकि, इसके असफल रहने की दर काफी अधिक है।

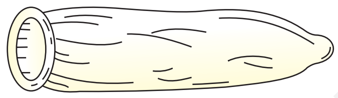

चित्र 4.1 (अ) पुरूष के लिए कंडोम

चित्र 4.1 (ब) स्त्री के लिए कंडोम

रोध (बैरियर) विधियों के अंतर्गत रोधक साधनों के माध्यम से अंडाणु और शुक्राणु को भौतिक रूप से मिलने से रोका जाता है। इस प्रकार के उपाय पुरुष एवं स्त्री, दोनों के लिए उपलब्ध हैं। **कंडोम** (निरोध) (चित्र 4.1 अ और ब) आदि रोधक उपाय हैं जिन्हें पतली रबर या लेटेक्स से बनाया जाता है ताकि इस के उपयोग से पुरुष के लिंग या स्त्री की योनि एवं गर्भाशय ग्रीवा को संभोग से ठीक पहले, ढक दिया जाए और स्खलित शुक्राणु स्त्री के जननमार्ग में नहीं घुस सके। यह गर्भाधान को बचा सकता है। पुरुषों के लिए कंडोम का मशहूर ब्रांड नाम —'निरोध' काफी लोकप्रिय है। हाल ही के

© NCERT not to be republished

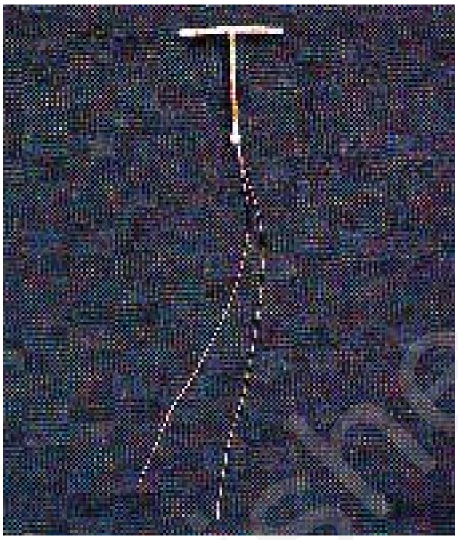

चित्र 4.2 कॉपर टी

वर्षों में कंडोम के उपयोग में तेजी से वृद्धि हुई है, क्योंकि इससे गर्भधारण के अलावा यौन संचारित रोगों तथा एड्स से बचाव जैसे अतिरिक्त लाभ हैं। स्त्री एवं पुरुष दोनों के ही कंडोम उपयोग के बाद फेंकने वाले होते हैं। इन्हें स्वयं ही लगाया जा सकता है और इस तरह उपयोगकर्ता की गोपनीयता बनी रहती है। **डायाफ्रॉम, गर्भाशय ग्रीवा टोपी** तथा **वॉल्ट** आदि भी रबर से बने रोधक उपाय हैं। जो स्त्री के जनन मार्ग में सहवास के पूर्व गर्भाशय ग्रीवा को ढकने के लिए लगाए जाते हैं। ये गर्भाशय ग्रीवा को ढक कर शुक्राणुओं के प्रवेश को रोककर गर्भाधान से छुटकारा दिलाते हैं। इन्हें पुनः इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके साथ ही इन रोधक साधनों के साथ-साथ शुक्राणुनाशक क्रीम, जेली एवं फोम (झाग) का प्रायः इस्तेमाल किया जाता है, जिससे इनकी गर्भनिरोधक क्षमता काफी बढ़ जाती है।

भारत में दूसरी प्रभावी और लोकप्रिय विधि **अंतः गर्भाशयी युक्ति** (इन्ट्रा यूट्राइन डिवाइस-आई यू डी) का उपयोग है। ये युक्तियाँ डॉक्टरों या अनुभवी नर्सों द्वारा योनि मार्ग से गर्भाशय में लगाई जाती हैं। आजकल विभिन्न प्रकार की अंतः गर्भाशयी युक्तियाँ उपलब्ध हैं जैसे कि औषधिरहित आई यू डी (उदाहरण — लिप्पेस लूप), ताँबा मोचक आई यू डी (कॉपर-टी, कॉपर-7 मल्टीलोड 375 कॉपर टी) तथा हॉर्मोन मोचक आई यू डी (प्रोजेस्टासर्ट, एल एन जी-20) आदि (चित्र 4.2)। आई यू डी गर्भाशय के अंदर कॉपर (सी यू) का आयन मोचित होने के कारण शुक्राणुओं की भक्षकाणुक्रिया (फैगोसाइटोसिस) बढ़ा देती हैं जिससे शुक्राणुओं की गतिशीलता तथा उनकी निषेचन क्षमता को कम करती हैं। इसके अतिरिक्त आइ यू डी हॉर्मोन को गर्भाशय में भ्रूण के रोपण के लिए अनुपयुक्त बनाते तथा गर्भाशय ग्रीवा को शुक्राणुओं का विरोधी बनाते हैं। जो औरतें गर्भावस्था में देरी या बच्चों के जन्म में अंतराल चाहती हैं, उनके लिए आई यू डी आदर्श गर्भनिरोधक हैं। भारत में गर्भनिरोध की यह विधियाँ व्यापक रूप से प्रचलित हैं।

महिलाओं के द्वारा खाया जाने वाला एक अन्य गर्भनिरोधक प्रोजेस्टोजन अथवा प्रोजेस्टोजन और एस्ट्रोजन का संयोजन है जिसे थोड़ी मात्रा में मुँह द्वारा लिया जाता है। यह मुँह से टिकिया के रूप में ली जाती हैं और ये **'गोलियों'** (पिल्स) के नाम से लोकप्रिय हैं। ये गोलियाँ 21 दिन तक प्रतिदिन ली जाती हैं और इन्हें आर्तव चक्र (माहवारी) के प्रथम पाँच दिनों, मुख्यतः पहले दिन से ही शुरू करनी चाहिए। गोलियाँ समाप्त होने के सात दिनों के अंतर के बाद (जब पुनः ऋतुस्राव शुरू होता है), इसे फिर से वैसे ही लिया जाता है और यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक गर्भनिरोध की आवश्यकता होती है। ये अंडोत्सर्जन और रोपण को संदमित करने के साथ-साथ गर्भाशय ग्रीवा की श्लेष्मा की गुणता को भी बदल देती हैं जिससे शुक्राणुओं के प्रवेश पर रोक लग जाती है अथवा उनकी गति मंद हो जाती है। यह गोलियाँ बहुत ही प्रभावशाली तथा बहुत कम दुष्प्रभाव वाली होती हैं तथा औरतों द्वारा यह खूब स्वीकार्य हैं। *सहेली* नामक नयी

© NCERT not to be republished

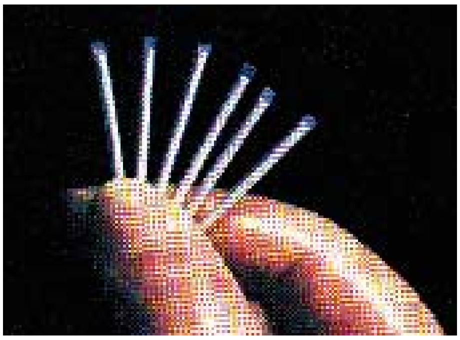

चित्र **4.3** अंतर्रोप

गर्भनिरोधक गोली, जिसके बारे में पहले भी चर्चा हुई है, एक गैर-स्टेरॉइडली सामग्री है। यह 'हफ्ते में एक बार' ली जाने वाली गोली है। इसके दुष्प्रभाव बहुत कम तथा यह उच्च निरोधक क्षमता वाली है।

स्त्रियों द्वारा प्रोजेस्टोजन अकेले या फिर एस्ट्रोजन के साथ इसका संयोजन भी टीके या त्वचा के नीचे अंतर्रोप (इंप्लांट) के रूप में किया जा सकता है (चित्र 4.3)। इसके कार्य की विधि ठीक गर्भनिरोधक गोलियों की भाँति होती है तथा काफी लंबी अवधि के लिए प्रभावशाली होते हैं। मैथुन के 72 घंटे के भीतर ही प्रोजेस्टोजन या प्रोजेस्टोजन-एस्ट्रोजन संयोजनों का प्रयोग या आई यू डी के उपयोग को आपातकालिक गर्भनिरोधक के रूप में बहुत ही प्रभावी पाया गया है और इन्हें बलात्कार या सामान्य (लापरवाहीपूर्ण) असुरक्षित यौन संबंधों के कारण होने वाली संभावित सगर्भता से बचने के लिए लिया जा सकता है।

शल्यक्रिया विधियाँ जिन्हें **बंध्यकरण** भी कहते हैं; प्राय: उन लोगों के लिए सुझाई जाती हैं, जिन्हें आगे गर्भावस्था नहीं चाहिए तथा वे इसे स्थाई माध्यम के रूप में (पुरुष/स्त्री में से एक) अपनाना चाहते हैं। शल्यक्रिया की दखलंदाजी से युग्मक परिवहन (संचार) रोक दिया जाता है; फलत: गर्भाधान नहीं होता है। बंध्यकरण प्रक्रिया को पुरुषों के लिए 'शुक्रवाहक-उच्छेदन (वासैक्टोमी)', तथा महिलाओं के लिए डिंबवाहिनी (फैलोपी) 'नलिका उच्छेदन (टूबैक्टोमी)' कहा जाता है। जनसाधारण इन क्रियाओं को 'पुरुष या महिला नसबंदी' के नाम से जानते हैं, शुक्रवाहक-उच्छेदन में अंडकोष (इस्क्रोटम) शुक्रवाहक में चीरा मारकर छोटा सा भाग काटकर निकाल अथवा बांध दिया जाता है (4.4 अ) जबकि स्त्री के उदर में छोटा सा चीरा मारकर अथवा योनि द्वारा डिंबवाहिनी नली का छोटा सा भाग निकाल या बाँध दिया जाता है। यह तकनीकें बहुत ही प्रभावशाली होती हैं पर इनमें पूर्वस्थित लाने की गुंजाइश बहुत ही कम होती है।

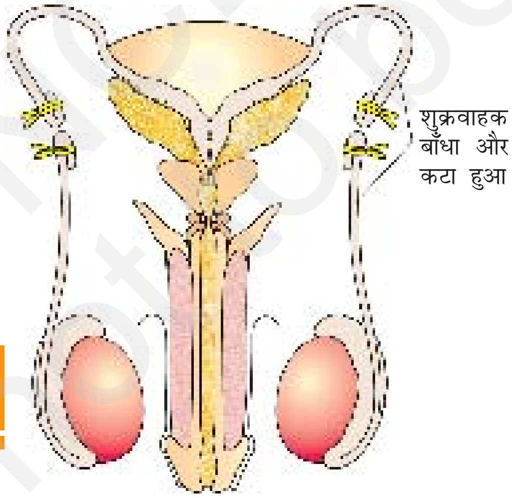

चित्र **4.4** (अ) शुक्रवाहिका-उच्छेदन

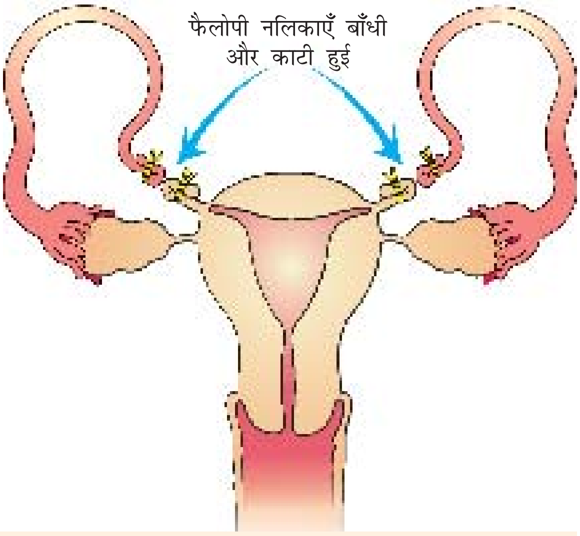

चित्र **4.4** (ब) डंब वाहिनी नली (फैलोपीनलिका)-उच्छेदन

यहाँ पर, इस बात पर जोर देने की जरूरत है कि उपयुक्त गर्भनिरोधक उपायों का चुनाव एवं उपयोग किसी शिक्षित चिकित्सा कर्मी या विशेषज्ञ की परामर्श द्वारा ही किया जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि जनन स्वास्थ्य के रखरखाव हेतु गर्भनिरोधक नियमित रूप से अपेक्षित नहीं होते हैं। वास्तव में, इनका उपयोग प्राकृतिक प्रक्रिया जनन जैसे गर्भाधान/सगर्भता के विरुद्ध है। इन सबके बावजूद, व्यक्ति को इन विधियों को इस्तेमाल करने के लिए विवश होना पड़ता है फिर चाहे सगर्भता को रोकने या देरी करने या अंतराल रखने का कोई निजी कारण रहा हो। इसमें संदेह नहीं कि इन विधियों के व्यापक उपयोग ने जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि को रोकने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। फिर भी, इन उपायों के संभावित दुष्प्रभावों में मतली, उदरीय पीड़ा, बीच-बीच में रक्तस्राव, अनियमित आर्तव रक्तस्राव या यहाँ तक कि स्तन कैंसर जैसी बातें हो सकती हैं। यद्यपि यह बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं; फिर भी इनकी पूरी तरह से उपेक्षा नहीं की जा सकती।

4.3 सगर्भता का चिकित्सीय समापन

गर्भावस्था पूर्ण होने से पहले जानबूझ कर या स्वैच्छिक रूप से गर्भ के समापन को **प्रेरित गर्भपात** या **चिकित्सीय सगर्भता समापन** (मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रिगनेन्सी, एम टी पी) कहते हैं। पूरी दुनिया में हर साल लगभग 45 से 50 मिलियन (4.5-5 करोड़) चिकित्सीय सगर्भता समापन कराए जाते हैं जो कि संसार भर की कुल सगर्भताओं का 1/5 भाग है। निश्चित रूप से यद्यपि जनसख्ंया को घटाने में एम टी पी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है; इसका उद्देश्य जनसंख्या घटाना नहीं है। तथापि एम टी पी में भावनात्मक, नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक पहलुओं से जुड़े होने के कारण बहुत से देशों में यह बहस जारी है कि चिकित्सीय सगर्भता समापन को स्वीकृत/या कानूनी बनाया जाना चाहिए या नहीं। भारत सरकार ने इसके दुरुपयोग को रोकने के लिए 1971 ई. में चिकित्सीय सगर्भता समापन को कानूनी स्वीकृत प्रदान कर दी थी। इस प्रकार के प्रतिबंध अंधाधुंध और गैरकानूनी मादा भ्रूण हत्या तथा भेदभाव को रोकने के लिए बनाए गए, जो अभी भी भारत देश में बहुत ज्यादा हो रहा है।

चिकित्सीय सगर्भता समापन क्यों? निश्चित तौर पर इसका उत्तर अनचाही सगर्भताओं से मुक्ति पाना है फिर चाहे वे लापरवाही से किए गए असुरक्षित यौन संबंधों का परिणाम हो या मैथुन के समय गर्भनिरोधक उपायों के असफल रहने या बलात्कार जैसी घटनाओं के कारण हों। इसके साथ ही चिकित्सीय सगर्भता समापन की अनिवार्यता कुछ विशेष मामलों में भी होती है जहाँ सगर्भता बने रहने की स्थिति में माँ अथवा भ्रूण अथवा दोनों के लिए हानिकारक अथवा घातक हो सकती है।

सगर्भता की पहली तिमाही में अर्थात् सगर्भता के 12 सप्ताह तक की अवधि में कराया जाने वाला चिकित्सीय सगर्भता समापन अपेक्षाकृत काफी सुरक्षित माना जाता है। इसके बाद द्वितीय तिमाही में गर्भपात बहुत ही संकटपूर्ण एवं घातक होता है। इस बारे में एक सबसे अधिक परेशान करने वाली यह बात देखने में आई है कि अधिकतर एम टी पी गैर कानूनी रूप से, अकुशल नीम-हकीमों से कराए जाते हैं जो कि न केवल

© NCERT not to be republished

असुरक्षित होते हैं, बल्कि जानलेवा भी सिद्ध हो सकते हैं। दूसरी खतरनाक प्रवृत्ति शिशु के लिंग निर्धारण के लिए उल्बवेधन का दुरुपयोग (यह प्रवृत्ति शहरी क्षेत्रों में अधिक) होता है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि यह पता चलने पर कि भ्रूण मादा है, एम टी पी कराया जाता है, जो पूरी तरह गैरकानूनी है। इस प्रकार के व्यवहार से बचना चाहिए, क्योंकि यह युवा माँ और भ्रूण दोनों के लिए खतरनाक है। असुरक्षित मैथुन से बचाव के लिए प्रभावशाली परामर्श सेवाओं को देने तथा गैरकानूनी रूप से कराए गए गर्भपातों में जान की जोखिम के बारे में बताए जाने के साथ-साथ अधिक से अधिक सुविधाएँ उपलब्ध कराई जानी चाहिए; ताकि उपर्युक्त हानिकारक प्रवृत्तियों को रोका जा सके।

4.4 यौन संचारित रोग

कोई भी रोग या संक्रमण जो मैथुन द्वारा संचारित होते हैं उन्हें सामूहिक तौर पर यौन संचारित रोग (एस टी डी) या रतिजरोग (वी डी) अथवा जनन मार्ग (आर टी आई) संक्रमण कहा जाता है। सुजाक (गोनोरिया), सिफिलिस, हर्पीस, जननिक परिसर्प (जेनाइटिल हर्पीज़), क्लेमिडियता, ट्राइकोमोनसता, लैंगिक मस्से, यकृतशोथ-बी और हाल ही में सर्वाधिक चर्चित एवं घातक एच आई वी/एड्स आदि सामान्य यौन संचारित रोग हैं। इन सबके साथ एच आई वी संक्रमण सर्वाधिक खतरनाक है, इसके बारे में पुस्तक के आठवें अध्याय में विस्तार से चर्चा की गई है।

इनमें से कुछ संक्रमण जैसे कि यकृतशोथ-बी तथा एच आई वी के संक्रमण, एक संक्रमित व्यक्ति के साझे प्रयोग वाली सुइयों (टीकों), शल्य क्रिया के औजारों तथा संदूषित रक्ताधान (ब्लड ट्रांसफ्यूजन) या फिर संक्रमित माता से उसके गर्भस्थ शिशु में भी संचारित हो सकते हैं। यकृतशोथ-बी, जननिक परिसर्प तथा एच आई वी संक्रमण को छोड़कर बाकी सभी यौन रोग पूरी तरह से उपचार योग्य हैं; बशर्ते कि इन्हें शुरूआती अवस्था में पहचाना एवं इनका उचित ढंग से पूरा इलाज कराया जाए। इन सभी रोगों के शुरूआती लक्षण बहुत हल्के-फुल्के होते हैं, जो कि जननिक क्षेत्र (गुप्तांग) में खुजली, तरल स्राव आना, हल्का दर्द तथा सूजन आदि हो सकते हैं। संक्रमित स्त्रियाँ अलक्षणी हो सकती हैं। कभी-कभी उनमें संक्रमण के लक्षण प्रकट नहीं होते और इसीलिए लंबे समय तक उनका पता नहीं चल पाता। संक्रमण की प्रारंभिक अवस्था में लक्षणों का प्रकट न होना या उनका कम महत्त्वपूर्ण होना तथा यौन संचारित रोगों से जुड़े सामाजिक कलंक का डर संक्रमित व्यक्ति को समय पर जाँच तथा उचित उपचार से रोकता है। इसके कारण आगे चलकर जटिलताएँ पैदा हो सकती हैं। जोकि श्रोणि-शोथज रोग (पी आई डी), गर्भपात, मृतशिशु जन्म, अस्थानिक सगर्भता, बंध्यता अथवा जनन मार्ग का कैंसर हो सकता है। यौन संचारित रोग स्वस्थ समाज के लिए खतरा है, इसलिए इनकी प्रारंभिक अवस्था में पहचान तथा रोग के उपचार को जनन स्वास्थ्य सेवा कार्यक्रम के अंतर्गत प्रमुखता दी गई है। यद्यपि सभी लोग इन संक्रमणों के प्रति अतिसंवेदनशील हैं, लेकिन 15 से 24 वर्ष आयु वर्ग के लोगों में इनकी घटनाएँ बहुत अधिक संख्या में दर्ज की गई हैं। वह आयु वर्ग जिसमें आप भी आते हैं। लेकिन घबराहए मत! इससे बचाव का उपाय

© NCERT not to be republished

तो आपके ही हाथों में है। आप इन संक्रमणों से पूरी तरह से मुक्त रह सकते हैं, बशर्ते कि आप भविष्य में नीचे दिए गए साधारण नियमों का पालन करें-

(क) किसी अनजान व्यक्ति या बहुत से व्यक्तियों के साथ यौन संबंध न रखें।

(ख) मैथुन के समय सदैव कंडोम का इस्तेमाल करें।

(ग) यदि कोई आशंका है तो तुरंत ही प्रारंभिक जाँच के लिए किसी योग्य डॉक्टर से मिलें और रोग का पता चले तो पूरा इलाज कराएँ।

4.5 बंध्यता

बंध्यता के बारे में चर्चा किए बिना जनन स्वास्थ्य पर चर्चा अधूरी है। भारत सहित पूरी दुनिया में बहुत से दंपति बंध्य हैं अर्थात् उन्मुक्त या असुरक्षित सहवास के बावजूद; वे बच्चे पैदा कर पाने में असमर्थ होते हैं। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जोकि शारीरिक, जन्मजात, रोग जन्य, औषधिक, प्रतिरक्षात्मक और यहाँ तक कि वे मनोवैज्ञानिक भी हो सकते हैं। भारतवर्ष में प्राय: दंपतियों में बच्चा न होने का दोष स्त्रियों को ही दिया जाता है, जबकि प्राय: ऐसा नहीं होता है, यह समस्या पुरुष साथी में भी हो सकती है। विशिष्ट स्वास्थ्य सेवा इकाइयाँ (बंध्यता क्लीनिक आदि) नैदानिक जाँच में सहायक हो सकती हैं और इनमें से कुछ विकारों का उपचार करके दंपतियों को बच्चे पैदा करने में मदद दे सकती हैं। फिर भी, जहाँ ऐसे दोषों को ठीक करना संभव नहीं है वहाँ कुछ विशेष तकनीकों द्वारा उनको बच्चा पैदा करने में मदद की जा सकती है, ये तकनीकें **सहायक जनन प्रौद्योगिकियाँ** (ए आर टी) कहलाती हैं।

पात्रे निषेचन (आई वी एफ- इन-विट्रो फर्टिलाइजेशन अर्थात् शरीर से बाहर लगभग शरीर के भीतर जैसी स्थितियों में निषेचन) के द्वारा **भ्रूण स्थानांतरण** (ई टी) ऐसा एक उपाय हो सकता है। इस विधि में, जिसे लोकप्रिय रूप से **टेस्ट ट्यूब बेबी** कार्यक्रम के नाम से जाना जाता है, इसमें प्रयोगशाला में पत्नी का या दाता स्त्री के अंडे से पति अथवा दाता पुरुष से प्राप्त किए गए शुक्राणुओं को एकत्रित करके प्रयोगशाला में अनुरूपी परिस्थितियों में युग्मनज बनने के लिए प्रेरित किया जाता है। इस **युग्मनज या प्रारंभिक भ्रूण** (8 ब्लास्टेमियर तक) को फैलोपी नलिकाओं में स्थानांतरित किया जाता है जिसे युग्मनज **अंत: डिंब वाहिनी** (फैलोपी) **स्थानांतरण** अर्थात् जॉइगोट इंट्रा फैलोपियन ट्रांसफर (जेड आई एफ टी) कहते हैं। और जो भ्रूण 8 ब्लास्टोमियर से अधिक का होता है तो उसे परिवर्धन हेतु गर्भाशय में स्थानांतरित कर दिया जाता है। इसे **इंट्रा यूटेराइन ट्रांसफर** (आई यू टी) कहते हैं। जिन स्त्रियों में गर्भधारण की समस्या रहती है, उनकी सहायता के लिए **जीवे निषेचन** (इन-विवो फर्टीलाइजेशन-स्त्री के भीतर ही युग्मकों का संलयन) से बनने वाले भ्रूणों को भी स्थानांतरण के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

ऐसे मामले में जहाँ स्त्रियाँ अंडाणु उत्पन्न नहीं कर सकतीं; लेकिन जो निषेचन और भ्रूण के परिवर्धन के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान कर सकती हैं, उनके लिए एक अन्य तरीका अपनाया जा सकता है। इसमें दाता से अंडाणु लेकर उन स्त्रियों की **फैलोपी नलिका में स्थानांतरित** (जी आई एफ टी) कर दिया जाता है। प्रयोगशाला में भ्रूण बनाने

© NCERT not to be republished

के लिए अंत: **कोशिकीय शुक्राणु निक्षेपण** (आई सी एस आई) दूसरी विशिष्ट प्रक्रिया है जिसमें शुक्राणु को सीधे ही अंडाणु में अंत:क्षेपित किया जाता है। बंध्यता के ऐसे मामलों में जिनमें पुरुष साथी स्त्री को वीर्यसेचित कर सकने के योग्य नहीं है अथवा जिसके स्खलित वीर्य में शुक्राणुओं की संख्या बहुत ही कम है, ऐसे दोष का निवारण कृत्रिम वीर्यसेचन (ए आई) तकनीक से किया जा सकता है। इस तकनीक में पति या स्वस्थ दाता से शुक्र लेकर कृत्रिम रूप से या तो स्त्री की योनि में अथवा उसके गर्भाशय में प्रविष्ट किया जाता है। इसे अंत: **गर्भाशय वीर्यसेचन** (आई यू आई) कहते हैं।

यद्यपि बहुत सारे विकल्प उपलब्ध हैं, किन्तु इन सभी तकनीकों में विशेषीकृत व्यावसायिक विशेषज्ञों द्वारा एवं क्रियाओं हेतु अति उच्च परिशुद्धता पूर्ण संचालन (हैंडलिंग) की आवश्यकता होती है और ये बहुत मँहगी भी होती हैं। इसलिए, पूरे देश में फिलहाल ये सुविधाएँ केवल कुछ शहरों में ही उपलब्ध हैं। स्पष्ट है कि इनके लाभ केवल कुछ सीमित लोग ही वहन कर सकते हैं। इन उपायों को अपनाने में भावनात्मक, धार्मिक तथा सामाजिक घटक भी काफी निर्धारक होते हैं। इन सभी प्रक्रियाओं का अंतिम लक्ष्य संतान प्राप्ति है और भारतवर्ष में अनेक अनाथ और दीनहीन बच्चे हैं; जिनकी यदि देखभाल नहीं की जाए तो वे जीवित नहीं रहेंगे। हमारा देश का कानून शिशु को कानूनन गोद लेने की इजाजत देता है और जो दंपत्ति बच्चे के इच्छुक हैं उनके लिए संतान प्राप्ति का यह सर्वोत्तम उपाय है।

सारांश

जनन स्वास्थ्य का तात्पर्य जनन के सभी पहलुओं जैसे शारीरिक, भावनात्मक, व्यावहारिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य से है। दुनिया में हमारा देश पहला ऐसा देश है जिसने राष्ट्रीय स्तर पर जननात्मक स्वस्थ समाज को प्राप्त करने की कार्ययोजनाएँ बनाई हैं।

ये सारी कार्ययोजनाएँ वर्तमान में जनन एवं बाल स्वास्थ्य सेवा कार्यक्रम के अंतर्गत आगे बढ़ाई जा रही हैं। जनन स्वास्थ्य हासिल करने की दिशा में, लोगों के बीच जनन अंगों, किशोरावस्था एवं उससे जुड़े बदलावों, सुरक्षित एवं स्वच्छता पूर्ण यौन-प्रक्रियाओं, एच आई वी/ एड्स सहित यौन संचारित रोगों के बारे में परामर्श देना एवं जागरूकता पैदा करना इस दिशा में पहला कदम है। चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराना तथा आर्तव (ऋतुस्राव) में अनियमितताएँ, सगर्भता संबंधी पहलुओं, प्रसव, चिकित्सीय सगर्भता समापन आदि से जुड़ी समस्याओं की देखभाल इनके लिए चिकित्सा सेवा उपलब्ध कराना, और जन्म नियंत्रण, प्रसवोत्तर शिशु एवं माता की देखभाल एवं प्रबंधन आदि आर सी एच कार्यक्रम से जुड़े अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू हैं।

हमारे देश में कुल मिलाकर जनन स्वास्थ्य में सुधार दिख रहा है जैसा कि घटी हुई शिशु एवं मातृ मृत्युदर दर्शाती है। साथ ही यौन संचारित रोगों की जल्दी ही पहचान एवं उनका उपचार, बंध्य दंपतियों की सहायता आदि भी बेहतर हुई है। बेहतर स्वास्थ्य सुविधाओं तथा जीवन के रहन-सहन की बेहतर परिस्थितियाँ होने के कारण जनसंख्या में विस्फोटक वृद्धि

© NCERT not to be republished

को बढ़ावा मिला। इस प्रकार की वृद्धि ने गर्भनिरोधक उपायों के सघन प्रचार को अनिवार्य बना दिया। आज के दौर में विभिन्न प्रकार के गर्भनिरोधक उपलब्ध हैं जैसे कि प्राकृतिक/परंपरागत, रोधक, अंत: गर्भाशयी युक्तियाँ, गोलियाँ (पिल्स), (आई यू डी) टीके के रूप में, अंतर्रोप (इंप्लाट्स) तथा शल्यी विधियाँ। यद्यपि गर्भनिरोधक उपाय जनन स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए आवश्यक नहीं है तथापि व्यक्ति को इन्हें उपयोग में लाने के लिए बाध्य किया जाता है, ताकि व्यक्ति सगर्भता से बच सके या उसमें देरी करे अथवा सगर्भता के बीच अंतराल रखें।

हमारे देश में चिकित्सीय सगर्भता समापन को वैधानिक मान्यता प्राप्त है। सामान्य रूप से चिकित्सीय सगर्भता का उपयोग बलात्कार जैसे मामलों से हुई अनचाही, सगर्भता तथा सामान्य या कभी-कभार के यौनसंबंधों आदि से पैदा हुई, सगर्भता को समाप्त कराने हेतु किया जाता है। ऐसे मामलों में भी एम टी पी किया जाता है जहाँ बार-बार की सगर्भता माँ अथवा भ्रूण अथवा दोनों के लिए हानिकारक या जानलेवा साबित हो रही हो।

यौन संबंधों द्वारा संचारित होने वाले रोगों या संक्रमणों को यौन संचारित रोग (एस टी डी) कहा जाता है। श्रोणि-शोथज रोग (पी आई डी) मृत शिशु जन्म तथा बंध्यता जैसी जटिलताएँ भी इनसे जुड़ी होती हैं। इन रोगों का जल्दी पता लगा लेने से इन्हें अच्छे इलाज द्वारा ठीक किया जा सकता है। अनजान व्यक्ति या बहुत सारे साथियों से मैथुन से बचा जाना चाहिए। इसके साथ ही मैथुन के दौरान अनिवार्य रूप से कुछ सावधानियों के साथ कंडोम का इस्तेमाल यौन संचारित रोगों से बचाव के कुछ सरल से उपाय हैं।

दो वर्ष तक मुक्त या असुरक्षित सहवास के बावजूद गर्भाधान न हो पाने की स्थिति को बंध्यता कहते हैं। ऐसे नि:संतान दंपतियों की मदद हेतु अब विभिन्न उपाय उपलब्ध हैं। पात्रे निषेचन के बाद भ्रूण स्थानांतरण के द्वारा स्त्री के जनन मार्ग में भ्रूण को स्थापित करके संतान पाई जाती है। यह एक सामान्य विधि है जिसे टेस्ट ट्यूब बेबी कार्यक्रम कहा जाता है।

अभ्यास

1. समाज में जनन स्वास्थ्य के महत्त्व के बारे में अपने विचार प्रकट कीजिए?
2. जनन स्वास्थ्य के उन पहलुओं को सुझाएँ, जिन पर आज के परिदृश्य में विशेष ध्यान देने की जरूरत है?
3. क्या विद्यालयों में यौन शिक्षा आवश्यक है? यदि हाँ तो क्यों?
4. क्या आप मानते हैं कि पिछले 50 वर्षों के दौरान हमारे देश के जनन स्वास्थ्य में सुधार हुआ है? यदि हाँ, तो इस प्रकार के सुधार वाले कुछ क्षेत्रों का वर्णन कीजिए?
5. जनसंख्या विस्फोट के कौन से कारण हैं?
6. क्या गर्भनिरोधकों का उपयोग न्यायोचित है? कारण बताएँ।
7. जनन ग्रंथि को हटाना गर्भ निरोधकों का विकल्प नहीं माना जा सकता है? क्यों?

© NCERT not to be republished

8. उल्बवेधन एक घातक लिंग निर्धारण (जाँच) प्रक्रिया है, जो हमारे देश में निषेधित है? क्या यह आवश्यक होना चाहिए? टिप्पणी करें।

9. बंध्य दंपतियों को संतान पाने हेतु सहायता देने वाली कुछ विधियाँ बताएँ।

10. किसी व्यक्ति को यौन संचारित रोगों के संपर्क में आने से बचने के लिए कौन से उपाय अपनाने चाहिए?

11. निम्न वाक्य सही हैं या गलत, व्याख्या सहित बताएँ–

(क) गर्भपात स्वत: भी हो सकता है (सही/गलत)

(ख) बंध्यता को जीवनक्षम संतति न पैदा कर पाने की अयोग्यता के रूप में परिभाषित किया गया है और यह सदैव स्त्री की असामान्यताओं/दोषों के कारण होती है। (सही/गलत)

(ग) एक प्राकृतिक गर्भनिरोधक उपाय के रूप में शिशु को पूर्णरूप से स्तनपान कराना सहायक होता है। (सही/गलत)

(घ) लोगों के जनन स्वास्थ्य के सुधार हेतु यौन संबंधित पहलुओं के बारे में जागरूकता पैदा करना एक प्रभावी उपाय है। (सही/गलत)

12. निम्नलिखित कथनों को सही करें–

(क) गर्भनिरोध के शल्य क्रियात्मक उपाय युग्मक बनने को रोकते हैं।

(ख) सभी प्रकार के यौन संचारित रोग पूरी तरह से उपचार योग्य हैं

(ग) ग्रामीण महिलाओं के बीच गर्भनिरोधक के रूप में गोलियाँ (पिल्स) बहुत अधिक लोकप्रिय हैं।

(घ) ई टी तकनीकों में भ्रूण को सदैव गर्भाशय में स्थानांतरित किया जाता है?

© NCERT not to be republished

ईकाई सात
आनुवंशिकी तथा विकास

अध्याय 5
वंशागति और विविधता के सिद्धांत

अध्याय 6
वंशागति का आणविक आधार

अध्याय 7
विकास

मेंडल तथा उनके अनुयायी जिन्होंने इनके कार्यों को सराहा और उनका अनुसरण किया; वंशागति प्रतिरूप के विषय में हमारे सम्मुख अपने विचार प्रस्तुत किए। यद्यपि, उन कारकों, जो लक्षणप्ररूप का निर्धारण करते हैं, की प्रकृति कुछ स्पष्ट नहीं थी। यह कारक वंशागति के आनुवंशिक आधार का प्रतिनिधित्व करते हैं और आनुवंशिक पदार्थ की संरचनाओं के बारे में बताते हैं तथा समजीनीय और समलक्षणियों के संरचनात्मक आधार का रूपांतरण करते हैं यह सभी आगामी शताब्दी के लिए जीव विज्ञान का एक आकर्षण बिंदु बन चुके हैं। जीव विज्ञान के संपूर्ण ढाँचे का विकास, वाटसन, क्रिक, नीरेनबर्ग, खुराना, कोर्नबर्ग (पिता एवं पुत्र) बैंजर मौनड्, ब्रीनट आदि के विशेष सहयोग का मिलाजुला परिणाम है। इसी समस्या के समांतर एक अन्य समस्या पर भी कार्य हुआ; वह विकास की क्रियाविधि थी। आण्विक आनुवंशिकी, संरचनात्मक जीव विज्ञान तथा बायोइंफॉरमैटिक्स आदि क्षेत्रों में जागरूकता ने विकास के आण्विक आधार के बारे में हमारे ज्ञान को बढ़ाया है। इस ईकाई में डीएनए की संरचना तथा कार्य तथा विकास की कहानी तथा वाद को विस्तार से समझा तथा उसकी व्याख्या की गई है।

© NCERT not to be republished

जेम्स डीवे वाटसन का जन्म 6 अप्रैल, 1928 को शिकागो में हुआ था। वर्ष 1947 में इन्होंने प्राणी विज्ञान विषय में बी एस सी की उपाधि ग्रहण की। इन वर्षों के दौरान इनके बालकपन की रुचि पक्षियों को देखते रहना थी। इसी रुचि ने इन्हें आनुवंशिकी के बारे में ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा जागृत कर दी। यह तभी संभव हो सका जब इन्हें ब्लूमइंगटन में इंडियाना विश्वविद्यालय ने प्राणि विज्ञान में स्नातक अध्ययन के लिए फैलोशिप दी। इसी विश्वविद्यालय से ही इन्हें 'जीवाणुभोजी बहुगुणन पर कठोर एक्स-रे का प्रभाव' पर कार्य करने के फलस्वरूप प्राणि विज्ञान में पी एच डी की उपाधि प्रदान की गई।

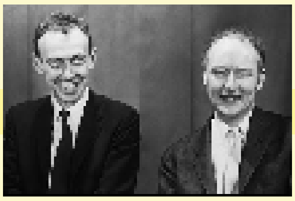

जेम्स वाट्सन
फ्राँसिस क्रिक

वह क्रिक से मिले तथा डी एन ए संरचना की गुत्थी को सुलझाने में सर्वप्रथम दोनों की जो सामान्य रुचियाँ थी, उन्हें खोज निकाला। इनका पहला गंभीर प्रयास असंतोषजनक सिद्ध हुआ। इनका दूसरा प्रयास प्रायोगिक प्रमाणों पर अधिक आधारित था तथा न्यूक्लिक एसिड साहित्य का भली प्रकार से सम्मान प्राप्त हुआ; परिणामस्वरूप मार्च, 1953 को पूरक डबल हैलम्स संरूपण का प्रस्ताव सामने आया।

फ्राँसिस हैरी कॉम्प्टॉन क्रिक का जन्म इंग्लैंड के नार्थ ऐम्पटॉन में 8 जून, 1916 में हुआ था। इन्होंने लंदन के यूनीवर्सिटी कॉलेज में भौतिकी का अध्ययन किया और वर्ष 1937 में बी एस सी की उपाधि ग्रहण की। वर्ष 1954 में इन्होंने पी एच डी का कार्य समाप्त किया इनकी थीसिस का शीर्षक '66 पॉलीपैप्टाइडों तथा प्रोटीन पर एक्स-रे विर्वतन' था।

क्रिक्स के जीवन काल में यदि किसी प्रकार का क्रांतिक प्रभाव उनपर पड़ा तो वह जे डी वाटसन से उनकी मित्रता का था। इस जवान वाटसन जिसकी आयु 23 वर्ष की थी; ने वर्ष 1953 में डी एन ए तथा प्रतिकृति योजना के लिए डबल हैलीकल संरचना का प्रस्ताव प्रस्तुत कर दिया। क्रिक को वर्ष 1959 में एफ आर एस से सुशोभित किया गया।

वाटसन तथा क्रिक के सम्मान में वर्ष 1959 के मैस्साचूसैट्स जनरल हॉस्पिटल का जॉन कॉलिन वैरैन पुरस्कार तथा वर्ष 1960 का लैस्कर पुरस्कार और 1962 का अनुसंधान कॉर्पोरेशन पुरस्कार भी शामिल है।

अध्याय 5

वंशागति और विविधता के सिद्धांत

5.1 मेंडल के वंशागति के नियम

5.2 एक जीन की वंशागति

5.3 दो जीनों की वंशागति

5.4 लिंग निर्धारण

5.5 उत्परिवर्तन (म्यूटेशन)

5.6 आनुवंशिक विकार

क्या आपने कभी यह सोचा कि हाथी हमेशा शिशु हाथी को ही जन्म देता है किसी अन्य जानवर को क्यों नहीं या आम के बीज से आम का पौधा ही उगता है, कोई अन्य पौधा क्यों नहीं?

माना कि संतति अपने जनकों से मिलती जुलती है पर क्या वह उनसे बिल्कुल ही अभिन्न होती है, या उनके लक्षणों में कुछ भिन्नता दिखती है? क्या तुमने कभी आश्चर्य किया कि सहोदर कभी एक जैसे दिखते हैं या फिर कभी अलग-अलग क्यों दिखते हैं?

जीव विज्ञान की एक शाखा **आनुवंशिकी (आनुवंशिक विज्ञान)** ऐसे तथा इनसे संबंधित अनेक प्रश्नों पर विचार करती है। इस शाखा में वंशागति और विविधता दोनों का अध्ययन होता है, अर्थात् यह विचार किया जाता है, कि जनक और संतति के लक्षणों में समानता या असमानता क्यों होती है। वंशागति आनुवंशिकी का आधार है। वंशागति वह प्रक्रम है जिससे लक्षण जनक से संतति में जाते हैं तथा विविधता जनक और संतति के लक्षणों की असमानता की अवस्था है।

मानव को 8000-10000 वर्ष ईसा पूर्व यह ज्ञान हो चुका था कि विविधता का कारण लैंगिक जनन की प्रक्रिया में छिपा हुआ है। उसने पादपों और जंतुओं की प्रकृति में उपस्थित जीव विविधता का लाभ उठाया और लाभदायक लक्षणों वाले जीवों को चुनकर उनका प्रजनन करवाया तथा उनसे इच्छित लक्षणों के जीव प्राप्त किए। उदाहरण पुरानी जंगली गायों के कृत्रिम चयन और उनको पालतू बनाकर हमने

© NCERT not to be republished

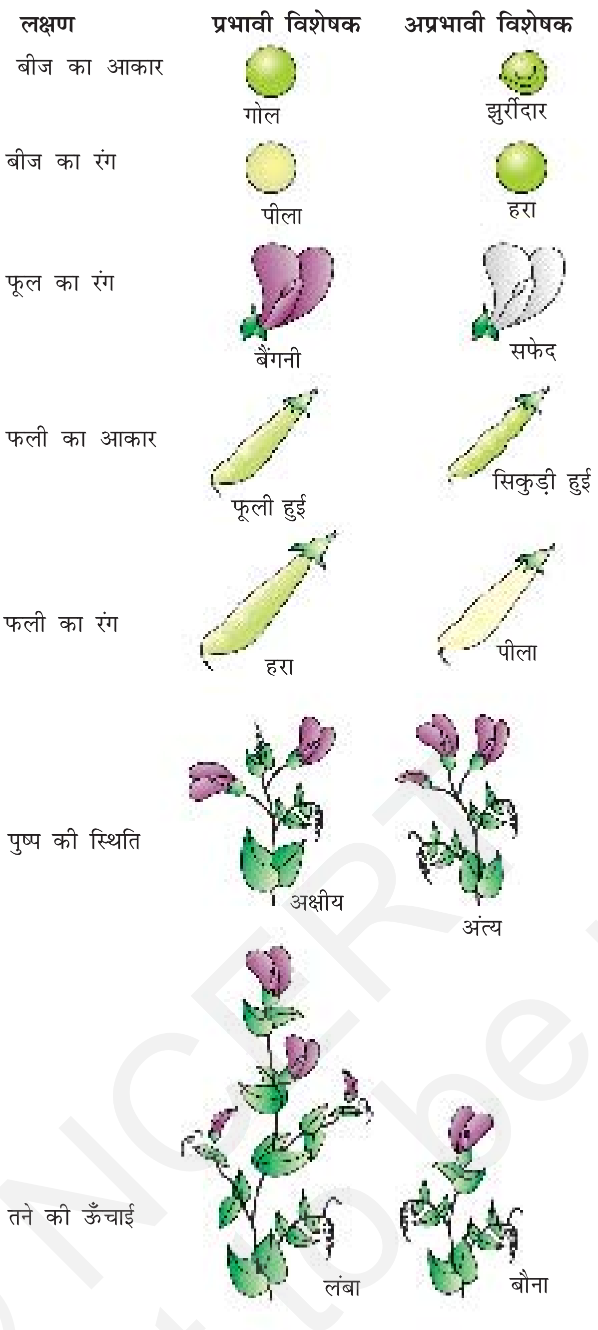

चित्र 5.1 मेंडल द्वारा अध्ययन किए गए मटर के पौधे के विपर्यास विशेषकों के सात जोड़े।

आज उच्च भारतीय किस्में प्राप्त कर ली हैं जैसे पंजाब की शाहीवाल गायें। हमें मानना पड़ता है कि भले ही हमारे पूर्वजों को लक्षणों की वंशागति और विविधता का ज्ञान था किंतु उनको इन घटनाओं के वैज्ञानिक आधार के विषय में बहुत कम जानकारी थी।

5.1 मेंडल के वंशागति के नियम

उन्नीसवीं सदी के मध्य के वर्षों में ही आनुवंशिकता को समझने के संबंध में प्रगति हो सकी। **ग्रीगोर मेंडल** ने उद्यान मटर के पौधे में सात वर्षों (1856–1863) तक संकरण के प्रयोग किए तथा उनके आधार पर जीवों की वंशागति नियम को प्रस्तावित किया। सांख्यकीय विश्लेषणों और गणितीय तर्कशास्त्र का जीव विज्ञान की समस्याओं के समाधान हेतु प्रथम उपयोग भी मेंडल द्वारा वंशागत अंवेषणों के दौरान ही किया गया। उनके प्रयोगों में नमूनों की विशाल संख्या ने उनके आँकड़ों को विश्वसनीयता प्रदान की। साथ ही उनके परीक्षाधीन पौधों की उत्तरोत्तर पीढ़ियों पर किए गए प्रयोग तथा उनके सफल निष्कर्षों ने सिद्ध किया कि मेंडल के वंशागति नियमों में व्यापकता थी और वे केवल अपुष्ट विचार नहीं थे। मेंडल ने मटर के पौधे के उन लक्षणों पर विचार किया जो सर्वथा विपरीतार्थ थे; जैसे लंबे या बौने पौधे, पीले या हरे बीज। इसके कारण उसे वंशागति नियमों का आधारभूत ढाँचा तैयार करने में सहायता मिली। बाद के वैज्ञानिकों ने इसे विस्तार दिया जिससे विविध नैसर्गिक घटनाओं और उनमें निहित जटिलता का स्पष्टीकरण किया जा सका। मेंडल ने अनेक तद्रूप-प्रजनन-सम, मटर के शुद्ध वंशक्रमों को लेकर कृत्रिम परागण/पर-परागण के प्रयोग किए। तद्रूप-प्रजनन-सम (ट्रू ब्रीडिंग) वंशक्रम वह होता है, जो कई पीढ़ियों तक स्वपरागण के फलस्वरूप स्थायी विशेषक (ट्रेट) प्रदर्शित करता है। मेंडल ने मटर की 14 तद्रूप प्रजननी मटर की किस्मों को छाँटा अर्थात् सात जोड़े विपरीत लक्षणों को लिया, इनके अन्य लक्षण समान थे। इनमें से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं — चिकने या झुर्रीदार बीज, पीले या हरे बीज, चिकनी या फूली हुई फलियाँ, हरी या पीली फलियाँ, लंबे या बौने पौधे (चित्र 5.1, व तालिका 5.1)।

© NCERT not to be republished

तालिका 5.1 मेंडल द्वारा अध्ययन किए गए मटर के पौधे के विपर्यास विशेषक

क्र.सं.	लक्षण	विपर्यास विशेषक
1.	*तने की ऊँचाई*	*लंबा/बौना*
2.	*फूल का रंग*	*बैंगनी/सफेद*
3.	*फूल की स्थिति*	*अक्षीय/अंत्य*
4.	*फली का आकार*	*फूला/सिकुड़ा*
5.	*फली का रंग*	*हरा/पीला*
6.	*बीज का आकार*	*गोल/मुर्झाया*
7.	*बीज का रंग*	*पीला/हरा*

5.2 एक जीन की वंशागति

मेंडल ने वंशागत के अध्ययन के लिए एक प्रयोग में मटर के लंबे तथा बौने पौधे का संकरण किया। इस प्रयोग द्वारा एक जीन का आनुवंशिक अध्ययन किया गया। इस संकरण से उत्पन्न बीजों को उगाकर उन्होंने प्रथम संकर पीढ़ी के पौधे प्राप्त किए (चित्र 5.2)। इस पीढ़ी को **प्रथम संतति पीढ़ी (फिलिअल$_1$ प्रोजेनी)** या **F_1** भी कहा जाता है। मेंडल ने देखा कि F_1 पीढ़ी के सभी पौधे लंबे थे अर्थात् अपने लंबे जनक के समान थे, कोई पौधा बौना नहीं था (चित्र 5.3)। इसी प्रकार के परिणाम अन्य विशेषकों वाले संकरण प्रयोगों में भी पाए गए। उन्होंने देखा कि F_1 में दो में से एक जनक के लक्षणों की ही अभिव्यक्ति होती है। दूसरे जनक के लक्षण प्रकट नहीं होते।

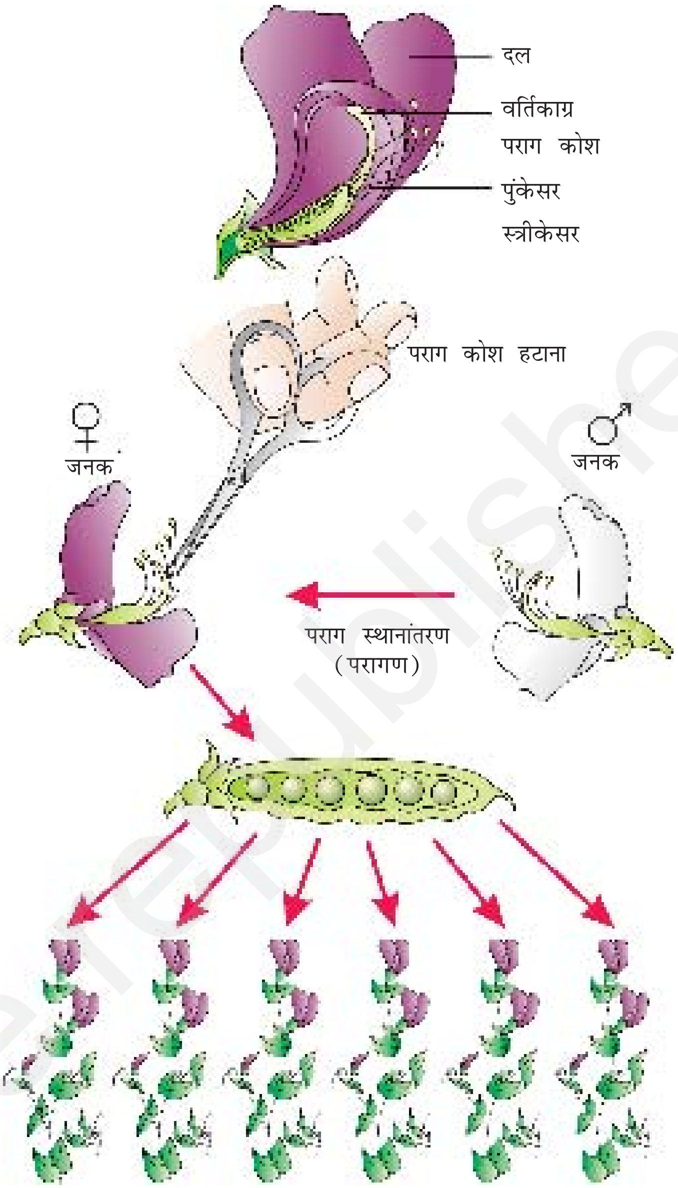

चित्र 5.2 मटर में संकरण के चरण

मेंडल ने फिर F_1 के सभी लंबे पौधों को स्वयं परागित किया और उसे देखकर आश्चर्य हुआ कि F_2 पीढ़ी में प्रत्युत्पन्न कुछ पौधे बौने थे। जो लक्षण F_1 पीढ़ी में नहीं देखा गया, वह अब प्रदर्शित हो गया। बौने पौधों का अनुपात कुल F_2 पौधों का 25 प्रतिशत था जबकि 75 प्रतिशत पौधे लंबे थे। लंबे और बौनेपन के लक्षण जनकों के समान ही थे और इनमें किसी प्रकार का सम्मिश्रण नहीं था। अर्थात् सभी या तो लंबे थे या बौने, मझोले कद के कोई भी नहीं थे (चित्र 5.3)।

जिन अन्य विशेषकों का अध्ययन किया उनसे भी इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त हुए अर्थात् F_1 पीढ़ी में केवल एक ही जनकीय लक्षण प्रकट हुआ जबकि F_2 पीढ़ी में दोनों विशेषक 3 : 1 के अनुपात में अभिव्यक्त हुए। विपरीत विशेषकों में दोनों F_1 या F_2 स्तर पर किसी प्रकार का सम्मिश्रण नजर नहीं आया।

© NCERT not to be republished

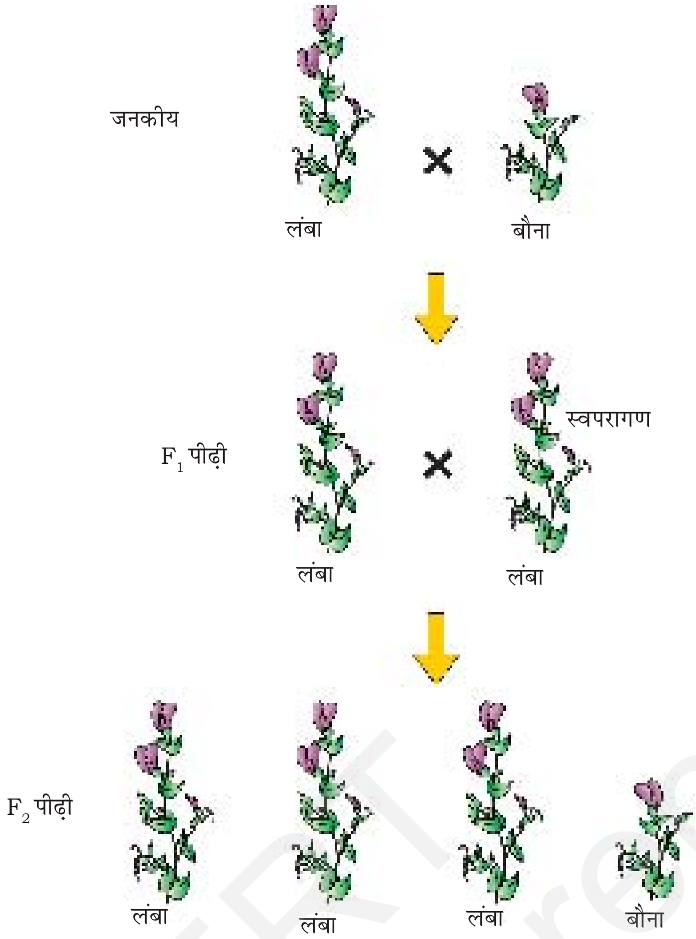

चित्र 5.3 एक-संकर क्रास का आरेखीय निरूपण

इन प्रेक्षणों के आधार पर, मेंडल ने प्रस्तावित किया कि कोई 'वस्तु' अपरिवर्तित रूप में जनक से संतति को युग्मकों के माध्यम से उत्तरोत्तर पीढ़ियों में अग्रसित होती है। उसने इस वस्तु को 'कारक' (फैक्टर) कहा। आज के दिन हम इसे **'जीन'** कहते हैं। दूसरे शब्दों में जीन आनुवंशिकता की इकाइयाँ हैं। किस जीन में कौन-सा विशेष लक्षण अभिव्यक्त होगा, इसकी सूचना इसमें निहित होती है। विकल्पी विपरीत लक्षणों के संकेतक जोड़े को **युग्म विकल्पी (अलील)** कहा जाता है। ये एक ही जीन के थोड़ा सा भिन्न रूप होते हैं।

यदि हम प्रत्येक जीन को अक्षरों के प्रतीक दें, तो जो लक्षण F_1 पीढ़ी में व्यक्त होता है उसे कैपीटल अक्षर से तथा विपरीत लक्षण की जीन को छोटे अक्षर से व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए, ऊँचाई के लक्षण में लंबे के लिए **'T'** और बौने के लिए **'t'** का प्रयोग होता है, **T** और **t** एक दूसरे के युग्म विकल्पी (अलील) हैं। दूसरे शब्दों में पौधों में ऊँचाई के एलील जोड़े इस प्रकार होंगे– **TT, Tt** या **tt** मेंडल ने यह भी प्रस्तावित किया तद्रूप प्रजननक्षम मटर की लंबी या बौनी प्रजाति में अलील जोड़ा **समयुग्मजी (होमोजाइगस)** क्रमश: **TT** या **tt** होगा, **TT** या **tt** को पौधे का **जीनोटाइप (जीनी प्ररूप)** और लंबे-बौने को **फीनोटाइप (दृश्य प्ररूप)** कहा गया। अगर किसी पौधे का जीनोटाइप **Tt** है तो उसका फीनोटाइप क्या होगा?

मेंडल ने पाया कि F_1 विषमयुग्मजी **Tt** का फीनोटाइप दिखने में बिल्कुल **TT** जनक के समान होता है। इसलिए उसने प्रस्ताव किया कि असमान कारकों के जोड़े में से कोई एक, दूसरे के ऊपर प्रभावी हो जाता है (जैसा कि F_1 में) इसे प्रभावी और दूसरे को अप्रभावी नाम दे दिया गया। इस प्रयोग में **T** (लंबाई का कारक) **t** (बौनेपन के कारक) के ऊपर प्रभावी हो जाता है। जिन अन्य लक्षण युग्मों का उन्होंने अध्ययन किया, वहाँ भी यही पाया।

प्रभाविता और अप्रभाविता की संकल्पना को याद रखने के लिए यही सुविधाजनक (और तर्कसंगत) होगा कि बड़े (कैपीटल) और छोटे अक्षरों का प्रयोग किया जाए। (लंबे के लिए **T** और बौने के लिए **'d'** का प्रयोग न करें; क्योंकि यह याद रखना कठिन रहेगा

© NCERT not to be republished

कि क्या **T** और **d** एक ही जीन/लक्षण के अलील हैं या नहीं है। समयुग्मजी मामलों में अलील समान हो सकते हैं, जैसे **TT**, **tt** और विषमयुग्मजी मामलों में असमान हो सकते हैं, जैसे **Tt**, क्योंकि **Tt** पौधा एक लक्षण (ऊँचाई) को नियंत्रक जीन के लिहाज से विषमयुग्मजी है; अत: इसे **एकल संकर (मोनोहाइब्रिड)** कहा जाता है और **TT** और **tt** के बीच के क्रॉस (संकरण) को **एकल संकर क्रॉस** कहा जाता है।

इस प्रेक्षण से कि अप्रभावी जनकीय विशेषक की अभिव्यक्ति बिना किसी प्रकार के सम्मिश्रण से ही F_2 पीढ़ी में हो जाती है, हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जब अर्धसूत्रण (मीओसिस) कोशिका-विभाजन के समय लंबे और बौने पौधे युग्मकों का उत्पादन करते हैं तो जनकीय जोड़े के अलील एक-दूसरे से अलग-अलग हो जाते हैं, और केवल एक ही अलील युग्मक में प्रेषित होगा। अलीलों का यह विसंयोजन **यादृच्छिक (रैंडम)** होता है और युग्मक में कोई एक अलील होने की संभावना 50 प्रतिशत होती है, ऐसा संकर प्रयोगों द्वारा सत्यापित हो चुका है। इस प्रकार लंबे **TT** पौधे के युग्मकों में **T** अलील और बौने tt पौधे के युग्मकों में **t** अलील होता है। निषेचन के समय ये दो अलील-**T** एक जनक से, पराग के माध्यम से, और **t** दूसरे जनक से अंड के माध्यम से, आकर युग्मन करके ऐसे युग्मनजों (जाइगोटों) का निर्माण करते हैं जिनमें एक **T** अलील और दूसरा **t** अलील होता है। दूसरे शब्दों में संकरों में **Tt** होते हैं। क्योंकि इन संकरों में विपरीत विशेषकों के अलील होते हैं, इन पौधों को **विषमयुग्मजी (हैटरोजाइगस)** कहा जाता है। **पनेट वर्ग** नामक आरेख के अध्ययन की सहायता से जनकों द्वारा युग्मकों का उत्पादन, युग्मनजों (जाइगोटों) का निर्माण F_1, F_2 संतति पादपों को समझाया जा सकता है। इसे ब्रितानकी आनुवंशिकीविद् रेजीनाल्ड सी पनेट ने विकसित किया था। यह आरेख आनुवंशिक संकरण प्रयोगों में संतति के सभी संभाव्य जीनोटाइपों की गणना करने के लिए बनाया गया है। सभी संभाव्य युग्मकों को सबसे ऊपर की कतार में बाईं तरफ के स्तंभों में दोनों तरफ लिखा जाता है। सारे संभाव्य संयोजनों का प्रतिरूपण नीचे के वर्गों के बक्सों में किया गया है। सारे का सारा आरेख एक वर्ग की शक्ल में है।

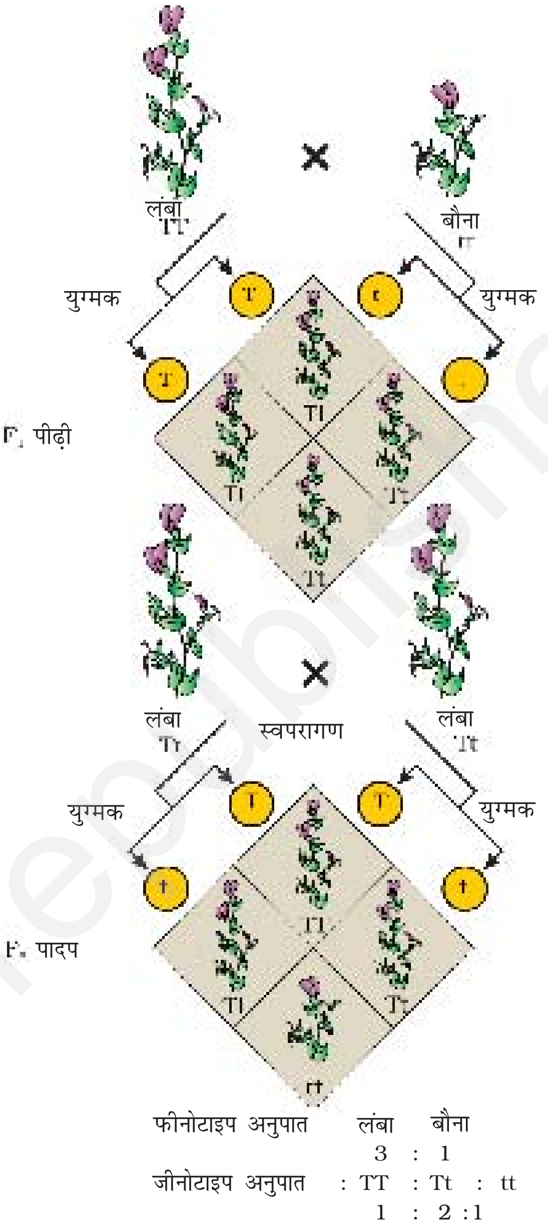

चित्र 5.4 मेंडल द्वारा संकरित शुद्ध वंशक्रम लंबे तथा शुद्ध वंशक्रम बौने पौधों की क्रॉस को समझने के लिए पनेट वर्ग का उपयोग

पनेट वर्ग में जनकीय लंबे **TT** (नर), बौने **tt** (मादा) पौधे, इनके द्वारा उत्पन्न युग्मक और F_1, **Tt** संतति पीढ़ी, दर्शाए गए हैं। **Tt** जीनोटाइप के F_1 पौधे स्वपरागित हैं। F_1 पीढ़ी के नर (अंड) और मादा (पराग) के द्योतन के लिए क्रमश: ♀ और ♂

© NCERT not to be republished

के प्रतीकों को काम में लाया गया है। जीनोटाइप **Tt** के F_1 पौधे स्वपरागित किए जाने पर बराबर संख्या में जीनोटाइप **T** और **t** के युग्मक उत्पन्न करते हैं। जब निषेचन होता है तो जीनोटाइप **T** के परागकणों द्वारा जीनोटाइप **T** और **t** के अंडों को परागित करने की 50 प्रतिशत संभावना रहती है। साथ ही जीनोटाइप **t** के परागकणों के जीनोटाइप **T** और जीनोटाइप **t** के अंडों को परागित करने की 50 प्रतिशत संभावना रहती है। संयोग आधारित (यादृच्छिक) निषेचन का परिणाम यह होता है कि प्रत्युत्पन्न जाइगोट **TT**, **Tt** या **tt** जीनोटापों के हो सकते हैं।

पनेट वर्ग से आसानी से देखा जा सकता है कि यादृच्छिक निषेचन के परिणामस्वरूप 1/4 **TT**, 1/2 **Tt** और 1/4 **tt** जीनोटाइप पैदा करते हैं। साथ ही केवल 'लंबा' फीनोटाइप दृष्टिगोचर होता है । F_2 अवस्था में 3/4 पौधे लंबे होते हैं जिनमें से कुछ **TT** और कुछ **Tt** होते हैं। बाहर से देखने पर **TT** और **Tt** पौधों में भेद नहीं किया जा सकता। अतः जीनोटाइप जोड़े **Tt** से केवल एक ही लक्षण (**T**) 'लंबे' की अभिव्यक्ति होती है। इसीलिए कहा जाता है कि लक्षण 'लंबा', बौने लक्षण अर्थात् अलील **t** के ऊपर प्रभावी हो जाता है। इसी लक्षण प्रभाविता का यह असर होता है कि F_1 के सारे के सारे पौधे लंबे होते हैं (भले ही जीनोटाइप **Tt** हो) और F_2 पीढ़ी में 3/4 पौधे लंबे होते हैं (भले ही जीनोटाइप के लिहाज से 1/2 **Tt** और 1/4 **TT** हों) अंत में जीनोटाइप अनुपात 3/4 लंबे (1/4**TT**. 1/2**Tt**) और 1/4 ठिगने (**tt**) दूसरे शब्दों में 3:1 का अनुपात पर जीनोटाइप अनुपात होता है 1 : 2 : 1।

TT: **Tt**: **tt** का 1/4 : 1/2 : 1/4 के अनुपात को गणित के द्विनामी पद $(ax+by)^2$ में व्यक्त किया जा सकता है जिसमें **T** और **t** जीनधारी युग्मक समान आवृत्ति 1/2 में रहते हैं। इस पद का इस प्रकार विस्तार किया जाता है–

(□**T** + □ **t**)^2 = (□**T** + □ **t**) x (□ **T** + □ **t**)= □ **TT** + □ **Tt** + □ **tt**

मेंडल ने F_2 पौधों को स्वयं परागित किया और पाया कि F_3 और F_4 पीढ़ियों में F_2 के बौने पौधों ने केवल बौने ही पैदा किए। उसने निष्कर्ष निकाला कि बौनों का जीनोटाइप समयुग्मजी (होमोजाइगस) **tt** था। *आप क्या सोचते हैं? यदि उसने सभी F_2 के लंबे पौधों को स्वयं परागित किया होता तो उसे क्या देखने को मिलता?*

पिछले अनुच्छेदों (पैराग्राफों) से स्पष्ट है कि गणितीय प्रायिकता के प्रयोग से जीनोटाइप अनुपातों की गणना की जा सकती है, किन्तु केवल प्रभावी विशेषक के फीनोटाइप को देखने भर से जीनोटाइप संरचना का ज्ञान संभव नहीं है जैसे कि F_1 या F_2 के लंबे पौधे का जीनोटाइप **TT** है या **Tt** इसका भविष्य ज्ञात नहीं हो सकता। इसलिए F_2 के लंबे पौधे के जीनोटाइप-निर्धारण के लिए मेंडल ने F_2 के लंबे पौधे का बौने पौधे से संकरण किया। इसे उन्होंने **परीक्षार्थ संकरण** नाम दिया। इस प्रयोग में प्रभावी फीनोटाइप वाले जीव (यहाँ पर मटर का पौधा, जिसका जीनोटाइप मालूम करना है-परीक्षार्थ जीव) का अप्रभावी पौधे से संकरण किया जाता है न कि स्वपरागण, जैसा पिछले प्रयोगों में किया गया था)। परीक्षार्थ जीव के जीनोटाइप निर्धारण के हेतु ऐसे संकरण की संततियों का विश्लेषण किया जा सकता है। चित्र 5.5 में ऐसे संकरण के परिणाम दर्शाए गए हैं। यहाँ पर बैंगनी (W) रंग श्वेत (w) के ऊपर प्रभावी है।

© NCERT not to be republished

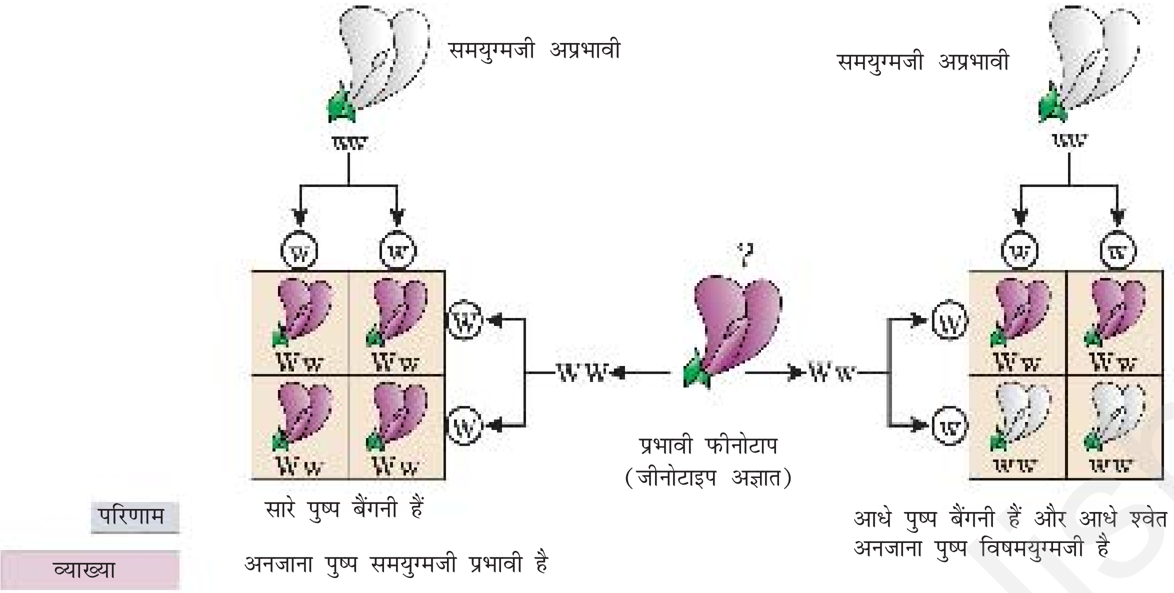

चित्र 5.5 परीक्षार्थ संकर का आरेखी प्रतिरूपण

पनेट वर्ग का प्रयोग करके परीक्षार्थ संकरण में संतति के स्वरूप को ज्ञात करने का प्रयास करो। आपको क्या अनुपात मिला?

इस संकरण प्रयोग की जीनोटाइपों का उपयोग करके क्या आप परीक्षार्थ संकर की एक सामान्य परीभाषा दे सकते हैं?

एक संकर संकरण प्रयोगों के अपने प्रेक्षणों को आधार बनाकर मेंडल ने इनकी वंशागति संबंधी अपनी समझ के सार रूप के दो सामान्य नियम प्रस्तावित किए। आज इन नियमों को **वंशागति के नियमों या सिद्धांतों** की संज्ञा दी जाती है — प्रथम नियम है — **प्रभाविता नियम** और द्वितीय है **विसंयोजन नियम**।

5.2.1 प्रभाविता नियम (ला ऑफ डोमिनेंस)

(क) लक्षणों का निर्धारण **कारक** नामक **विविक्त (डिस्क्रीट)** इकाइयों द्वारा होते हैं।
(ख) कारक जोड़ों में होते हैं।
(ग) यदि कारक जोड़ों के दो सदस्य असमान हों तो इनमें से एक कारक दूसरे कारक पर प्रभावी हो जाता है अर्थात् एक 'प्रभावी' और दूसरा 'अप्रभावी' होता है।

F_1 में केवल एक जनक लक्षण का प्रकट होना तथा F_2 में दोनों जनक लक्षणों का प्रकट होना; प्रभाविता के नियम के द्वारा समझा जा सकता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि F_2 में 3 : 1 का अनुपात क्यों पाया जाता है।

5.2.2 विसंयोजन नियम (लॉ ऑफ सेग्रीग्रेशन)

इस नियम का आधार यह तथ्य है कि अलील आपस में घुलमिल (सम्मिश्रण) नहीं पाते और F_2 पीढ़ी में दोनों लक्षणों की फिर से अभिव्यक्ति हो जाती है, भले ही F_1 पीढ़ी में

© NCERT not to be republished

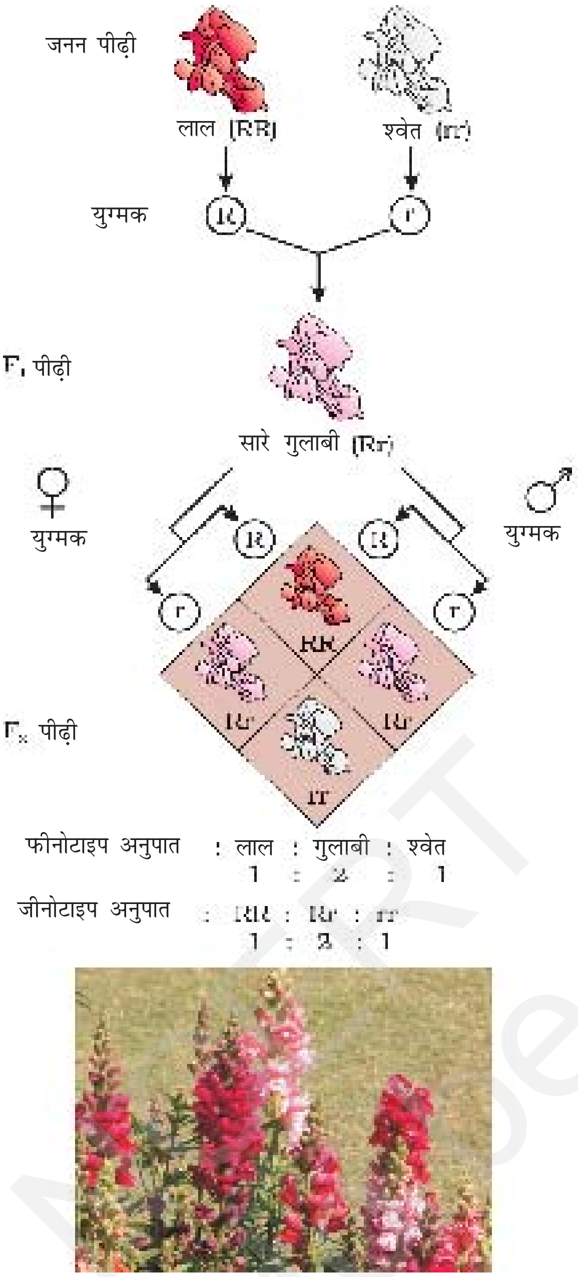

चित्र 5.6 श्वान पुष्प नामक पौधों में एकसंकर संकरण के परिणाम यहाँ पर एक अलील दूसरे के ऊपर अपूर्णतः प्रभावी है।

एक प्रकट नहीं होता। यद्यपि जनकों में दोनों अलील विद्यमान होते हैं। युग्मक बनने के समय कारकों के एक जोड़े या अलील के सदस्य विसंयोजित हो जाते हैं और युग्मक को दो में से एक ही कारक प्राप्त होता है। समयुग्मजी जनक द्वारा उत्पन्न सभी युग्मक समान होते हैं जबकि विषमयुग्मजी जनक दो प्रकार के युग्मक उत्पन्न करता है जिनमें समान अनुपात में एक एक अलील होता है।

5.2.2.1 अपूर्ण प्रभाविता (इंकंप्लीट डोमिनेंस)

जब मटर वाले प्रयोग को अन्य विशेषकों के संदर्भ में दोहराया गया तो पता चला कि कभी कभार F_1 में ऐसा फीनोटाइप आ जाता है जो किसी भी जनक से नहीं मिलता जुलता और इनके बीच का सा लगता है। श्वान पुष्प (स्नेपड्रेगन/एंटीराइनम) में पुष्प रंग की वंशागति अपूर्ण प्रभाविता को समझने के लिए अच्छा उदाहरण है। तद्रूप प्रजननी लाल फूल वाली (**RR**) और तद्रूप प्रजननी सफेद फूल वाली (**rr**) प्रजाति के संकरण के परिणामस्वरूप F_1 पीढ़ी गुलाबी फूलों (**Rr**) वाली प्राप्त हुई। (चित्र 5.6) जब इस F_1 संतति को स्वयं परागित किया गया तो परिणामों का अनुपात 1 (**RR**) लाल : 2 (**Rr**) गुलाबी : 1 (rr) सफेद था। यहाँ पर जीनोटाइप अनुपात वही था जो किसी भी मेंडलीय एकसंकरण के संकरण में संभावित होता, किन्तु फीनोटाइप अनुपात अर्थात् 3 : 1 प्रभावी : अप्रभावी बदल गया। इस उदाहरण में R कारक r कारक पर पूर्णतः प्रभावी नहीं रहा अतः लाल (RR), सफेद (rr) से गुलाबी (Rr) प्राप्त हो गया।

प्रभाविता नामक संकल्पना का स्पष्टीकरण – प्रभाविता वास्तव में क्या है? कुछ अलील प्रभावी और कुछ अप्रभावी क्यों होते हैं? इन बातों को समझने के लिए आवश्यक हो जाता है कि जीन का कार्य समझा जाए। आप जानते ही हैं कि जीन में विशेष विशेषक को अभिव्यक्त करने की सूचना निहित रहती है। द्विगुणित जीवों में अलील के जोड़े के रूप में प्रत्येक जीन के दो प्रारूप विद्यमान रहते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि अलील के जोड़े हमेशा एक जैसे हों, जैसा कि विषम युग्मज (हैटरोजाइगोट) में होता है। उनमें से एक अलील की भिन्नता का कारण, उसमें आया कोई परिवर्तन हो सकता है (विषय में आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे) जो अलील में निहित विशेष सूचना को रूपांतरित कर देता है।

© NCERT not to be republished

उदाहरणार्थ एक ऐसी जीन को लिया जाए जिसमें एक विशेष एंजाइम उत्पन्न करने की सूचना है। इस जीन के दोनों प्रतिरूप इसके दो अलील रूप हैं। मान लेते हैं कि वह सामान्य अलील ऐसा सामान्य एंजाइम उत्पन्न करता है (जैसा अधिकतर संभव है) जो एक सब्सट्रेट 'S' के रूपांतरण के लिए आवश्यक है। रूपांतरित अलील सिद्धांतत: निम्नलिखित में से किसी एक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी हो सकता है।

(क) सामान्य एंजाइम या
(ख) कार्य-अक्षम एंजाइम या
(ग) एंजाइम की अनुपस्थिति

पहले परिवर्तन में रूपांतरित अलील, अरूपांतरित अलील के तुल्य है अर्थात् परिणाम स्वरूप यह भी सब्सट्रेट 'S' को बदल कर उसी पुराने फीनोटाइप/विशेषक का उत्पादन करेगा। इस प्रकार के एलील युग्मों के अनेक उदाहरण हैं। किन्तु जब अलील कोई भी एंजाइम नहीं उत्पन्न करता या कार्य अक्षम एंजाइम का उत्पादन करता है तो फीनोटाइप प्रभावित हो सकता है। फीनोटाइप/विशेषक अरूपांतरित अलील के कार्य के ऊपर ही निर्भर रहता है। सामान्यत: अरूपांतरित (कार्यकारी) अलील जो मौलिक रूप का प्रतिनिधित्व करती है, प्रभावी होती है तथा रूपांतरित अलील अप्रभावी। इसलिए इस उदाहरण में अप्रभावी अलील के दर्शित होने पर या तो एंजाइम बनता ही नहीं है या बने तो कार्यक्षम नहीं होता है।

5.2.3.2 सह प्रभाविता (को डोमिनेंस)

अभी तक हम चर्चा कर रहे थे उन संकरणों (क्रॉसों) की जहाँ F_1 दो जनकों में से किसी एक से मिलता था प्रभावी (प्रभाविता) या मध्य लक्षणों वाला (अपूर्ण प्रभाविता)। सह प्रभाविता ऐसी घटना है जिसमें F_1 पीढ़ी दोनों जनकों से मिलती-जुलती है। इसका एक अच्छा उदाहरण मानवों में ABO रुधिर वर्गों का निर्धारण करने वाली विभिन्न प्रकार की लाल रुधिर कोशिकाएँ हैं। ABO रुधिर वर्गों का नियंत्रण जीन '*I*' करती है। लाल रुधिर कोशिकाओं की प्लाज्मा झिल्ली में सतह से बाहर निकलते हुए शर्करा बहुलक होते हैं। इस बहुलक का प्रकार क्या होगा यहाँ इस बात का नियंत्रण जीन '*I*' से होता है। इस जीन '*I*' के तीन अलील I^A, I^B और i होते हैं। अलील I^A और अलील I^B कुछ भिन्न प्रकार की शर्करा का उत्पादन करते हैं और अलील i किसी भी प्रकार की शर्करा का उत्पादन नहीं करती। मानव जीन (2n) द्विगुणित होता है इसलिए प्रत्येक व्यक्ति में इन तीन में से दो प्रकार के जीन अलील होते हैं। I^A और I^B तो i के ऊपर पूर्णरूप से प्रभावी होते हैं अर्थात् जब I^A और i विद्यमान हों तो केवल I^A अभिव्यक्त होता है और जब I^B और i विद्यमान हों तो केवल I^B अभिव्यक्त होता है, i तो शर्करा बनाता ही नहीं।

जब I^A और I^B दोनों उपस्थित हों तो ये दोनों अपने-अपने प्रकार की शर्करा की अभिव्यक्ति कर देते हैं। यह घटना ही **सह-प्रभाविता** है। इसी कारण लाल रुधिर कोशिकाओं में A और B दोनों प्रकारों की शर्करा होती है। तीन भिन्न प्रकार के

© NCERT not to be republished

अलील होने के कारण इनके 6 संयोजन संभव हैं। इस प्रकार ABO रुधिर वर्गो (तालिका 5.2) के 6 विभिन्न जीनोटाइप होंगे। *प्रश्न है फीनोटाइप कितने होंगे?*

तालिका 5.2 : मानव जनसंख्या में रुधिर वर्गों का आनुवंशिक आधार दर्शाने वाली तालिका

जनक 1 से अलील	जनक 2 से अलील	संतति का जीनोटाइप	संतति के रुधिर वर्ग
I^A	I^A	$I^A I^A$	A
I^A	I^B	$I^A I^B$	AB
I^A	i	$I^A i$	A
I^B	I^A	$I^A I^B$	AB
I^B	I^B	$I^B I^B$	B
I^B	i	$I^B i$	B
i	i	$i\,i$	O

आप यह भी समझ गए होंगे कि ABO रुधिर समूहन बहुअलील (मल्टीपल अलील) का भी अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। आप देख सकते हैं कि यहाँ पर दो से अधिक अर्थात् तीन अलील एक ही लक्षण को नियंत्रित करते हैं। क्योंकि एक व्यक्ति में दो ही अलील विद्यमान रह सकते हैं, अत: बहुअलील की क्रियाशीलता समष्टि (जीन संख्या) के अध्ययन में ही दिख सकती है।

कभी-कभी एकल जीन उत्पाद, एक से अधिक प्रभाव छोड़ सकता है। उदाहरण के लिए मटर के बीजों में मंड संश्लेषण का नियंत्रण एक जीन करता है। इसके दो अलील (**B** और **b**) होते हैं। कुशल रूप से मंड संश्लेषण **BB** समयुग्मजों से होता है और इस प्रकार विशाल मंड कण उत्पन्न हो जाते हैं। इसके विपरीत **bb** समयुग्मजी मंड संश्लेषण में कम कुशल होते हैं और छोटे मंड कणों का उत्पादन कर सकते हैं। पकने पर **BB** बीज गोल होते हैं और **bb** झुर्रीदार। विषमयुग्मनज गोल बीज पैदा करते हैं इसलिए लगता है कि **B** प्रभावी अलील है। **Bb** बीजों में उत्पन्न मंड कण मझोले आकार के होते हैं। अतएव यदि मंड कण का आकार एक फीनोटाइप मान लिया जाए तो इस दृष्टिकोण से यह अलील अपूर्ण प्रभाविता ही दर्शाता है।

अतएव प्रभाविता न तो किसी जीन का या उसके उत्पाद का स्वायत्त लक्षण है। जिसकी सूचना जीन में निहित है यह उतनी ही निर्भर जीन-उत्पाद पर और उत्पाद द्वारा जनित जीनोटाइप पर होती है जितनी कि हमारे द्वारा परीक्षार्थ चुने गए विशेष जीनोटाइप पर (उस मामले में एक जीन से, एकाधिक जीनोटाइप प्रभावित होते हैं)।

5.3 दो जीनों की वंशागति

मेंडल ने दो लक्षणों में भिन्न मटर के पौधों पर भी संकरण प्रयोग किए जैसे पीले और गोल बीज वाले पौधों का क्रॉस हरे और झुर्रीदार बीज वाले पौधों से किया। (चित्र 5.7) मेंडल ने पाया कि इस प्रकार के जनकों के संकरण से केवल पीले रंग वाले गोल बीज

© NCERT not to be republished

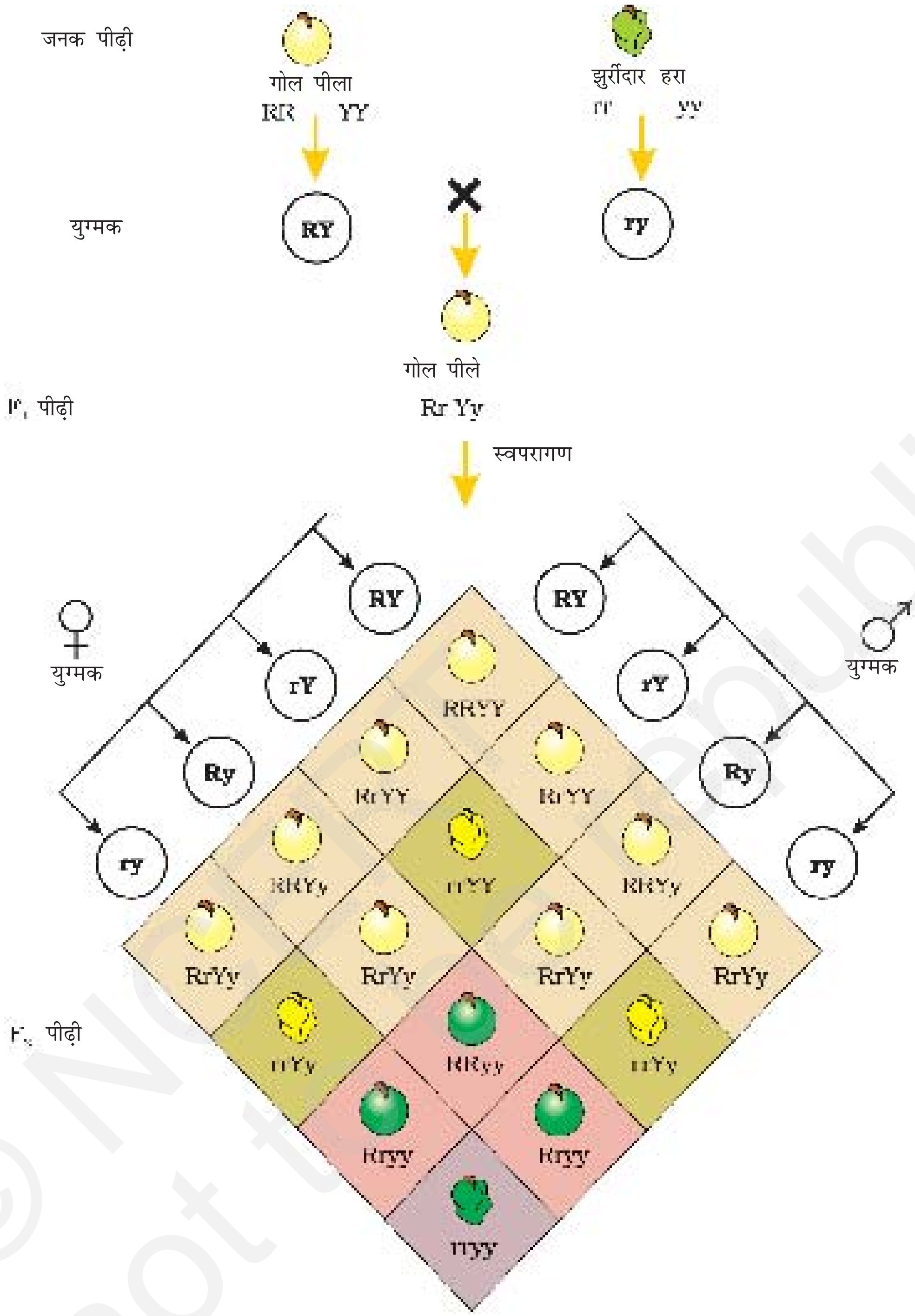

फीनोटाइप अनुपात — गोल पीले 9 गोल हरे 3 झुर्रीदार पीले 3 झुर्रीदार हरे 1

चित्र 5.7 द्विसंकर क्रॉस के परिणाम जिनमें जनक दो जोड़े विपरीत विशेषकों में भिन्न थे – जैसे बीज का रंग और बीज की आकृति।

© NCERT not to be republished

के पौधे ही प्राप्त हुए। *आप बतला सकते हैं पीले, हरे रंग तथा गोल, झुर्रीदार आकृति में कौन प्रभावी रहा होगा।*

पीला रंग, हरे के ऊपर एवं गोल आकृति झुर्रीदार के ऊपर प्रभावी है। यही निष्कर्ष जब पीले एवं हरे तथा गोल एवं झुर्रीदार बीजों वाले पौधों के बीच एकसंकर संकरण अलग-अलग किया गया तो इनके परिणामों से भी निकलता है।

जीनोटाइप प्रतीक **Y** प्रभावी पीले बीज वर्ण तथा **y** अप्रभावी हरे बीज वर्ण के लिए, **R** गोल बीज और **r** झुर्रीदार बीज वालों के लिए प्रयोग करें तो जनकों के जीनोटाइप इस प्रकार लिखे जा सकते हैं **RRYY** और **rryy** इनके क्रॉस को चित्र 5.7 की भाँति लिखा जा सकता है जिसमें जनक पौधों के जीनोटाइप दर्शाए गए हैं। निषेचन होने पर युग्मक **RY** और **ry** मिल कर F_1 संकर **Rr Yy** को उत्पन्न करते हैं। जब मेंडल ने इन F_1 पौधों को स्वयं संकरित किया तो पाया कि F_2 के 3/4 पौधों के बीज पीले और 1/4 के बीज हरे थे। पीला और हरा रंग 3 : 1 के अनुपात में विसंयोजित हुआ। इसी प्रकार गोल और झुर्रीदार बीज की आकृति भी 3 : 1 अनुपात में विसंयोजित हुई, एक संकर क्रॉस की तरह।

5.3.1. स्वतंत्र अपव्यूहन का नियम

द्विसंकर क्रॉसों में (चित्र 5.7) फीनोटाइप गोल-पीला, झुर्रीदार- हरा, गोल-हरा और झुर्रीदार-हरा 9 :3 :3 :1 के अनुपात में प्रकट हुए। मेंडल द्वारा अध्ययन किए गए कई लक्षण युग्मों में ऐसा ही अनुपात देखा गया।

9 :3 :3 :1 के अनुपात को 3 पीला : 1 हरा के साथ 3 गोल : 1 झुर्रीदार को संयोजन श्रेणी के रूप में व्युत्पन्न किया जा सकता है। इस व्युत्पन्न को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है- (3 गोल : 1 झुर्रीदार) (3 पीले : 1 हरा) = 9 गोल-पीले : 3 झुर्रीदार-पीले : 3 गोल-हरे : 1 झुर्रीदार -हरे।

द्विसंकर क्रॉसों (2 विशेषकों में भिन्न पौधों के क्रॉस) के प्रेक्षणों पर आधारित मेंडल ने एक दूसरा सामान्य नियम प्रस्तावित किया जिसे 'मेंडल का स्वतंत्र अपव्यूहन नियम' कहा जाता है। यह नियम कहता है कि जब किसी संकर में लक्षणों के दो जोड़े लिए जाते हैं तो किसी एक जोड़ का लक्षण-विसंयोजन दूसरे जोड़े से स्वतंत्र होता है।

Rr Yy पौधे में अर्धसूत्रण कोशिका विभाजन स्वरूप अंड और पराग- उत्पादन के समय, जीन के दो जोड़ी के स्वतंत्र विसंजयोजन को समझने के लिए पनेट वर्ग का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। जीन की एक जोड़ी **R** और **r** के विसंयोजन पर विचार करें तो 50 प्रतिशत युग्मकों में जीन **R** विद्यमान है और 50 प्रतिशत में जीन **r** है। इनमें, **R** या **r** होने के साथ-साथ अलील **Y** या **y** भी है। **Yy** का विसंयोजन भी **Rr** के समान ही होता है। याद रखने लायक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 50% **R** और 50 प्रतिशत **r** का विसंयोजन, 50 प्रतिशत **Y** और 50 प्रतिशत **y** के विसंयोजन से स्वतंत्र है। अतएव **R** धारी युग्मकों के 50 प्रतिशत में **Y** और दूसरे 50 प्रतिशत में **y**, इसी प्रकार

© NCERT not to be republished

r धारी युग्मकों में 50 प्रतिशत **Y** तथा शेष 50 प्रतिशत में **y** जीन है। अत: युग्मकों के 4 जीनोटाइप बन जाते हैं। (4 प्रकार के पराग और 4 प्रकार के अंड), ये चार प्रकार हैं **RY**, **Ry**, **rY** और **ry** जिनमें प्रत्येक की संख्या कुल युग्मकों की 25 प्रतिशत : अर्थात् 1/4 है। जब आप पनेट वर्ग के दो पार्श्वों में अंड और पराग लिखेंगे तो उन युग्मनजों के संघटन का पता करना आसान होगा जिनसे F_2 पौधे उत्पन्न होते हैं। (चित्र 5.7)। *यद्यपि पुनेट आरेख में 16 वर्ग है, किंतु इनमें कितने जीनोटाइप और फीनोटाइप बनते हैं? इसे दिए हुए फार्मेट से ज्ञात करें।*

क्या पनेट वर्ग के प्रयोग के आंकड़ों से आप F_2 अवस्था के जीनोटाइप का पता कर इसे फार्मेट में भर सकते हैं क्या जीनोटाइप अनुपात भी 9 : 3 : 3 : 1 ही है?

क्रम संख्या	F_2 में पाए गए जीनोटाइप	इनके अनुमानित फीनोटाइप

5.3.2 वंशागति का क्रोमोसोम सिद्धांत

लक्षणों की वंशागति पर किया गया कार्य 1865 में प्रकाशित हो चुका था परंतु कई कारणों से 1900 तक यह कार्य अज्ञात ही रहा। एक तो आज की तरह उन दिनों संचार की सुविधाएँ अच्छी नहीं थीं जिससे कार्य को प्रचार मिल पाता। दूसरे **जीन** (या मेंडल के **कारक**) के लिए ये संकल्पना की, वे लक्षणों के नियंत्रक की स्थायी एवं विविक्त इकाईयों के रूप में हैं तथा इनका नियंत्रक की संकल्पना अर्थात् ऐसे अलील जो एक-दूसरे के साथ सम्मिश्रण नहीं होता, मेंडल के समकालीन वैज्ञानिकों को रास नहीं आयी, क्योंकि ये लोग प्रकृति की विविधता के आभासी सतत् रूप से ही परिचित थे। तीसरे, उस समय के जीव विज्ञानियों को मेंडल का जैव घटना के स्पष्टीकरण के लिए अपनाया गया गणित आधारित रास्ता बिल्कुल नया और कई जीव वैज्ञानिकों द्वारा अस्वीकार्य था। अंत में, भले ही मेंडल का कार्य यह इंगित करता था कि कारक (जीन) विविक्त (असतत्) ईकाईयाँ होती हैं, फिर भी वह इनकी उपस्थिति का भौतिक प्रमाण नहीं दे पाया, न यह बता सका कि वे किस पदार्थ की बनी होती हैं।

1900 में तीन वैज्ञानिकों (**डीव्रीज, कॉरेन्स** और **वॉन शेरमाक**) ने स्वतंत्र रूप से लक्षणों की वंशागति संबंधी मेंडल के परिणामों की पुन: खोज की। इस समय माइक्रोस्कोपी (सूक्ष्म-दर्शन) की तकनीक में प्रगति भी होती जा रही थी और वैज्ञानिक सावधानी से कोशिका विभाजन देखने में समर्थ हो चुके थे। कोशिका-केंद्रक में एक संरचना की खोज हो चुकी थी, जो कोशिका-विभाजन के पहले द्विगुणित एवं विभाजित भी हो जाता है। इनको क्रोमोसोम (रंग जाने के गुण के कारण रंगीन काय) कहा गया। 1902 तक अर्धसूत्रणी कोशिका विभाजन के दौरान क्रोमोसोम की गति (संचालन) का ज्ञान हो चुका था। **वाल्टर सटन** और **थियोडोर बोमेरी** ने देखा कि क्रोमोसोम का

© NCERT not to be republished

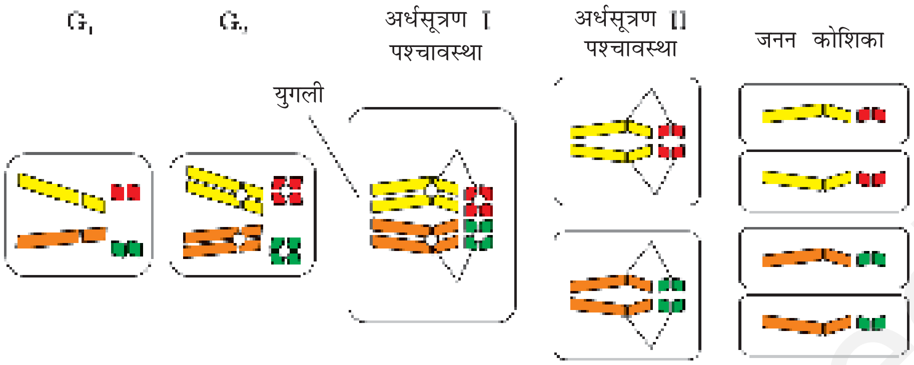

चित्र 5.8 चार क्रोमोसोम वाली कोशिका में अर्धसूत्रण और जनन कोशिका उत्पादन देख सकते हो कि कैसे ये क्रोमोसोम बनते हैं और जनन कोशिका बनने के दौरान कैसे विसंयोजित होते हैं।

व्यवहार भी जीन जैसा ही है। इन्होंने मेंडल के नियमों (तालिका 5.3) को क्रोमोसोम की गतिविधि (चित्र 5.8) द्वारा समझाया। कोशिका विभाजन की समसूत्रण एवं अधिसूत्रण विधियों में गुणसूत्रों के व्यवहार को ध्यान में रखते हुए इसे समझा जा सकता है। जीन के समान ही गुणसूत्र भी युग्म के रूप में पाये जाते हैं तथा एक एलील के दोनों जीन समजात गुणसूत्रों के समजात स्थान पर विद्यमान रहते हैं।

तालिका 5.3 क्रोमोसोम और जीन के व्यवहार में तुलना

A	B
जोड़ों में होते हैं।	*जोड़ों में होते हैं।*
युग्मक जनन के दौरान इस प्रकार विसंयोजित होते हैं कि एक युग्मक जोड़े में से केवल एक ही जा पाता है।	*युग्मक जनन के दौरान विसंयोजित होते हैं और जोड़े में से केवल एक ही युग्मक को प्राप्त होता है।*
अलग-अलग जोड़े एक दूसरे से स्वतंत्र विसंयोजित होते हैं।	*एक जोड़ा, दूसरे से स्वतंत्र विसंयोजित होता है।*

क्या आप बतला सकते हैं कि इन दो स्तंभों A और B में से कौन सा क्रोमोसोम का और कौन सा जीन का प्रतिनिधित्व करता है? यह निर्णय आपने कैसे किया?

अर्धसूत्रण *I* की पश्चावस्था में क्रोमोसोम के दो जोड़े मेटाफेस पट्टिका पर एक दूसरे से स्वतंत्र रूप से पंक्तिबद्ध हो सकते हैं (चित्र 5.9)। इसे समझने के लिए दाएँ और बाएँ स्तंभों के चार अलग रंगों के क्रोमोसोम की तुलना करो। बाएँ स्तंभ में (संभावना *I*) नारंगी और हरे एक साथ विसंयोजित हैं किंतु दाहिने स्तंभ (संभावना *II*) में नारंगी क्रामोसोम लाल क्रोमोसोमों के साथ विसंयोजित हो रहा है।

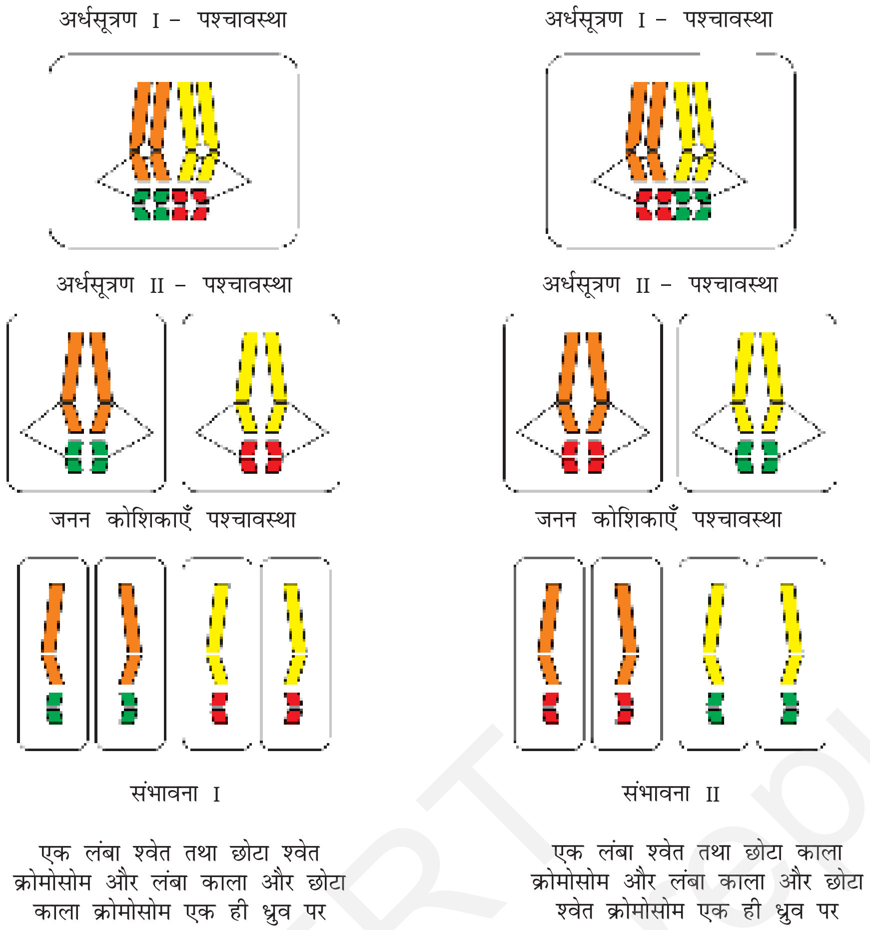

चित्र 5.9 क्रोमोसोमों का स्वतंत्र संव्यूहन

सटन और बोवेरी ने तर्क प्रस्तुत किया कि क्रोमोसोम युग्म का जोड़ा बन जाना या अलग होना अपने में ले जाए जा रहे कारकों के विसंयोजन का कारण बनेगा। सटन ने क्रोमोसोम के विसंयोजन के ज्ञान को मेंडल के सिद्धांतों के साथ जोड़कर **''वंशागति का क्रोमोसोमवाद या सिद्धांत''** प्रस्तुत किया।

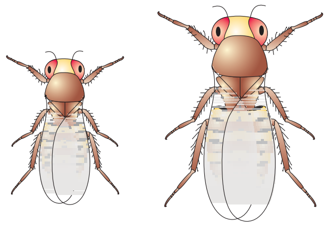

चित्र 5.10 ड्रोसोफिला मेलनोगैस्टर (अ) नर (ब) मादा

इस विचार के विश्लेषणों का अनुपालन करते हुए, थामस हंट मोरगन तथा उसके साथियों ने वंशागति का क्रोमोसोम-वाद या सिद्धांत के प्रयोगात्मक सत्यापन किए और यौन जनन उत्पादन विभेदन के लिए खोज के आधार की नींव डाली। **मोरगन** ने **फल-मक्खियों** (फ्रूटफ्लाई – ड्रोसोफिला मेलनोगैस्टर) पर काम किया, जो ये ऐसे अध्ययनों के लिए उपर्युक्त पाई गयी (चित्र 5.10)। इन्हें प्रयोगशाला में सरल कृत्रिम माध्यमों पर रखा जा सकता था। ये अपना पूरा जीवन चक्र दो सप्ताह में पूरा कर सकती थीं और इनमें एकल मैथुन से विशाल संख्या में संतति मक्खियों का उत्पादन संभव था। साथ ही लिंगों का विभेदन स्पष्ट था। नर और मादा की आसानी से पहचान की जा सकती थी। साथ ही इसमें आनुवंशिक विविधताओं के अनेक प्रकार थे जो कम क्षमता वाले माइक्रोस्कोप से देखे जा सकते थे।

© NCERT not to be republished

5.5.3 सहलग्नता और पुनर्योजन

लिंग-सहलग्न जीनों के अध्ययन हेतु मोरगन ने *ड्रोसोफिला* में कई द्विसंकर क्रॉस किए। ये मेंडल द्वारा मटर में किए गए द्विसंकर-क्रॉसों के समान थे। उदाहरण के लिए मोरगन

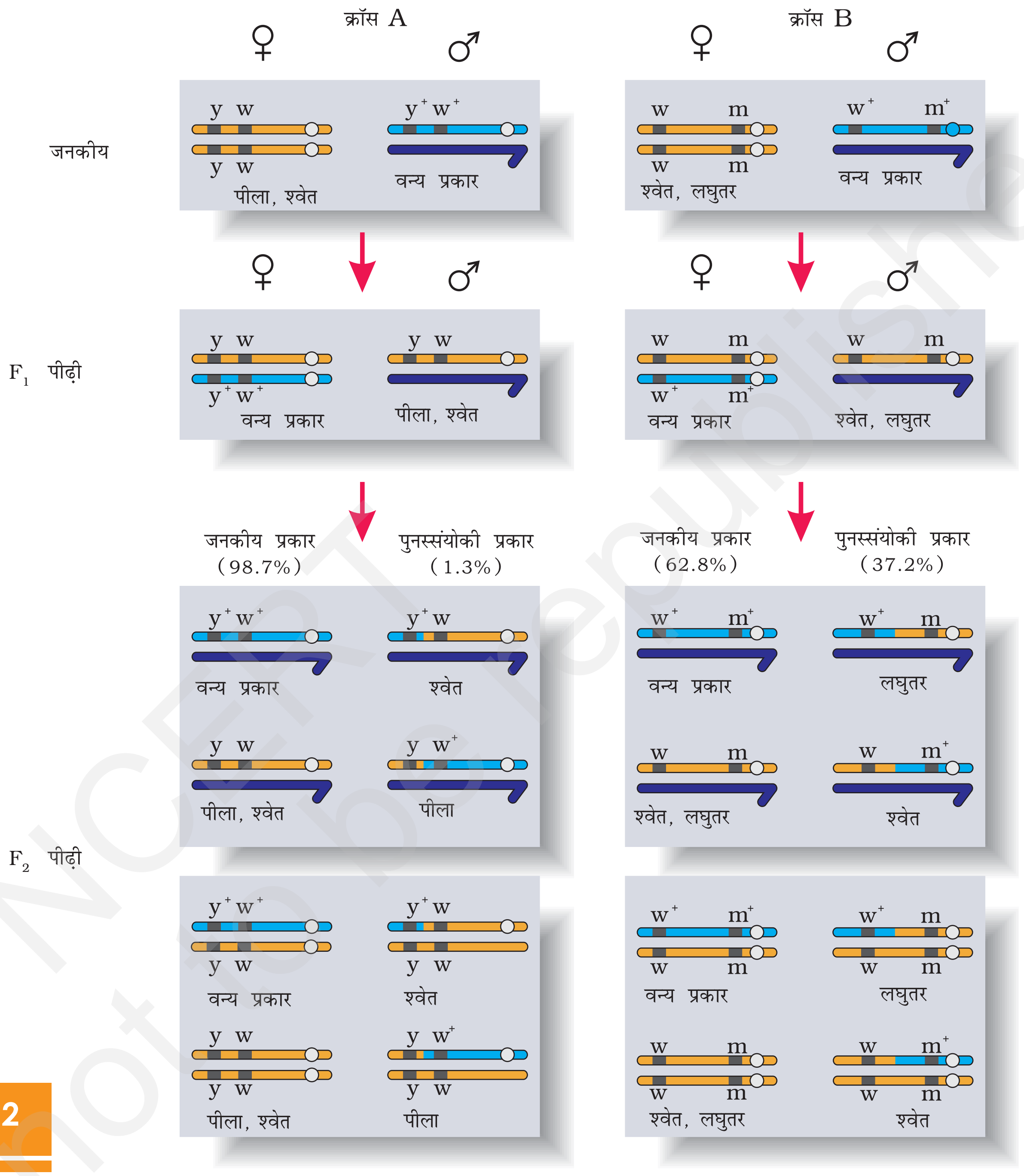

चित्र 5.11 सहलग्नता-मौसम द्वारा किए गए दो द्विसंकर क्रॉसों के परिणाम, क्रॉस A में जीन y और w के बीच संकरण दिखलाया गया है, क्रॉस B में w और m जीनों के बीच का संकरण है। यहाँ प्रभावी वन्य प्रकार के अलील को (+) प्रतीक से दिखाया गया है। नोट कीजिए कि y और w के बीच w और m की अपेक्षा सहलग्नता अधिक बलवती है।

© NCERT not to be republished

ने पीले शरीर और श्वेत आँखों वाली मक्खियों का संकरण भूरे शरीर और लाल आँखों वाली मक्खियों के साथ किया और फिर F_1 संततियों को आपस में क्रॉस करवाया। उसने देखा कि ये दो जीन जोड़ी एक दूसरे से स्वतंत्र विसंयोजित नहीं हुई और F_2 का अनुपात 9 : 3 : 3 : 1 से काफी भिन्न मिला (दो जीनों के स्वतंत्र कार्य करने पर यही अनुपात अपेक्षित था।)

मोरगन तथा उसके सहयोगी यह जानते थे कि जीन, क्रोमोसोम में स्थित हैं (यह अगले सेक्सन 5.4 में समझाया गया है) और इन्होंने शीघ्र ही यह भी जान लिया कि जब द्विसंकर क्रॉस में दो जीन जोड़ी एक ही क्रोमोसोम में स्थित होती हैं तो जनकीय जीन संयोजनों का अनुपात अजनकीय प्रकार से काफी ऊँचा रहता है। मोरगन ने इसका कारण दो जीनों का भौतिक संयोग या जुड़ा होना बतलाया। मोरगन ने इस घटना के लिए **सहलग्नता** शब्द दिया जो एक ही क्रोमोसोम की जीन जोड़ियों के साथ होने का दयोतन करता है। साथ ही अजनकीय जीन संयोजनों के उत्पादन को **पुनर्योजन** (रीकोंबीनेशन) कहा गया (चित्र 5.11) मोरगन तथा उसके दल ने यह भी पता किया कि एक ही क्रोमोसोम में स्थित होने पर भी कुछ जीन जोड़ी में अधिक सहलग्नता थीं अर्थात् पुनर्योजन बहुत कम था (चित्र 5.11 क्रास A)। उदाहरण के लिए उसने पाया कि श्वेत और पीली जीन जोड़ी में सहलग्नता अधिक थीं और इनमें पुनर्योजन 1.3 प्रतिशत था जबकि श्वेत और लघुपंख जीन का पुनर्योजन अनुपात 37.2 प्रतिशत था अर्थात् इनमें सहलग्नता कम थी। मोरगन के शिष्य एल्फ्रेड स्टर्टीवेंट ने एक ही क्रोमोसोम के जीन युग्मों की पुनर्योजन-आवृत्ति को जीनों के बीच की दूरी का माप मानकर क्रोमोसोम में इनकी स्थिति के चित्र (**रीकोम्बीनेशन मैप**) बना दिए। आजकल पूरे जीनोम के अनुक्रम के निर्धारण में आनुवंशिक नक्शे बहुत अधिक काम में लाए जा रहे हैं। ऐसा ही बाद में मानव जीनोम अनुक्रमण परियोजना में भी वर्णित किया गया।

5.4 लिंग निर्धारण

लिंग निर्धारण की क्रिया विधि आनुवंशिक विज्ञानियों के लिए हमेशा एक पहेली ही बनी रही। आनुवंशिक / क्रोमोसोम के द्वारा लिंग निर्धारण के प्रारंभिक संकेत बहुत पूर्व कीटों पर किए गए प्रयोगों से प्राप्त हुए। वास्तव में कीटों पर अनेक कोशिकीय प्रेक्षणों ने लिंग निर्धारण के आनुवंशिक / क्रोमोसोमीय आधार की संकल्पना की ओर इंगित किया। हेंकिंग (1819) ने कुछ कीटों के शुक्रजनन की विभिन्न अवस्थाओं में एक विशेष केंद्रिकीय संरचना का पता लगाया। उन्होंने यह भी देखा कि 50 प्रतिशत शुक्राणुओं में शुक्रजनन के बाद यह संरचना देखी जाती है जबकि शेष 50 प्रतिशत में यह नहीं होती। हेंकिंग ने इस संरचना को **'X काय'** नाम दिया। लेकिन इसके महत्त्व को वे समझा नहीं पाए। अन्य वैज्ञानिकों ने अगले शोधकार्यों से यह निष्कर्ष निकाला कि हेंकिंग का 'X' काय वास्तव में क्रोमोसोम ही था। इसीलिए इसे X-क्रोमोसोम कहा गया। यह भी देखा गया कि बहुत से कीटों में लिंग निर्धारण की क्रिया विधि XO प्रकार की होती है अर्थात् सभी अंडों में अन्य क्रोमोसोम (ऑटोसोम) के अलावा एक अतिरिक्त क्रोमोसोम भी होता है। दूसरी ओर कुछ शुक्राणुओं में यह X- क्रोमोसोम होता है, कुछ में नहीं। X- क्रोमोसोम सहित शुक्राणु

© NCERT not to be republished

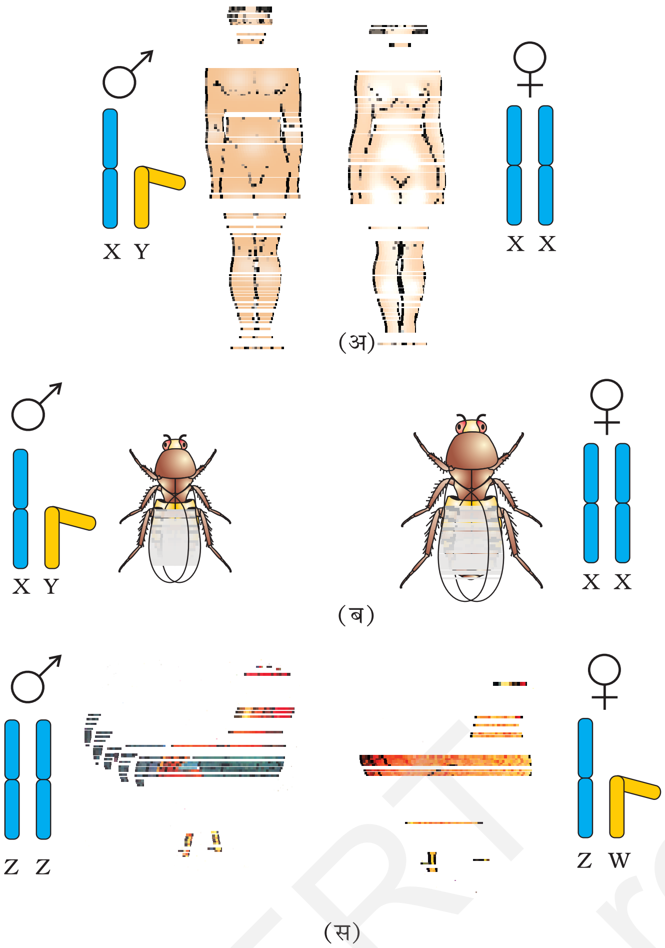

चित्र 5.12 क्रोमोसोम भिन्नताओं के द्वारा लिंग निर्धारण (अ,ब) मानव तथा ड्रोसोफिला, मादा में XX क्रोमोसोम (समयुग्मकी) तथा नर में XY (विषमयुग्मकी) स्थिति। (स) अनेक पक्षियों में मादा में असमान क्रोमोसोम ZW तथा नर में समान क्रोमोसोम ZZ।

द्वारा निषेचित अंडे मादा बन जाते हैं और जो X-क्रोमोसोम रहित शुक्राणु से निषेचित होते हैं, वे नर बनते हैं। *क्या आप सोचते हैं कि नर और मादा दोनों की क्रोमोसोम संख्या बराबर है? इस X- क्रोमोसोम की लिंग निर्धारण में भूमिका होने से इसे* ***लिंग-क्रोमोसोम*** *(सैक्स क्रोमोसोम) नाम दिया गया। शेष क्रोमोसोमों को अलिंग* ***क्रोमोसोम ऑटोसोम*** *नाम दिया गया। टिड्डा XO प्रकार के लिंग निर्धारण का एक उदाहरण है, इसमें नर में अलिंग क्रोमोसोम के अतिरिक्त केवल एक X-क्रोमोसोम होता है जब कि मादा में X-क्रोमोसोम का एक पूरा जोड़ा होता है।*

इन प्रेक्षणों की प्रेरणा से लिंग-निर्धारण की क्रियाविधि को समझने के लिए अन्य जातियों में भी अन्वेषण प्रेरित किए गए। कई अन्य कीटों तथा मानव समेत स्तनधारियों में XY प्रकार का लिंग निर्धारण देखा जाता है जहाँ नर और मादा दोनों में क्रोमोसोम संख्या समान होती है। नर में एक क्रोमोसोम तो X होता है पर उसका जोड़ीदार स्पष्टत: छोटा होता है और Y क्रोमोसोम कहलाता है। अलिंग सूत्रों की संख्या नर और मादा में बराबर होती है। दूसरे शब्दों में नर में अलिंग सूत्र के साथ XY और मादा में अलिंग सूत्र के साथ XX उदाहरणार्थ मानव तथा ड्रोसोफिला में नर में अलिंग क्रोमोसोम के अलावा एक X और एक Y क्रोमोसोम होता है जबकि मादा में अलिंग क्रोमोसोमों के अलावा एक जोड़ा X क्रोमोसोम का (चित्र 5.12 अ तथा ब)।

ऊपर के विवरण में आपने दो प्रकार के लिंग निर्धारण – अर्थात् XO प्रकार और XY प्रकार के विषय में पढ़ा। दोनों में ही नर दो प्रकार के युग्मक पैदा करते हैं जो हैं (क) या तो X क्रोमोसोम सहित या रहित और (ख) कुछ युग्मकों में X- क्रोमोसोम, और कुछ में Y क्रोमोसोम। इस प्रकार की लिंग निर्धारण क्रियाविधि को **नर विषमयुग्मकता (हिटिरोगेमिटी)** कहा जाता है। कुछ अन्य जीवों जैसे पक्षियों में दूसरे प्रकार की लिंग निर्धारण क्रियाविधि देखी गयी (चित्र 5.12 स)। इस विधि में क्रोमोसोम की कुल संख्या नर और मादा दोनों में समान होती है किंतु मादा द्वारा लिंग क्रोमोसोम के लिहाज से दो भिन्न प्रकार के युग्मकों का उत्पादन होता है, अर्थात् **मादा विषमयुग्मकता (हिटिरोगेमिटी)** पाई जाती है। पूर्व वर्णित लिंग निर्धारण से भिन्नता प्रदान करने के उद्देश्य से पक्षियों के लिंग क्रोमोसोमों को Z और W क्रोमोसोम कह दिया

© NCERT not to be republished

गया है। इन जीवों में मादा में एक Z और एक W क्रोमोसोम होता है जबकि नर में अलिंग सूत्रों के अलावा Z- क्रोमोसोम का एक जोड़ा होता है।

5.4.1 मानव में लिंग-निर्धारण

जैसाकि पहले समझाया जा चुका है कि मानव का लिंग निर्धारण XY प्रकार का होता है। कुल 23 जोड़े क्रोमोसोम में से 22 जोड़े नर और मादा में बिल्कुल एक जैसे होते हैं, इन्हें अलिंग क्रोमोसोम कहते हैं। मादा में X क्रोमोसोमों का एक जोड़ा भी होता है और नर में X के अतिरिक्त एक क्रोमोसोम Y होता है जो नर लक्षण का निर्धारक होता है। नर में शुक्रजनन के समय दो प्रकार के युग्मक बनते हैं। कुल उत्पन्न शुक्राणु संख्या का 50 प्रतिशत X युक्त होता है और शेष 50 प्रतिशत Y युक्त, इनके साथ अलिंग क्रोमोसोम तो होते ही हैं। मादा में केवल एक ही प्रकार के अंडाणु बनते हैं जिनमें X- क्रोमोसोम होता है। अंडाणु के X या Y धारी क्रोमोसोमों से निषेचित होने की प्रायिकता बराबर-बराबर रहती है। यदि अंडाणु का निषेचन X धारी शुक्राणु से हो गया तो युग्मनज (जाइगोट) मादा (XX) में परिवर्धित हो जाता है। इसके विपरीत Y क्रोमोसोम धारी शुक्राणु से निषेचन होने पर नर संतति जन्म लेती है। स्पष्ट है कि शुक्राणु की आनुवंशिक संरचना ही शिशु के लिंग का निर्धारण करती है। यह भी साफ है कि प्रत्येक गर्भावस्था में शिशु के बालक या बालिका होने की प्रायिकता 50 प्रतिशत रहती है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि समाज लड़की पैदा करने के लिए माता को दोष देता है। इस गलत धारणा के कारण उनके साथ अनेक दुर्व्यवहार होते आए हैं।

पक्षियों में लिंग निर्धारण की विधि भिन्न प्रकार की क्यों है? चूजों की उत्पत्ति के लिए जिम्मेदार कौन है शुक्राणु या अंड?

5.5 उत्परिवर्तन (म्यूटेशन)

उत्परिवर्तन वह क्रिया है जो डीएनए अनुक्रम में बदलाव ला देती है इसके परिणामस्वरुप जीव के जीनोटाइप और फीनोटाइप में परिवर्तन आ जाता है। पुनर्योजन के अतिरिक्त उत्परिवर्तन एक दूसरी क्रिया है जो डीएनए में विविधता लाती है।

अगले अध्याय में आप पढ़ेंगे कि प्रत्येक क्रोमैटिड में एक सिरे से दूसरे सिरे तक अति कुंडलित रूप में एक डीएनए का कुंडल विद्यमान रहता है। अतएव डीएनए खंड की कमी (हट जाना) या बढ़त (जुड़ना/द्विगुणन) क्रोमोसोमों में बदलाव ला देते हैं। क्योंकि जीन क्रोमोसोम में स्थित मानी जाती हैं, इसलिए क्रोमोसोमों के रूपान्तर असामान्यताओं तथा विपथनों, को जन्म देते हैं। ऐसे क्रोमोसोमीय विपथन कैंसर कोशिकाओं में सामान्यत: देखे जाते हैं।

इसके अतिरिक्त डीएनए के एकल क्षार युग्म (बेस पेयर) के परिवर्तन भी उत्परिवर्तन को जन्म देते हैं। इसे **बिंदु उत्परिवर्तन (पॉइंट म्यूटेशन)** कहते हैं। इस प्रकार के उत्परिवर्तन का जाना माना उदाहरण **दात्र कोशिका अरक्तता (सिकल सेल ऐनिमिया)** नामक रोग है। डीएनए के क्षार युग्मों के घटने-बढ़ने से **फ्रेम शिफ्ट** उत्परिवर्तजन उत्पन्न करते हैं (अगले अध्याय में वर्णित)।

© NCERT not to be republished

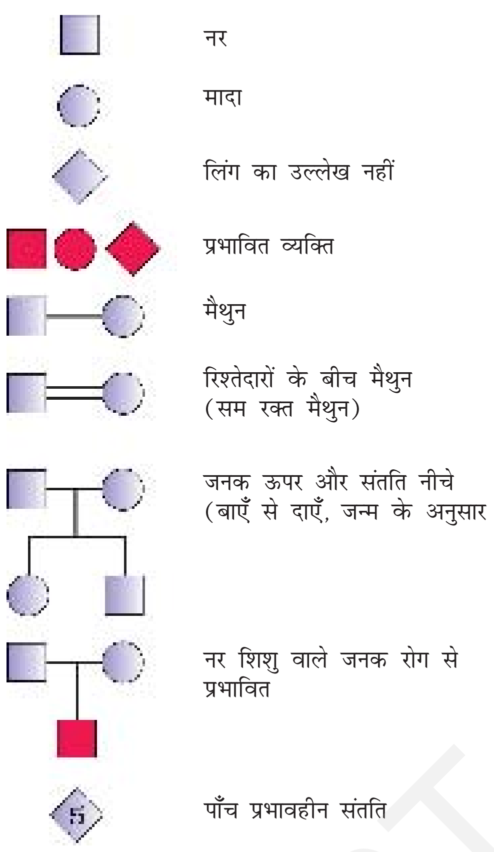

चित्र 5.13 मानव वंशावली विश्लेषण में प्रयुक्त प्रतीक

इस स्तर पर उत्परिवर्तन की क्रियाविधि की चर्चा विषय परास के बाहर है)। उत्परिवर्तनों का जन्म अनेक रासायनिक और भौतिक कारकों द्वारा होता है। इन्हें **उत्परिवर्तजन (म्यूटाजन)** नाम दिया गया है। पराबैंगनी विकिरण, जीवों में उत्परिवर्तन पैदा कर देते हैं। ये उत्परिवर्तजन ही हैं।

5.6 आनुवंशिक विकार

5.6.1 वंशावली विश्लेषण (पेडीग्री एनालेसिस)

मानव समाज में वंशागत विकारों की बात पुराने समय से चली आ रही है। इसका आधार था, कुछ परिवारों में विशेष लक्षणों के वंशबद्ध रहने की अवधारणा। मेंडल के कार्य की पुन: खोज के बाद मानव के लक्षण प्रतिरूपों की वंशागति के विश्लेषण की बात प्रारंभ हुई। यह स्पष्ट है कि मटर के पौधे और अन्य जीवों में किए गए तुलनार्थ संकर प्रयोग मानव में संभव नहीं है। इसलिए यही विकल्प रह जाता है कि विशेष लक्षण की वंशागति के संबंध में वंश के इतिहास का अध्ययन किया जाए। कई पीढ़ियों तक जारी लक्षणों के ऐसे विश्लेषण को वंशावली विश्लेषण कहते हैं। इस प्रक्रिया में वंश वृक्ष (फैमिली ट्री) में एक विशेष लक्षण का पीढ़ी दर **पीढ़ी विश्लेषण** किया जाता है।

मानव आनुवंशिकी में वंशावली अध्ययन एक महत्त्वपूर्ण उपकरण होता है जिसका उपयोग विशेष लक्षण, अपसामान्यता या रोग का पता लगाने में किया जाता है। वंशावली विश्लेषण में प्रयुक्त कुछ महत्त्वपूर्ण मानक प्रतीकों को चित्र 5.13 में दर्शाया गया है।

जैसा कि आप इस अध्याय में पढ़ चुके हैं किसी जीव का प्रत्येक लक्षण क्रोमोसोम में विद्यमान डीएनए पर स्थित जीन में निहित होता है। डीएनए ही आनुवंशिक सूचना का वाहक है और यह बिना किसी परिवर्तन के एक से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित होता जाता है। हाँ यदा-कदा परिवर्तन/रूपांतरण भी होते रहते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन या रूपांतरण को उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) कहा जाता है। मानव में कई विकार ऐसे पाए गए हैं, जिनका संबंध क्रोमोसोम या जीन के परिवर्तन रूपांतरण से जोड़ा जा सकता है।

5.6.2 मेंडलीय विकार

मोटे तौर पर विकारों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है– मेंडलीय विकार और क्रोमोसोमीय विकार। मेंडलीय विकार वे होते हैं जो एकल जीन के रूपांतरण या उत्परिवर्तन से मुख्यतया निर्धारित हो जाते हैं। ये विकार उसी विधि से संतति में पहुँचते हैं जिनका अध्ययन वंशागति के सिद्धांतों के साथ किया जा चुका है। इस प्रकार के

© NCERT not to be republished

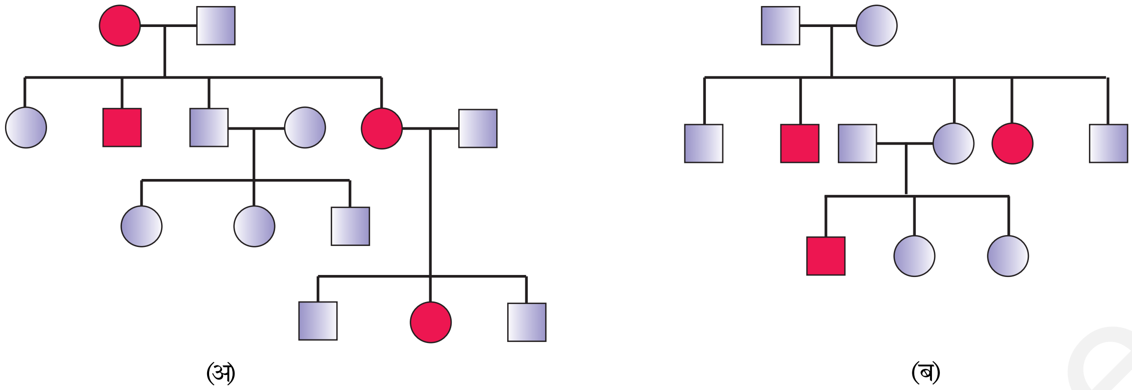

चित्र 5.14 प्रतीकात्मक वंशावली विश्लेषण (अ) अलिंगी क्रोमोसोम पर प्रभावी विशेषक जैसे मायोटोनिक दुष्पोषण (डिस्ट्रोफी), (ब) आलंगी-क्रोमोसोम पर-अप्रभावी विशेषक जैसे दात्र कोशिका अरक्तता (सिकल सेल एनिमिया)

मेंडलीय विकारों की वंशागति के उदाहरण को किसी परिवार में वंशावली विश्लेषण द्वारा खोजा जा सकता है। मेंडलीय विकारों के सर्वविदित उदाहरण हीमोफीलिया, सिस्टिक फ्राइब्रोसिस, दात्र कोशिका अरक्तता, वर्णांधता (कलर ब्लाइंडनेस), फीनाइल कीटोन्यूरिया, थैलेसीमिया इत्यादि हैं। यहाँ यह भी बताना महत्त्वपूर्ण है कि ये मेंडलीय विकार प्रभावी अथवा अप्रभावी हो सकते हैं, साथ ही जैसाकि हीमोफीलिया में होता है। यह लक्षण लिंग क्रोमोसोम-आधारित भी हो सकता है। यह सुस्पष्ट है कि X- लग्न अप्रभावी लक्षण, वाहक मादा (कैरियर मदर) से नर संतति को प्राप्त होता है। इस वंशावली का नमूना चित्र 5.14 पर प्रस्तुत है जिसमें प्रभावी और अप्रभावी लक्षण दिखलाए गए हैं। अपने अध्यापक से चर्चा करें और अलिंग तथा लिंग क्रोमोसोम से लग्न लक्षणों वाला वंशावली नक्शा बनाएँ।

हीमोफीलिया- इस लिंग सहलग्न रोग का व्यापक अध्ययन हो चुका है। इसमें प्रभाव रहित वाहक नारी से नर-संतति को रोग का संचार होता है इस रोग में रुधिर के थक्का बनने से संबद्ध एकल प्रोटीन प्रभावित होता है। यह एकल प्रोटीन एक प्रोटीन शृंखला का अंशमात्र होता है। इसके कारण आहत व्यक्ति के शरीर की एक छोटी सी चोट से भी रुधिर का निकलना बंद ही नहीं होता। विषमयुग्मजी नारी (वाहक) से यह रोग पुत्रों में जाता है। नारी की रोगग्रस्त होने की संभावना विरल होती है; क्योंकि इस प्रकार की नारी की माता को कम से कम वाहक और पिता को हीमोफीलिया से ग्रस्त होना आवश्यक होता है। (जो अधिक वय तक जीवित नहीं रह पाता) महारानी विक्टोरिया की वंशावली में अनेक हीमोफीलिया ग्रस्त वंशज थे और रानी स्वयं रोग की वाहक थी।

दात्र कोशिका -अरक्तता (सिकल सेल एनिमिया) - यह **अलिंग क्रोमोसोम लग्न** अप्रभावी लक्षण है जो जनकों से संतति में तभी प्रवेश करता है जबकि दोनों जनक जीन के वाहक होते हैं (विषमयुग्मजी)। इस रोग का नियंत्रण अलील का एकल जोड़ा Hb^A और Hb^s करता है। रोग का लक्षण (फीनोटाइप) तीन संभव जीनोटाइपों में से केवल Hb^s ($Hb^s\, Hb^s$) वाले समयुग्मकी व्यक्तियों में दर्शित होता है।

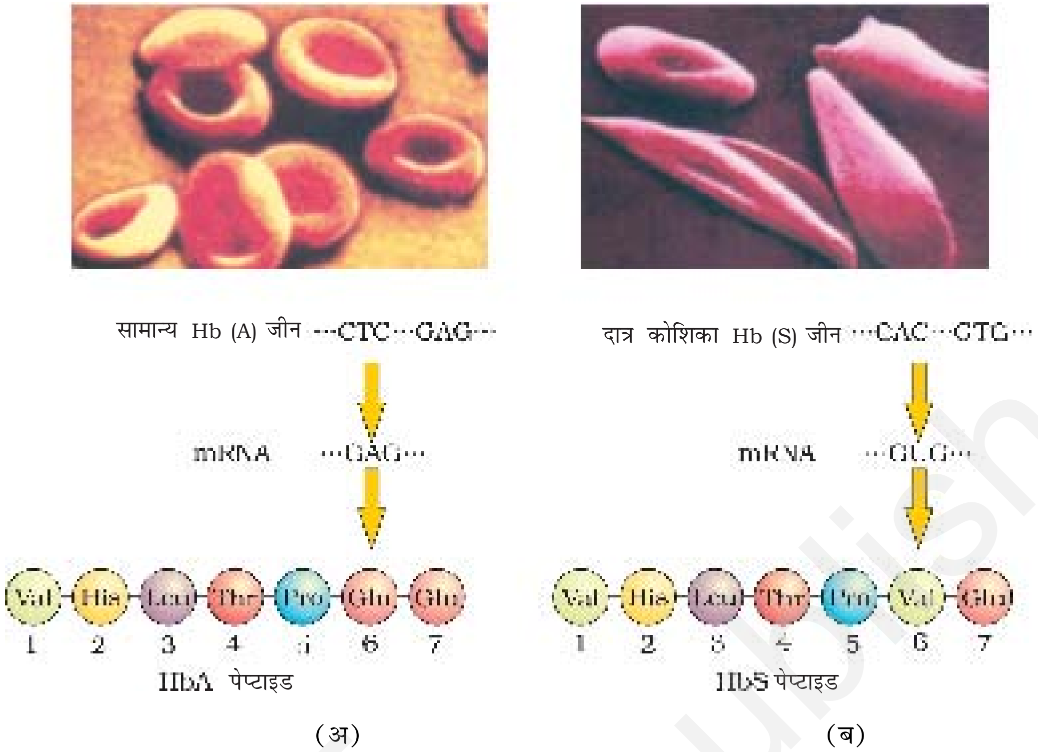

चित्र 5.15 हीमोग्लोबिन की B शृंखला के संगत अंशों के अमीनो अम्ल संघटन और लाल रुधिर कोशिका के सूक्ष्म-आरेख (अ) सामान्य व्यक्ति से (ब) दात्र कोशिका अरक्तता के रोगी से

विषमयुग्मकी (Hb^{A} Hb^{s}) व्यक्ति रोग मुक्त होते हैं परंतु वे रोग के वाहक होते हैं। उत्परिवर्तित जीन के संतति में पहुँचने की 50 प्रतिशत संभावना (अर्थात् दात्र कोशिका के लक्षण आने की) होती है (चित्र 5.15)। इस विकार का कारण हीमोग्लोबिन अणु की बीटा ग्लोबिनशृंखला की छठी स्थिति में एक अमीनों अम्ल ग्लूटैमिक अम्ल (Glu) का वैलीन द्वारा प्रतिस्थापन है। ग्लोबिन प्रोटीन में एमीनो अम्ल का यह प्रतिस्थापन बीटा ग्लोबिन जीन के छठे कोडोन में GAG का GUG द्वारा प्रतिस्थापन के कारण होता है। निम्न ऑक्सीजन तनाव में उत्परिवर्तित हीमोग्लोबिन अणु में बहुलकीकरण हो जाता है जिसके कारण RBC का आकार द्वि-अवतल बिंब से बदलकर दात्राकार (हँसिए के आकार जैसा) हो जाता है।

फीनाइल कीटोनूरिया- यह जन्मजात उपापचयी त्रुटि भी अलिंग क्रोमोसोम अप्रभावी लक्षण की भाँति ही वंशागति प्रदर्शित करती है। रोगी व्यक्ति में फीनाइल ऐलेनीन अमीनो अम्ल को टाइरोसीन अमीनो अम्ल में बदलने के लिए आवश्यक एक एंजाइम की कमी हो जाती है। परिणामस्वरुप फीनाइल ऐलेनीन एकत्रित होता जाता है और फीनाइलपाइरूविक अम्ल तथा अन्य व्युत्पन्नों में बदलता जाता है। इनके एकत्रीकरण से मानसिक दुर्बलता आ जाती है। वृक्क द्वारा कम अवशोषित हो सकने के कारण ये मूत्र के साथ उत्सर्जित हो जाते हैं।

© NCERT not to be republished

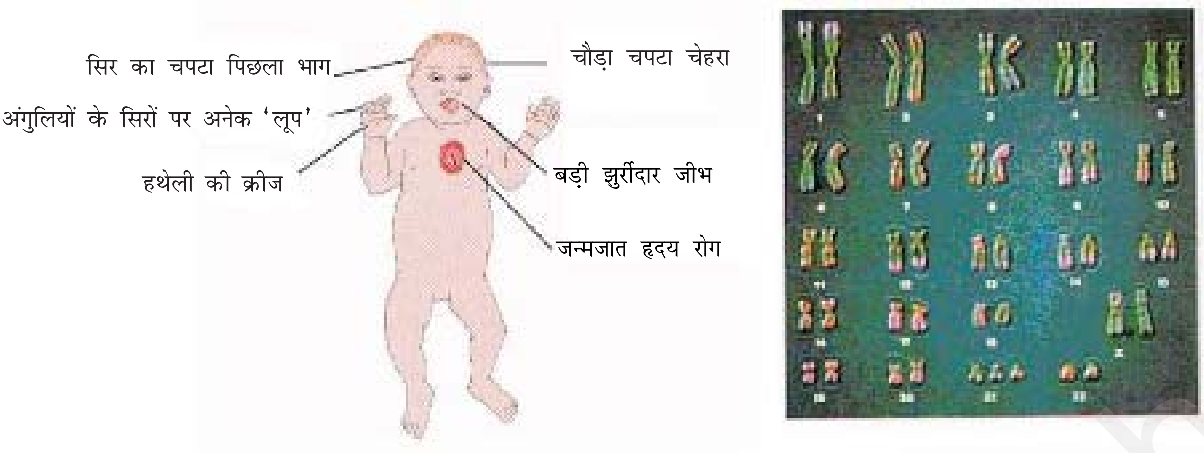

चित्र 5.16 निरूपक चित्र जिसमें डाउन सिंड्रोम का रोगी तथा उस व्यक्ति के तदनुरूप क्रोमोसोम दर्शाए गए हैं।

5.6.3. क्रोमोसोमीय विकार

दूसरी तरफ एक या अधिक क्रोमोसोमों की अनुपस्थिति, अधिकता या असामान्य विन्यास क्रोमोसोमीय विकारों के कारण होते हैं। कोशिका विभाजन के समय क्रोमेटेड के विसंयोजन की अनुपस्थिति के कारण एक क्रोमोसोम की अधिकता या हानि हो जाती है इसे **असुगुणिता (एन्युप्लोइडी)** कहते हैं। जैसे 21वें गुणसूत्र की एक प्रति की अधिकता से **डाउन सिंड्रोम** हो जाता है। इसी प्रकार एक X गुणसूत्र की हानि से नारियों में टर्नर सिंड्रोम हो जाता है। कोशिका द्रव्य विभाजन न हो सकने के कारण क्रोमोसोम का एक पूरा समुच्य अधिक हो जाता है इसे **बहुगुणिता (पालीप्लोइडी)** कहते हैं। यह अवस्था प्राय: पौधों में पाई जाती है। मानव में क्रोमोसोमों की कुल संख्या 46 (23 जोड़े) हैं। इनमें से 22 जोड़े अलिंग सूत्र होते हैं और एक जोड़ा लिंग सूत्रों का। कभी-कभी, विरले ही सही, व्यक्ति में क्रोमोसोम का एक अतिरिक्त जोड़ा शामिल हो जाता है या कभी एक जोड़े क्रोमोसोम की कमी हो जाती है। इन स्थितियों को क्रमश: क्रोमोसोम की **द्विअधि सूत्री (टेट्रासोमी)** या **द्विन्यूनसूत्री (नलसोमी)** कहा जाता है। ऐसी स्थिति के प्रभाव से व्यक्ति में गंभीर रोग हो जाता है। क्रोमोसोमीय विकारों का उदाहरण डाउन सिंड्रोम, टर्नर सिंड्रोम, क्लाइनफैल्टर सिंड्रोम है।

डाउन सिंड्रोम – इस आनुवंशिक विकार का कारण 21वें क्रोमोसोम की एक अतिरिक्त प्रति का आ जाना (21 की त्रिसूत्रता) है। इस विकार को सर्वप्रथम **लैन्गडम डाउन ने** (1866) खोजा था। रोगी व्यक्ति छोटे कद और छोटे गोल सिर का होता है, जीभ में खाँच होता है और मुँह आंशिक रूप से खुला रहता है (चित्र 5.16), चौड़ी हथेली में अभिलाक्षणिक पॉल्म कीज होती है। शारीरिक, मन: प्रेरक (साइकोमोटर) और मानसिक विकास अवरूद्ध रहता है।

© NCERT not to be republished

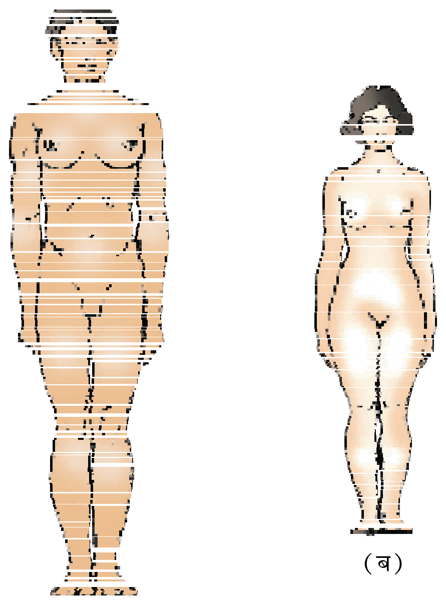

(अ)

ऊँचे कद के साथ स्त्रैण लक्षण

(ब)

छोटा कद और अल्प विकसित मादा लक्षण

चित्र 5.17 मानव में सेक्स क्रोमोसोमों की बनावट के कारण उत्पन्न आनुवंशिक विकारों का आरेखीय निरूपण (अ) क्लाइन फेल्टर विकार (ब) टर्नर विकार

क्लाइनफेल्टर सिंड्रोम – इस आनुवंशिक विकार का कारण X क्रोमोसोम की एक अतिरिक्त प्रतिलिपि है; जिसके कारण केंद्रक में 47, क्रोमोसोम (XXY) हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति समग्र रूप से तो पुंप्रधान होते हैं, किंतु मादा लक्षण (गाइनीकोमैस्टिजि अर्थात् स्त्रीवत् पुरुष वक्ष का वर्धन) भी व्यक्त हो जाते हैं (चित्र 5.17अ) ऐसे व्यक्ति बाँझ होते हैं।

टर्नर सिंड्रोम – इस विकार का कारण एक X क्रोमोसोम का अभाव होता है, अर्थात् 45 क्रोमोसोम की (XO) स्थिति। ऐसी नारी बाँझ होती है; क्योंकि अंडाशय अल्पवर्धित होते हैं और द्वितियक लैंगिक लक्षणों का अभाव होता है (चित्र 5.17 ब)।

सारांश

आनुवंशिकी या आनुवंशिक विज्ञान, जीव विज्ञान की वह शाखा है जो वंशागति के व्यवहार और सिद्धांतों का अध्ययन करती है। यह तथ्य कि, संतति अपने जनकों से आकृतिक और शरीर क्रियात्मक लक्षणों में मिलती जुलती है अनेक जीव विज्ञानियों का ध्यान आकृष्ट करता रहा। इस घटना का क्रमबद्ध अध्ययन करने वाला सर्वप्रथम वैज्ञानिक मेंडल था। मटर के पौधों में विपरीत लक्षणों की वंशागति के प्रतिरूपों का अध्ययन करते हुए मेंडल ने उन सिद्धांतों को प्रस्तावित किया जो आज वंशागति के 'मेंडल के नियम' के नाम से जाने जाते हैं। उसने प्रस्ताव किया कि लक्षणों के नियामक 'कारक' (बाद में जीन नाम वाले) जोड़े में पाए जाते हैं; जिन्हें अलील कहा गया। उसने देखा कि संतति में लक्षणों की अभिव्यक्ति भिन्न प्रथम पीढ़ी(F1), द्वितीय पीढ़ी (F2) तथा अगली पीढ़ियों में एक निश्चित प्रकार से होती है। कुछ लक्षण दूसरे के ऊपर प्रभावी होते हैं। प्रभावी लक्षणों की अभिव्यक्ति तभी होती है जब कारक विषम युग्मजी अवस्था में भी विद्यमान रहते हैं ('प्रभाविता नियम')।

अप्रभावी लक्षणों की अभिव्यक्ति केवल समयुग्मजी अवस्था में ही होती है। एक अप्रभावी गुण जो विषमयुग्मजी अवस्था में अभिव्यक्त नहीं होता उसकी समयुग्मजी अवस्था में अभिव्यक्ति हो जाती है। अतएव युग्मकों के उत्पादन के दौरान लक्षणों का विसंयोजन हो जाता है।

सभी लक्षण वास्तविक प्रभाविता नहीं दर्शाते। कुछ लक्षण अपूर्ण प्रभाविता तथा कुछ सह-प्रभाविता दिखलाते हैं। जब मेंडल ने दो जोड़े लक्षणों की वंशागति का अध्ययन किया तो पाया गया कि कारक स्वतंत्र रूप से अपव्यूहित होते हैं और यह सभी संभाव्य विकल्पों के साथ होता है। (स्वतंत्र अपव्यूहन नियम) पनेट वर्ग नामक वर्ग तालिका में युग्मकों के विभिन्न संयोजनों का सैद्धांतिक प्रतिरूपण किया गया है। क्रोमोसोम में स्थित कारक (अब जीन) जो लक्षणों का नियमन करते हैं 'जीनोटाइप' कहे जाते हैं और शारीरिक रूप से व्यक्त लक्षणों को फीनोटाइप कहा जाता है।

जब यह जानकारी प्राप्त होने के बाद कि जीन क्रोमोसोमों में स्थित होते हैं, मेंडल के नियमों और अर्धसूत्रण के दौरान होने वाली क्रोमोसोमों के विसंयोजन और अपव्यूहन के बीच सहसंबंध स्थापित किया जा सका। मेंडल नियमों को विस्तार देकर 'वंशागति का क्रोमोसोम-वाद' कहा जाने लगा। बाद में पता चला कि यदि जीन एक ही क्रोमोसोम में स्थित हों तो मेंडल का 'स्वतंत्र अपव्यूहन' नियम लागू नहीं होता। ऐसी जीन को 'सहलग्न' कहा गया। आस पास स्थित जीन एक साथ रहकर ही अपव्यूहित हुई और दूरस्थ जीनों ने पुनर्संयोजित होकर स्वतंत्र अपव्यूहन प्रदर्शित किया। सहलग्नता- मानचित्र (क्रोमोसोम-मैप) वास्तव में, एक ही क्रोमोसोम में स्थित जीनों के विन्यास से संबद्ध होते हैं।

अनेक जीन केवल मादा में प्रकट होती है और लिंग सहलग्न जीन कहलाती है। दो लिंगों (नर और नारी) में क्रोमोसोमों का एक सेट बिल्कुल समान होता है और दूसरा सेट भिन्न होता है। जो कि भिन्न थे, वे लिंग क्रोमोसोम कहलाते हैं। शेष सेट को अलिंग सूत्र (ऑटोसोम) कहा गया। सामान्य नारी में 22 जोड़े अलिंग क्रोमोसोम के और एक जोड़ा सेक्स क्रोमोसोम (XX) का होता है। नर में अलिंग सूत्र के 22 जोड़े तो होते ही हैं, एक जोड़ा लिंग सूत्रों का (XY) भी होता है। नर कुक्कुट में लिंग सूत्र ZZ तथा मादा में ZW होते हैं।

आनुवंशिक द्रव्य के परिवर्तन को म्यूटेशन (उत्परिवर्तन) कहते हैं। डी एन ए के एकल क्षारक युग्म का परिवर्तन 'बिन्दु-उत्परिवर्तन' कहलाता है। दात्र कोशिका अरक्तता रोग का कारण हीमोग्लोबिन की बीटा-श‍ृंखला का संकेतन (कोडिंग) करने वाली जीन के एक क्षारक में परिवर्तन है। वंशागत उत्परिवर्तनों का अध्ययन वंशवृक्ष बनाकर किया जा सकता है। कुछ उत्परिवर्तन पूरे क्रोमोसोम समुच्चय के परिवर्तन से बहुगुणिता या अपूर्ण समुच्चय से (असुगुणितता) संबद्ध हो सकता है। आनुवंशिक विकारों के उत्परिवर्तनी आधार को समझने में इससे सहायता मिलती है। डाउन सिंड्रोम का कारण क्रोमोसोम 21 की त्रिसूत्रता अर्थात् एक अतिरिक्त 21 क्रोमोसोम का पाया जाना है, जिसके फलस्वरूप कुल क्रोमोसोम संख्या 47 हो जाती है। टर्नर सिंड्रोम में एक X क्रोमोसोम गायब हो जाता है और लिंग क्रोमोसोम XO हो जाते हैं, क्लाइन फेल्टर सिंड्रोम में अवस्था XXY प्रदर्शित होती है। ये केंद्रक-प्ररूपों (कैरियोटाइपों) के अध्ययन से आसानी से समझा जा सकता है।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

1. मेंडल द्वारा प्रयोगों के लिए मटर के पौधे चुनने से क्या लाभ हुए?
2. निम्न में भेद करो —

   (क) प्रभाविता और अप्रभाविता

   (ख) समयुग्मजी और विषमयुग्मजी

   (ग) एकसंकर और द्विसंकर।
3. कोई द्विगुणित जीन 6 स्थलों के लिए विषमयुग्मजी हैं, कितने प्रकार के युग्मकों का उत्पादन संभव है?
4. एकसंकर क्रॉस का प्रयोग करते हुए, प्रभाविता नियम की व्याख्या करो।
5. परीक्षार्थ संकरण की परिभाषा लिखो और चित्र बनाओ।
6. एक ही जीन स्थल वाले समयुग्मजी मादा और विषमयुग्मजी नर के संकरण से प्राप्त प्रथम संतति पीढ़ी के फीनोटाइप वितरण का पनेट वर्ग बनाकर प्रदर्शन करो।
7. पीले बीज वाले लंबे पौधों (Yy Tt) का संकरण हरे बीज वाले लंबे (yy Tt) पौधे से करने पर निम्न में से किस प्रकार के फीनोटाइप संतति की आशा की जा सकती है

   (क) लंबे-हरे

   (ख) बौने हरे।
8. दो विषमयुग्मजी जनकों का क्रॉस ♂ और ♀ किया गया। मान लें दो स्थल (loci) सहलग्न है, तो द्विसंकर क्रॉस में F_1 पीढ़ी के फीनोटाइप के लक्षणों का वितरण क्या होगा?
9. आनुवंशिकी में टी.एच मौरगन के योगदान का संक्षेप में उल्लेख करें।
10. वंशावली विश्लेषण क्या है? यह विश्लेषण किस प्रकार उपयोगी है?
11. मानव में लिंग-निर्धारण कैसे होता है?
12. शिशु का रुधिर वर्ग O है। पिता का रुधिर वर्ग A और माता का B है। जनकों के जीनोटाइप मालूम करें और अन्य संतति में प्रत्याशित जीनोटाइपों की जानकारी प्राप्त करें।
13. निम्न शब्दों को उदाहरण समेत समझाएँ

    (अ) सह प्रभाविता, (ब) अपूर्ण प्रभाविता
14. बिंदु-उत्परिवर्तन क्या है? एक उदाहरण दें।
15. वंशागति के क्रोमोसोम वाद को किसने प्रस्तावित किया?
16. किन्हीं दो अलिंग सूत्री आनुवंशिक विकारों का उनके लक्षणों सहित उल्लेख करो।

© NCERT not to be republished

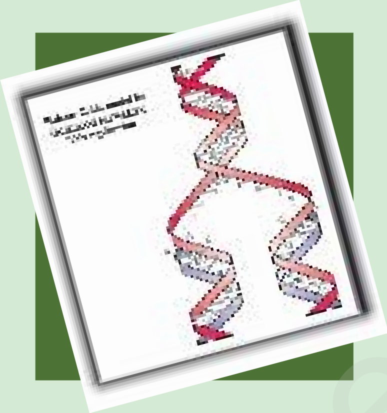

अध्याय 6

वंशागति का आणविक आधार

6.1 डीएनए

6.2 आनुवंशिक पदार्थ की खोज

6.3 आरएनए संसार

6.4 प्रतिकृति

6.5 अनुलेखन

6.6 आनुवंशिक कूट

6.7 स्थानांतरण

6.8 जीन अभिव्यक्ति का नियमन

6.9 मानव जीनोम परियोजना

6.10 डीएनए फिंगरप्रिंटिंग

पिछले अध्याय में आपने वंशागति प्रतिरूपों के आनुवंशिक आधार के बारे में पढ़ा हैं। मेंडल के नियमों के प्रतिपादन तक वे कारक जो वंशागति के प्रतिरूप को नियंत्रित करते हैं, उनके बारे में कोई जानकारी नहीं थी। सौ वर्षो बाद अनुमानित आनुवंशिक पदार्थ का पता चल पाया। अधिकतर जीवों में यह आनुवंशिक पदार्थ डीएनए – डीऑक्सीराइबो-न्यूक्लिक अम्ल था। कक्षा 11 में आप पढ़ चुके हैं कि न्यूक्लिक अम्ल न्यूक्लिओटाइड का बहुलक है।

सजीवों में दो प्रकार के न्यूक्लिक अम्ल मिलते हैं डीआक्सीराइबो-न्यूक्लिक अम्ल (डीएनए) व राइबोन्यूक्लिक अम्ल (आरएनए) अधिकतर जीवों में आनुवंशिक पदार्थ डीएनए होता है। कुछ विषाणुओं में आरएनए आनुवंशिक पदार्थ के रूप में मिलता है, लेकिन यह अधिकतर वाहक के रूप में कार्य करता है। आरएनए के अन्य और भी अतिरिक्त कार्य हैं। यह अनुकूलक, सरंचनात्मक व कुछ स्थितियों में उत्प्रेरक अणु का कार्य करता है। न्यूक्लिओटाइड्स की सरंचना व एकल ईकाईयों से जुड़कर न्यूक्लिक अम्ल बहुलक बनने के बारे में आप पहले ही कक्षा 11 में पढ़ चुके हैं। इस अध्याय में डीएनए की संरचना, इसकी प्रतिकृति, डीएनए से आरएनए के निर्माण की विधि (अनुलेखन), आनुवंशिक कूट (कोड) जो प्रोटीन्स में अमीनो अम्लों के क्रम को निर्धारित करते हैं प्रोटीन संश्लेषण (स्थानांतरण) प्रक्रिया

© NCERT not to be republished

व इनके नियंत्रण के प्रारंभिक आधार के बारे में पढ़ेंगे। पिछले दशक में मानव जीनोम में स्थित पूर्ण न्यूक्लियोराइड्स क्रमों के निर्धारण से जीनोमीक्स के नए महाकल्प को आरंभ हुआ। इस अध्याय के अंतिम खंड में मानव जीनोम अनुक्रम की आवश्यक पहलुओं एवं इसके परिणामों के बारे में वर्णन किया जाएगा।

अपनी चर्चा की शुरुआत सबसे पहले सजीवों में मिलने वाले सर्वाधिक रुचिकर अणु डीएनए की संरचना के अध्ययन से करें। आगे के खंडों में इस बात को समझने का प्रयास करेंगे कि यह बहुतायत से मिलने वाला आनुवंशिक पदार्थ क्यों है व इसका आएएनए के साथ क्या संबंध है।

6.1 डीएनए

डीएनए–डीआक्सीराइबोन्यूक्लिओटाइड्स का एक लंबा बहुलक है– डीएनए की लंबाई सामान्यतया इसमें मिलने वाले न्यूक्लियोटाइड्स (न्यूक्लियोटाइड्स युग्म का संबंध क्षार युग्म से है) पर निर्भर है। यह किसी भी जीव की विशेषता है। उदाहरणार्थ – एक जीवाणुभोजी जिसे ϕ174 कहते हैं इसमें 5386 न्यूक्लिओटाइडस मिले हैं, जीवाणुभोजी लैंब्डा में 48502 क्षार युग्म, इस्चेरिचिया कोलाई में 4.610^6 क्षार युग्म व मनुष्य के अगुणित डीएनए में 3.310^9 क्षार युग्म है। अब इस लंबे बहुलक की संरचना का वर्णन करेंगे।

6.1.1 पॉलीन्यूक्लियोटाइड श्रृंखला की संरचना

पॉलीन्यूक्लियोटाइड श्रृंखला (डीएनए या आरएनए) की रासायनिक संरचना संक्षेप में निम्न है। न्यूक्लियोटाइड के तीन घटक होते हैं – नाइट्रोजनी क्षार, पेंटोस शर्करा (आरएनए के मामले में रिबोस तथा डीएनए में डीऑक्सीरिबोज) और एक फॉस्फेट ग्रुप। नाइट्रोजनी क्षार दो प्रकार के होते है – प्यूरीन्स (एडेनीन व ग्वानीन) व पायरिमिडीन (साइटोसीन, यूरेसिल व थाइमीन)। साइटोसीन डीएनए व आरएनए दोनों में मिलता है जबकि थाइमीन डीएनए में मिलता है। थाइमीन के स्थान पर यूरेसील आरएनए में मिलता है। नाइट्रोजनी क्षार नाइट्रोजन ग्लाइकोसिडिक कंध द्वारा पेंटोस शर्करा से जुड़कर न्यूक्लियोसाइड बनाता है जैसे – एडीनोसीन या डीऑक्सी एडीनोसीन, ग्वानोसीन या डीऑक्सी ग्वानोलीन, साइटीडीन या डीऑक्सीसाइटीडीन व यूरीडीन या डीऑक्सी थाइमीडीन। जब फॉस्फेट समूह फॉस्फोएस्टर बंध द्वारा न्यूक्लीयोसाइड के 5'हाइड्रॉक्सील समूह से जुड़ जाता है तब संबंधित न्यूक्लियोटाइड्स (डीऑक्सी न्यूक्लियोटाइड्स उपस्थित शर्करा के प्रकार पर निर्भर है) का निर्माण होता है। दो –न्यूक्लियोटाइड्स 3'–5' फॉस्फोडाइस्टर बंध द्वारा जुड़कर डाईन्यूक्लियोटाइड का निर्माण करता है। इस तरह से कई न्यूक्लियोटाइड्स जुड़कर एक पॉलीन्यूक्लियोटाइड्स श्रृंखला का निर्माण करते हैं। इस तरह से निर्मित बहुलक के राइबोज शर्करा के 5' किनारे पर स्वतंत्र फॉस्फेट समूह मिलता है जिसे पॉलीन्यूक्लियोटाइडश्रृंखला का 5' किनारा कहते हैं। ठीक इसी तरह से बहुलक के दूसरे किनारे पर राइबोज मुक्त 3' – हाइड्रॉक्सील समूह से जुड़ा होता है। पॉलीन्यूक्लियोटाइड

© NCERT not to be republished

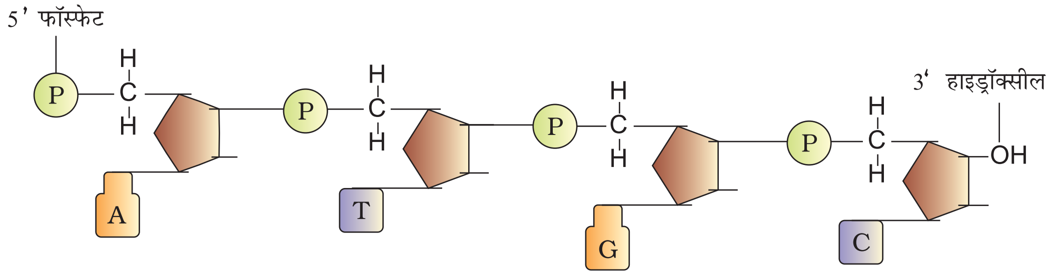

चित्र 6.1 एक पॉलिन्यूक्लियोटाइड शृंखला

शृंखला का 3' किनारा कहते हैं। पॉलीन्यूक्लियोटाइड शृंखला के आधार का निर्माण शर्करा व फॉस्फेट्स से होता है। नाइट्रोजनी क्षार शर्करा अंश से जुड़ा होता है जो आधार से प्रक्षेपित होता है (चित्र 6.1)

आरएनए में प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड अवशेष के राइबोज की 2' जगह पर एक अतिरिक्त हाइड्रॉक्सील समूह स्थित होता है। आरएनए में थाइमीन (5'–मथिल यूरेसील थाइमीन का दूसरा रासायनिक नाम है) की जगह पर यूरेसील मिलता है।

फ्रेडरीच मेस्चर ने 1869 में केंद्रक में मिलने वाले अम्लीय पदार्थ डीएनए की खोज की थी। उसने इसका नाम 'न्यूक्लिन' दिया। ऐसे लंबे संपूर्ण बहुलक को तकनीकी कमियों के कारण विलगित करना कठिन था, इस कारण से बहुत लंबे समय तक डीएनए की संरचना के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं थी। मौरिस विल्किन्स व रोजलिंड फ्रैंकलिन द्वारा दिए गए एक्स–रे निवर्तन आंकड़े के आधार पर 1953 में जेम्स वाट्सन व फ्राँन्सिस क्रीक ने डीएनए की संरचना का **द्विकुंडली** नमूना प्रस्तुत किया। उनके प्रस्तावों में पॉलीन्यूक्लियोटाइड शृंखलाओं के दो लड़ियों के बीच क्षार युग्मन की उपस्थिति एक बहुत प्रमाणित शृंखला (चेन) थी। उपरोक्त प्रस्ताव द्विकुंडली डीएनए के इर्विन चारगाफ़ के परीक्षण के आधार पर भी था जिसमें इसने बताया कि **एडनिन** व **थाइमिन** तथा **ग्वानिन** व **साइटोसीन** के बीच अनुपात स्थित व एक दूसरे के बराबर रहता है।

क्षार युग्मन पॉलीन्यूक्लियोटाइड शृंखलाओं की एक खास विशेषता है। ये शृंखलाएँ एक दूसरे के पूरक है इसलिए एक रज्जुक में स्थित क्षार क्रमों के बारे जानकारी होने पर दूसरी रज्जुक के क्षार क्रमों की कल्पना कर सकते हैं। यदि डीएनए (इसे पैतृक डीएनए कहते हैं) की प्रत्येक रज्जुक नए रज्जुक के संश्लेषण हेतु टेम्पलेट का कार्य करते हैं। इस तरह से दो द्विरज्जुकीय डीएनए (जिसे संतति डीएनए कहते हैं) का निर्माण होता है जो पैतृक डीएनए अणु के समान होते हैं। इस कारण से आनुवंशिक डीएनए की संरचना के बारे में बहुत स्पष्ट जानकारी मिल सकी।

द्विकुंडली डीएनए की संरचना की खास विशेषताएँ निम्न हैं —

(क) यह दो पॉलीन्यूक्लियोटाइड शृंखलाओं का बना होता है जिसका आधार शर्करा–फॉस्फेट का बना होता है व क्षार भीतर की ओर प्रक्षेपी होता है।

(ख) दोनों शृंखलाएँ प्रति समानांतर ध्रुवणता रखती है। इसका मतलब एक शृंखला को ध्रुवणता 5' से 3' की ओर हो तो दूसरे की ध्रुवणता 3' से 5' की तरह होगी।

(ग) दोनों रज्जुकों के क्षार आपस में हाइड्रोजन बंध द्वारा युग्मित होकर क्षार युग्मक बनाते हैं। एडेनिन व थाइमिन जो विपरीत रज्जुकों में होते हैं। आपस में दो

© NCERT not to be republished

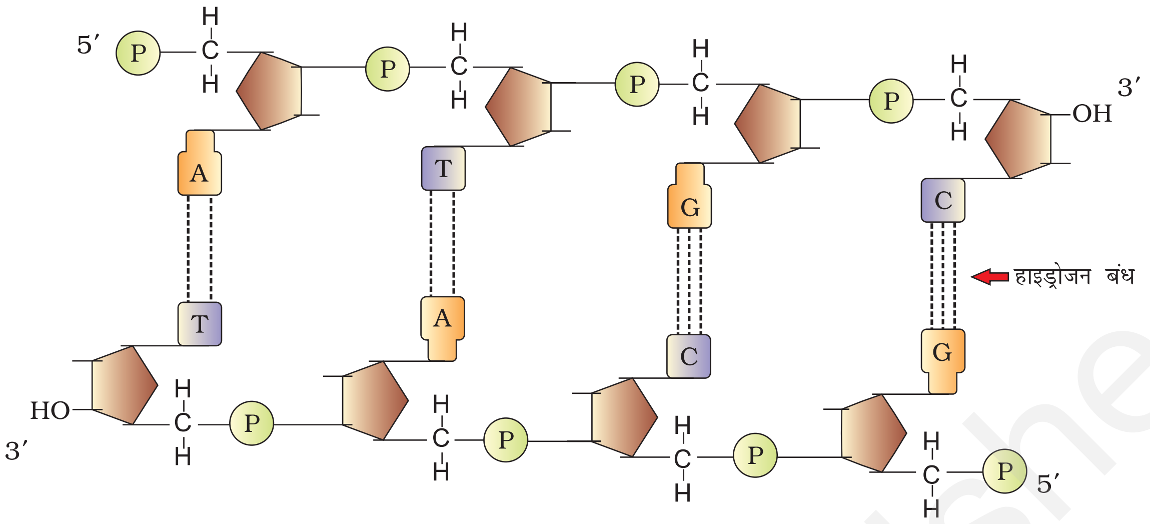

चित्र 6.2 द्विरज्जुकीय पॉलीन्युक्लियोटाइड श्रृंखला

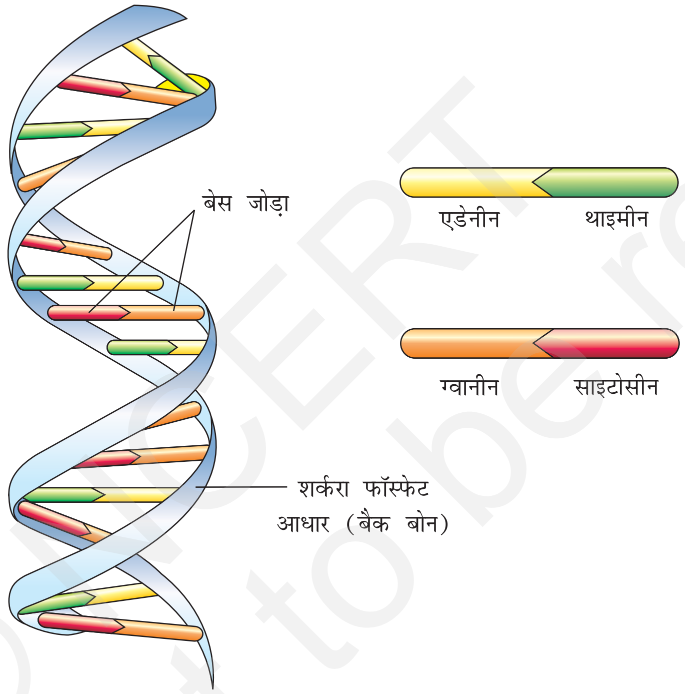

चित्र 6.3 द्विकुंडली डीएनए

हाइड्रोजन बंध बनाते हैं। ठीक इसी तरह से ग्वानीन साइटोसलीन से तीन-हाइड्रोजन बंध द्वारा बँधा रहता है जिसके फलस्वरूप सदैव यूरीन के विपरीत दिशा में पीरीमिडन होता है। इससे कुंडली के दोनों रज्जुकों के बीच लगभग समान दूरी बनी रहती है (चित्र 6.2)।

(घ) दोनों शृंखलाएँ दक्षिणवर्ती कुंडलित होती हैं। कुंडली का पिच 3.4 नैनोमीटर (एक नैनोमीटर एक मीटर का 10 करोड़वाँ भाग होता है वह 10^{-9} मीटर के बराबर है) व प्रत्येक घुमाव में लगभग 10 क्षार युग्मक मिलते हैं। परिणामस्वरूप एक कुंडली में एक क्षार युग्मक के बीच लगभग 0.34 नैनोमीटर की दूरी होती है।

(ङ) द्विकुंडली में एक क्षार युग्म की सतह के ऊपर दूसरे स्थित होते हैं। इसके अतिरिक्त हाइड्रोजन बंध कुंडलिनी संरचना को स्थायित्व प्रदान करते हैं।

प्यूरीन व पीरीमीडीन की संरचनात्मक तुलना करो। क्या आप बता सकते हैं कि डीएनए में दो पॉलीन्यूक्लियोटाइड शृंखलाओं के बीच की दूरी हमेशा लगभग समान क्यों रहती है? (चित्र 6.3)।

डीएनए की द्विकुंडली संरचना का प्रस्ताव यू परिक्रमी है कि आनुवांशिक उलझाव को सरल तरीके से व्याख्या करने में सक्षम है। शीघ्र ही आणविक जीव विज्ञान में फ्रांसिस क्रिक ने मूल सिद्धांत (सेंट्रल डोग्मा) का विचार प्रस्तुत किया जिससे स्पष्ट है कि

© NCERT not to be republished

आनुवांशिक सूचनाओं का बहाव डीएनए से आरएनए व इससे प्रोटीन की तरह रहता है (डीएनए → आरएनए → प्रोटीन)।

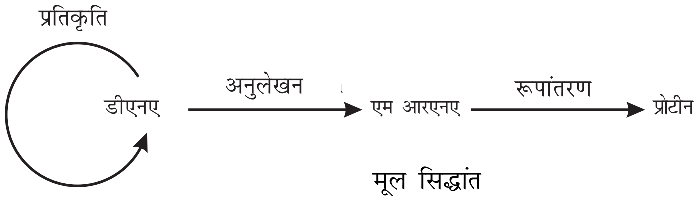

मूल सिद्धांत

कुछ विषाणुओं में उपरोक्त बहाव विपरीत दिशा आरएनए से डीएनए की तरफ भी होता है। क्या तुम इस प्रक्रम के लिए एक साधारण नाम का सुझाव कर सकते हो?

6.1.2 डीएनए कुंडली का पैकेजिंग

लगातार दो क्षार युग्मों के बीच की दूरी 0.34 नैनोमीटर (0.34×10^{-9} मीटर) मान ली जाए और यदि एक प्रारूपी स्तनधारी कोशिका में डीएनए द्विकुंडली की लंबाई की गणना (साधारणतया सभी क्षार युग्म की संख्या को लगातार दो क्षार युग्म के बीच की दूरी से गुणा करने पर दूरी की गणना कर सकते हैं, वह है 6.6×10^{9} क्षार युग्म $\times$ 0.34 $\times$ 10^{-9} मीटर प्रति क्षार युग्म) की जाए तो यह लगभग 2.2 मीटर के बराबर होगी। यह लंबाई प्रारूपी केंद्रक की लंबाई-चौड़ाई (लगभग 10^{-6} मीटर) से काफी अधिक है इस तरह एक लंबा बहुलक एक कोशिका में कैसे पेकेज्ड होता है?

यदि ई.कोलाई डीएनए की लंबाई 1.36 मिलीमीटर है तो क्या आप ई.कोलाई में क्षार युग्मों की संख्या की गणना कर सकते हैं?

असीमकेंद्रकी जैसी **ई.कोलाई** जिसमें स्पष्ट केंद्रक नहीं मिलता है इसके बावजूद भी डीएनए पूरी कोशिका में नहीं फैला होता है। डीएनए (ऋणात्मक आवेशित) कुछ प्रोटीन्स (धनात्मक आवेशित) से बँधकर एक जगह पर स्थित होते हैं जिसे केंद्रकाभ (न्यूक्लिआएड) कहते हैं। न्यूक्लीआएड में डीएनए बड़े लूपों में व्यवस्थित होता है जो प्रोटीन से जुड़े होते हैं।

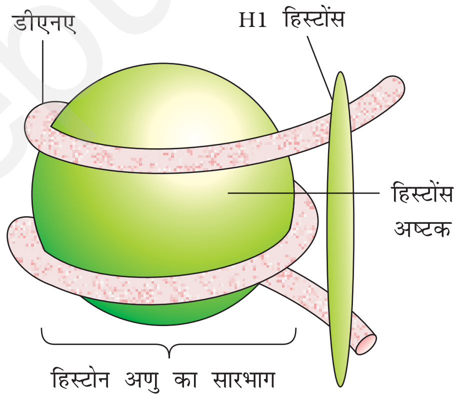

चित्र 6.4अ न्यूक्लियोसोम

ससीमकेंद्रकी/सुकेंद्रकी में यह संरचना और काफी जटिल होती है। धनात्मक आवेशित क्षारीय प्रोटीन का समूह होता है जिसे **हिस्टोन्स** कहते हैं। इस प्रोटीन्स का आवेश, आवेशित पार्श्व श्रृंखलाओं में स्थित एमीनो अम्लों की बहुलता पर निर्भर करता है। हिस्टोन्स में क्षारीय एमीनो अम्लीय लाइसीन व आरजीनीन अधिक मात्रा में मिलते हैं। दोनों एमीनो अम्ल की पार्श्व श्रृंखलाओं पर धनात्मक आवेश होता है। हिस्टोन व्यवस्थित होकर आठ हिस्टोन अणुओं की एक ईकाई बनाता है जिसे **हिस्टोन अष्टक** कहते हैं। धनात्मक आवेशित हिस्टोन अष्टक चारो तरफ से ऋणात्मक आवेशित डीएनए से सटा होता है जिसे **न्यूक्लियोसोम** कहते हैं (चित्र 6.4अ)। एक प्रारूपी न्यूक्लियोसोम 200 क्षार युग्म की डीएनए कुंडली होती है। केंद्रक में मिलने वाली एक संरचना जिस पर

© NCERT not to be republished

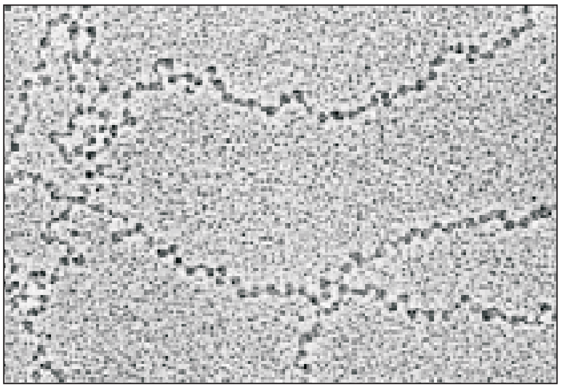

चित्र 6.4ब ई एम दृश्य 'डोरी पर बीड्स'

न्यूक्लियोसोम्स एक के बाद एक मिलते है उसे **क्रोमेटीन** कहते हैं – जो केंद्रक में अभिरंजित धागे की तरह की संरचना होती है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर न्यूक्लियोसोम्स क्रोमेटीन जिस तरह से 'डोरी पर बीड्स' की तरह से दिखाई पड़ते हैं (चित्र 6.4ब)।

सैद्धांतिक रूप से तुम सोच सकते हो कि एक स्तनधारी कोशिका में ऐसे दाने (न्यूक्लियोसोम) की तरह की रचना की संख्या क्या हो सकती है?

डोरी पर बीड्स सदृश संरचना क्रोमेटीन में कोष्ठित होकर क्रोमेटीन धागों (सूत्रों) का निर्माण करती है जो आगे कुंडलित व संघनित होकर कोशिका विभाजन की मध्यावस्था में गुणसूत्र का निर्माण करते हैं। उच्च स्तर पर क्रोमेटीन के पेकेजिंग हेतु अतिरिक्त प्रोटीन की आवश्यकता होती है जिसे सामूहिक रूप से **गैर-हिस्टोन गुणसूत्रीय प्रोटीन (नान-हिस्टोन क्रोमोसोमल प्रोटीन, एन एस सी)** कहते हैं। एक प्रारूपी केंद्रक में कुछ जगहों पर क्रोमेटीन ढीले-ढाले बँधे (हल्के अभिरंजित) होते हैं जिसे **'यूक्रोमेटीन'** कहते हैं। क्रोमेटीन जो काफी अच्छे ढंग से बँधे होते हैं व गाढ़े रंग के दिखायी पड़ते हैं उसे **'हेटोरोक्रोमेटीन'** कहते हैं।

6.2 आनुवंशिक पदार्थ की खोज

मेस्चर द्वारा न्यूक्लिन व मेंडल के वंशागति सिद्धांतों तथा एक लंबे समय के बाद यह सिद्ध व ज्ञात हो सका कि डीएनए आनुवंशिक पदार्थ के रूप में कार्य करता है। आनुवंशिक वंशागति के आणविक आधार की खोज 1926 में हुई। ग्रेगर मेंडल, वाल्टर सटन, थामस हंट मार्गन व अन्य दूसरे वैज्ञानिकों की पूर्व खोजों के आधार पर स्पष्ट हो गया कि गुणसूत्र अधिकतम कोशिकाओं के केंद्रक से मिलता है। लेकिन इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिल सका कि कौन-सा अणु वास्तव में आनुवंशिक पदार्थ है।

रूपांतरीय सिद्धांत – वर्ष 1928 में फ्रेडेरिक ग्रिफीथ ने स्ट्रेप्टोकोकस नीमोनी (जीवाणु जो निमोनिया के लिए जिम्मेदार है) के साथ कई प्रयोगों से रूपांतरण की अच्छे ढंग से व्याख्या थी। उनके प्रयोगों के दौरान एक सजीव जीव (जीवाणु) के प्राकृतिक रूप में परिवर्तन हो गया।

जब स्ट्रेप्टोकोकस नीमोनी (न्यूमोकोकस) जीवाणु की संवर्धन प्लेट पर वृद्धि करता है तब इसकी कुछ चिकनी चमकीली कालोनी (S) व दूसरी सक्ष कालोनी (R) का निर्माण होता है। यह एस प्रभेद के जीवाणु में श्लेष्मा (बहुशर्कराइड) युक्त आवरण होता है जबकि आर प्रभेद (उग्र) से संक्रमित होते हैं। वे नीमोनिया संक्रमण से मर जाते हैं जबकि आर प्रभेद द्वारा नीमोनिया नहीं होता है।

एस प्रभेद ⟶ चूहे में प्रवेश कराया गया ⟶ चूहा मर जाता है

आर प्रभेद ⟶ चूहे में प्रवेश कराया गया ⟶ चूहा जीवित रहता है

© NCERT not to be republished

ग्रीफिथ ने जीवाणु को गर्म करने पर उन्हें मृत पाया। उसने पाया कि गर्म करने पर मृत एस प्रभेद जीवाणु को चूहे में प्रवेश कराने से उसकी मृत्यु नहीं हो पायी। लेकिन जब उसमें गर्म करने से मृत एस व सजीव आर जीवाणु के मिश्रण को चूहे में प्रवेश कराया तब चूहे की मृत्यु हो गयी। इस मृत चूहे से उसने सजीव एस जीवाणु को विलगित किया।

एस प्रभेद (ताप से मृत) ⟶ चूहे में स्थानांतरित ⟶ चूहा जीवित रहता है

एस प्रभेद (ताप से मृत) + आर प्रभेद (सजीव) ⟶ चूहे में स्थानांतरित ⟶ चूहा मर जाता है

ग्रीफिथ ने बताया कि आर-प्रभेद जीवाणु ताप मृत एस-प्रभेद जीवाणु द्वारा रूपांतरित किए गए। यह रूपांतरित कारक ताप मृत एस-प्रभेद से आर-प्रभेद में स्थानांतरित होने से इसमें चिकनी बहुशर्कराइड आवरण का निर्माण होता है जिससे यह उग्र रूप में परिवर्तन हो जाता है। यह निश्चित ही आनुवंशिक पदार्थ के स्थानांतरण के कारण हो पाता है। इन प्रयोगों से आनुवंशिक पदार्थ के जीव रासायनिक प्रकृति के बारे में नहीं बताया जा सकता है।

रूपांतरित सिद्धांत के जीव रासायनिक लक्षण – ओसवाल्ड एबेरी, कोलीन मैकलिओड व मैक्लीन मैककार्टी (1933-44) के कार्य के पहले ऐसा समझा जाता था कि आनुवंशिक पदार्थ प्रोटीन है। ग्रीफिथ के सभी प्रयोगों के आधार पर रूपांतरित सिद्धांत की जीव रासायनिक प्रकृति के बारे में पता चला।

ताप मृत एस कोशिकाओं से जैव रासायनों (प्रोटीन, डीएनए, आरएनए आदि) को अलग कर यह पता लगाने के किए शोधित किया कि इनमें से कौन आर कोशिका को एस कोशिका में रूपांतरित करने में सहायक होता है। उन्होंने इस बात का पता लगाया कि एस जीवाणु का केवल डीएनए ही आर जीवाणु को रूपांतरित कर सकता है।

उन्होंने इस बात का भी पता लगाया कि प्रोटीन पाचक एंजाइम (प्रोटीएजिज) व आरएनए पाचक एंजाइम (आरएनेज) इस रूपांतरण को प्रभावित नहीं करते हैं, इसलिए रूपांतरित पदार्थ प्रोटीन या आरएनए नहीं है। डीएनएज से पाचन के बाद रूपांतरण प्रक्रिया बंद हो जाती है। इससे स्पष्ट है कि डीएनए ही रूपांतरण के लिए जिम्मेदार है। इससे उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि आनुवंशिक पदार्थ डीएनए है, लेकिन इस बात से सभी जीव विज्ञानी सहमत नहीं थे।

डीएनएएस (DNAs) व डीएनेज (DNase) के बीच क्या कोई अंतर है?

© NCERT not to be republished

6.2.1 आनुवंशिक पदार्थ डीएनए है

डीएनए आनुवंशिक पदार्थ है इसके बारे में सुस्पष्ट प्रमाण अल्फ्रेड हर्षे व मार्था चेस (1952) के प्रयोगों से प्राप्त हुआ। इन्होंने उन विषाणुओं पर कार्य किया जो जीवाणु को संक्रमित करते हैं जिसे जीवाणुभोजी कहते हैं।

जीवाणुभोजी जीवाणु से चिपकते हैं अपने आनुवंशिक पदार्थ को जीवाणु कोशिका में भेजते हैं। जीवाणु कोशिका विषाणु के आनुवंशिक पदार्थ को अपना समझने लगते हैं जिससे आगे चलकर अधिक विषाणुओं का निर्माण होता है। हर्षे व चेस ने इस बात का पता लगाने के लिए प्रयोग किया कि विषाणु से प्रोटीन या डीएनए निकल कर जीवाणु में प्रवेश करता है।

उन्होंने कुछ विषाणुओं को ऐसे माध्यम पर पैदा किया जिसमें एक को विकिरण सक्रिय फॉस्फोरस व दूसरे विषाणुओं को विकिरण सक्रिय सल्फर पर वृद्धि किया था। जिस विषाणु को विकिरण सक्रिय फॉस्फोरस की उपस्थिति में पैदा किया। उसमें विकिरण सक्रिय डीएनए पाया गया जबकि विकिरण सक्रिय प्रोटीन नहीं था, क्योंकि डीएनए में फॉस्फोरस होता है; प्रोटीन नहीं। ठीक इसी तरह से विषाणु जिसे विकिरण सक्रिय सल्फर

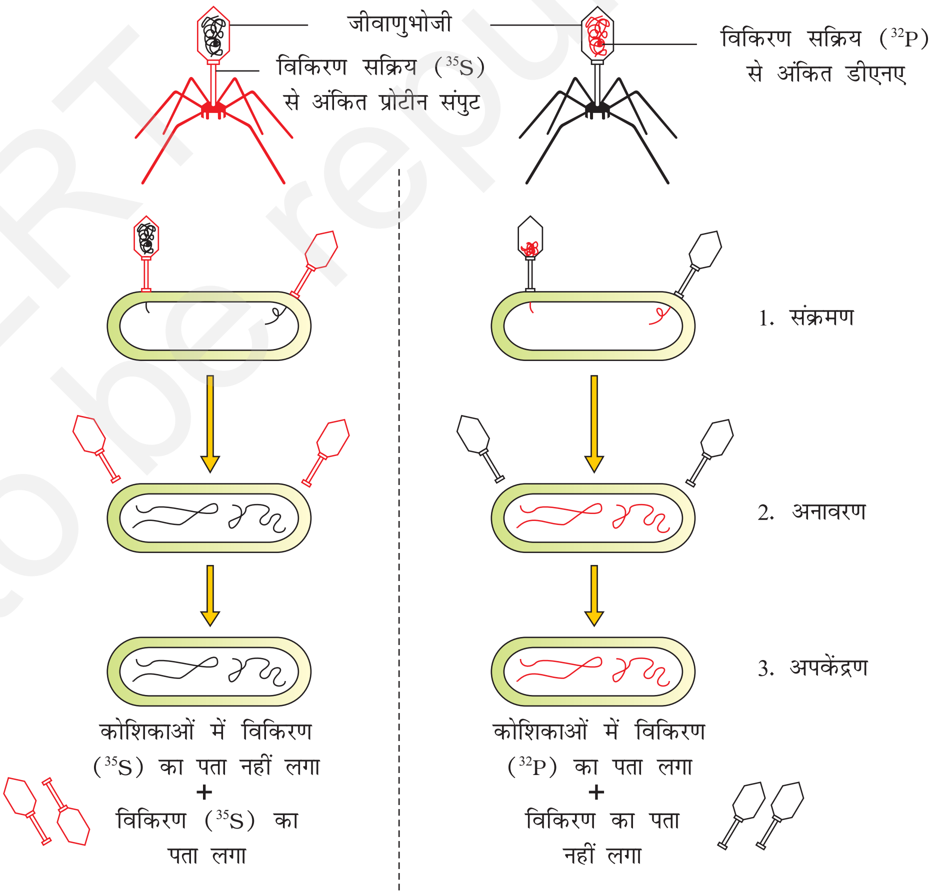

चित्र 6.5 हर्षे-चेस का प्रयोग

© NCERT not to be republished

की उपस्थिति में पैदा किया गया उनमें विकिरण सक्रिय प्रोटीन पाई गई, डीएनए विकिरण सक्रिय नहीं था; क्योंकि डीएनए में सल्फर नहीं मिलता है।

विकिरण सक्रिय जीवाणु भोजी *ई.कोलाई* जीवाणु से चिपक जाते हैं। जैसे संक्रमण आगे बढ़ता है जीवाणु को संमिश्रक में हिलाने से विषाणु आवरण अलग हो जाता है। जीवाणुओं को अपकेंद्रणयंत्र में प्रचक्रण कराने से विषाणु कण जीवाणुओं से अलग हो जाते हैं।

जो जीवाणु विकिरण सक्रिय डीएनए रखने वाले विषाणु से संक्रमित हुए थे, वे विकिरण सक्रिय रहे। इससे स्पष्ट है कि जो पदार्थ विषाणु से जीवाणु में प्रवेश करता है, वह डीएनए है। जो जीवाणु उन विषाणुओं से संक्रमित थे जिनमें विकिरण सक्रिय प्रोटीन था, वे विकिरण सक्रिय नहीं हुए। इससे संकेत मिलता है कि प्रोटीन विषाणु से जीवाणु में प्रवेश नहीं करता है। इस कारण से आनुवंशिक पदार्थ डीएनए ही है जो विषाणु से जीवाणु में जाता है (चित्र 6.5)।

6.2.2 आनुवंशिक पदार्थ के गुण (डीएनए बनाम आरएनए)

पिछली चर्चाओं से यह स्पष्ट है कि प्रोटीन बनाम डीएनए के बीच जो विवाद आनुवंशिक पदार्थ को लेकर था वह अब स्पष्ट रूप से हर्षे व चेस के प्रयोग से सुलझ चुका है। अब यह सर्वमान्य हो चुका है कि डीएनए आनुवंशिक पदार्थ के रूप में कार्य करता है। फिर भी यह स्पष्ट हो गया कि कुछ विषाणुओं में आरएनए (उदाहरण –टोबैको मोज़ेक वाइरस, क्यूबीटा बैक्टिरीयोफेज आदि) आनुवंशिक पदार्थ है। कुछ प्रश्नों के उत्तर आपको देने हैं जैसे – क्यों डीएनए प्रमुख आनुवंशिक पदार्थ है, जबकि आरएनए दूत व अनुकूलन जैसे सक्रिय कार्य करता है, दोनों न्यूक्लिक अम्ल अणुओं की रासायनिक संरचना में अंतर बताइए।

क्या आप डीएनए व आरएनए के बीच दो रासायनिक अंतरों को बता सकते हो?

एक अणु जो आनुवंशिक पदार्थ के रूप में कार्य कर सकता है वह निम्न मानदंडों को अवश्य पूर्ण करता है–

(क) यह अपना प्रतिकृति बनाने में सक्षम है (प्रतिकृति)
(ख) इसे रचना व रासायनिक संगठन के आधार पर स्थिर होना चाहिए।
(ग) इनमें धीमें परिवर्तनों (उत्परिवर्तन) की संभावना होती है जो विकास के लिए आवश्यक है।
(घ) इसे स्वयं 'मेंडल के लक्षण' के अनुरूप अभिव्यक्त होना चाहिए।

यदि कोई क्षार युग्मन पूरकता के सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए परीक्षण करता है, तब वह पाएगा कि दोनों न्यूक्लिक अम्लों (डीएनए व आरएनए) में स्वयं प्रतिकृति की क्षमता होती है। सजीव तंत्र के अन्य अणुओं में जैसे – प्रोटीन स्वयं प्रथम मापदंड को पूर्ण करने में असफल है।

आनुवंशिक पदार्थ इतना स्थायी होना चाहिए कि जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं, उम्र या जीव की शरीरक्रिया में परिवर्तन से इसमें परिवर्तन नहीं होना चाहिए। आनुवंशिक

© NCERT not to be republished

पदार्थ का स्थायित्व उसकी एक प्रमुख विशेषता है जो ग्रिफिथ के 'रूपांतरित कारक' से स्पष्ट है जिसमें ताप से जीवाणु की मृत्यु हो जाती है, लेकिन आनुवंशिक पदार्थ की कुछ विशेषताएँ नष्ट नहीं हो पाती हैं। डीएनए के परिपेक्ष में इस बात को और अच्छे ढंग से समझ सकते हैं कि डीएनए की दोनों रज्जुक एक दूसरे के पूरक होते हैं जो गर्म करने पर एक दूसरे से अलग हो जाते हैं; लेकिन पुन: उचित स्थिति के आने पर एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। आरएनए के प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड पर 2'-हाइड्रॉक्सिल समूह मिलता है यह क्रियाशील समूह है जिससे आरएनए अस्थिर व आसानी से विखंडित हो जाता है। इस कारण से डीएनए रासायनिक संगठन की दृष्टि से कम सक्रिय व संरचनात्मक दृष्टि में अधिक स्थायी होता है। इस कारण दोनों न्यूक्लिक अम्लों में डीएनए एक अच्छा आनुवंशिक पदार्थ माना गया है।

वास्तव में डीएनए में यूरेसील की जगह थाइमिन होने से उनमें एक अधिक स्थायीत्व मिलता है। (इसके बारे में विस्तृत चर्चा हेतु हमें डीएनए में होने वाले मरम्मत की प्रक्रिया को समझना होगा, और आप इस प्रक्रिया के बारे में उच्च कक्षाओं में अध्ययन करेंगे।)

दोनों आरएनए व डीएनए उत्परिवर्तित हो सकते हैं। वास्तव में आरएनए अस्थायी व तीव्र गति से उत्परिवर्तित होता है। परिणामस्वरूप, विषाणुओं में आरएनए जीनोम मिलता है उसकी जीवन अवधि छोटी व तेजी से उत्परिवर्तित व विकसित होने वाली होती है। आरएनए प्रोटीन संश्लेषण के लिए सीधे कूटलेखन करते हैं, इसलिए वे आसानी से लक्षण व्यक्त करते हैं। डीएनए प्रोटीन संश्लेषण के लिए डीएनए पर निर्भर है। प्रोटीन संश्लेषण की सारी व्यवस्था आरएनए से विकसित हुई। उपरोक्त चर्चाओं से स्पष्ट है कि दोनों डीएनए व आरएनए आनुवंशिक पदार्थ के रूप में कार्य करते हैं। डीएनए के अधिक स्थायी होने से वह आनुवंशिक सूचनाओं के संचय हेतु सबसे उपयोगी है, आनुवंशिक सूचनाओं के स्थानांतरण हेतु आरएनए उपयुक्त है।

6.3 आरएनए संसार

पूर्ववर्त्ती चर्चाओं से तत्काल एक प्रश्न उठता है कि प्रथम आनुवंशिक पदार्थ कौन सा है? इस अध्याय में रासायनिक विकास के बारे में विस्तृत रूप से वर्णन किया जाएगा; लेकिन संक्षेप में कुछ तथ्यों व बिंदुओं को हम अवश्य उजागर करेंगे।

आरएनए पहला आनुवंशिक पदार्थ था। अब बहुत पर्याप्त प्रमाण है कि जीवन के आवश्यक प्रक्रमों (जैसे-उपापचयी, स्थानांतरण, संबंधन आदि) का विकास आरएनए से हुआ। आरएनए आनुवंशिक पदार्थ के साथ एक उत्प्रेरक (जैविक तंत्र में कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण जैव रासायनिक अभिक्रियाएँ हैं जो आरएनए उत्प्रेरक द्वारा उत्प्रेरित की जाती है प्रोटीन एंजाइम का इसमें कोई योगदान नहीं है।) आरएनए उत्प्रेरक के रूप में क्रियाशील लेकिन अस्थायी है। इस कारण से आरएनए के रासायनिक रूपांतरण से डीएनए का विकास हुआ, जिससे यह अधिक स्थायी है। डीएनए के द्विरज्जुकों व पूरक रज्जुकों के कारण तथा इनमें मरम्मत प्रक्रियाओं के विकास से अपने में होने वाले परिवर्तनों के प्रति प्रतिरोधी है।

© NCERT not to be republished

6.4 प्रतिकृति

डीएनए के द्विकुंडली रचना के प्रतिवादन के साथ ही वॉटसन व क्रिक ने तत्काल डीएनए की प्रतिकृति की योजना प्रस्तुत की। यदि उनके मूल कथनों को उद्धृत किया जाए तो वह इस प्रकार हैं-

"विशिष्ट युग्मन की जानकारी के बाद आनुवंशिक पदार्थ के नए रूप के निर्माण की प्रक्रियाओं के बारे में तत्काल प्रतिपादन करने से बचा नहीं जा सकता था।" (वाटसन व क्रिक, 1953)

उपरोक्त योजना से स्पष्ट है कि दोनों रज्जुक अलग होकर टेम्पलेट के रूप में कार्यकर नए पूरक रज्जुकों का निर्माण करते हैं। प्रतिकृति के पूर्ण होने के बाद जो डीएनए अणु बनता है उसमें एक पैतृक व एक नई निर्मित लड़ी रज्जुक होती है। डीएनए प्रतिकृति की यह योजना अर्धसरंक्षी (सेमीकंजरवेटिव) कहलाती है। (चित्र 6.6)

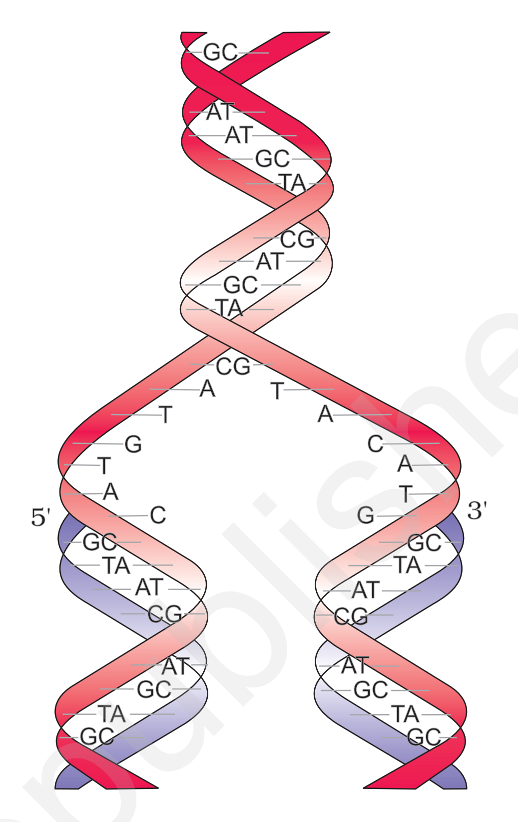

चित्र 6.6 डी एन ए के अर्धसंरक्षी प्रकृतियन का वाटसन-क्रिक प्रतिरूप

6.4.1 प्रायोगिक प्रमाण

अब यह सिद्ध हो चुका है कि डीएनए का अर्धसरंक्षी प्रतिकृतियन होता है। इसके बारे में सर्वप्रथम जानकारी *इस्चेरिचिया कोलाई* से प्राप्त हुई और आगे जाकर उच्च जीवों जैसे पौधों व मानव कोशिकाओं में पता लग पाया। मैथ्यूमेसेल्सन व फ्रैंकलिन स्टाल ने 1958 में निम्न प्रयोग किया —

(क) इन्होंने *ई.कोलाई* को ऐसे संवर्धन में विकसित किया जिसमें $^{15}NH_4Cl$ (^{15}N नाइट्रोजन का भारी समस्थानिक है) अमोनिया क्लोराइड कई पीढ़ियों तक केवल नाइट्रोजन का स्त्रोत है। जिसके परिणामस्वरूप नवनिर्मित डीएनए एवं अन्य दूसरे नाइट्रोजन युक्त यौगिकों में (^{15}नाइट्रोजन) ^{15}N व्यवस्थित हो जाता है। इस भारी डीएनए अणु को सामान्य डीएनए से सोडियम क्लोराइड के घनत्व प्रवणता में अपकेंद्रीकरण करने से अलग कर सकते हैं। (कृपया ध्यान दें कि ^{15}नाइट्रोजन एक विकिरण सक्रिय समस्थानिक नहीं है, और यह 14 नाइट्रोजन (^{14}N) से घनत्व के आधार पर अलग किया जा सकता है)।

(ख) इसके बाद कोशिकाओं को ऐसे संवर्धन में स्थानांतरित किया जिसमें साधारण $^{14}NH_4Cl$ था व निश्चित समयांतराल पर गुणित कोशिकाओं के नमूनों को लेने पर व इससे डीएनए निष्कर्षण करने पर पाया कि यह हमेशा द्विरज्जुक कुंडलियों के रूप में मिलता है। डीएनए के घनत्वों के बारे में जानकारी प्राप्त करने हेतु विभिन्न नमूनों को स्वतंत्र रूप से सीजिएम CSCl ग्रेडिऐंट की प्रवणता पर अलग किया गया (चित्र 6.7)।

© NCERT not to be republished

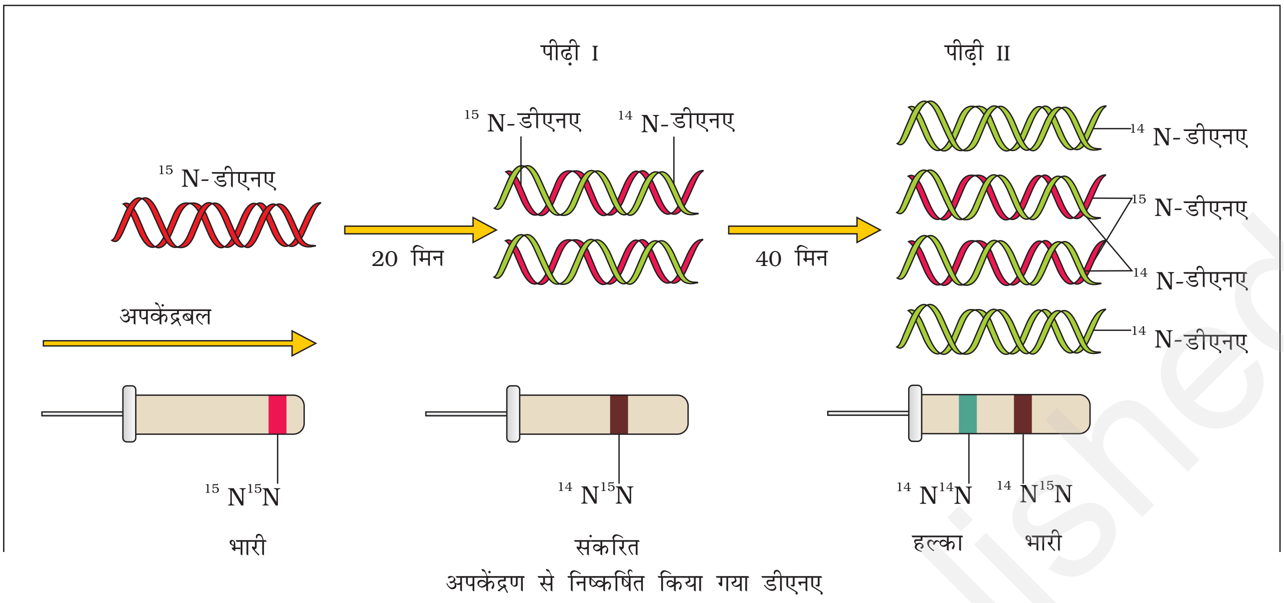

चित्र 6.7 मेसेल्सन एवं स्टाल का प्रयोग

क्या तुम अपकेंद्रबल के बारे में बता सकते हो? और सोचो क्यों एक अणु जो अधिक द्रव्यमान घनत्व का है तेजी से अवछाद बनाता है?

परिणामों को चित्र 6.7 में दर्शाया गया है–

(ग) इस प्रकार, संवर्धन जिसको ^{15}N से ^{14}N माध्यम पर एक पीढ़ी तक स्थानांतरित किया गया था, इससे डीएनए निष्कर्षित करने पर पाया गया कि इसका घनत्व संकरित या मध्य था (20 मिनट बाद प्रथम पीढ़ी; ई.कोलाई 20 मिनट में विभाजित होता है)। डीएनए जो दूसरी पीढ़ी (40 मिनट बाद; द्वितीय पीढ़ी) के संवर्धन से निष्कर्षित किया गया कि समान मात्रा में संकरित डीएनए हल्के डीएनए से मिलकर बना होता है।

ई. कोलाई के 80 मिनट बाद वृद्धि से प्राप्त डीएनए में हल्के व संकरित डीएनए घनत्व का अनुपात होगा?

ठीक इसी तरह का प्रयोग टेलट व उनके सहयोगियों ने 1958 में विसिया फाबा (फाबा सेम) पर नवनिर्मित डीएनए का गुणसूत्र में वितरण का पता लगाने के लिए विकिरण सक्रिय थाइमीडिन का प्रयोग किया। इस प्रयोग से यह सिद्ध हो गया कि गुणसूत्र में डीएनए अर्ध संरक्षकीय तरह से प्रतिकृति करता है।

6.4.2 कार्यप्रणाली व एंजाइम

सजीव कोशिकाओं जैसे *ई.कोलाई* में प्रतिकृति हेतु उत्प्रेरकों (एंजाइम) के समूहों की आवश्यकता होती है। मुख्य एंजाइम जो डीएनए पर निर्भर है, वह **डीएनए पॉलीमरेज** है। यह डीएनए टेम्प्लेट का उपयोग डीऑक्सीन्युक्लियोराइड के बहुलकन को उत्प्रेरित करता है। यह एंजाइम काफी प्रभावी है, क्योंकि बहुत ही कम समय में अधिक संख्या में न्युक्लियाटाइडस के बहुलकन को उत्प्रेरित करता है। कल्पना करो कि *ई. कोलाई* में

© NCERT not to be republished

4.6×10^6 क्षारयुग्मक मिलते हैं (इसकी तुलना मानव के द्विगुणित संख्या 6.6×10^9 क्षारयुग्मक से करो) जिनमें प्रतिकृति प्रक्रिया के पूर्ण होने में 38 मिनट लगते हैं। इसका मतलब बहुलीकरण की औसत दर लगभग 2000 क्षारयुग्मक प्रति सेकंड है। ये केवल बहुलीकरण को तेज नहीं करते, बल्कि अधिक शुद्धता के साथ अभिक्रिया को उत्प्रेरित भी करते हैं। प्रतिकृति में किसी भी तरह की गलती के परिणामस्वरूप उत्परिवर्तन होता है। इसके अतिरिक्त ऊर्जा की दृष्टि से प्रतिकृति एक महँगी प्रक्रिया है। अत: डीऑक्सीराइबोन्यूक्लियोसाइड ट्राइफॉस्फेट दोहरे उद्देश्य की पूर्ति करता है। इसके अतिरिक्त अवस्तर की तरह कार्य करते हुए बहुलीकरण अभिक्रिया के लिए ऊर्जा प्रदान करता है। (ATP की तरह डीऑक्सीन्यूक्लीओसाइड ट्राइफॉस्फेट में दो टरमिनल फॉस्फेट उच्च ऊर्जा वाले फॉस्फेट हैं)।

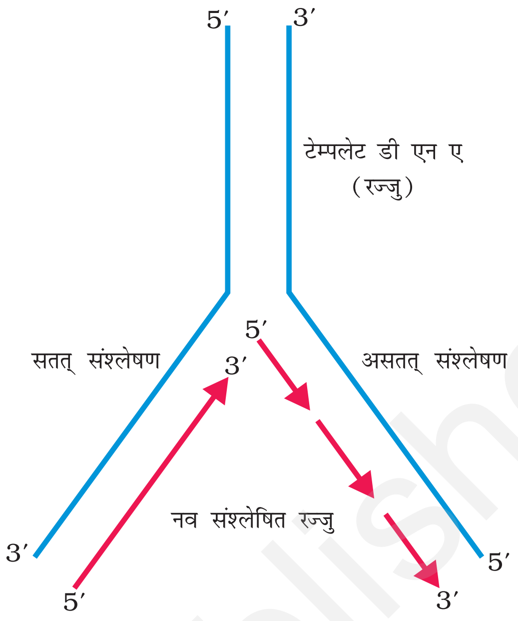

चित्र 6.8 प्रतिकृत द्विशाख

अधिक शुद्धता के साथ प्रतिकृति प्रक्रम को पूर्ण करने हेतु डीएनए पर निर्भर डीएनए पॉलीमरेज के साथ अन्य एंजाइम की आवश्यकता होती है। लंबे डीएनए अणुओं के दोनों रज्जुक एक साथ पृथक नहीं होते (क्योंकि इसके लिए अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है), प्रतिकृति हेतु डीएनए कुंडलिनी छोटे-छोटे भाग में खुलते हैं जिसे **प्रतिकृति द्विशाख** कहते हैं। डीएनए पर निर्भर डीएनए पॉलीमरेज बहुलकन केवल एक दिशा 5' से 3' (5'→3') की ओर उत्प्रेरित करता है। यह प्रतिकृति द्विशाख पर कुछ जटिलता पैदा करती है फलस्वरूप, (3' → 5' ध्रुवता वाली टेम्प्लेट) की लड़ी पर प्रतिकृत **सतत्** होता रहता है जबकि दूसरी लड़ी (3' → 5' ध्रुवता वाले टेम्प्लेट) पर यह **असतत्** होता है। तत्पश्चात यह असतत् रूप से संश्लेषित खंड एंजाइम **डीएनए लाइगेज** द्वारा आपस में जुड़ जाते हैं (चित्र 6.8)।

डीएनए पॉलीमरेज स्वयं प्रतिकृति प्रक्रम की शुरुआत नहीं कर सकते हैं। प्रतिकृति डीएनए के किसी भी जगह पर प्रतिकृति क्रमहीन प्रारंभ नहीं होती है। ई. *कोलाई* के डीएनए में कुछ निश्चित स्थान होते हैं। जहाँ से प्रतिकृति की शुरुआत होती है। इन जगहों को **प्रतिकृति का स्थल** नामकरण दिया गया है। इस कारण से प्रतिकृति की शुरुआत के लिए आवश्यक डीएनए खंडों की प्राप्ति पुनर्योगज डीएनए विधि के द्वारा होती है जिसमें संवाहक की आवश्यकता होती है। संवाहक से प्रतिकृति की शुरुआत होती है। मूल की प्रकृति और इस जगह पर होने वाले प्रक्रमों के बारे में आप विस्तृत रूप से उच्च कक्षाओं में पढ़ेंगे।

प्रतिकृति के बारे में अभी विस्तृत रूप से पूर्ण जानकारी नहीं है। ससीमकेंद्रकी सुकेंद्रकी में डीएनए की प्रतिकृति कोशिका चक्र के एस-प्रावस्था में होती है। डीएनए की प्रतिकृति व कोशिका विभाजन चक्र काफी संभावित ढंग से होती है। डीएनए प्रतिकृति के बाद कोशिका विभाजन न होने के कारण बहुगुणिता (पॉलीप्लॉयडी) की स्थिति

© NCERT not to be republished

(गुणसूत्री समानता) उत्पन्न होती है। इनमें से कुछ प्रक्रमों के बारे में विस्तृत रूप से तुम उच्च कक्षाओं में पढ़ेंगे।

6.5 अनुलेखन (ट्रांसक्रिप्शन)

डीएनए की एक रज्जुक से आनुवंशिक सूचनाओं का आरएनए में प्रतिलिपीकरण करने की प्रक्रिया को **अनुलेखन** कहते हैं। यहाँ भी पूरकता का सिद्धांत अनुलेखन प्रक्रम को नियंत्रित करता है जिसमें एडिनोसिन थाइमिन की जगह पर यूरेसिल के साथ क्षारयुग्म बनाता है। यद्यपि प्रतिकृति प्रक्रम के विपरीत किसी जीव के कुल डीएनए द्विगुणित होकर अनुलेखन के दौरान अपना एक रज्जुक आरएनए के साथ मिलाकर उसी का रूप ले लेता है। इससे डीएनए की लड़ी व जगहों का पता चलता है जो अनुलेखन में भाग लेते हैं। अनुलेखन के दौरान दोनों रज्जुकों की प्रतिलिपीकरण क्यों नहीं होती है। इसका साधारण सा उत्तर है। प्रथम, दोनों रज्जुक टेम्प्लेट के रूप में कार्य करते हैं तब उनसे विभिन्न अनुक्रमों वाले आरएनए अणुओं का अनुलेखन होता है (याद रखो पूरकता का मतलब समानता नहीं है), यदि प्रोटीन का कूटलेखन करते हैं तब प्रोटीन में मिलने वाले एमीनो अम्लों का अनुक्रम भिन्न होगा। यदि इसी डीएनए का एक भाग दो भिन्न प्रोटीनों का कूटलेखन करता है तब आनुवंशिक सूचना स्थानांतरण तंत्र द्वारा जटिलता उत्पन्न करती है। दूसरा साथ-साथ दो आरएनए अणुओं जो एक दूसरे के पूरक है। इनके निर्माण से द्विरज्जुक आरएनए का निर्माण होगा। इससे आरएनए के प्रोटीन में अनुलेखन नहीं हो पाता है और अनुलेखन का प्रयास व्यर्थ जाता है।

6.5.1 अनुलेखन ईकाई

डीएनए में अनुलेखन ईकाई के मुख्यतया तीन भाग होते हैं—

(क) उन्नायक (प्रमोटर)

(ख) संरचनात्मक जीन (स्ट्रक्चरल जीन)

(ग) समापक (टर्मीनेटर)

अनुलेखन इकाई के संरचनात्मक जीन डीएनए के द्विरज्जुक का ही भाग है। चूँकि रज्जुक विपरीत ध्रुवत्व की ओर होते हैं इसलिए **डीएनए - निर्भर आरएनए पॉलीमरेज** बहुलकन केवल एकदिशा 5' से 3' (5'→3') की ओर उत्प्रेरित होते हैं। रज्जुक जिसमें ध्रुवत्व 3' से 5' (3'→5') की ओर है। वह टेम्पलेट के रूप में कार्य करते हैं इसलिए यह **टेम्पलेट रज्जुक** कहलाता है। दूसरी लड़ी जिसमें ध्रुवत्व (5'→3') व अनुक्रम आरएनए जैसा होता है (थाइमीन के अलावा इस जगह पर यूरेसिल होता है)। अनुलेखन के दौरान स्थानांतरित हो जाता है। यह रज्जुक (जो किसी भी चीज़ के लिए कूटलेखन नहीं करता है) **कूटलेखन रज्जुक** कहलाता है। सभी उपर्युक्त बिंदु जो अनुलेखन इकाई के भाग है कूटलेखन रज्जुक से बने होते हैं। उन बिंदुओं की व्याख्या के लिए अनुलेखन ईकाई के परिकल्पित अनुक्रमों को नीचे दिखाया गया है।

3'-ए टी जी सी ए टी जी सी ए टी जी सी ए टी जी सी ए टी जी सी ए टी जी सी ए टी जी सी-5' टेम्प्लेट रज्जुक

5'-टी ए सी जी टी ए सी जी टी ए सी जी टी ए सी जी टी ए सी जी टी ए सी जी -3' कूटलेखन रज्जुक

© NCERT not to be republished

उपरोक्त डीएनए से अनुलेखित आरएनए के अनुक्रमों को क्या आप लिख सकते हो?

उन्नायक व **समापक** तथा किनारे पर स्थित **संरचनात्मक जीन** अनुलेखन ईकाई बनाते हैं। संरचनात्मक जीन के 5'– किनारे पर (इसका संदर्भ कूटलेखन रज्जुक के ध्रुवत्व के संबंध में है) उन्नायक स्थित होता है।

यह डीएनए अनुक्रम है जिससे आरएनए पॉलीमरेज जुड़ता है और अनुलेखन ईकाई में स्थित उन्नायक टेम्प्लेट व कूटलेखन रज्जुक का निर्धारण करता है। समापक कूटलेखन रज्जुक के 3' किनारे (अनुप्रवाह) पर स्थित होता है और इससे अनुलेखन प्रक्रम की समाप्ति का निर्धारण होता है (चित्र 6.9)। इसके अतिरिक्त उन्नायक के प्रतिप्रवाह व अनुप्रवाह की तरफ नियामक अनुक्रम होते हैं। इन अनुक्रमों की कुछ विशेषताओं के बारे में जब जीन अभिव्यक्ति नियमन के बारे में वर्णन होगा, तब जानकारी दी जाएगी।

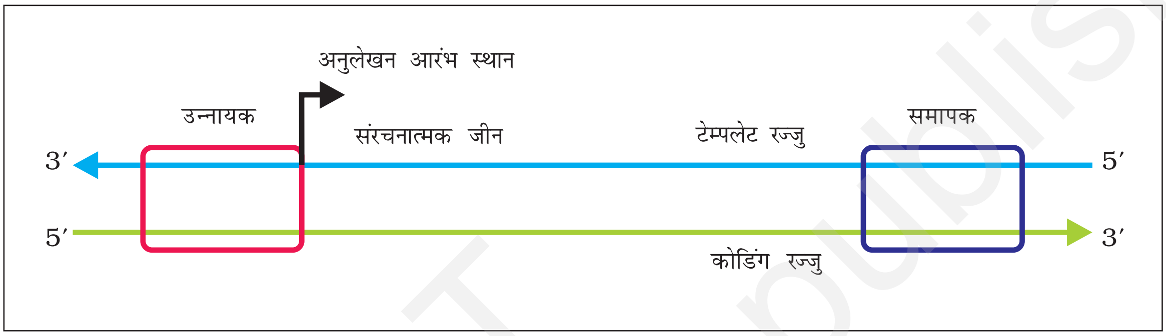

चित्र 6.9 अनुलेखन एकल की आरेखिय संरचना

6.5.2 अनुलेखन ईकाई व जीन

जीन वंशागति की क्रियात्मक ईकाई है। 1 इसमें कोई संदेह नहीं है कि जीन डीएनए पर स्थित होते हैं। जीन को डीएनए अनुक्रम के शब्दों में साहित्यिक रूप से परिभाषित करना कठिन है। टीआरएनए अथवा आरआरएनए अणु डीएनए अनुक्रम अंतरण के लिए कार्य करते हैं उनसे भी जीन परिभाषित होता है। परिभाषा के अनुसार **समपार** (सीस्ट्रान) डीएनए का वह खंड है जो पॉलीपेप्टाइड का कूटलेखन करता है, अनुलेखन ईकाई में संरचनात्मक **जीन मोनोसीस्ट्रानीक** (अधिकतर सुकेंद्री में) या **पॉलीसीस्ट्रानिक** (अधिकतर जीवाणु में या असीमकेंद्री में) हो सकता हैं। सुकेंद्रकी में मोनोसिस्ट्रानिक संरचनात्मक जीन मिलती है जिसमें अंतरापित कूटलेखन अनुक्रम पाए जाते है – सुकेंद्री में जीन विखंडित होते हैं। कूटलेखन अनुक्रम या अभिव्यक्त अनुक्रमों को **व्यक्तेक** (एक्जान) कहते हैं। व्यक्तेक वे अनुक्रम हैं जो परिपक्व या संसाधित आरएनए में मिलते हैं। व्यक्तेक, **अव्यक्तेक** (इंट्रान) द्वारा अंतरापित होते हैं। अव्यक्तेक या मध्यवर्ती अनुक्रम परिपक्व या संसाधित आरएनए में नहीं मिलते हैं। डीएनए खंड के अर्थ में अंतरापित जीन व्यवस्था जीन की परिभाषा को जटिल बना देती है।

लक्षण की वंशागति संरचनात्मक जीन के उन्नायक व नियामक अनुक्रमों द्वारा प्रभावित होते हैं। चूँकि कभी-कभी नियामक अनुक्रम अस्पष्ट रूप से नियामक जीन कहलाते हैं, इसके बावजूद ये अनुक्रम किसी आरएनए या प्रोटीन का कूटलेखन नहीं करते हैं।

© NCERT not to be republished

6.5.3 आरएनए के प्रकार व अनुलेखन का प्रक्रम

जीवाणु में मुख्यतया तीन प्रकार के आरएनए होते हैं – दूत आरएनए (आरआरएनए; मेसेंजर आरएनए) अंतरण आरएनए (टीआरएनए; ट्रांसफर आरएनए), व राइबोसोमल आरएनए (आरआरएनए) ए सभी तीन आरएनए कोशिका में प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक है। एमआरएनए टेम्पलेट प्रदान करता है, टी आरएनए एमीनो अम्लों के लाने व आनुवंशिक कूट को पढ़ने का काम व आरआरएनए स्थानांतरण के दौरान संरचनात्मक व उत्प्रेरक की भूमिका निभाता है। जीवाणु में डीएनए पर निर्भर केवल एक आरएनए पॉलीमरेज होता है जो सभी प्रकार के आरएनए के अनुलेखन को उत्प्रेरित करता है। आरएनए पॉलीमरेज उन्नायक से जुड़कर अनुलेखन की शुरुआत (**प्रारंभन**) करते हैं। यह ट्राइफॉस्फेट को क्रियाधार के रूप में प्रयोगकर पूरकता के नियम का अनुपालन करते हुए टेम्प्लेट में बहुलकित हो जाता है। यह कुंडली को आगे खुलने व उसकी दीर्घीकरण में सहायता करता है। केवल छोटी लंबाई वाला आरएनए एंजाइम से जुड़ता है। जब आरएनए पॉलीमरेज समापक किनारे पर पहुँच जाता है तब नवनिर्मित आरएनए व आरएनए पॉलीमरेज अलग हो जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप अनुलेखन का **समापन** हो जाता है।

यह एक जिज्ञासापूर्ण प्रश्न है कि आरएनए पॉलीमरेज किस तरह से उन तीनो चरणों प्रारंभन, दीर्घीकरण व समापन को उत्प्रेरित करता है। केवल आरएनए पॉलीमरेज ही दीर्घीकरण प्रक्रिया को उत्प्रेरित करने में सक्षम है। यह अस्थायी रूप से **प्रारंभन कारक** व **समापन कारक** से जुड़ जाता है। अनुलेखन की शुरुआत पॉलीमरेज के साथ जुड़ने से उसकी विशिष्टता में परिवर्तन के साथ होती है जिससे या तो प्रारंभन या समापन होता है (चित्र 6.10)।

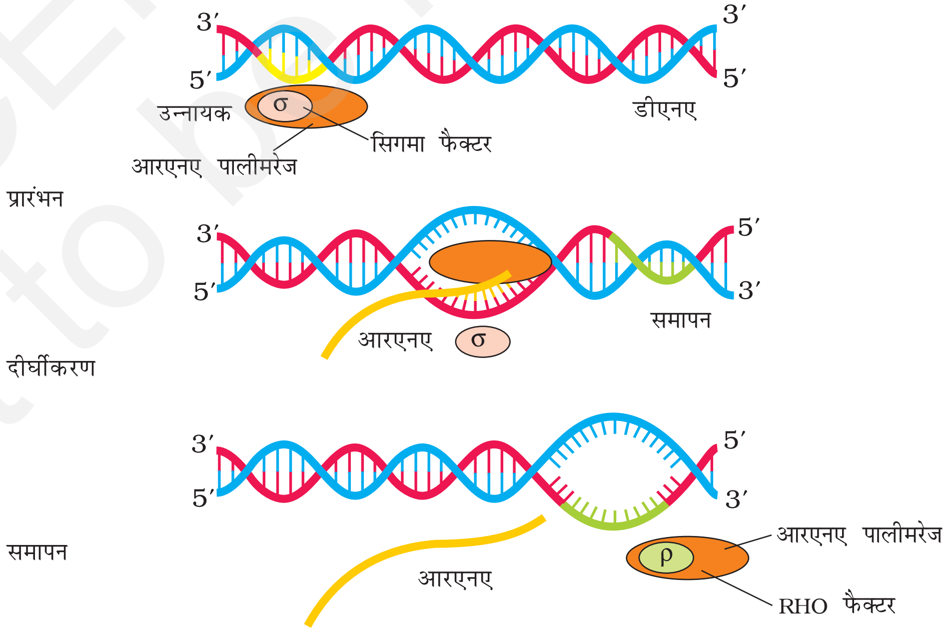

चित्र 6.10 बैक्टीरिया में अनुलेखन प्रक्रिया

© NCERT not to be republished

जीवाणु में सक्रिय दूत आरएनए के निर्माण में संसाधन की आवश्यकता नहीं होती है व अनुलेखन तथा स्थानांतरण एक कक्ष (जीवाणु में कोशिका विलेय व केंद्रक में कोई अलगाव नहीं होता है) में होता है, इसलिए कई बार स्थानांतरण दूत आरएनए के पूर्ण रूप से अनुलेखित होने के पहले ही प्रारंभ हो जाता है। फलस्वरूप अनुलेखन व स्थानांतरण जीवाणु में साथ-साथ संपन्न हो सकता है।

सुकेंद्रकी में दो अतिरिक्त जटिलताएँ हैं —

(क) केंद्रक (अंगकों में मिलने वाले पॉलीमरेज के अतिरिक्त) में कम-से-कम तीन प्रकार के आरएनए पॉलीमरेज मिलते हैं। इनमें कार्यों का स्पष्ट विभाजन है। आरएनए पॉलीमरेज I राइबोसोमल आर आरएनए (rRNA) (28s, 18s, व 5.8s) को अनुलेखित करता है, जबकि आरएनए पॉलीमरेज III **अंतरण आरएनए (tRNA), 5 एस आर आरएनए (5srRNA)** व **एस एन आरएनए (snRNAs)** (छोटा केंद्रकी आरएनए) के अनुलेखन के लिए जिम्मेदार है। आरएनए पॉलीमरेज II दूत आरएनए (mRNA) के पूर्ववर्ती रूप **विषमांगी केंद्रकीय आरएनए** (hnRAN) का अनुलेखन करते है।

(ख) दूसरी जटिलता यह है कि प्रारंभिक अनुलेखन में व्यक्तेक व अव्यक्तेक दोनों मिलते हैं और वह असक्रिय होते हैं। चूँकि यह एक प्रक्रम से गुजरता है जिसे **समबंधन** (स्पलाइसिंग) कहते हैं जिसमें अव्यक्तेक अलग हो जाता है व व्यक्तेक एक निश्चित क्रम में आपस में जुड़ जाते हैं। hn आरएनए दो अतिरिक्त प्रक्रियाओं आच्छादन व पुच्छन से होकर गुजरता है। **आच्छादन** में एक असाधारण न्यूक्लियोराइड (मेथिल ग्वानोसीन ट्राइफास्फेट) एचएनआरएनए के 5' किनारे पर जुड़ता है। **पुच्छन** में एडेनीन समूह (200-300) स्वतंत्र

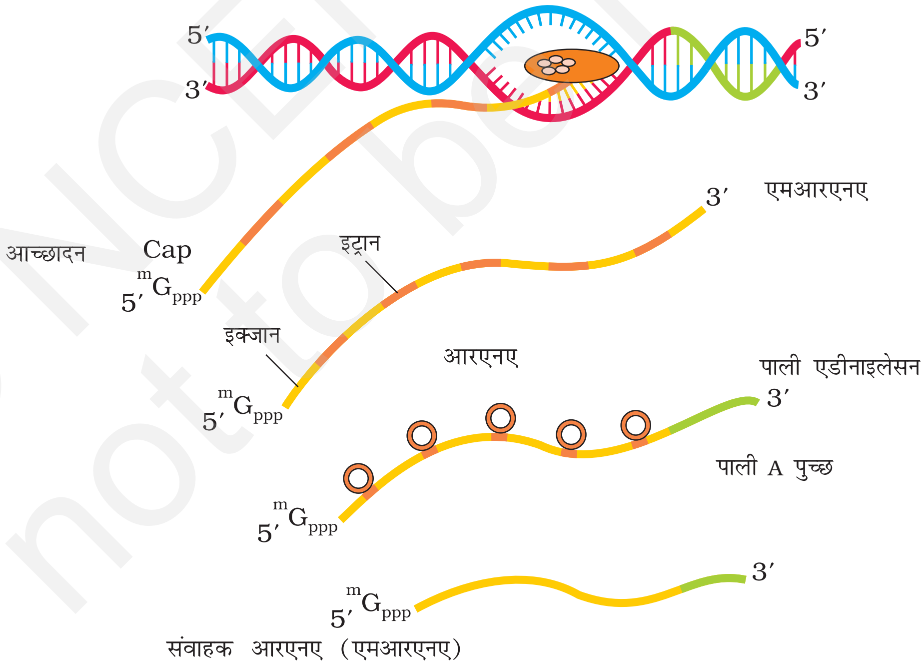

चित्र 6.11 सुकेंद्रकियों में अनुलेखन प्रक्रिया

© NCERT not to be republished

रूप में टेम्पलेट के 3' किनारे पर जुड़ जाता है। पूर्ण संसाधित एचएनआरएनए को अब दूत आरएनए (m आरएनए) कहते हैं जो स्थानांतरण हेतु केंद्रक में स्थानांतरित हो जाता है (चित्र 6.11)।

उपरोक्त जटिलताओं के महत्त्व को अब समझने की आवश्यकता है। अंतरापित जीन व्यवस्था संभवत: जीनोम के पूर्व रूप को व्यक्त करता है। अव्येक्तेक की उपस्थिति पुराने समय की याद दिलाता है और संबंधन प्रक्रिया में **आरएनए संसार** की प्रभुता को व्यक्त करता है। वर्तमान समय में सजीव तंत्र में आरएनए निर्भर प्रक्रमों के बारे में समझने की अधिक आवश्यकता है।

6.6 आनुवंशिक कूट

प्रतिकृति व अनुलेखन के दौरान न्युक्लिक अम्ल से दूसरे न्युक्लिक अम्ल का प्रतिलिपिकरण होता है। इन प्रक्रमों को पूरकता के आधार पर समझना आसान है। स्थानांतरण की प्रक्रिया में आनुवंशिक सूचनाएँ न्यूक्लियोटाइड के बहुलक से एमीनों अम्लों के बहुलक की ओर स्थानांतरित होती है एमीनो अम्लों के न्यूक्लियोटाइड में न तो कोई पूरकता मिलती है न ही सैद्धांतिक रूप से इसके बारे में सोच सकते हैं। न्यूक्लिक अम्ल (आनुवंशिक पदार्थ) में परिवर्तन से प्रोटीन के एमीनो अम्ल में भी परिवर्तन हो जाता है। इस विचार के समर्थन हेतु पर्याप्त प्रमाण है। इससे आनुवंशिक कूट (जेनेटिक कोड) की परिकल्पना का प्रतिवादन हुआ जो प्रोटीन संश्लेषण के दौरान एमीनो अम्लों के अनुक्रम को निर्धारित करते हैं।

डीएनए की संरचना व आनुवंशिक पदार्थ के जैव रासायनिक प्रकृति का निर्धारण जितना उत्तेजना पूर्ण था, उससे ज्यादा आनुवंशिक कूट का अर्थ निकालना व प्रस्ताव करना चुनौतिपूर्ण था। सही अर्थों में इसके लिए विभिन्न क्षेत्रों के वैज्ञानिकों भौतिकविद्, कार्बनिक रसायनविद्, जैव रासायनज्ञ व आनुवंशिकविद् के सहयोग की आवश्यकता थी। जार्ज गेमो एक भौतिकविद् थे जिनका विचार था कि यदि क्षार केवल चार हैं तो इन बीस अमीनो अम्ल का कूटलेखन किस रूप से होता है; अत: कूट के निर्माण में क्षारों का समूह बनता है। इनका विचार था कि सभी बीस अमीनो अम्लों के कूट हेतु, कोड तीन न्यूक्लियोराइडों के बने होते हैं। यह एक बहुत ठोस विचार था, जिससे 4^3 (4×4×4) के प्रति उत्परिवर्तन समुच्चय से 64 कोड का निर्माण हुआ इनसे बनने वाले कोड आवश्यकता से अधिक थे।

प्रकूट (कोडान) त्रिक होते हैं इसका प्रमाण देना अत्यधिक कठिन कार्य था। हर गोविंद खुराना ने निश्चित क्षारों (समबहुलक या सहबहुलक) के समुच्चय युक्त आरएनए अणुओं के संश्लेषण की रासायनिक विधि का विकास किया था। प्रोटीन संश्लेषण हेतु मार्शल नीटेनबर्ग की कोशिश स्वतंत्र तंत्र कूट का अर्थ निकालने में काफी सहयोगी रही। सेबवेटो ओकोआ एंजाइम (पॉलीन्यूक्लियोराइड फास्फोरीलेज) आरएनए को स्वतंत्र रूप (आरएनए का एंजाइम संश्लेषण) से टेम्प्लेट के निश्चित अनुक्रमों के साथ

© NCERT not to be republished

बहुलकित होने में सहायता प्रदान करता है। अंत में आनुवंशिक कूट का चेकर बोर्ड (पैनेट आरेख) नीचे तालिका 6.1 में दिया गया है —

आनुवंशिक कूट की प्रमुख विशेषताएँ निम्न है —

(क) प्रकूट त्रिक होता है। 61 प्रकूट अमीनो अम्ल का कूट लेखन करते हैं व तीन प्रकूट का कूट लेखन नहीं करते हैं इस कारण से यह रोध प्रकूट के रूप में कार्य करता है।

(ख) एक प्रकूट केवल एक अमीनो अम्ल का कूट लेखन करता है इस कारण से यह **असंदिग्ध** व **विशिष्टि** होता है।

(ग) कुछ अमीनो अम्ल का कूट लेखन एक से अधिक प्रकूटों द्वारा होता है, इस कारण से इन्हें **अपह्रासित कूट** कहते हैं।

(घ) प्रकूट दूत आरएनए में लगातार पढ़े जाते हैं। ये बीच में रुके हुए नहीं होते हैं।

(ङ) कूट लगभग **सार्वभौमिक** होते हैं, उदारणार्थ — जीवाणु से मनुष्य में यू यू यू (UUU) फेनिलएलेनीन (पीएचइ) का कूटलेखन करता है। इस नियम के कुछ अपवाद सूचकणिका प्रकूट व कुछ आदि जंतुओं (प्रोटोजोआ) में मिलता है।

(च) AUG दोहरा कार्य करते हैं। यह मीथियोनीन का कूट लेखन करता है। यह एक **प्रारंभक प्रकूट** के रूप में कार्य करता है।

यदि एक दूत आरएनए में निम्न न्युक्यिोटाइड अनुक्रम है तो इनके द्वारा कूटलेखित अमीनो अम्ल के अनुक्रमों की कल्पना करो (चेकरबोर्ड की सहायता लीजिए)।

-AUG UUU UUC UUC UUU UUU UUC-

अब इसके विपरीत के बारे में बताओ। नीचे दिए गए दूत आरएनए द्वारा कूटलेखित अमीनो अम्ल के अनुक्रम हैं। आरएनए में न्युकियोटाइड अनुक्रम का पता लगाओ

तालिका 6.1 विभिन्न अमीनो अम्ल के लिए प्रकूट

प्रथम स्थिति	द्वितीय स्थिति				तृतीय स्थिति
	U	C	A	G	
U	UUU Phe	UCU Ser	UAU Tyr	UGU Cys	U
	UUC Phe	UCC Ser	UAC Tyr	UGC Cys	C
	UUA Leu	UCA Ser	UAA Stop	UGA Stop	A
	UUG Leu	UCG Ser	UAG Stop	UGG Trp	G
C	CUU Leu	CCU Pro	CAU His	CGU Arg	U
	CUC Leu	CCC Pro	CAC His	CGC Arg	C
	CUA Leu	CCA Pro	CAA Gin	CGA Arg	A
	CUG Leu	CCG Pro	CAG Gin	CGG Arg	G
A	AUU Ile	ACU Thr	AAU Asn	AGU Ser	U
	AUC Ile	ACC Thr	AAC Asn	AGC Ser	C
	AUA Ile	ACA Thr	AAA Lys	AGA Arg	A
	AUG Met	ACG Thr	AAG Lys	AGG Arg	G
G	GUU Val	GCU Ala	GAU Asp	GGU Gly	U
	GUC Val	GCC Ala	GAC Asp	GGC Gly	C
	GUA Val	GCA Ala	GAA Glu	GGA Gly	A
	GUG Val	GCG Ala	GAG Glu	GGG Gly	G

© NCERT not to be republished

Met-Phe-Phe-Phe-Phe-Phe-Phe

क्या आप इसका विपरीत पता लगाने में परेशानी महसूस करते हैं? क्यों?

क्या आप अब आनुवंशिक कूट की दो विशेषताओं के बारे सामंजस्य बिठा सकते हैं, जिसके बारे में आप पढ़ चुके हैं?

6.6.1 उत्परिवर्तन व आनुवंशिक कूट

जीन व डीएनए के बीच आपसी संबंधों को उत्परिवर्तन द्वारा अच्छे ढंग से समझा जा सकता है। तुम उत्परिवर्तन और इसके प्रभाव के बारे में विस्तृत रूप से अध्याय 5 में पढ़ चुके हो। एक डीएनए के खंड में अधिक लोपन व पुनर्योजन के प्रभाव के बारे में आसानी से समझ सकते हो। इसके परिणाम स्वरूप जीन के कार्य की क्षति या वृद्धि होती है। बिंदु उत्परिवर्तन का एक प्रतिष्ठित उदाहरण बीटा ग्लोबिन शृंखला के जीन में एक क्षार युग्म में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अमीनो अम्ल अवशिष्ट ग्लूटामेट से वैलीन में परिवर्तित होता है। इसके परिणाम स्वरूप होने वाले रोग को **दात्र कोशिका सुरक्तता** (सिकिल सेल एनीमिया) कहते हैं। बिंदु उत्परिवर्तन के कारण संरचनात्मक जीन में एक क्षार के प्रवेश या विलोपन के बारे में नीचे दिए गए साधारण उदाहरण के द्वारा अच्छी तरह से समझ सकते हैं।

इस कथन पर ध्यान दो जो निम्न शब्दों से बना है जिनमें तीन वर्ण (अक्षर) आनुवंशिक कूट की तरह मिलते हैं —

RAM HAS RED CAP

यदि HAS व RED बीच अक्षर B को डाला जाए और कथन को पुनर्योजित किया जाए तो इसे निम्नवत् पढ़ा जाएगा

RAM HAS BRE DCA P

ठीक इसी तरह से, उसी जगह पर हो अक्षर जो से B1; अब इसे निम्नवत् पढ़ा जाएगा–

RAM HAS BIR EDC AP

अब हम एक साथ तीन अक्षरों जैसे BIG को डाले तो कथन को निम्नवत् पढ़ा जाएगा

RAM HAS BIG RAD CAP

उपर्युक्त अभ्यास को RED अक्षरों को एक के बाद एक विलोपित कर दोहरा सकते हैं और यह त्रिक अक्षरों का वाक्य निम्नवत् बनेगा —

RAM HAS EDC AP

RAM HAS DGA P

RAM HAS CAP

उपर्युक्त अभ्यास से निष्कर्ष बहुत स्पष्ट है। एक या दो क्षारों के निवेशन या विलोपन से निवेशन या विलोपन बिंदु के पढ़ने के प्राधार (रीडिंग फ्रेम) में परिवर्तन होता है। तीन या इसके गुणित क्षारों के निवेक्षन या विलोपन से एक या गुणित प्रकूट के निवेश या विलोप के परिणाम स्वरूप एक या गुणित अमीनो अम्ल का निवेश या विलोपन होता है जबकि इस बिंदु के आगे की ओर वाचन प्राधार में कोई परिवर्तन नहीं होता है, ऐसे उत्परिवर्तनों को **वाचन प्राधार निवेशन** (फ्रेम शिफ्ट इनसर्सन) या **विलोपन** कहते हैं। इस आनुवंशिक आधार के प्रमाण पर प्रकूट एक त्रिक होता है। जिसे संसक्त रूप में पढ़ते हैं।

© NCERT not to be republished

6.6.2 अंतरण आरएनए अनुकूलक अणु

कूट परिकल्पना के बहुत समय पहले से फ्रेनसिस क्रिक के अनुसार कूट के पढ़ने व इसके अमीनो अम्ल से संबंध रखने वाली एक क्रियाविधि है, क्योंकि अमीनो अम्ल में कोई संरचनात्मक विशिष्ता नहीं होती जिससे कि यह कूट को विशेष ढंग से पढ़ सके। इसके अनुसार एक अनुकूलतम अणु जो एक तरफ से कूट को पढ़ता है व दूसरे तरफ इससे विशिष्ट अमीनो अम्ल जुड़ जाते हैं। अंतरण आरएनए जिसे विलेय आरएनए (एसआरएनए) कहते हैं, के बारे में जानकारी आनुवंशिक कूट से पहले थी। फिर भी अनुकूलक अणु के रूप में इसकी भूमिका के बारे में बाद में जानकारी मिल पायी।

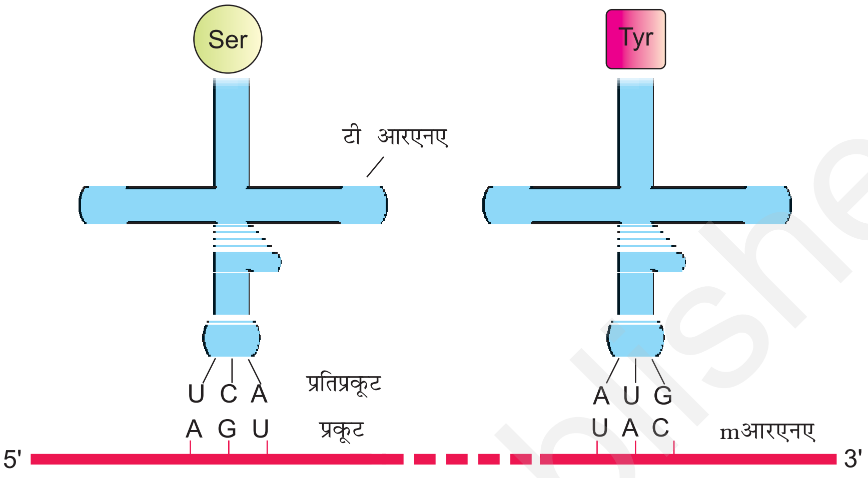

चित्र 6.12 tआरएनए-अनुकूलक अणु

अंतरण आरएनए में एक **प्रति प्रकूट (एंटीकोडान) फंदा** होता है जिसमें कूट के पूरक क्षार मिलते हैं व इसमें एक **अमीनो अम्ल स्वीकार्य छोर** होता है जिससे यह अमीनो अम्ल से जुड़ जाता है। प्रत्येक अमीनो अम्ल के लिए विशिष्ट अंतरण आरएनए (tRNA) होते हैं (चित्र 6.12)। प्रारंभन हेतु दूसरा विशिष्ट अंतरण आरएनए होता है जिसे **प्रारंभक अंतरण आरएनए** कहते हैं। रोध प्रकूट के लिए कोई अंतरण आरएनए नहीं होता है। उपरोक्त चित्र में अंतरण आरएनए की द्वितीयक संरचना दर्शायी गयी है जो तिपतिया (क्लोवर) की पत्ती जैसी दिखायी देती है। वास्तविक संरचना के अनुसार अंतरण आरएनए सघन अणु है जो उल्टे एल (L) की तरह दिखाई देता है।

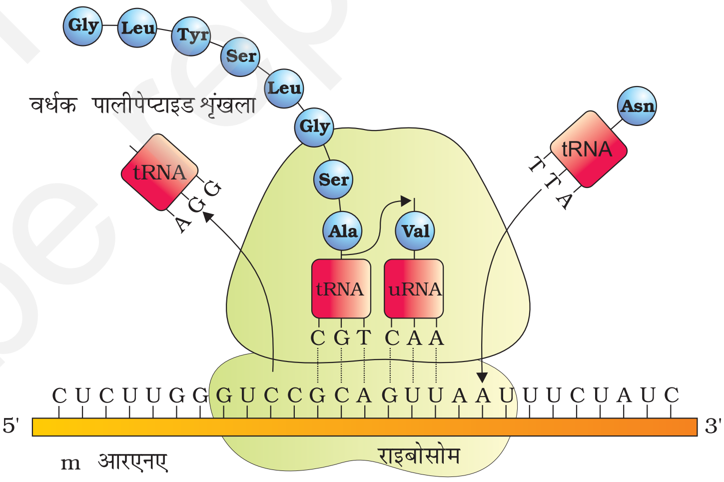

चित्र 6.13 स्थानांतरण

6.7 स्थानांतरण (रूपांतरण)

स्थानांतरण या **रूपांतरण** वह प्रक्रिया है जिसमें अमीनो अम्लों के बहुलकन से पॉलीपेप्टाइड का निर्माण होता है (चित्र 6.13)। अमीनो अम्लों के क्रम व अनुक्रम दूत आरएनए में पाए जाने वाले क्षारो के अनुक्रम पर निर्भर करता है। अमीनो अम्ल पेप्टाइड

बंध द्वारा जुड़े रहते हैं। पेप्टाइड बंध के निर्माण में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इस कारण से प्रथम प्रावस्था में अमीनो अम्ल स्वयं एटीपी के उपस्थिति में सक्रिय हो जाते है व सजातीय अंतरण आरएनए से जुड़ जाते हैं — इस प्रक्रिया को अधिक स्पष्ट रूप से **अंतरण आरएनए का आवेशीकरण** या **अंतरण आरएनए एमीनोएसिलेशन** कहते हैं। इस तरह से आवेशित दो अंतरण आरएनए का एक दूसरे से काफी पास में आने से उनमें पेप्टाइड बंध का निर्माण होता है। उत्प्रेरक की उपस्थिति में पेप्टाइड बंध बनने की दर बढ़ जाती है।

कोशकीय कारखाना जो प्रोटीन संश्लेषण के लिए आवश्यक है वह राइबोसोम है। राइबोसोम संरचनात्मक आरएनए व लगभग 80 विभिन्न प्रोटीनों से मिलकर बना होता है। यह अपनी निष्क्रिय अवस्था में दो उप एककों-एक बड़ी उप एकक व एक छोटी उपएकक से मिलकर बना होता है। जब छोटा उपएकक दूत आरएनए में मिलता है तब दूत आरएनए का प्रोटीन में स्थानांतरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। बड़े उपएकक में दो स्थल होते हैं जिससे बाद में अमीनो अम्ल जुड़कर एक दूसरे के काफी पास में आ जाते हैं जिससे पॉली पेप्टाइड बंध बन जाता है। राइबोसोम पेप्टाइड बंध के निर्माण में उत्प्रेरक (23 राइबोसोमल आरएनए जीवाणु में एंजाइम - राइबोजाइम) का काम करता है।

दूत आरएनए में स्थानांतरण इकाई आरएनए का अनुक्रम है जिसके किनारो पर प्रारंभक प्रकूट (AUG स्टार्ट कोडान) व रोध प्रकूट (स्टाप कोडान) मिलते है जो पॉलीपेप्टाइड का कूटलेखन करते हैं। दूत आर एन में कुछ अतिरिक्त अनुक्रम होते हैं जो स्थानांतरित नहीं होते हैं उन्हें **अस्थानातंरित स्थल** (अनट्रांसलेटेड रीजन्स, यूटीआर) कहते हैं। यूटी आर दोनों 5'- किनारा (प्रारंभक प्रकूट के पहले) व 3'- किनारा (रोध प्रकूट के बाद) पर स्थित होता है। ये प्रभावी स्थानांतरण प्रक्रिया के लिए आवश्यक है।

प्रारंभन हेतु राइबोसोम दूत आरएनए के प्रारंभक प्रकूट (AUG) से बंधता है जिसकी पहचान प्रारंभक अंतरण आरएनए द्वारा की जाती है। राइबोसोम इसके बाद प्रोटीन संश्लेषण की दीर्घीकरण प्रावस्था की ओर बढ़ता है। इस अवस्था में एमीनो अम्ल अंतरण आरएनए से जुड़कर एक जटिल रचना का निर्माण करते हैं जो आगे चलकर अंतरण आरएनए के प्रति प्रकूट (एंटीकोडान) से पूरक क्षार युग्म बना कर दूत आरएनए के उचित प्रकूट से जुड़ जाते हैं। राइबोसोम दूत आरएनए के साथ एक प्रकूट से दूसरे प्रकूट की ओर जाता है। एक के बाद एक अमीनो अम्लों के जुड़ने से पॉली पेप्टाइड अनुक्रमों का स्थानांतरण होता है जो डीएनए द्वारा निर्देशित व दूत आरएनए द्वारा निरूपित होते हैं। अंत में विमोचक कारक का रोध प्रकूट से जुड़ने से स्थानांतरण प्रक्रिया का समापन हो जाता है व राइबोसोम से पूर्ण पॉलीपेप्टाइड अलग हो जाते हैं।

6.8 जीन अभिव्यक्ति का नियमन

जीन अभिव्यक्ति के नियमन का बहुत व्यापक अर्थ है जो विभिन्न स्तरों पर होती है। जीन अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप पॉलीपेप्टाइड का निर्माण होता है जिसे कई स्तरों पर नियमित कर सकते हैं। सुकेंद्रकी में नियमन कई स्तर पर हो सकता है–

(क) अनुलेखन स्तर (प्रारंभिक अनुलेख का निर्माण) (ख) संसाधन स्तर (संबंधन का नियमन) (ग) दूत आरएनए का केंद्रक से कोशिकाप्रवण में अभिगमन (घ) स्थानांतरीय स्तर।

जीन कोशिका में अभिव्यक्त होकर एक विशेष कार्य या एक निश्चित कार्य को संपन्न करते हैं। उदाहरणार्थ–*ई. कोलाई* में स्थित एंजाइम बीटा-गैलेक्टोसाइडेज डाइसैकेटाइड–लैक्टोज का जल अपघटन कर गैलेक्टोज व ग्लूकोज का निर्माण करते हैं जिसे जीवाणु ऊर्जा के स्रोत के रूप में प्रयोग करते हैं। लैक्टोज जो जीवाणु के ऊर्जा स्रोत हैं कि अनुपस्थिति में बीटा गैलेक्टोसाइडेज एंजाइम का संश्लेषण नहीं होता है। इस कारण से साधारण शब्दों में कहा जाए तो यह एक उपापचयी, शरीर क्रियात्मक या वातावरण स्थिति है जो जीन की अभिव्यक्ति को नियमित करती है। एक भ्रूण का व्यस्क जीव में विकास व विभेदन जीन के विभिन्न समूहों की अभिव्यक्ति समंवित नियमन का परिणाम है।

असीमकेंद्रकी में जीन अभिव्यक्ति के नियंत्रक के लिए कुछ ऐसे प्रभावी स्थल होते हैं जो अनुलेखन प्रारंभन की दर को नियमित करते हैं। अनुलेखन ईकाई में एक निश्चित उन्नायक के साथ आरएनए पॉलीमरेज की क्रियाशीलता अतिरिक्त प्रोटीन से पारस्परिक क्रिया द्वारा उसे नियमित होती है जो प्रारंभक स्थल के पहचान में इसे सहयोग देते हैं। ये नियामक प्रोटीन सहयोगात्मक (सक्रिया, एक्टिवेटर) या असहयोगात्मक (दमनकारी, रिप्रेसर) दोनों रूप में कार्य कर सकते हैं। असीमकेंद्रकी डीएनए में उन्नायक स्थल की उपलब्धता प्रोटीन की विशेष अनुक्रमों जिसे **प्रचालक** (आपरेटर) कहते हैं से अन्योय क्रिया द्वारा नियमित होती रहती है। अधिकतर प्रचालेक (औपरॉन) में प्रचालक स्थल, उन्नायक भाग के पास में ही स्थित होता है और अधिकतर स्थिति में प्रचालक के अनुक्रम दमनकारी प्रोटीन से बँध जाते हैं। प्रत्येक औपरॉन का अपना विशिष्ट प्रचालेक व दमनकारी (रिप्रेशर) होता है। उदाहरण—*लैक* प्रचालेक केवल लैक–प्रचालेक (एलएसी–आपरेटर) में मिलता है यह विशेषरूप से *लैक*–दमनकारी (एलएसी–रिप्रेसर) से आपसी क्रिया करता है।

6.8.1 *लैक* प्रचालेक (लैक–ओपेरान)

लैक ओपेरान के बारे स्पष्ट जानकारी आनुवंशिकीविज्ञ फ्रेंक्वास जैकब व जैव रसायनविज्ञ जैक्वे मोनाड के आपसी प्रयास से हो पायी है। उन्होंने पहली बार अनुलेखनीय नियमित तंत्र के बारे में बताया। लैक–प्रचालेक (यहाँ लैक का मतलब लैक्टोज है) में पॉलीसीसट्रानिक संरचनात्मक जीन का नियमन एक सामान्य उन्नायक व नियामक जीन द्वारा होता है। इस तरह की व्यवस्था जीवाणु में बहुत सामान्य है इसे **प्रचालेक** (ओपेरान) कहते हैं। ऐसे कुछ उदाहरण है – *लैक* प्रचालेक (एलएसी ओपेटान), *ट्रिप* प्रचालेक (टीआरपी – ओपेरान), *एरा*–प्रचालेक (एआरए–ओपेरान), *हिस* प्रचालेक (एचआईएस – ओपेरान), व वैल–प्रचालेक (बीएएल–ओपेरान) आदि।

लैक प्रचालेक एक नियामक जीन (आई (i) जीन – यहाँ आई का मतलब **प्रेरक** (इनडयूसर) नहीं, बल्कि यह शब्द मंदक (इनहिबीटर) से किया गया है और तीन संरचनात्मक जीन (जेड, वाई व ए) से मिलकर बना होता है। आई (i) जीन लैक प्रचालेक के दमनकारी का कूटलेखन करता है। जेड जीन बीटा–गैलेक्टोसाइडेज (बीटा–गाल; β–gal) का कूट लेखन करता है जो डाइसैकेटाइड लैक्टोज के जल विघटन से

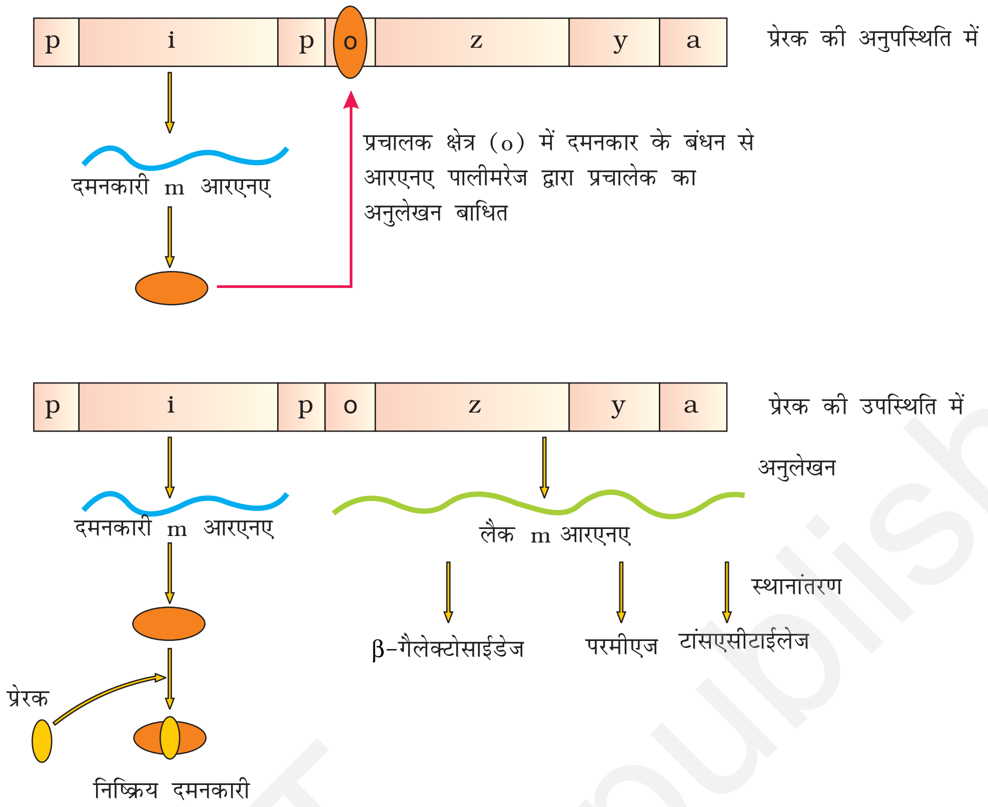

चित्र 6.14 लैक ओपेरान

एकलक ईकाई गैलेक्टोज व ग्लूकोज का निर्माण करता है। वाई (y) जीन परमीएज का कूटलेखन करता है जो कोशिका के लिए बीटा-गैलेक्टोसाइडेज की पारगम्यता को बढ़ता है। जीन ए (a) द्वारा ट्रांसएसिटीलेज का कूटलेखन होता है। इस तरह से लैक-प्रचालेक के सभी तीनों जीन के उत्पाद लैक्टोज उपापचय के लिए आवश्यक है। दूसरे अन्य प्रचालेकों के प्रचालेक में उपस्थित जीन समान संबंधित उपापचयी पथ में एक साथ कार्य करते हैं (चित्र 6.14)।

लैक्टोज एंजाइम बीटा-गैलेक्टोसाइडेज के लिए क्रियाधार का काम करता है जो प्रचालेक की सक्रियता के आरंभ (आन) या निष्क्रियता समाप्ति (आफ) को नियमित करता है। इसे **प्रेरक** कहते हैं। सबसे उपयुक्त कार्बन स्रोत-ग्लूकोज की अनुपस्थिति में यदि जीवाणु के संवर्धन माध्यम में लैक्टोज डाल दिया जाता है तब परमिएड की क्रिया द्वारा लैक्टोज कोशिका के अंदर अभिगमन करता है। (याद करो कोशिका में लैक-प्रचालेक की अभिव्यक्ति निम्न स्तर पर हमेशा बनी रहती है अन्यथा लैक्टोज कोशिकाओं के भीतर प्रवेश नहीं कर सकता है)। इसके बाद लैक्टोज प्रचालेक को निम्न ढंग से प्रेरित करता है।

प्रचालेक का दमनकारी आई (i) जीन द्वारा संश्लेषित (हमेशा उपस्थित रहता है) होता है। दमनकारी प्रोटीन प्रचालेक के प्रचालक स्थल से बंधकर आरएनए पॉलीमरेज को निष्क्रिय कर देता है जिससे प्रचालेक अनुलेखित नहीं हो पाता है। प्रेरक जैसे लैक्टोज

© NCERT not to be republished

(या एलोलैक्टोज) की उपस्थिति में दमनकारी प्रेरक से क्रियाकर निष्क्रियित हो जाता है। इसके फलस्वरूप आरएनए पॉलीमरेज उन्नायक से बँध कर अनुलेखन की शुरुआत करता है (चित्र 6.14)। *लैक* प्रचालेक के नियमन को इसके क्रियाधार द्वारा एंजाइम के संश्लेषण के रूप में निरुपित किया जा सकता है।

याद रखो *लैक*-प्रचालेक किए ग्लूकोज या गैलेक्टोज प्रेरक के रूप में कार्य नहीं कर सकता है। क्या तुम बता सकते हो लैक्टोज की उपस्थिति में कब तक लैक-प्रचालेक अभिव्यक्त हो सकता है?

दमनकारी द्वारा *लैक*-प्रचालेक के नियमन को **ऋणात्मक नियमन** (निगेटीव रेगुलेशन) कहते है। *लैक* प्रचालेक धनात्मक नियमन (पाजीटीव रेगुलेसन) के नियंत्रण में भी होता है, लेकिन इस स्तर पर इसके बारे में चर्चा नहीं कि जाएगी।

6.9 मानव जीनोम परियोजना (ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट)

पिछले खंडों में तुम पढ़ चुके हो कि डीएनए में मिलने वाले क्षारों का अनुक्रम किसी भी जीव का आनुवंशिक सूचना का निर्धारण करता है। दूसरे शब्दों में किसी भी जीव की आनुवंशिक व्यवस्था उसके डीएनए में मिलने वाले अनुक्रम से निर्धारित होती है। दो विभिन्न व्यक्तियों में मिलने वाला डीएनए अनुक्रम कुछ जगहों पर भिन्न-भिन्न होता है। ये कल्पनाएँ मानव जीनोम में मिलने वाले पूर्ण डीएनए अनुक्रम के बारे में पता लगाने के लिए विवश करती हैं। आनुवंशिक अभियांत्रिक तकनीकों के विकास से किसी भी, डीएनए खंड को विलगित व क्लोन किया जा सकता है व डीएनए अनुक्रमों को शीघ्र जानने के लिए साधारण तकनीक के विकास से 1990 में मानव जीनोम के अनुक्रमों को पता लगाने के लिए एक महत्त्वाकांक्षी योजना की शुरुआत हुई।

मानव जीनोम योजना (एचजीपी) महायोजना (मेगा प्रोजेक्ट) कहलाती है। यदि इस योजना के उद्देश्यों को ध्यान दें तो इसके विस्तार व आवश्यकता के बारे में कल्पना कर सकते हैं —

मानव जीनोम में लगभग 3×10^9 क्षार युग्म मिलते हैं; यदि अनुक्रम जानने के लिए प्रति क्षार तीन अमेरिकन डॉलर (US $ 3) खर्च होते हैं तो पूरी योजना पर खर्च होने वाली लागत लगभग 9 बिलियन अमेरिकी डॉलर होगा। प्राप्त अनुक्रमों को टंकणित रूप में किताब में संग्रहित किया जाए तो जिसके प्रत्येक पृष्ठ में 1000 अक्षर हो तो इस प्रकार इस किताब में 1000 पृष्ठ होंगे तब इस तरह से एक मानव कोशिका के डीएनए सूचनाओं को संकलित करने हेतु 3300 किताबों की आवश्यकता होगी। इस प्रकार बड़ी संख्या में आँकड़ों की प्राप्ति के लिए उच्च गतिकीय संगणक साधन की आवश्यकता होगी है जिससे आँकड़ों के संग्रह, विश्लेषण व पुनः उपयोग में सहायता मिलती है। एचजीपी के बारे में जानकारी जीव विज्ञान के इस नए क्षेत्र का तेजी से विस्तार से संभव हो पाया जिसे **जैव सूचना विज्ञान** (बायोइनफार्मेटिक्स) कहते हैं।

एच जी पी के लक्ष्य

(क) मानव डीएनए में मिलने वाले एचजीपी के कुछ महत्त्वपूर्ण लक्ष्य निम्नलिखित हैं लगभग — 20,000-25,000 सभी जीनों के बारे में पता लगाना,

© NCERT not to be republished

(ख) मानव डीएनए को बनाने वाले 3 बिलियन रासायनिक क्षार युग्मों के अनुक्रमों को निर्धारित करना,

(ग) उपरोक्त जानकारी को आँकड़ों के रूप में संग्रहित करना,

(घ) आँकड़ों के विश्लेषण हेतु नयी तकनीक का सुधार करना,

(ङ) योजना द्वारा उठने वाले नैतिक, कानूनी व सामाजिक मुद्दों (इ एल एस आई) के बारे में विचार करना।

मानव जीनोम परियोजना 13 वर्ष की योजना का जिसे अमेरिकी ऊर्जा विभाग (यू एस डिपार्टमेंट ऑफ इनर्जी) व राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान (नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ) द्वारा सहयोग प्राप्त था। प्रारंभिक वर्षों में वेलकम न्यास (यू.के.) की एचजीपी में भागीदारी थी और बाद में जापान, फ्रांस, जर्मनी, चीन व अन्य देशों द्वारा सहयोग प्रदान किया गया। यह योजना 2003 में पूर्ण हो गई। विभिन्न व्यक्तियों में मिलने वाले डीएनए की विभिन्नता के बारे में प्राप्त जानकारी से मानव में मिलने वाले हजारों अनियमितताओं के बारे में पहचानने, उपचार करने व कुछ हद तक उनके रोकने में सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त मानव जीव विज्ञान के सुरागों को समझने, अमानवीय जीवों के डीएनए अनुक्रमों की प्राप्त जानकारी के आधार पर उनकी प्राकृतिक क्षमताओं का उपयोग कर स्वास्थ्य सुरक्षा, कृषि, ऊर्जा उत्पादन व पर्यावरण सुधार की दिशा में उठने वाली चुनौतियों को हल किया सकता है। कई अमानवीय प्रतिरूप-जीवों गैसे-जीवाणु, यीस्ट, *केएनोरहेब्डीटीस इलीगेंस* (स्वतंत्र अरोगजनक सूत्रकृमि), *ड्रासोफिला* (फलमक्खी), पौधा (धान व *एरेबीडाप्सीस*) आदि के अनुक्रमों के बारे में जानकारी प्राप्त हुई है।

कार्य-प्रणालियाँ- इन विधियों में दो महत्त्वपूर्ण तरीकों का उपयोग किया गया है। पहले प्रयास में उन सभी जीन जो आरएनए के रूप में व्यक्त होते हैं उनके बारे में ध्यान देना इसे **व्यक्त अनुक्रम घुंडी** (इक्सेप्रेस्ड सीक्वेंश टैग्स, ESTs)। दूसरा प्रयास यह है कि जीन में मिलने वाले सभी जीनोम के व्यक्तेक व अव्यक्तेक अनुक्रमों की जानकारी प्राप्त कर उनके कार्यों को निर्धारित करना (इसे **अनुक्रम टिप्पण** या सिक्वेंस एनोटेसन कहते हैं) हैं। कोशिका के पूर्ण डीएनए में स्थित अनुक्रमों की जानकारी के लिए पहले इसे विलगित कर छोटे-छोटे यादृच्छिक खंड (याद करो डीएनए एक बहुत लंबा बहुलक है इस कारण से डीएनए के लंबे टुकड़ों के अनुक्रमण में परेशानी होती है) बना कर संवाहकों का उपयोग उचित आतिथेय में भेज देते हैं। क्लोनिंग प्रत्येक डीएनए के प्रवर्धन में सहायता करता है जिससे इन अनुक्रमों के बारे में जानकारी मिलना आसान हो जाता है। सामान्यतया उपयोगी आतिथेय जीवाणु व यीस्ट है और संवाहकों को **बी ए सी** (जीवाणु कृत्रिम गुणसूत्र; बैक्टिरियल आर्टिफिशियल क्रोमोसोम) व **वाइ ए सी** (यीस्ट कृत्रिम गुणसूत्र; यीस्ट आर्टिफिशियल क्रोमोसोम) कहते हैं।

खंडों को स्वचालित डीएनए अनुक्रमक (डीएनए सीक्वेंसर) जो फ्रेडरिक सेंगर द्वारा विकसित विधि के सिद्धांत पर कार्य करता है का उपयोग कर अनुक्रमण करते हैं। (याद करो, प्रोटीन में अमीनो अम्लों के अनुक्रमों को निर्धारित करने वाली विधि के विकास का श्रेय भी सेंगर को ही जाता है)। इन अनुक्रमों को एक दूसरे में स्थित अंशछादन (ओवर लैपिंग) के आधार पर व्यवस्थित करते हैं। अनुक्रमण हेतु अंशछादन

© NCERT not to be republished

खंडों का निर्माण होना आवश्यक है। इन अनुक्रमों को मनुष्य द्वारा पंक्तिबद्ध करना संभव नहीं है। इस कारण से कम्प्यूटर आधारित विशेष प्रक्रमन (प्रोग्राम) के विकास की आवश्यकता है (चित्र 6.15) बाद में इन अनुक्रमकों का टिप्पणी कर प्रत्येक गुणसूत्र के साथ निर्धारित किया गया। गुणसूत्र 1 का अनुक्रमण में मई 2006 (यह मानव के 24 गुणसूत्रों में अंतिम था –22–3 लिंग गुणसूत्र और X तथा Y की अनुक्रमण की आवश्यकता है)। दूसरा चुनौतीपूर्ण कार्य जीनोम का आनुवंशिक व भौतिक नक्शे तैयार करना था। बहुरूपीय प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लीएज पहचान स्थल व दोहराए गए डीएनए के अनुक्रमों, जिसे सूक्ष्म अनसंगीय (माइक्रोसैटिलाईट) (दोहराए गए डीएनए अनुक्रमों में बहुरूपीय की उपयोगिता के बारे में अगले खंड डीएनए फिंगरप्रिंटिंग में पढ़ेंगे) कहते हैं।

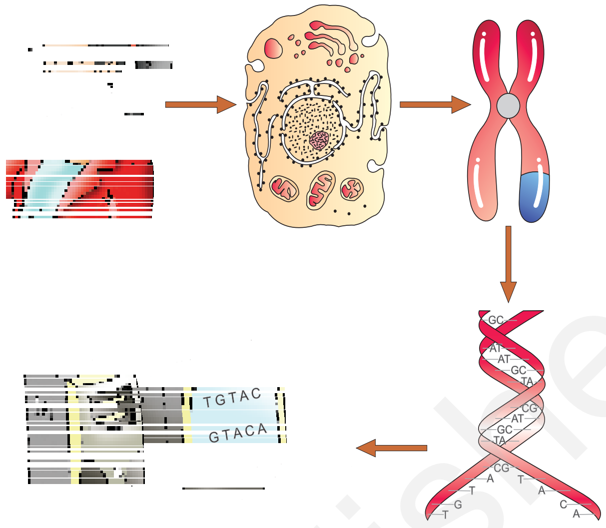

चित्र 6.15 मानव जीनोम परियोजना का निरूपक आरेख

6.9.1 मानव जीनोम की मुख्य विशेषताएँ

मानव जीनोम परियोजना से प्राप्त विशेष परिक्षण निम्नवत है —

(क) मानव जीनोम 3164.7 करोड़ क्षार मिलते हैं।

(ख) औसतन प्रत्येक जीन में 3000 क्षार स्थित हैं जिनके आकार में अधिक विभिन्नताएँ हैं। मनुष्य को ज्ञात सबसे बड़ी जीन डिसट्रॉफिन (Dystrophin) में 2.4 करोड़ क्षार मिले हैं।

(ग) जीन की संख्या 30,000 है जो पहले की अनुमानित संख्या 80,000 से 140,000 से काफी कम है। लगभग सभी (99.9 प्रतिशत) लोगों में मिलने न्यूक्लियो टाइड्स क्षार एक समान है।

(घ) खोजी गई 50 प्रतिशत से अधिक जीन के कार्य के बारे में जानकारी प्राप्त है।

(ङ) दो प्रतिशत से कम जीनोम प्रोटीन का कूटलेखन करते हैं।

(च) मानव जीनोम के बहुत बड़े भाग का निर्माण पुनरावृत्ति अनुक्रम द्वारा होता हैं।

(छ) पुनरावृत्ति अनुक्रम डीएनए के फैले हुए भाग हैं जिनकी कभी-कभी सौ से हजार बार पुनरावृत्ति होती है। जिनके बारे में यह विचार है कि इनका सीधा कूटलेखन में कोई कार्य नहीं है लेकिन इनसे गुणसूत्र की संरचना, गतिकीय व विकास के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

(ज) गुणसूत्र 1 में सर्वाधिक जीन (2968) व Y गुणसूत्र में सबसे कम जीन (231) मिलते हैं।

(झ) वैज्ञानिकों ने मानव में लगभग 1.4 करोड़ जगहों पर अलग इकहरा क्षार (SNPs – **एकल न्यूक्लियोटाइड बहुरूपता; सिंगल न्यूक्लियोटाइड पॉलीमारफीज़्म;** जिसे 'स्निप्स' कहा जाता है) का पता लगाया। उपरोक्त

जानकारी से गुणसूत्रों में उन जगहों जो रोग आधारित अनुक्रम मानव इतिहास का पता लगाने में सहायक है के बारे में जानकारी एकत्र करने में काफी सहयोग प्रदान किया।

6.9.2 उपयोग व भविष्य की चुनौतियाँ

डीएनए अनुक्रमों से प्राप्त सार्थक जानकारियाँ व शोधों से आने वाले दशकों में जैविक तंत्र को समझने में काफी सहुलियत रही। इस वृहद् कार्य को पूर्ण करने में विश्व के सार्वजनिक व असावर्जनिक क्षेत्र के कई हजार विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों व रचनाकारों का योगदान रहा। एच जी अनुक्रमों का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह रहा कि जैविक अनुसंधानों में मूलतः नए आयामों का समावेश हो सका। पहले शोधकर्त्ता एक समय पर एक या कुछ जीन के बारे में ही अध्ययन कर पाते थे। पूर्ण जीनोम अनुक्रमों व नयी तकनीकों के आधार पर अब काफी व्यापक स्तर व व्यवस्थित तरीके से उठने वाले प्रश्नों को हल करने में सहायता मिली है। इससे जीनोम में मिलने वाले सभी जीन के बारे में अध्ययन किया जा सका, उदाहरणार्थ — विशेष ऊतकों या अंग या अर्बुद में मिलने वाले सभी अनुलेखों व हजारों जीन व प्रोटीन आपस में जुड़े हुए तार की तरह कैसे कार्य करते है इनसे प्राप्त जानकारी से जीवन के रसायन को वांच्छनीय बनाने में उपयोगी रहा।

6.10 डीएनए अंगुलिछापी (डीएनए फिंगर प्रिंटिंग)

पिछले खंड में यह बताया गया है कि मनुष्यों में मिलने वाले क्षार अनुक्रम लगभग 99.9 प्रतिशत समान होते हैं। *यह मानते हुए कि मानव जीनोम में 3×10^9 क्षार युग्म है तो कितने क्षार अनुक्रमों में अंतर है?* डीएनए के अनुक्रम में मिलने वाले अंतर व्यक्ति विशेष के समलक्षणीय रूप आकार को निर्धारित करते हैं। यदि किसी का उद्देश्य दो व्यक्तियों या किसी जनसंख्या के लोगों के बीच आनुवंशिक विभिन्नता का पता लगाना हो तो हमेशा डीएनए का अनुक्रम ज्ञात करना होगा जो एक कठिन व महँगा कार्य है। कल्पना करो कि दो 3×10^6 क्षार के बीच तुलना की है। दो व्यक्तियों के डीएनए अनुक्रमों के बीच तुलना करने हेतु डीएनए अंगुलिछापी एक त्वरित विधि है।

डीएनए अंगुलिछापी में डीएनए अनुक्रम में स्थित कुछ विशिष्ट जगहों के बीच विभिन्नता का पता लगाते हैं इसको **पुनरावृत्ति डीएनए** (रीपीटेटिव डीएनए) कहते हैं; अनुक्रमों में डीएनए का छोटा भाग कई बार पुनरावृत होता है। इस पुनरावृत्ति डीएनए को जीनोमिक डीएनए के ढेर से अलग करने के लिए जो विभिन्न शिखर बनाते है घनत्व प्रवणता अपकेंद्रीकरण द्वारा अलग करते हैं। डीएनए ढेर एक बहुत बड़ा शिखर बनाता है जबकि साथ में अन्य छोटे शिखर बनते है जिसे **अनुषंगी डीएनए** (सेटेलाइट डीएनए) कहते हैं। क्षार घटकों, खंडों की लंबाई, व पुनरावृत्ति ईकाईयों के आधार पर अनुषंगी, लघु-अनुषंगी आदि में वर्गीकृत किया गया है। अनुक्रम समान्यतया किसी भी प्रोटीन का कूटलेखन नहीं करते हैं, लेकिन ये मानव जीनोम के अधिकांश भाग में मिलते हैं। ये अनुक्रम उच्चश्रेणी बहुरूपता प्रदर्शित करते हैं जो डीएनए अंगुलिछापी का आधार है।

© NCERT not to be republished

किसी भी व्यक्ति के विभिन्न ऊतकों (जैसे-खून, बाल पुटक, त्वचा, हड्डी, लार, शुक्राणु आदि) से प्राप्त डीएनए में एक समान बहुरूपता मिलती है जो न्यायालयीन उपयोग में एक पहचान औजार के रूप में उपयोगी है। चूँकि बहुरूपता जनक से बच्चों की ओर वंशागत होती है, इसलिए डीएनए अंगुलिछापी विवाद की स्थिति में पैतृत्व परीक्षण में सहायक है।

डीएनए अनुक्रम में मिलने वाली बहुरूपता के साथ-साथ डीएनए अंगुलिछापी मानव जीनोम के आनुवंशिक नक्शे तैयार करने में लाभदायक है साधारण तौर से हमें यह समझ लेना चाहिए कि डीएनए बहुरूपता क्या है। **बहुरूपता** (आनुवंशिक आधार पर विभिन्नता) उत्परिवर्तन के कारण ही उत्पन्न होता है। आप अध्याय 5 व इस अध्याय के पिछले खंडों में उत्परिवर्तन के विभिन्न प्रकार व उनके प्रभावों के बारे में पढ़ चुके हैं।) किसी व्यक्ति में नए उत्परिवर्तन उसकी कायिक कोशिकाओं या जनन कोशिकाओं (लैंगिक प्रजनन करने वाले जीवों उस कोशिका से युग्मक बनाते हैं) में पैदा होता है। यदि जनन कोशिका उत्परिवर्तन किसी व्यक्ति की संतानोत्पत्ति क्षमता को गंभीर रूप से प्रभावित नहीं करते तो यह उत्परिवर्तन स्थानांतरित होता है जिससे जनसंख्या के दूसरे सदस्यों (लैंगिक प्रजनन द्वारा) में यह फैल जाता है। विकल्पी (पुन: अध्याय 5 से विकल्पी की परिभाषा याद करो) अनुक्रम विभिन्नता जिसे परंपरागत रूप से डीएनए बहुरूपता कहते हैं। मानव जनसंख्या में 0.01 से अधिक आवृत्ति में एक विस्थल में असंगति मिलने से होती है। साधारण तौर से यदि एक **वंशागत उत्परिवर्तन** जनसंख्या में उच्च आवृत्ति से मिलता है तो इसे **डीएनए बहुरूपता** कहते हैं। उपरोक्त विभिन्नता की संभावना अव्यक्तेक डीएनए अनुक्रम में ज्यादा होती है व इन अनुक्रमों में होने वाला उत्परिवर्तन व्यक्ति की प्रजनन क्षमता को प्रभावित नहीं कर पाता है। इस तरह के उत्परिवर्तन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में एकत्रित होते रहते हैं जिसके फलस्वरूप विभिन्नता/बहुरूपता उत्पन्न होती है। बहुरूपता विभिन्न प्रकार की होती है जिसमें एक न्यूक्लियोटाइड में या विस्तृत स्तर पर परिवर्तन होता है। विकास व जाति उद्भवन में उपरोक्त बहुरूपता की बहुत बड़ी भूमिका होती है जिसके बारे में आप उच्च कक्षाओं में विस्तृत रूप से पढ़ेंगे।

डीएनए अंगुलिछापी तकनीक का प्रारंभिक विकास एलेक जेफ्ररीज द्वारा किया गया। इन्होंने अनुषंगी डीएनए को प्रोब के रूप में उपयोग किया जिसमें काफी बहुरूपता मिलती है। इसे **अनुबद्ध पुनरार्तक की विभिन्न संख्या** (वैरिएबल नंबर आफ टेंडेम रिपीट, वी एन टी आर) के रूप में जानते हैं। तकनीक जैसा पहले उपयोग किया जा चुका है, वह सदर्न ब्लाट हाइब्रिडाइजेसन है। जिसमें विकिरण चिह्नित वीएनटी आर एक प्रोब के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें शामिल है - (क) डीएनए का विलगन (ख) प्रतिबंधन एंडान्यूक्लिएज द्वारा डीएनए का पाचन (ग) इलेक्ट्रोफोरेसिस द्वारा डीएनए खंडों का पृथक्करण (घ) पृथक्कृत डीएनए खंडों का संश्लेषित झिल्ली जैसे - नाइट्रोसेलुलोज या नाइलान पर स्थानांतरण (ब्लाटिंग) (ङ) चिह्नित वी एन टी आर प्रोब का उपयोग करते हुए संकरण व (च) स्वविकिरणी चित्रण द्वारा संकरित डीएनए खंडों का पता लगाना। डीएनए अंगुलिछापी चित्रीय प्रदर्शन चित्र 6.16 में दिखाया गया है।

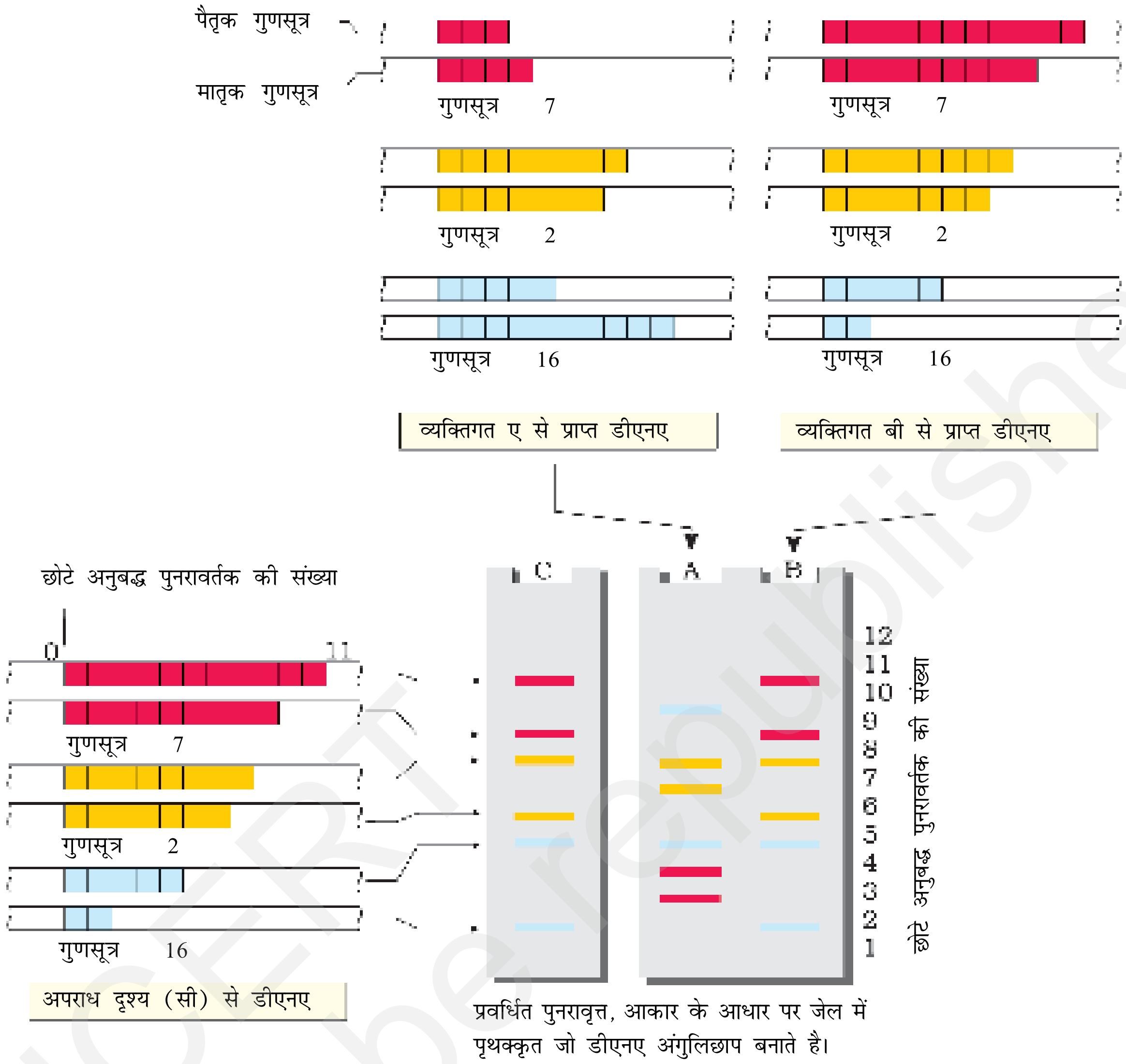

चित्र 6.16 कुछ प्रतिनिधि गुणसूत्र में डीएनए अंगुलिछापी का चित्रात्मक प्रदर्शन जिनमें वीएनटीआर के विभिन्न प्रतिरूप संख्या दर्शाये गये हैं। समझने हेतु विभिन्न रंग योजन का उपयोग जेल में स्थित प्रत्येक पट्टी के उद्गम का पता लगाने में किया गया है। एक गुणसूत्र के दो एलील्स (पैतृक व मातृक) में वीएनटीआर के विभिन्न प्रतिरूप संख्या स्थित है। अपराधिक पृष्ठभूमि यह साबित होता है कि डीएनए के पट्टीदार नमूने व्यक्तिगत बी से मिलता जुलता है।

वीएनटीआर अनुषंगी डीएनए की श्रेणी से संबंधित है इसलिए इसे लघुअनुषंगी कहते है। इसमें एक छोटा डीएनए अनुक्रम बहुरूपीय संख्या में अनुबद्धीय व्यवस्थित होता है। किसी व्यक्ति के एक गुणसूत्र से दूसरे गुणसूत्र की रूपीय संख्या में विभिन्नता मिलती है। पुनरावृत्तों की संख्या में बहुत उच्च श्रेणी की बहुरूपता मिलती है। जिसके फलस्वरूप वीएनटीआर के आकार परिवर्तित होते रहते हैं इनके आकार 0.1 से 20 किलोबेस के होते हैं। वीएनटीआर प्रोब से संकरण के फलस्वरूप प्राप्त स्वविकिरण चित्र में विभिन्न आकार की पट्टियाँ दिखायी पड़ती हैं। ये पट्टियाँ किसी व्यक्ति के डीएनए की विशिष्ट प्रारूप को व्यक्त करती हैं (चित्र 6.16)। ये पट्टियाँ एकयुग्मज (समरूपी) जुड़वाँ को

© NCERT not to be republished

छोड़कर किसी भी जनसंख्या के एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न-भिन्न होती है (चित्र 6.16)। पॉलीमरेज शृंखला अभिक्रिया का उपयोग कर तकनीक की संवेदनशीलता को बढ़ा सकते हैं (पीसीआर के बारे में तुम अध्याय 11 में पढ़ोगे)। इसके फलस्वरूप किसी भी एक कोशिका से प्राप्त डीएनए से पर्याप्त डीएनए अंगुलिछापी विश्लेषण किया जा सकता है। न्यायालयीन विज्ञान में उपयोग के अतिरिक्त इसका बहुत अधिक उपयोग है जैसे- जनसंख्या व आनुवंशिक विभिन्नता के निर्धारण में। वर्तमान समय में कई प्रकार के संपरीक्षक का उपयोग डीएनए अंगुलिछाप बनाने में किया जा रहा है।

सारांश

न्यूक्लिक अम्ल न्यूक्लियोटाइड्स का एक लंबा बहुलक है। डीएनए आनुवंशिक सूचनाओं को संग्रहित करने जबकि आरएनए मुख्यतया सूचनाओं के स्थानांतरण व अभिव्यक्ति में सहायता करते हैं। डीएनए व आरएनए दो आनुवंशिक पदार्थ के रूप में कार्य करते हैं, लेकिन डीएनए रासायनिक व संरचनात्मक अधिक स्थिर होने से उपयुक्त आनुवंशिक पदार्थ है। फिर भी आरएनए सबसे पहले विकसित हुआ जबकि डीएनए आरएनए से प्राप्त हुआ। डीएनए के द्वि शृंखला कुंडलित संरचना की विशिष्टता उसके विपरीत रज्जुकों के बीच उपस्थित हाइड्रोजन बंध है। नियम के अनुसार एडेनिन थाइमिन से दो हाइड्रोजन बंध द्वारा जुड़ा होता है जबकि ग्वानिन व साइटोसीन तीन हाइड्रोजन बंध द्वारा जुड़े होते हैं। इससे एक रज्जुक दूसरे के पूरक होते हैं डीएनए की प्रतिकृति सेमीकंजरवेटिव ढंग से होती है जबकि यह प्रक्रम पूरक हाइड्रोजन बंध द्वारा निर्देशित होता है। साधारण ढंग से कहा जाए तो डीएनए का यह खंड जो आरएनए का कूटलेखन करता है उसे जीन कहते हैं। अनुलेखन के दौरान डीएनए का एक रज्जुक टेम्पलेट के रूप में कार्य करता है जो पूरक आरएनए के संश्लेषण में दूत आरएनए को सक्रिय करता हुआ स्थानांतरित हो जाता है। जीवाणुओं में अनुलेखित एमआरएनए क्रियात्मक होता है अत: वह सीधे ही हो जाता है। सुकेंद्रीय में जीन विखंडित होते है। व्यक्तेक अनुक्रम एक्जान के बीच में अव्यक्तेक अनुक्रम इंट्रान मिलता है। इंट्रान को अलगकर व एक्जान को स्पलाइसिंग द्वारा आपस में जोड़कर सक्रिय आरएनए का निर्माण करते हैं। दूत आरएनए में मिलने वाले क्षार अनुक्रमों को तीन के समूहों में पढ़ते हैं (त्रिक आनुवंशिक कूट का निर्माण) जो एक एमीनो अम्ल का कूटलेखन करते हैं। अंतरण आरएनए द्वारा आनुवंशिक कूट को पूरकता के सिद्धांत पर पढ़ा जाता है जो एक अनुकूलक अणु के रूप में कार्य करता है। प्रत्येक एमीनो अम्ल के लिए विशिष्ट अंतरण आरएनए होते हैं। टी आरएनए विशिष्ट एमीनो अम्ल को अपने एक किनारे से जोड़ता है व दूत आरएनए पर स्थित कूट से अपने एंटीकोडान के बीच हाइड्रोजन बंध बनाकर युग्मित होता है। स्थानांतरण स्थल (प्रोटीन संश्लेषण) राइबोसोम है, जो दूत आरएनए से जुड़कर एमीनो अम्लों को जोड़ने के लिए पेप्टाइड बंध बनाने के लिए उत्प्रेरक का काम करता है जो एक आरएनए एंजाइम (राइबोजाइम) का उदाहरण है। स्थानांतरण एक प्रक्रम है जिसका विकास आरएनए के इर्दगिर्द हुआ है जो इस बात का सूचक है कि जीवन का विकास आरएनए से हुआ है। चूँकि अनुलेखन व स्थानांतरण उर्जात्मक एक बहुत मँहगी प्रक्रिया है,

© NCERT not to be republished

इसलिए यह दृढ़ता पूर्वक नियमित होते हैं। अनुलेखन का नियमन जीन की अभिव्यक्ति के नियमन का प्रथम चरण है। जीवाणु में एक से अधिक जीन आपस में इस तरह से व्यवस्थित होते हैं कि वे एक ईकाई के रूप में नियमित होते हैं जिसे प्रचालेक कहते है। लैक-ओपेरान जीवाणु में आद्यरूप का प्रचालेक है जो लैक्टोज के उपापचय के लिए जीन के कूटलेखन के लिए उत्तरदायी हैं। प्रचालेक का नियमन संवर्धन में उपस्थित लैक्टोज की मात्रा पर निर्भर है, जहाँ जीवाणु की वृद्धि होती है। इस कारण से इस प्रकार के नियमन को क्रियाधार के द्वारा एंजाइम संश्लेषण के नियमन के रूप में देख सकते हैं।

मानव जीनोम परियोजना एक वृहद् योजना थी जिसका उद्देश्य मानव जीनोम में स्थित सभी क्षारों का अनुक्रम करना था। इस परियोजना से बहुत नयी सूचनाएँ प्राप्त हुई। इस परियोजना के फलस्वरूप कई नए क्षेत्रों व अवसरों के रास्ते खुले। डीएनए अंगुलिछापी एक तकनीक है जिसमें डीएनए के स्तर पर एक जनसंख्या में स्थित विभिन्न लोगों के बीच विभिन्नता के बारे में पता लगाते हैं। यह डीएनए अनुक्रम में बहुरूपता के सिद्धांत पर कार्य करता है। इसका न्यायालयीन विज्ञान, आनुवंशिक विविधता व विकासीय जीव विज्ञान के क्षेत्र में अत्याधिक उपयोग है।

अभ्यास

1. निम्न को नाइट्रोजनीकृत क्षार व न्यूक्लियोटाइड के रूप में वर्गीकृत कीजिए —

   एडेनीन, साइटीडीन, थाइमीन, ग्वानोसीन, यूरेसील व साइटोसीन

2. यदि एक द्विरज्जुक डीएनए में 20 प्रतिशत साइटोसीन है तो डीएनए में मिलने वाले एडेनीन के प्रतिशत की गणना कीजिए।

3. यदि डीएनए के एक रज्जुक के अनुक्रम निम्नवत लिखें है-

   5'-ATGCATGCATGCATGCATGCATGCATGC-3'

   तो पूरक रज्जुक के अनुक्रम को 5'→3' दिशा में लिखे।

4. यदि अनुलेखन ईकाई में कूटलेखन रज्जुक के अनुक्रम को निम्नवत लिखा गया है-

   5'-ATGCATGCATGCATGCATGCATGCATGC-3'

   तो दूत आरएनए के अनुक्रम को लिखें।

5. डीएनए द्विकुंडली की कौन सी विशेषता वाटसन व क्रिक को डीएनए प्रतिकृति के सेमी-कंजर्वेटिव रूप को कल्पित करने में सहयोग किया; इसकी व्याख्या कीजिए।

6. टेंपलेट (डीएनए या आरएनए) के रासायनिक प्रकृति व इससे (डीएनए या आरएनए) संश्लेषित न्यूक्लिक अम्लों की प्रकृति के आधार पर न्यूक्लिक अम्ल पालीमरेज के विभिन्न प्रकार की सूची बनाइए।

© NCERT not to be republished

7. डीएनए आनुवंशिक पदार्थ है, इसे सिद्ध करने हेतु अपने प्रयोग के दौरान हर्षे व चेस ने डीएनए व प्रोटीन के बीच कैसे अंतर स्थापित किया?
8. निम्न के बीच अंतर बताइए —
   (क) पुनावृत्ति डीएनए एवं अनुषंगी डीएनए
   (ख) एमआरएनए और टीआरएनए
   (ग) टेम्पलेट रज्जु और कोडिंग रज्जु
9. स्थानांतरण के दौरान राइबोसोम की दो मुख्य भूमिकाओं की सूची बनाइए।
10. उस संवर्धन में जहाँ ई.कोलाई वृद्धि कर रहा हो लैक्टोज डालने पर लैक-ओपेरान उत्प्रेरित होता है। तब कभी संवर्धन में लैक्टोज डालने पर लैक ओपेरान कार्य करना क्यों बंद कर देता है?
11. निम्न के कार्यों का वर्णन (एक या दो पंक्तियों से) करो —
    (क) उन्नायक (प्रोमोटर)
    (ख) अंतरण आरएनए (tRNA)
    (ग) एक्जान
12. मानव जीनोम परियोजना को महापरियोजना क्यों कहा गया।
13. डी एन ए अंगुलिछापी क्या है। इसके उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
14. निम्न का संक्षिप्त वर्णन कीजिए—
    (क) अनुलेखन
    (ख) बहुरूपता
    (ग) स्थानांतरण
    (घ) जैव सूचना विज्ञान

© NCERT not to be republished

अध्याय 7

विकास

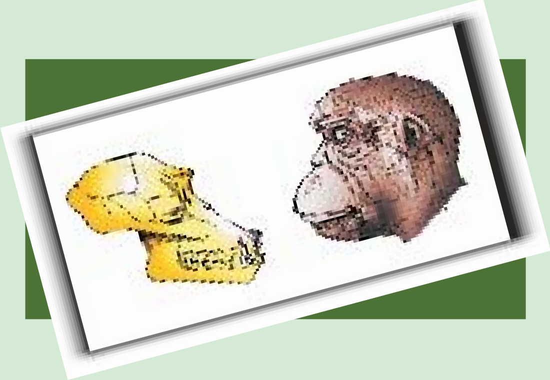

7.1 जीवन की उत्पत्ति

7.2 जीवन-स्वरूप का विकास – एक सिद्धांत

7.3 विकास के प्रमाण क्या हैं?

7.4 अनुकूली विकिरण क्या है?

7.5 जैव विकास

7.6 विकास की क्रिया विधि

7.7 हार्डी-वेनवर्ग सिद्धांत

7.8 विकास का संक्षिप्त विवरण

7.9 मानव का उद्भव और विकास

विकासीय जीव विज्ञान पृथ्वी पर जीव-रूपों के इतिहास का अध्ययन है। वस्तुत: विकास में है क्या? वनस्पति एवं प्राणि जगत में करोड़ों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर हुए परिवर्तनों को समझने के लिए जीवन की उत्पत्ति के बारे में एक समझ बनानी अपेक्षित है। अर्थात् हमें पृथ्वी, तारों और यहाँ तक कि स्वयं ब्रह्मांड के विकास को जानना होता है। अटकलबाजियों से पूर्ण कल्पित कहानियों के क्रम देखने-सुनने में आते हैं। यह कहानी जीवन की उत्पत्ति और पृथ्वी नामक ग्रह पर जीवन के रूपों का विकास या जैवविविधता की है, जोकि पृथ्वी के विकास एवं स्वयं ब्रह्मांड के विकास की पृष्ठभूमि के साथ सन्निहित है।

7.1 जीवन की उत्पत्ति

जब हम साफ स्वच्छ अंधेरी रात में आसमान की ओर तारों को देखते हैं, तो हम लोग एक तरह से बीते हुए समय की ओर देखते हैं। तारकीय दूरियों को प्रकाश वर्षों (लाइट इयर) में मापा गया है। आज हम जिस वस्तु को तारों के रूप में देखते हैं उसकी प्रकाश-यात्रा लाखों वर्ष पूर्व शुरू हुई थी। वे हमसे करोड़ों-अरब मील दूर हैं और हमारी आँखों तक पहुँच रहे हैं। हालाँकि; हम अपने आस-पास की चीजों को जब देखते हैं तो वे हमें तुरंत दिख जाती हैं; चूँकि वे वर्तमान काल की हैं। इसी तरह से जब हम सितारों को देखते हैं तो हम स्पष्ट रूप से भूतकाल में ताक-झाँक कर रहे होते हैं।

© NCERT not to be republished

जीवन की उत्पत्ति को, ब्रह्मांड के इतिहास में एक अनूठी घटना माना गया है। ब्रह्मांड विशाल है। सही मायने में कहा जाए तो पृथ्वी ही अपने आप में ब्रह्मांड की एक कणिका मात्र है। ब्रह्मांड अत्यंत ही प्राचीन, लगभग 20,000 करोड़ (200 बिलियन) वर्ष पुराना है। ब्रह्मांड में आकाश गंगाओं के विशाल समूह समेकित हैं। आकाश गंगाओं में सितारों और गैसों के बादल एवं धूल समाहित रहते हैं। ब्रह्मांड के आकार को ध्यान में रखते हुए पृथ्वी केवल एक बिंदु या कणिका मात्र है। ब्रह्मांड की उत्पत्ति के बारे में हमें **'बिग बैंग'** नामक महाविस्फोट का सिद्धांत कुछ बताने का प्रयास करता है। यह एक अनूठी कल्पना से परे महाविस्फोट का भौतिक रूप है। इसके फलस्वरूप ब्रह्मांड का विस्तार हुआ और तापमान में कमी आई। कुछ समय बाद हाइड्रोजन एवं हीलियम गैसें बनी। ये गैसें गुरूत्वाकर्षण के कारण संघनीभूत हुईं और वर्तमान ब्रह्मांड की आकाश गंगाओं का गठन हुआ। 'मिल्की वे' नामक आकाशगंगा के सौर-मंडल में पृथ्वी की रचना 4.5 बिलियन वर्ष (450 करोड़) पूर्व माना जाता है। प्रारंभिक अवस्था में पृथ्वी पर वायुमंडल नहीं था। जल, वाष्प, मीथेन, कार्बन डाइऑक्साइड तथा अमोनिया आदि धरातल को ढकने वाले गलित पदार्थों से निर्मुक्त हुईं। सूर्य से आनेवाली पराबैंगनी (अल्ट्रावॉयलेट) किरणों ने पानी को H_2 तथा O_2 (हाइड्रोजन व ऑक्सीजन) में विखंडित कर दिया तथा हल्की H_2 मुक्त हो गई। ऑक्सीजन ने अमोनिया एवं मीथेन के साथ मिलकर पानी, कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) तथा अन्य गैसों आदि की रचना की। पृथ्वी के चारों ओर ओजोन परत का गठन हुआ। जब यह ठंडा हुआ तो जल-वाष्प बरसात के रूप में बरसी और गहरे स्थान भर गए, जिससे महासागरों की रचना हुई। पृथ्वी की उत्पत्ति के लगभग 50 करोड़ (500 मिलियन) वर्ष के बाद अर्थात् लगभग 400 करोड़ वर्ष पहले जीवन प्रकट हुआ।

क्या जीवन अंतरिक्ष से आया था? कुछ वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि अंतरिक्ष से ही आया है। पूर्व ग्रीक विचारकों का मानना है कि जीवन की **'स्पोर'** नामक इकाई विभिन्न या अनेक ग्रहों में स्थानांतरित हुई, पृथ्वी जिनमें एक थी। कुछ खगोल वैज्ञानिक 'पैन-स्पर्मिया' (सर्वबीजाणु) को अभी भी अपना मनपसंदीदा सिद्धांत मानते हैं। काफी समय तक यह भी माना जाता रहा गया कि जीवन क्षयमान और सड़ती हुई सामग्री जैसे कि भूसे, कीचड़ आदि से प्रकट हुआ। यह स्वतः जनन (स्पोंटेनियस जेनरेशन) नामक सिद्धांत था। लुई पाश्चर ने सावधानीपूर्वक प्रयोगों को करते हुए यह प्रदर्शित किया कि जीवन पहले से विद्यमान जीवन से ही निकल कर आता है। उसने यह प्रदर्शित किया कि पहले से जीवाणुरहित किए गए फ्लास्क में 'मृत यीस्ट' से जीव नहीं पैदा होते हैं जबकि दूसरे खुले फ्लास्क में 'मृत यीस्ट' को रखने से कुछ समय बाद नए जीव आ जाते हैं। इस प्रकार से स्वतः जनन सिद्धात को एक बार सदा के लिए खारिज कर दिया गया। हालाँकि, इन सब बातों से यह उत्तर नहीं मिलता कि पृथ्वी पर जीवन सबसे पहले कब आया?

रूस के आपेरिन तथा इंग्लैंड के हालडेन नामक वैज्ञानिकों ने यह प्रस्तावित किया कि जीवन का पहला स्वरूप पूर्व-विद्यमान जीवन-रहित कार्बनिक अणु (उदाहरण-आरएनए, प्रोटीन इत्यादि) से आया हुआ हो सकता है और जीवन की वह रचना उस रासायनिक विकास के बाद घटित हुई थी जिससे अकार्बनिक संघटकों से विविध कार्बनिक अणु का

© NCERT not to be republished

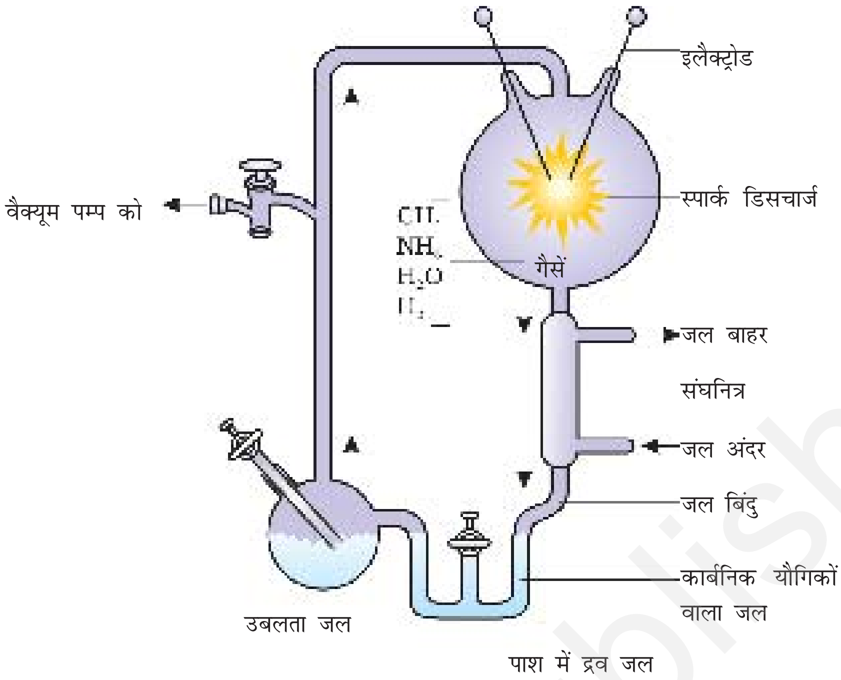

चित्र 7.1 मिलर के प्रयोग का आरेखीय निरूपण

गठन हो सका। उस समय पृथ्वी की अवस्था उच्च ताप युक्त, ज्वालामुखीय तूफान वाली तथा वायुमंडल में मिथेन, अमोनिया आदि की कमी वाली थी। एक अमेरिकी वैज्ञानिक एस.एल. मिलर ने 1953 में अपनी प्रयोगशाला में इसी पैमाने कि स्थितियाँ पैदा की (चित्र 7.1)। इसने एक बंद फ्लास्क में निहित मिथेन, हाइड्रोजन, अमोनिया तथा 800°C सेल्सियस पर ताप के साथ एक विद्युत-डिस्चार्ज कर देखा कि अमीनो एसिड बनता है। अन्य लोगों ने भी ठीक इसी प्रकार के प्रयोग द्वारा शर्कराओं, नाइट्रोजेन क्षारकों, वर्णकों तथा वसा आदि प्राप्त किए उल्काओं की अंतर्वस्तुओं के विश्लेषण से प्रकट हुआ कि ठीक ऐसी ही प्रक्रिया अंतरिक्ष के किसी अन्य स्थान पर (ऐसी घटना) घटित होती रही होगी। सीमित साक्ष्यों के आधार पर निराधार कल्पना वाली कहानियों के पहले भाग अर्थात् रासायनिक विकास को भी थोड़ी बहुत मात्रा के रूप में स्वीकृत किया जा सकता है।

हमें यह आभास ही नहीं है कि जीवन का स्वत: प्रतिकृतिक्षम चयापचयी कैप्सूल कब पैदा हुआ। जीवन का प्रथम अकोशिकीय रूप 3 अरब (300 करोड़) (3 बिलियन) वर्ष पूर्व पैदा हुआ होगा। वे भीमकाय अणु (आर एन ए, प्रोटीन, पौलीसैक्केराइडों के) रहे होंगे। ये कैप्सूल अपने अणुओं का जनन भी करते रहे होंगे। सर्वप्रथम कोशिकीय प्रकार का जीवन का रूप 200 करोड़ वर्ष तक प्रकट नहीं हुआ होगा। कदाचित् ये एक कोशिकीय रहे होंगे। सभी रूप उस समय जलीय वातावरण में ही रहे होंगे। अजीवात् जनन अर्थात् जीवन की अजीवों से उत्पत्ति के सिद्धांत की स्वीकृति को आज बहुमत मिला है। फिर भी, एक बार बन चुकने पर किस प्रकार कोशिकीय जीवन के प्रथम प्रतिनिधियों ने आज की जटिल जैव विविधता प्राप्त की। इस पर आगे चर्चा की गई है।

© NCERT not to be republished

7.2 जीवन-स्वरूप का विकास - एक सिद्धांत

परंपरागत धार्मिक साहित्य हमें एक विशेष सृष्टि का सिद्धांत बताता है। इस सिद्धांत के तीन अभिधान हैं। पहले सिद्धांत के अनुसार संसार में आज जितने भी जीव एवं प्रजातियाँ विद्यमान हैं, वे सब ऐसे ही सर्जित हुई होंगी। दूसरे सिद्धांत के अनुसार, उत्पत्ति के समय से ही यह जैव विविधता थी और भविष्य में भी ऐसी ही रहेगी। तीसरे के अनुसार पृथ्वी केवल 4000 वर्ष प्राचीन है और सभी विचारों में प्रचंड परिवर्तन 19वीं सदी में आए होंगे। यह अवधारणा एच एम एस बीगल नामक विश्व-समुद्री जहाज यात्रा के दौरान अवलोकनों पर आधारित है। चार्ल्स डार्विन ने निष्कर्ष निकाला कि विद्यमान सजीव कमोवेश आपस में तो समानताएँ रखते ही हैं; बल्कि उन जीव रूपों से भी समानता रखते हैं जो करोड़ों वर्ष पूर्व के समय विद्यमान थीं। अब बहुत सारे जीव रूप जीवित विद्यमान नहीं हैं। यहाँ पर (धरती में) जीवों के विभिन्न स्वरूप गुजरते वर्षो के साथ नष्ट होते गए और धरती के इतिहास में विभिन्न अवधियों पर नए जीव रूप पैदा होते गए । यहाँ पर जीव रूपों का धीमा विकास होता रहा। प्रत्येक जीव संख्या में विभिन्नता निहित होती रही। जिन विशिष्टताओं ने इन्हें जीवित रह सकने में (जलवायु, भोजन, भौतिक-कारक आदि ने) सहायता दी। वे इन्हें अन्यों की अपेक्षा अधिक जननक्षम भी बना सकीं। दूसरे शब्दों में; जीव या जीव संख्या में उपयुक्तता थी। यह उपयुक्तता डार्विन के अनुसार जनन संबंधी उपयुक्तता ही रह जाती है। जो वातावरण में अधिक उपयुक्त थे उनकी अधिक संताने हुईं। अंत में उनका वरण होता गया। डार्विन ने इसे **प्राकृतिक वरण (चुनाव)** का नाम दिया और इसे विकास के प्रतिमान के रूप में लागू किया। आइए! एक प्रकृति विज्ञानी एल्फ्रेड वॉलेस को भी स्मरण करें जिन्होंने मलयआर्कपेलैगो पर काम किया। इन्होंने भी ठीक इसी समय पर, लगभग इसके आस पास यही निष्कर्ष निकाला। समय गुजरने के साथ, स्पष्ट रूप से नए प्रकार के जीव पहचान में आते गए। विद्यमान सभी जीव रूप समानताओं में भागीदारी रखते हैं तथा एक साझे पूर्वज के हिस्सेदार होते हैं। हालाँकि ये पूर्वज पृथ्वी के इतिहास के विभिन्न समयों (युगों, अवधियों तथा कालों) में विद्यमान थे। पृथ्वी का भूवैज्ञानिक इतिहास पृथ्वी के जीव वैज्ञानिक इतिहास के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। औचित्यपूर्ण साराँश यह है कि पृथ्वी बहुत पुरानी है जो कि पुराने विचारों के अनुसार हजारों वर्ष नहीं; बल्कि करोड़ों-अरबों वर्ष पुरानी है।

7.3 विकास के प्रमाण क्या हैं?

पृथ्वी पर जीवों का विकास हुआ, इस बात के प्रमाण कई हैं। पहला चट्टानों के अंदर जीवाश्म रूप में जीवन के कठोर अंगों के अवशेष में विद्यमान हैं। चट्टानें अवसाद या तलछट से बनी होती हैं और भूपर्थरी (अर्थक्रस्ट) का एक अनुप्रस्थ काट यह संकेत देता है कि एक तलछट पर दूसरे तलछट की परत पृथ्वी के लंबे इतिहास की गवाह है। भिन्न आयु की चट्टानों की तलछट में भिन्न जीव रूप पाए गए हैं जो कि संभवत: उस विशेष तलछट के निर्माण के दौरान मरे थे। उनमें से कुछ आधुनिक जीवों से मिलते-जुलते हैं (चित्र 7.2)। वे विलुप्त जीवों (जैसे डायनासोर) का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपर्युक्त

© NCERT not to be republished

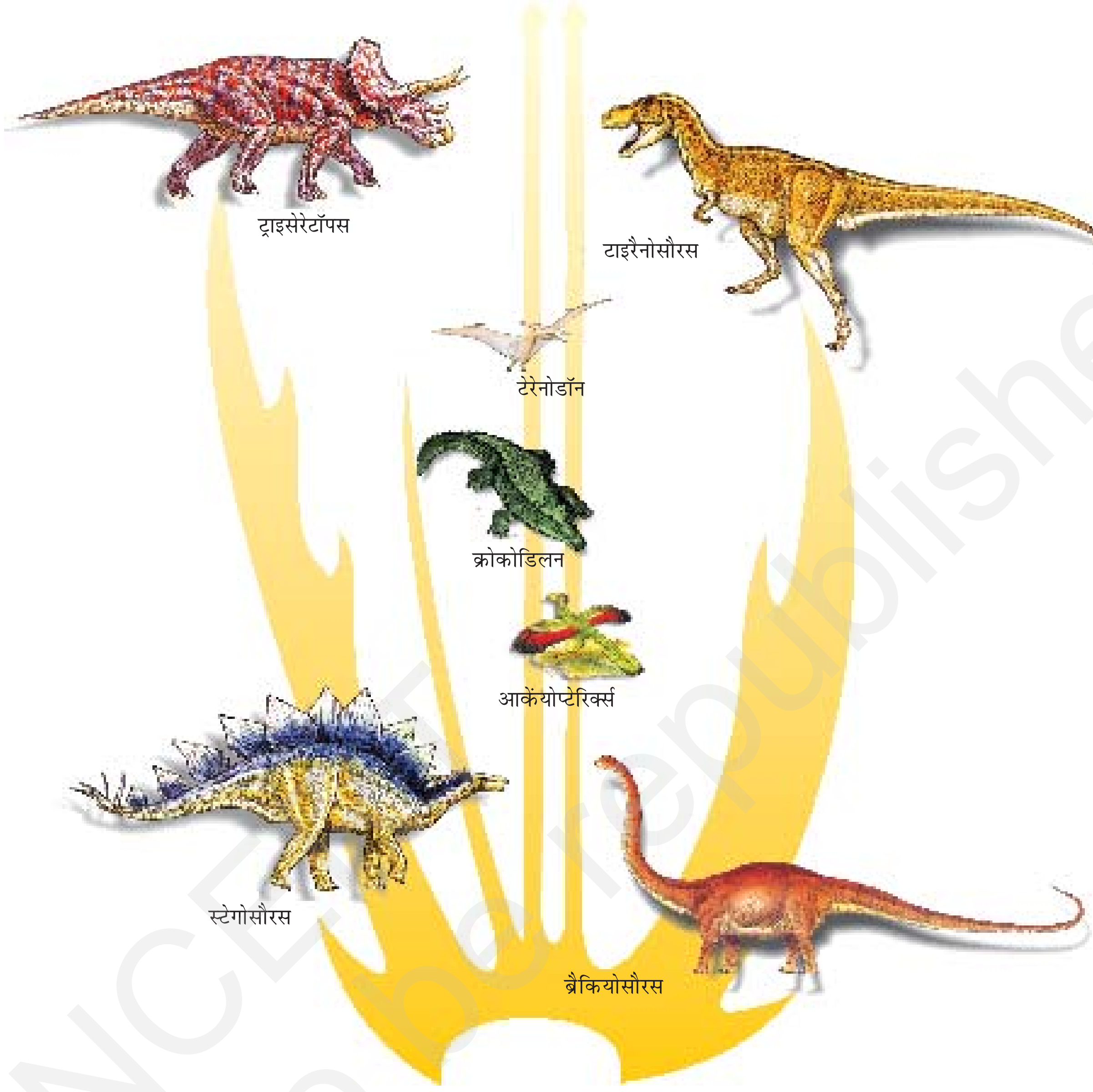

चित्र 7.2 डाइनोसोरों का वंश-वृक्ष और उनके आज के मिलते-जुलते जीव जैसे मगरमच्छ, पक्षी आदि

अध्ययन बतलाते हैं कि समय-समय पर पृथ्वी पर जीवन के रूप बदलते रहे हैं और कुछ रूप विशेष भूवैज्ञानिक काल तक ही सीमित रहे। अर्थात् जीवों के रूप विभिन्न कालों में प्रकट हुए। इन सभी को पैलेओंटोलोजिकल (पुराजीवी) प्रमाण कहा जाता है। *क्या तुम्हें याद है कि जीवाश्मों की आयु की गणना किस प्रकार होती है? रेडियोऐक्टिव तिथि निर्धारण और इसके सिद्धांत क्या है?*

तुलनात्मक शरीर विज्ञान (शारीरिकी) या आकृति विज्ञान (आकारिकी) आज के जीवों में तथा वर्षों पूर्व विद्यमान जीवों के बीच एकरूपता एवं विभिन्नता दर्शाता है। इस प्रकार की समानताओं को साझे पूर्वजों के साथ के रिश्ते के रूप में जाना जा सकता है।

© NCERT not to be republished

उदाहरण के लिए ह्वेल, चमगादड़ों, चीता और मानव (सभी स्तनधारी) अग्रपाद की अस्थियों में समानता दर्शाते हैं। वे यद्यपि भिन्न क्रियाकलाप संपन्न करते हैं; परंतु उनकी शारीरिक संरचना समान होती है; जैसे कि प्रगंडिका (ह्यूमरस), प्रकोष्ठिका (रेडिअस), अंतः प्रकोष्ठिका (अलना), मणिबंधिका (कार्पेल्स), करभिका (मेटाकार्पेल्स) तथा अंगुलास्थि (फैलांजेस) आदि। भिन्न-भिन्न कार्य संपन्न करने के कारण वही रचना भिन्न रूप ले लेती है। ये **अपसारी विकास** है और यह संरचनाएँ **समजातीय** होती है; जिसमें समान पूर्वज परंपराएँ होती हैं। इस घटना को **समजातता** कहते हैं। इसके अन्य उदाहरण कशेरूकीय हृदयों एवं मस्तिष्कों की हैं। इसी प्रकार से पेड़ों में भी बोगनबिलिया एवं क्युकरबिटा के काँटों एवं प्रतानों (टेंड्रिल्स) में भी समजातता का प्रदर्शन दिखता है। **तुल्यरूपता** बिल्कुल विपरीत स्थिति को दिखलाती है। पक्षी एवं तितलियों के पंख लगभग एक समान दिखते हैं; लेकिन इनमें पूर्वज परंपरा सामान्य नहीं है और न ही शरीर की रचना में समानता है। भले ही वे समान क्रिया को संपन्न करते हैं। इसके अलावा अनुरूपता या तुल्यरूपता का उदाहरण ऑक्टोपस (अष्टभुज) तथा स्तनधारियों की आँखों की है या पेंग्विन और डॉल्फिन मछलियों के पक्षों (फ्लिपर्स) में अनुरूपता है। कोई तर्क दे सकता है कि समान आवासीय विशिष्टताओं के कारण जीव के समूहों ने समान अनुकूली विशिष्टताओं को चयनित किया; क्योंकि उनके कार्यकलाप समान थे फिर भी उनकी अनुरूपता का आधार अभिसारी विकास है। ठीक इसी प्रकार से समजातता भी अपसारी विकास पर आधारित है। तुल्यरूपता के अन्य उदाहरण शकरकंदी (जड़/मूल – रूपांतर) तथा आलू (तना-रूपांतर) (चित्र 7.3) है।

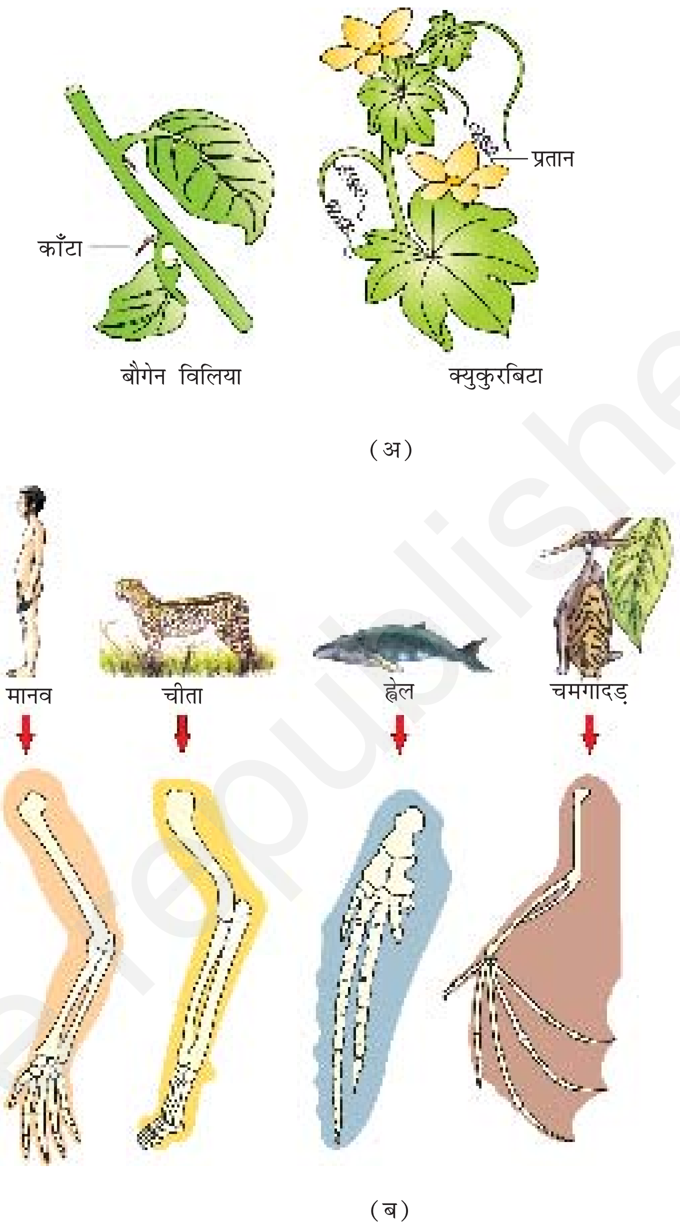

चित्र 7.3 समजात अंगों के उदाहरण (अ) पौधे और (ब) जानवर

तर्क के ठीक इसी बिंदु पर, प्रोटीनों एवं जीनों की कार्यदक्षता की समानताएँ विविध जीवों की निश्चित क्रियाशीलता; एक सामान्य पूर्वज परंपरा का संकेत देती हैं। जैव रासायनिक समानताएँ भी ठीक उसी साझी वाली पूर्वज परंपरा की ओर इशारा करती हैं; जैसी कि विविध जीवों के बीच संरचनात्मक समानताओं में थीं।

© NCERT not to be republished

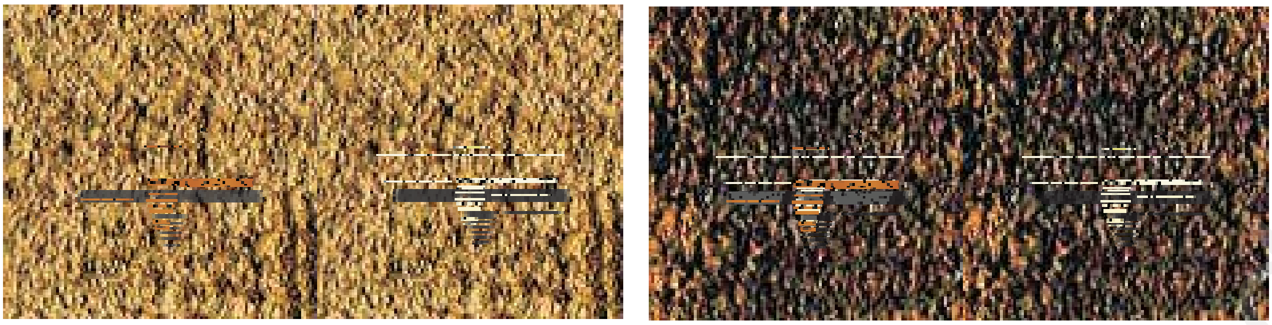

(अ) (ब)

चित्र 7.4 श्वेत पंखों और काले पंखों वाले शलभों के वृक्ष के तने पर के चित्र (अ) प्रदूषण रहित और (ब) प्रदूषित क्षेत्रों में

मनुष्य ने पादपों एवं पशुओं को कृषि, बागवानी, खेल तथा सुरक्षा के लिए चुना और बहुत सारे जंगली जानवरों को पालतू बनाया तथा खेती-फसलें उगाईं। इन सघन प्रजनन कार्यक्रमों द्वारा नस्लें तैयार हुईं; जोकि अन्य वंश प्रकारों से भिन्न थीं (जैसे कुत्ता); लेकिन फिर भी वह उसी समूह से है। यह तर्क दिया जा रहा है कि यद्यपि मनुष्य सौ साल के भीतर नई नस्ल पैदा कर सकता है तो प्रकृति भी यही कार्य लाखों-लाख वर्ष में क्यों नहीं कर सकती।

प्राकृतिक वरण के समर्थन में एक अन्य अवलोकन इंग्लैंड में शलभों (मॉथ) के संग्रह का है। शहरी क्षेत्रों में देखा गया है कि औद्योगिकीकरण शुरू होने के पूर्व अर्थात् 1850 ई. से पहले यदि संग्रह किया जाता तो पेड़ों पर श्वेत पंखी शलभ गहरे वर्णों के शलभों की अपेक्षा संख्या में अधिक होते। अब औद्योगिकीकरण के पश्चात् 1920 में किए गए संग्रह यह संकेत देते हैं कि ठीक उसी क्षेत्र में गहरे रंग के शलभ अधिसंख्यक थे अर्थात् अनुपात उलटा हो गया।

इस प्रेक्षण का स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया गया। औद्योगिकीकरण के बाद वाली अवधि में उद्योगों के धुँए और कालिख के कारण पेड़ों के तने काले पड़ गए। इस कारण शलभों का आखेट करने वाले प्राणियों की निगाह से काले शलभ बच गए और श्वेत शलभ अधिक मारे गए। औद्योगिकीकरण के पूर्व वृक्षों पर श्वेत लाइकेन उगा करते थे और इस पृष्ठभूमि में श्वेत शलभ बच जाते थे और काले शलभ शिकारियों की पकड़ में आ जाते थे। *क्या आप जानते हैं कि लाइकेन औद्योगिक प्रदूषण के सूचक होते हैं।* ये प्रदूषित स्थानों में नहीं उगते। इसीलिए शलभ इनके छद्मावरण में सुरक्षित रह पाते थे। इस मान्यता को समर्थन इस तथ्य से मिलता है कि ग्रामीण इलाकों में जहाँ औद्योगिकीकरण नहीं हुआ। अश्वेत शलभों की संख्या कम थी। मिश्र जीव संख्या में जो अनुकूलित हो गया; वह बचा रहा और उसकी संख्या बढ़ती गयी। याद रहे कि किसी भी जीव का पूर्ण विनाश नहीं होता।

ठीक इसी प्रकार, शाकनाशकों एवं कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग के परिणाम स्वरूप कम समयावधि में केवल प्रतिरोधक किस्मों का चयन हुआ। ठीक यही बात

© NCERT not to be republished

सूक्ष्मजीवों के प्रति भी सही साबित होती है जिनके लिए हम प्रतिजैविक (ऐंटीबायोटिक) या अन्य दवाइयों को सुकेंद्रकी (यूकेरियोटिक) जीवों / कोशिकाओं के प्रति इस्तेमाल करते हैं। बहुत जल्दी ही; यदि शताब्दियों में नहीं तो महीनों और वर्षों की समयावधि में ही प्रतिरोधक जीव / कोशिकाएँ प्रकट हो रही हैं। यह एक मानवोद्‌भवी क्रियाओं द्वारा विकास का एक उदाहरण है। इसके साथ ही यह हमें बताता है कि निश्चयवाद के अर्थ में विकास एक प्रत्यक्ष प्रक्रिया नहीं है। यह एक प्रसंभाव्य प्रक्रम है, जो प्रकृति के संयोग, अवसरधारी घटना और जीवों में संयोग जन्य उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) पर आधारित है।

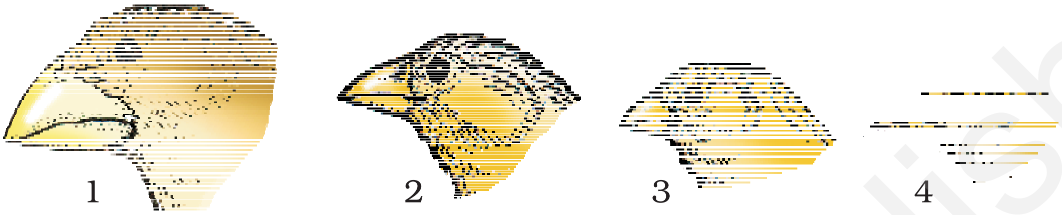

चित्र 7.5 फिंच पक्षियों की चोंचों की विविधता जो डारविन ने गैलपैगोस द्वीप में देखीं

7.4 अनुकूली विकिरण क्या है?

डार्विन अपनी यात्रा के दौरान गैलापैगों द्वीप गए थे। जहाँ पर उन्होंने प्राणियों में एक आश्चर्यजनक विविधता देखी। विशेष रूचिकर बात यह थी कि उन्हें एक काली छोटी चिड़िया (डार्विन फिंच) ने उन्हें विशेष रूप से आश्चर्यचकित किया। उन्होंने महसूस किया कि उसी द्वीप के अंतर्गत विभिन्न प्रकार की फिंच भी पाई जाती हैं। जितनी भी किस्मों को उन्होंने परिकल्पित किया था, वे सभी उसी द्वीप में ही विकसित हुई थीं। ये पक्षी मूलत: बीजभक्षी विशिष्टताओं के साथ-साथ अन्य स्वरूप में बदलावों के साथ अनुकूलित हुईं और चोंच के ऊपर उठने जैसे परिवर्तनों ने इसे कीट भक्षी एवं शाकाहारी फिंच बना दिया (चित्र 7.5)। एक विशेष भू-भौगोलिक क्षेत्र में विभिन्न प्रजातियों के विकास का प्रक्रम एक बिंदु से शुरू होकर अन्य भू-भौगोलिक क्षेत्रों तक प्रसारित होने को अनुकूली विकिरण (ऐडेप्टिव रेडिऐशन) कहा गया। डार्विन की फिंच इस प्रकार की घटना का एक सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है। एक अन्य उदाहरण आस्ट्रेलियाई मार्सुपियल (शिशुधानी प्राणियों) का है। अधिकांश मार्सुपियल जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न (चित्र 7.6) थे; एक पूर्वज प्रभाव से विकसित हुए, और वे सभी आस्ट्रेलियाई महाद्वीप के अंतर्गत हुए हैं। जब एक से अधिक अनुकूली विकिरण एक अलग-थलग भौगोलिक क्षेत्र में (भिन्न आवासों का प्रतिनिधित्व करते हुए) प्रकट होते हैं तो इसे **अभिसारी विकास** कहा जा सकता है। आस्ट्रेलिया के अपरास्तनी जंतु भी इस प्रकार के स्तनधारियों की किस्मों के विकास में अनुकूली विकिरण प्रदर्शित करती हैं, जिनमें से प्रत्येक मेल खाते मार्सुपियल (उदाहरणार्थ - अपरास्तनी भेड़िया तथा तस्मानियाई वूल्फ मारासुपियल) के समान दिखते हैं।

© NCERT not to be republished

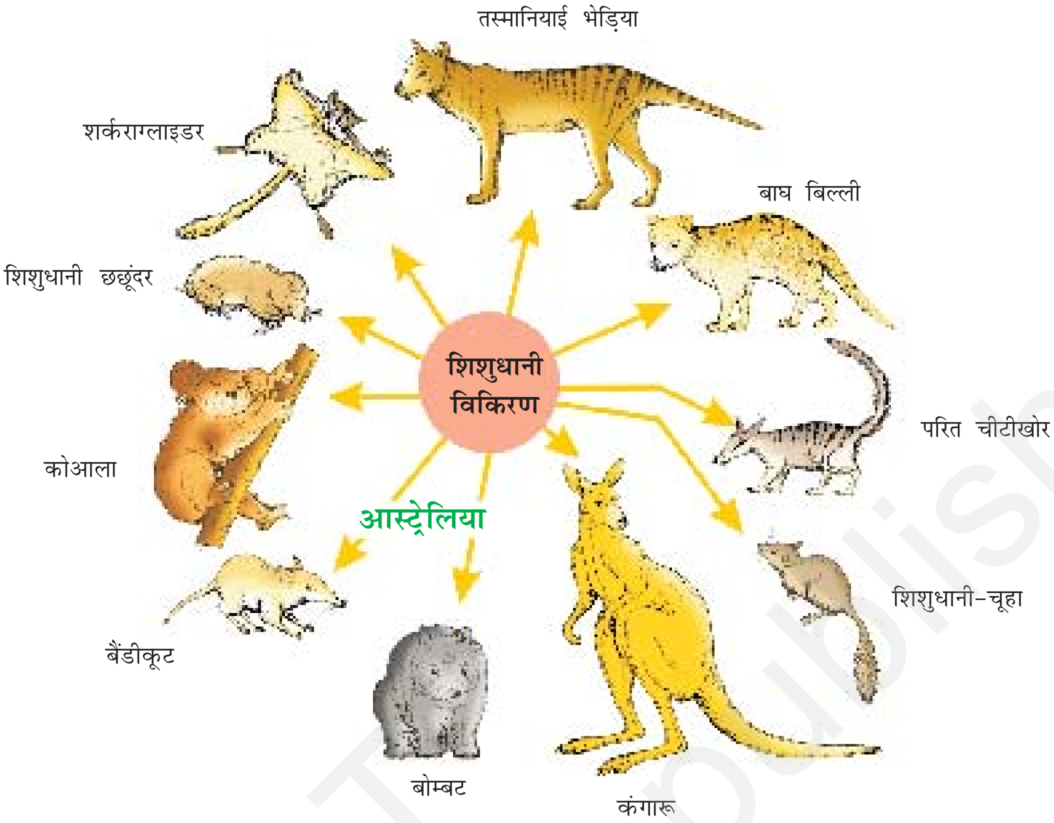

चित्र 7.6 आस्ट्रेलिया के शिशुधानी प्राणियों के अनुकूली विचरण

7.5 जैव विकास

प्राकृतिक वरण से विकास अपने वास्तविक अर्थ में तब शुरू हुआ होगा; जब जीवन के कोशिकीय रूपों ने अपनी चयापचयी क्षमताओं की विभिन्नता के कारण अपना जीवन आरंभ किया होगा।

विकास के डार्विन सिद्धांत का मूल तत्व प्राकृतिक चुनाव है। नए स्वरूप के प्रकटन की दर जीवन चक्र या जीवन अवधि से संबद्ध है। वे रोगाणु जो तेजी से विभाजित होते हैं उनमें बहुगुणन की क्षमता होती है और एक घंटे के भीतर करोड़ों व्यष्टि बन जाते हैं। जीवाणुओं (मान लीजिए-ए) की एक कोलोनी एक प्रदत्त विशेष माध्यम में बढ़ती है; क्योंकि भोज्य पदार्थ के एक घटक का उपयोग करने की क्षमता निहित है। माध्यम संघटक विशेष बदलाव जीव संख्या (मान लीजिए-बी) का केवल वह अंश सामने लाएगा, जो कि नई परिस्थितियों में उत्तरजीवित रह सके। एक समयावधि के दौरान यह परिवर्तन अन्यों से बाजी मार लेता है और एक नई प्रजाति (के रूप में) प्रकट होती है। यह कुछ दिनों के भीतर ही होता है। ठीक यही बात एक मछली या कुक्कुट (मुर्गी) के लिए लागू होती है जो लाखों वर्ष लेंगी; क्योंकि उसकी जीवन अवधि वर्षो लंबी होती है।

© NCERT not to be republished

यहाँ पर हम कह सकते हैं कि 'ए' की अपेक्षा 'बी' की उपयुक्तता बेहतर है। प्रकृति उपयुक्तता को चुनती है। हमें यह अवश्य याद रखना है कि यह तथाकथित उपयुक्तता उन विशिष्टताओं पर आधारित होती है जो की वंशानुगत होती हैं। अत: चयनित होने तथा विकास हेतु निश्चित ही एक आनुवंशिक आधार होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कुछ जीव प्रतिकूल वातावरण में जीवित रहने में बेहतर अनुकूलित होते हैं। अनुकूलन क्षमता वंशानुगत होती है। इसका आनुवंशिक आधार होता है। अनुकूलनशीलता और प्रकृति द्वारा वरण की अंतिम परिणाम उपयुक्तता होता है।

शारबनी अवरोहण और **प्राकृतिक वरण विकास** के डार्विनीवाद की दो मुख्य संकल्पनाएँ हैं (अधिक स्पष्टीकरण हेतु देखें (चित्र 7.7 और 7.8)।

डार्विन से पहले, एक फ्रांसीसी प्रकृति विज्ञानी लामार्क ने कहा था कि जीव रूपों का विकास, अंगों के उपयोग एवं अनुपयोग के कारण हुआ। उन्होंने जिराफ का उदाहरण दिया, जिसमें ऊँचे पेड़ों के फुनगियों की पत्तियों को चरने के लिए अपने गर्दन की लंबाई बढ़ाकर अनुकूलन किया। इस लंबी गर्दन की प्राप्ति की विशिष्टिता को उत्तरवर्ती संततियों को प्रदान किया और वर्षों-वर्ष बाद जिराफ ने धीरे-धीरे इतनी लंबी गर्दन को प्राप्त किया। आज इस अटकलबाजी पर कोई विश्वास नहीं करता।

चित्र 7.7 आस्ट्रेलियाई शिशुधानी और अपरा स्तनधारियों का अपसारी विकास दर्शाने वाला चित्र

क्या विकास एक प्रक्रम है अथवा एक प्रक्रम का परिणाम है। आज हम जो दुनिया देख रहे हैं; चाहे वह अचेतन हो या चेतन, यह केवल विकास की क्रमिक कहानी है। जब हम दुनिया की इस कहानी की व्याख्या करते हैं तो हम विकास को एक प्रक्रम के रूप से वर्णित करते हैं। दूसरे शब्दों में, जब हम पृथ्वी पर जीवन की कहानी का वर्णन करते हैं; तब हम विकास के प्राकृतिक चुनाव नामक एक प्रक्रम के परिणामों की व्याख्या करते हैं। हम अभी तक पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हैं कि हम विकास और प्राकृतिक चुनाव को एक प्रक्रम के रूप में देखें या फिर अज्ञात प्रक्रमों के अंतिम परिणाम के रूप में।

यह संभव हो सकता है कि थॉमस मॉल्थस के समष्टि संदर्भ में किए कार्यों ने डार्विन को प्रभावित किया हो। प्राकृतिक चुनाव कुछ खास प्रेक्षणों पर आधारित है जो कि तथ्यात्मक है। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं। मौसमी उतार-चढ़ावों को छोड़कर जीव संख्या स्थिर रहती है। एक जीव संख्या के सदस्य विशिष्टताओं में भिन्न होते हैं (वस्तुत: दो समष्टियाँ एक जैसी नहीं होती हैं।), यद्यपि ऊपरी तौर पर वे एक

जैसे दिखते हैं। तथापि अधिकतर विविधिताएँ वंशागत होती हैं। यद्यपि वास्तविकता यह है कि सिद्धांत रूप में जीव संख्या विस्फोटक रूप से बढ़ सकती है। यदि हर एक स्वतंत्र जीव अधिकतम प्रजनन करें (इस तथ्य को बैक्टीरियाई जीवसंख्या की वृद्धि में देखा जा सकता है।) और यह तथ्य कि वास्तविकता में जीवसंख्या का आकार सीमित है, का मतलब है कि संसाधनों के लिए प्रतियोगिता है। केवल कुछ ही दूसरों की कीमत पर उत्तरजीवित रह पाते हैं जो कि स्वयं नहीं फल-फूल (उन्नति कर) सकते हैं। डार्विन की नूतनता एवं वैचारिक प्रगल्भता अंतर्विचार यह था कि उन्होंने दावा किया कि विविधताएँ जो कि वंशागत होती हैं और जो कुछ एक के लिए संसाधनों की उपयोगिता बेहतर बनाती हैं (पर्यावरण से बेहतर अनुकूलन करती हैं); केवल उन्हें ही इस योग्य बनाती हैं कि वे प्रजनन करें और अधिकाधिक संतति छोड़ जाएँ। इस प्रकार से, एक समयावधि के दौरान, बहुत सारी पीढ़ियों के बाद उत्तरजीवी अधिकाधिक संततियाँ छोड़ जाएँगे और वे जीवसंख्या की विशिष्टता में एक बदलाव होंगे और इस तरह पैदा होने के लिए नए स्वरूप प्रकट होते हैं।

7.6 विकास की क्रिया विधि

विविधता का उद्‌गम क्या है और प्रजाति की उत्पत्ति कैसे होती है? यद्यपि मेंडल ने ऐसे वंशानुक्रमी कारकों के विषय में बताया; जो दृश्य प्ररूप (फीनोटाइप) को प्रभावित करते हैं। डार्विन ने इस तरफ ध्यान नहीं दिया और इस विषय में चुप्पी ही साधी। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में ह्यूगो डीवेरीज़ ने इवनिंग प्राइमरोज पर काम करके म्यूटेशन (उत्परिवर्तन) के विचार को आगे बढ़ाया। म्यूटेशन का अर्थ है जीव संख्या में सहसा आने वाले बड़े-बड़े परिवर्तन। इनका मत था कि ये बड़े से उत्परिवर्तन ही विकास के कारण हैं न कि छोटी-छोटी विविधताएँ; जिन पर डार्विन ने बल दिया था। उत्परिवर्तन यादृच्छिक और दिशाहीन होते हैं जबकि डार्विन की विविधताएँ छोटी-छोटी और दिशावान। डार्विन के लिए विकास क्रमबद्ध होता है जबकि डीवेरीज़ के अनुसार उत्परिवर्तन ही प्रजाति (स्पीशीज) की उत्पत्ति का कारण है। इन्होंने इसे **साल्टेशन** (विशाल उत्परिवर्तन का बड़ा कदम) बताया। समष्टि आनुवंशिकी में किए गए बाद के अध्ययनों से इसमें स्पष्टता आ गयी।

7.7 हार्डी-वेनवर्ग सिद्धांत

हार्डी-वेनवर्ग सिद्धांत कहता है कि एक जीव संख्या में अलील (युग्मविकल्पी) आवृत्तियाँ और उनके लोकस (विस्थल) सुस्थिर होती हैं, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक निरंतर रहते हैं। जीन कोश (कुल जीव संख्या में जीनें व उन युग्मविकल्पी) सदा अपरिवर्तनीय रहते हैं। इसे आनुवंशिक संतुलन कहते हैं। सभी अलील आवृत्तियाँ 1 होती हैं तथा व्यष्टिगत आवृत्तियों को पी, क्यू, (p.q) आदि कहा जा सकता है। द्विगुणित में, p तथा q अलील A तथा अलील a की आवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक जीव संख्या में AA की आवृत्ति साधारणतय: p^2 होती है। ठीक इसी प्रकार से की आवृत्ति q^2 होती है और Aa की 2pq होती है। अत: $p^2 + 2pq + q^2 = 1$ हुआ। यह $(p + q)^2$ की द्विपदी

© NCERT not to be republished

अभिव्यक्ति है, ठीक यही जब नापी गयी आवृत्ति, अपेक्षित मान से भिन्न होती है, यह भिन्नता (दिशा) विकासीय परिवर्तन की व्यापकता का संकेत देती है। आनुवंशिक साम्यता में विभिन्नता, जैसे कि-एक जीव संख्या में अलील की आवृति में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप विकास होता है। पाँच घटक हार्डी-वेनबर्ग साम्यता को प्रभावित करते हैं। ये हैं जीन पलायन या जीन प्रवाह, आनुवंशिक विचलन, उत्परिवर्तन, आनुवंशिक पुनर्योग तथा प्राकृतिक वरण। जब जीव संख्या का स्थान परिवर्तन होता है तो जीन आवृतियाँ भी बदल जाती हैं। यह दोनों मौलिक तथा नई जीव संख्या में होता है। नयी समष्टि में नई जीनें और अलीलें (युग्मविकल्पी) जोड़ दी जाती हैं और पुरानी समष्टि से ये घट जाती हैं। यदि यह जीन संस्थानांतरण बार-बार होता है तो जीन प्रवाह संभव हो जाता है। यदि यह

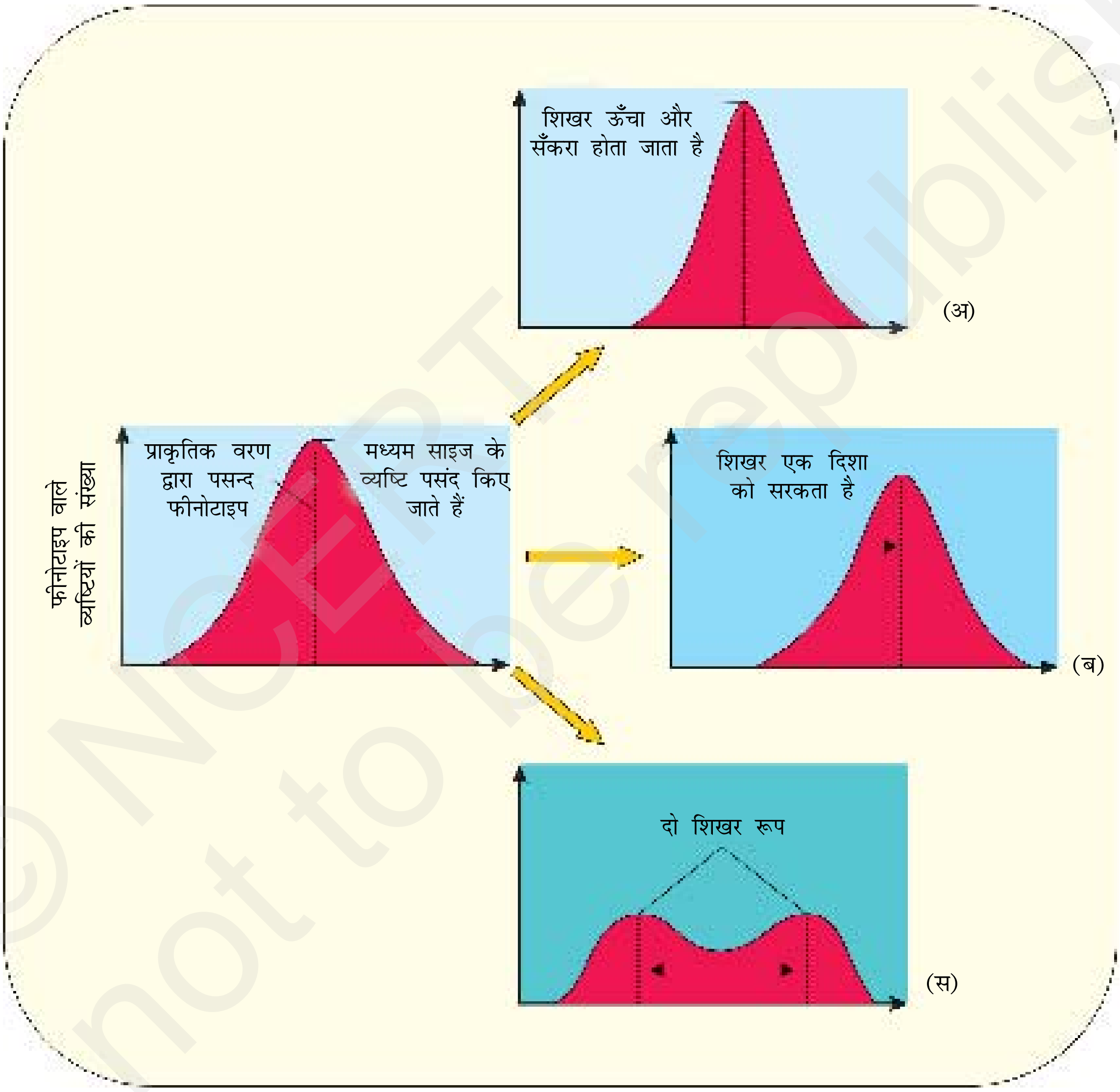

चित्र 7.8 (अ) स्थायीकारक (ब) दिशात्मक और विदारक लक्षणों पर प्राकृतिक वरण की संक्रिया का आरेखी प्रतिरूपण

© NCERT not to be republished

परिवर्तन संयोगवश होता है तो आनुवंशिक अपवाह (जेनेटिक ड्रिफ्ट) कहलाता है। कभी-कभी अलील आवृत्ति का यह परिवर्तन समष्टि के नए नमूने में इतना भिन्न हो जाता है तो वह नूतन प्रजाति (स्पीशीज़) ही हो जाती है। मौलिक अपवाहित समष्टि संस्थापक बन जाती है और इस प्रभाव को संस्थापक प्रवाह कहा जाता है।

सूक्ष्म जीवों में किए गए प्रयोग दर्शाते हैं कि जब पूर्व विद्यमान लाभकारी उत्परिवर्तनों का वरण होता है तब परिणाम स्वरूप नए फीनोटाइपों (दृश्य प्ररूपों) का आविर्भाव होता है। कुछ पीढ़ियों के बाद यही नव प्रजाति (स्पीशीज़) की उत्पत्ति हो जाएगी। प्राकृतिक वरण वह प्रक्रम है, जिससे अधिक जीवन सम वंशानुगत विविधता को जनन के अधिक अवसर मिलते हैं और संताने अधिक संख्या में उत्पन्न होती हैं। तार्किक विश्लेषण हमें विश्वास दिलाता है कि उत्परिवर्तन या युग्मकोत्पादन के दौरान का पुनर्योजन या जीन अपवाह का परिणाम होता है-जीन आवृत्ति या अलील का आगामी पीढ़ी में परिवर्तन। जनन की सफलता के सहारे से प्राकृतिक वरण इसको भिन्न समष्टि का आभास दे देता है। प्राकृतिक वरण स्थायित्व प्रदान करता है (व्यष्टियों को लक्षण प्राप्त होना) दिशात्मक परिवर्तन या विदारण (डिसरप्शन) जो वितरण वक्र के दोनों सिरों में होता है (चित्र 7.8)।

7.8 विकास का संक्षिप्त विवरण

लगभग 2000 मिलियन वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जीवन का प्रथम कोशिकीय रूप प्रकट हुआ। विशाल बृहदणु का गैर कोशकीय पुंज झिल्लीयुक्त आवरण के साथ कोशिका में कैसे विकसित हुआ, इसकी क्रियाविधि अज्ञात रही। इनमें से कुछ कोशिकाओं में ऑक्सीजन (O_2) को मुक्त करने की क्षमता थी। यह अभिक्रिया संभवतः प्रकाश संश्लेषण में प्रकाश अभिक्रिया के समान ही रही होगी। जहाँ पर पानी संगृहीत होकर सौर ऊर्जा की सहायता से विघटित होता है। यह ऊर्जा प्रकाश संग्राही वर्णकों से प्रेरित होती है। धीरे-धीरे एक कोशिकीय जीव बहुकोशिकीय जीवों में परिवर्तित हुए। 500 मिलियन वर्ष पूर्व अकशेरुकी जीव बने एवं क्रियाशील हुए। जबड़े रहित मछली संभवतः 350 मिलियन वर्ष पूर्व विकसित हुई। समुद्री खरपतवार एवं कुछ पादप संभवतः 320 मिलियन वर्ष पूर्व अस्तित्व में आए। हमने पहले भी बताया था कि जो पहले जीव धरती पर प्रकट हुए, वे पादप थे। जब धरती पर पशु अस्तित्व में आए तब ये पादप धरती पर खूब फैल चुके थे। मजबूत एवं सुदृढ़ पखों वाली मछलियाँ धरती पर आ जा सकती थीं। ऐसा लगभग 350 मिलियन वर्ष पूर्व संभव हुआ था। सन् 1938 में दक्षिण अफ्रीका में एक मछली पकड़ी गई जो **सीलाकेंथि** थी, जिसे विलुप्त मान लिया गया था। ऐसे प्राणियों को लोबेफिन (पालिपरव) कहा गया जो कि पहले उभयचर प्राणी के रूप में विकसित हुए और जो जल एवं थल दोनों पर ही रहे । हमारे पास आज इनका कोई भी नमूना नहीं बचा है। हालाँकि ये आधुनिक युग के प्राणी मेंढक एवं सैलामैंडर (सरट) जीवों के पूर्वज थे। यही उभयचर प्राणी सरीसृपों के रूप में विकसित हुए। ये मोटे कवच वाले अंडे देते हैं जो उभयचर अंडों की तरह धूप में सूख नहीं जाते। एक बार फिर आज हम इनके केवल उत्तराधिकारी कच्छप, कछुआ, तथा मगर (क्रोकोडाइल) या घड़ियाल ही देख सकते हैं। अगले 200 मिलियन वर्ष बाद, विभिन्न आकार एवं आकृति वाले सरीसृपों ने पृथ्वी पर अधिपत्य

© NCERT not to be republished

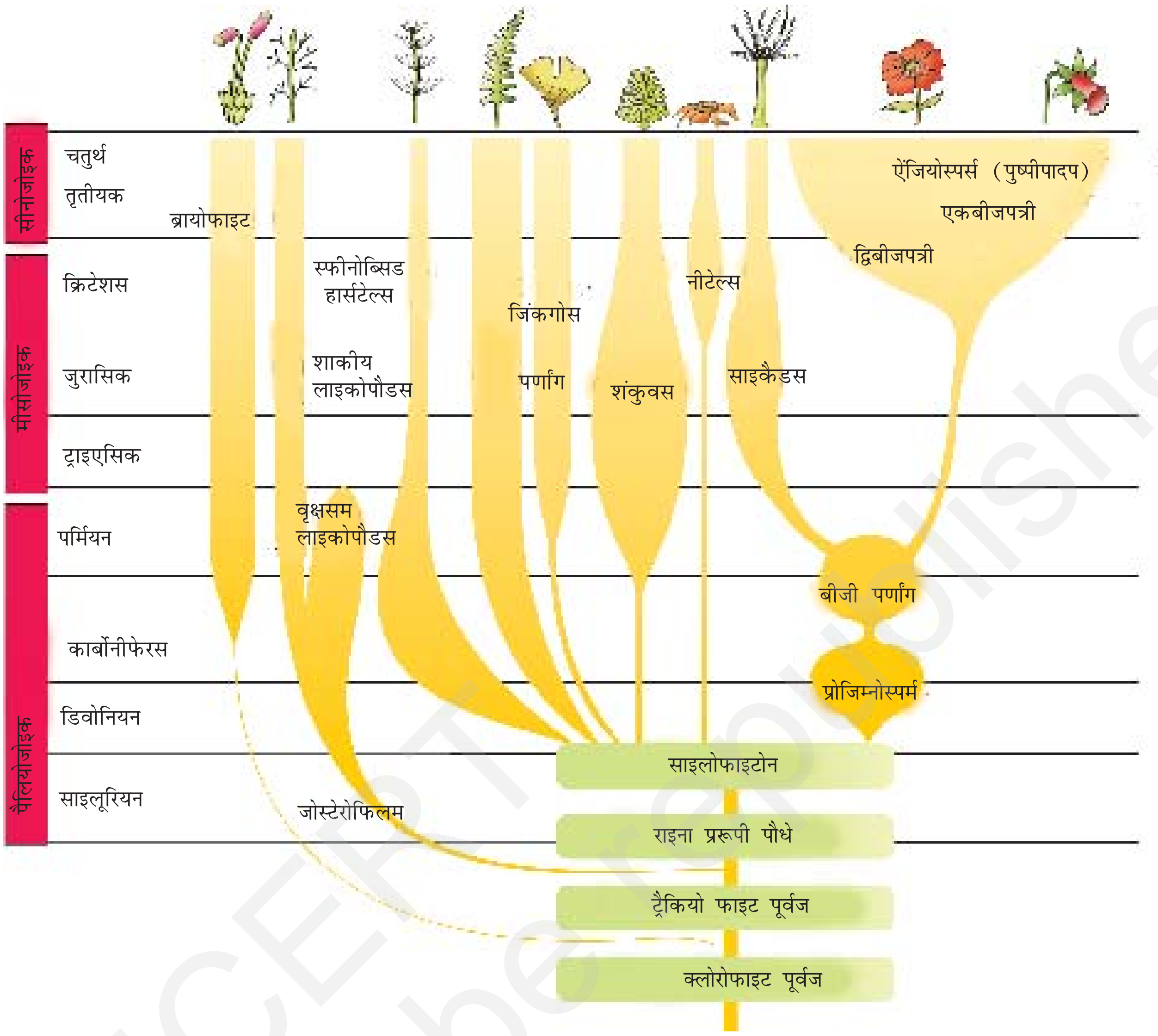

चित्र 7.9 भूवैज्ञानिक कालों में होकर पादपों के विकास का चित्र

कायम किया। विशाल पर्णांग (फर्न) या टेरिडोफाइट उपस्थित थे; किंतु वे सभी धीरे-धीरे मर कर कोयले के भंडार बन गए। इनमें से कुछ सरीसृप पुनः पानी में वापस चले गए और लगभग 200 मिलियन वर्ष पूर्व संभवतः मछली जैसे सरीसृप (जैसे *इक्थियोसाएस*) के रूप में प्रकट हुए। पृथ्वी पर रहने वाले सरीसृप निश्चित ही डायनासौर थे। इनमें सबसे बड़ा अर्थात् *ट्राइरैनोसोरस* रेक्स लगभग 20 फुट ऊँचा तथा विशाल डरावने कटार जैसे दाँतों वाला था। लगभग 65 मिलियन वर्ष पूर्व अचानक पृथ्वी से डायनासौर समाप्त हो गए। हमें इसके सही कारणों का पता नहीं हैं। कुछ लोगों का मत है कि वातावरण एवं जलवायु परिवर्तनों ने इन्हें मारा। कुछ लोग मानते हैं कि इनमें से ज्यादातर पक्षियों के रूप

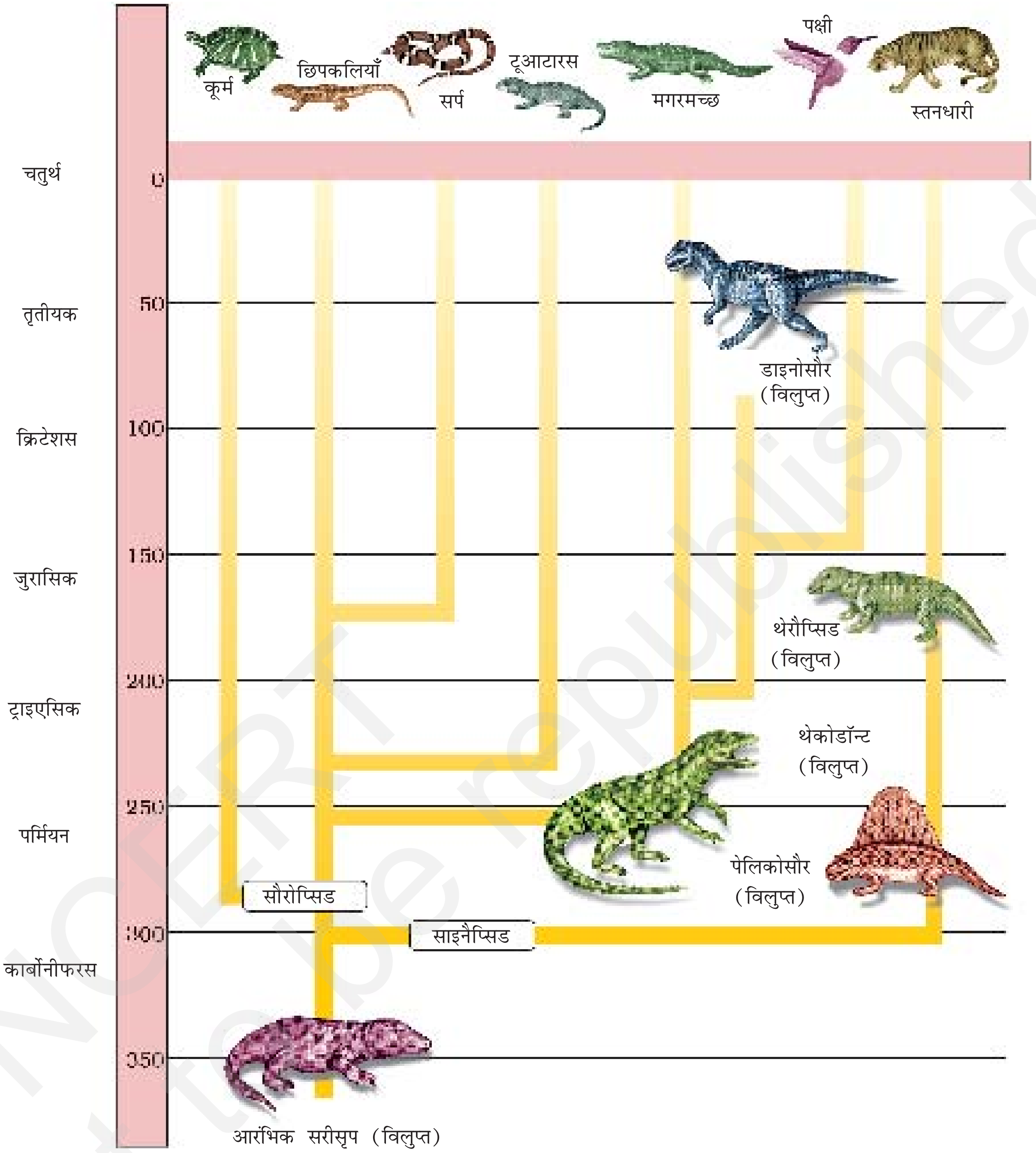

चित्र 7.10 भूवैज्ञानिक कालों में होकर कशेरूकियों का विकासीय इतिहास का चित्रण

में विकसित हो गए। सत्य शायद इन्हीं दोनों के बीच निहित हैं। उस युग के छोटे सरीसृप आज के दौर में भी विद्यमान है।

पहले स्तनधारी प्राणी श्रू (मंजोरू) थे इसके जीवाश्म (फोसिल) छोटे आकार के हैं। स्तनधारी प्राणी जरायुज होते हैं तथा उनके अजन्मे शिशु माँ के शरीर के अंदर (गर्भ में) सुरक्षित रहते हैं। स्तनधारी प्राणी छोटे से छोटे खतरों के प्रति सतर्क रहने एवं

© NCERT not to be republished

बचाव करने में बुद्धिमान होते थे। जब सरीसृपों की कमी हुई, तब स्तनधारी प्राणियों ने स्थल पर कब्जा कर लिया। यहाँ पर दक्षिण अमेरिकी स्तनधारी घोड़े से मिलता-जुलता, हिप्पोपोटैमस (दरियाई घोड़ा), भालू तथा खरगोश आदि थे। महाद्वीपीय विचलन के कारण जब दक्षिणी एवं उत्तरी अमरीका एक दूसरे से जुड़े तो इन जीवों ने उत्तर अमरीका तक विस्तार बनाया और ये उत्तरी अमरीकी प्राणि जगत पर छा गए। महाद्वीपीय विस्थापन के कारण जब दक्षिणी अमरीका उत्तरी अमरीका से मिल गया तो ये जीव उत्तरी जंतुओं के दबाव में आ गए और वे बहुसंख्य हो गए। महाद्वीपीय विस्थापन के कारण ही आस्ट्रेलियाई स्तनधारी (जैसे कंगारू आदि) जीवित रहे; क्योंकि उन्हें दूसरे अन्य स्तनधारी जीवों से कम प्रतियोगिता थी। आधुनिक युग के कुछ स्तनधारी प्राणियों के पूर्वजों को चित्र 7.5 में दिखाया गया है।

कहीं हम यह बताना भूल तो नहीं गए कि कुछ स्तनधारी प्राणी पूरी तरह से जल में ही रहते हैं जैसे कि ह्वेल, डालफिन, सील तथा समुद्री गाएँ आदि। हाथी, घोड़े एवं कुत्ते के विकास की बातें विकास की विशिष्ट कहानियाँ हैं। इसके बारे में आप उच्च कक्षाओं में पढ़ेंगे। मनुष्य का विकास सर्वाधिक सफलता की कहानी है। इसके पास भाषा, कौशल एवं आत्मबोध या स्वचेतना है। जीवन के स्वरूपों के विकास, भू-भौगोलिक मापदंड पर उनकी समय तथा भू-भौगोलिक समयावधि एवं उनके संकेतों को स्थूल रेखा चित्रों 7.9 व 7.10 में दर्शाया गया है।

7.9 मानव का उद्भव और विकास

लगभग 15 मिलियन वर्ष पूर्व *ड्रायोपिथिकस* तथा *रामापिथिकस* नामक नरवानर विद्यमान थे। इन लोगों के शरीर बालों से भरपूर थे तथा गोरिल्ला एवं चिपैंजी जैसे चलते थे। *रामापिथिकस* अधिक मनुष्यों जैसे थे जबकि *ड्रायोपिथिकस* वनमानुष (ऐप) जैसे थे। इथोपिया तथा तंजानिया (चित्र 7.11) में कुछ जीवाश्म (फासिल) अस्थियाँ मानवों जैसी प्राप्त हुई हैं। ये जीवाश्म मानवी विशिष्टताएँ दर्शाते हैं जो इस विश्वास को आगे बढ़ाती हैं कि 3-4 मिलियन वर्ष पूर्व मानव जैसे नर वानर गण (प्राइमेट्स) पूर्वी-अफ्रीका में विचरण करते रहे थे। ये लोग संभवत: ऊँचाई में 4 फुट से बड़े नहीं थे; किंतु वे खड़े होकर सीधे चलते थे।

लगभग 2 मिलियन वर्ष पूर्व *ओस्ट्रालोपिथेसिन* (आदिमानव) संभवत: पूर्वी अफ्रीका के घास स्थलों में रहता था। साक्ष्य यह प्रकट करते हैं कि वे प्रारंभ में पत्थर के हथियारों से शिकार करते थे, किंतु प्रारंभ में फलों का ही भोजन करते थे। खोजी गई अस्थियों में से कुछ अस्थियाँ बहुत ही भिन्न थीं। इस जीव को पहला मानव जैसे प्राणी के रूप में जाना गया और उसे *होमो हैबिलिस* कहा गया था। उसकी दिमागी क्षमता 650-800 सीसी के बीच थी। वे संभवत: माँस नहीं खाते थे। 1991 में जावा में खोजे गए जीवाश्म ने अगले चरण के बारे में भेद प्रकट किया। यह चरण था *होमो इरैक्टस* जो 1.5 मिलियन वर्ष पूर्व हुआ। *होमो इरैक्टस* का मस्तिष्क बड़ा था जो लगभग 900 सीसी का था । *होमो इरैक्टस* संभवत: माँस खाता था। नियंडरटाल मानव 1400 सीसी आकार वाले मस्तिष्क लिए हुए, 100,000 से 40,000 वर्ष पूर्व लगभग पूर्वी एवं मध्य एशियाई

© NCERT not to be republished

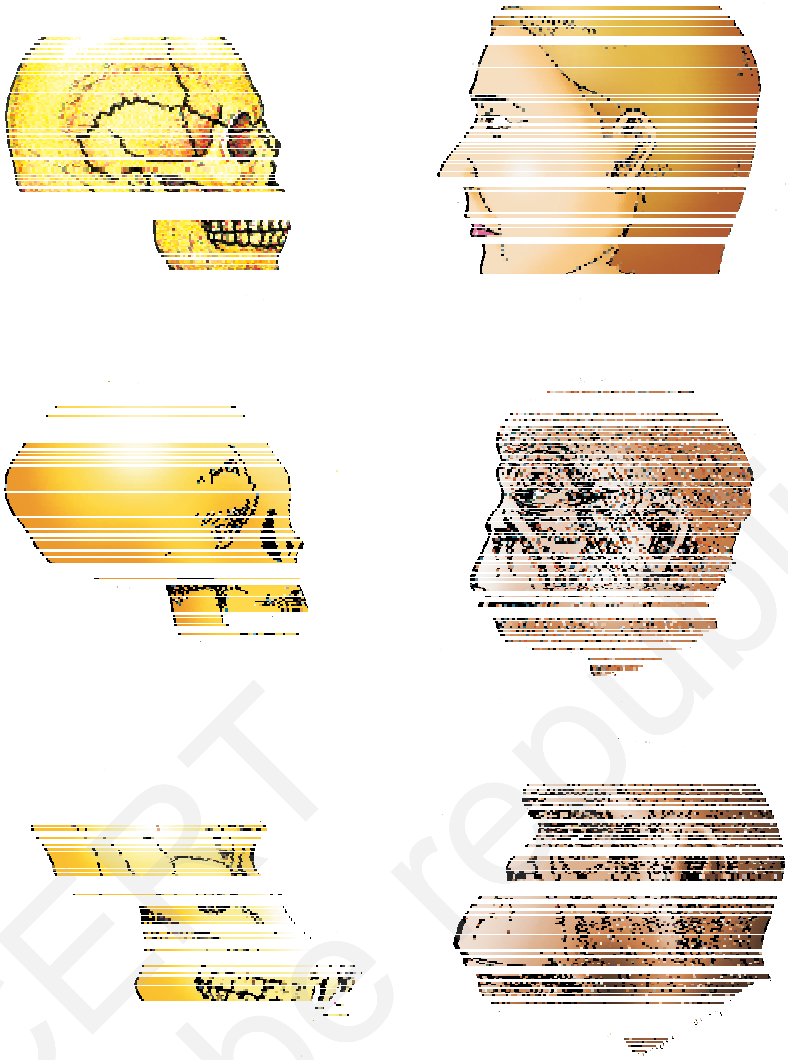

चित्र 7.11 आधुनिक वयस्क मानव, शिशु चिंपैंजी और वयस्क चिंपैंजी की खोपड़ियों की तुलना। शिशु चिंपैंजी की खोपड़ी अधिक मानव सम है अपेक्षाकृत वयस्क चिंपैंजी की खोपड़ी के।

देशों में रहते थे। वे अपने शरीर की रक्षा के लिए खालों का इस्तेमाल करते थे और अपने मृतकों को जमीन में गाड़ते थे। *होमो सैंपियंस* (मानव) अफ्रीका में विकसित हुआ और धीरे-धीरे महाद्वीपों से पार पहुँचा था तथा विभिन्न महाद्वीपों में फैला था, इसके बाद वह भिन्न जातियों में विकसित हुआ। 75,000 से 10,000 वर्ष के दौरान हिमयुग में यह आधुनिक युगीन मानव पैदा हुआ। मानव ने प्रागैतिहासिक गुफा-चित्रों की रचना लगभग 18,000 वर्ष पूर्व हुई। कृषि कार्य लगभग 10,000 वर्ष पूर्व आरंभ हुआ और मानव बस्तियाँ बनना शुरू हुई। बाकी जो कुछ हुआ वह मानव इतिहास या वृद्धि का भाग और सभ्यता की प्रगति का हिस्सा है।

© NCERT not to be republished

सारांश

पृथ्वी पर जीवन के उद्भव को समझने के लिए ब्रह्मांड और पृथ्वी के उद्गम की जानकारी की पृष्ठभूमि अपेक्षित है। अधिकांश वैज्ञानिकों का विश्वास रासायनिक विकास में है अर्थात् जीवन के प्रथम कोशिकीय रूपों के उदय के पूर्व द्वि-अणु पैदा हुए। प्रथम जीवों के बाद की उत्तरोत्तर घटनाक्रम कल्पना मात्र है जिसका आधार प्राकृतिक वरण द्वारा जैव विकास संबंधी डार्विन का विचार है। करोड़ों वर्षों के दौरान जीवन में विविधता रही है। माना जाता है कि जीव संख्या की विविधता परिवर्ती चरणों के दौरान हुई। आवास विखंडन और आनुवंशिक प्रवाह ने नव प्रजाति की उत्पत्ति में सहायता की और इस प्रकार विकास संभव हो सका। शाखावत् अवतरण का स्पष्टीकरण सहजातता ने किया। तुलनात्मक शरीर रचना, जीवाश्म तथा तुलनात्मक जीव रसायन विकास के प्रमाण उपस्थित करते हैं। व्यक्तिगत प्रजाति के विकास की कहानियों में आधुनिक मानव की विकास कथा सबसे रोचक है और लगता है यह मानव मस्तिष्क और भाषा में विकास के समानांतर चलता है।

अभ्यास

1. डार्विन के चयन सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में जीवाणुओं में देखी गई प्रतिजैविक प्रतिरोध का स्पष्टीकरण करें।
2. समाचार पत्रों और लोकप्रिय वैज्ञानिक लेखों से विकास संबंधी नए जीवाश्मों और मतभेदों की जानकारी प्राप्त करें।
3. 'प्रजाति' की स्पष्ट परिभाषा देने का प्रयास करें।
4. मानव-विकास के विभिन्न घटकों का पता करें (संकेत - मस्तिष्क साइज और कार्य, कंकाल-संरचना, भोजन में पसंदगी आदि)।
5. इंटरनेट (अंतरजाल-तंत्र) या लोकप्रिय विज्ञान लेखों से पता करें कि क्या मानवेत्तर किसी प्राणी में आत्म संचेतना थी।
6. इंटरनेट (अंतरजाल-तंत्र) संसाधनों के उपयोग करते हुए आज के 10 जानवरों और उनके विलुप्त जोड़ीदारों की सूची बनाएँ (दोनों के नाम दें)।
7. विविध जंतुओं और पौधों के चित्र बनाएँ।
8. अनुकूलनी विकिरण को एक उदाहरण का वर्णन करें।
9. क्या हम मानव विकास को अनुकूलनी विकिरण कह सकते हैं?
10. विभिन्न संसाधनों जैसे कि विद्यालय का पुस्तकालय या इंटरनेट (अंतरजाल-तंत्र) तथा अध्यापक से चर्चा के बाद किसी जानवर जैसे कि घोड़े के विकासीय चरणों को खोजें।

© NCERT not to be republished

ईकाई आठ
मानव कल्याण में जीव विज्ञान

अध्याय 8
मानव स्वास्थ्य और रोग

अध्याय 9
खाद्य उत्पादन में वृद्धि की कार्यनीति

अध्याय 10
मानव कल्याण में सूक्ष्म जीव

जीव विज्ञान प्रकृत विज्ञान की सबसे अपरिपक्व औपचारिक विद्या है। जीव विज्ञान की तुलना में भौतिकी तथा रसायन विज्ञान में प्रगति काफी तीव्र गति से हुई हमारी रोजाना की जिंदगी में जीव विज्ञान की अपेक्षा भौतिकी तथा रसायन विज्ञान के उपयोग की स्पष्टता कहीं अधिक है। यद्यपि बीसवीं तथा 21 वीं शताब्दी ने मानव के अग्रिम कल्याण के लिए विशेषकर स्वास्थ्य के क्षेत्र में, अथवा कृषि में, जीव विज्ञान के ज्ञान की उपयोगिता को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। प्रतिजैविकों (ऐंटिबायोटिकों) तथा संश्लेषित पादप व्युत्पन्न औषधियों और निश्चेतक आदि की खोज ने एक ओर तो चिकित्सा व्यवसाय तथा दूसरी ओर मानव स्वास्थ्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन किए हैं। इन वर्षों में मानव की जीवन संभावना में नाटकीय परिवर्तन आए हैं। मानव समुदाय में कृषि, खाद्य संसाधन तथा निदानशास्त्र ने सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन उत्पन्न कर दिए हैं। इस ईकाई के निम्न तीन अध्यायों में इसी का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

© NCERT not to be republished

एम.एस. स्वामीनाथन्
(1925)

जन्म अगस्त 1925 में तामिलनाडु के कुम्बाकोनम में हुआ था। मोनकाम्बू सांबासिवन स्वामीनाथन ने मद्रास विश्वविद्यालय से वनस्पति विज्ञान में स्नातक तथा स्नात्कोत्तर की उपाधियाँ ग्रहण की। इन्होंने भारत वर्ष तथा विदेशों में स्थित कई संस्थानों में अलग-अलग हैसियत में कार्य किया तथा पादप-प्रजनन तथा आनुवंशिकी में अपनी सुविज्ञता का विकास किया।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आईएआरआई) में स्थित कोशिकानुवंशकी तथा विकिरण अनुसंधान स्कूल ने आपको एवं आपके सहयोगियों को अल्प कालीन उच्च उत्पादन प्रदान करने वाली धान की किस्मों, जिसमें सुगंधित बासमती भी शामिल है, को विकसित करने में काफी सहायता की। आपने क्रॉप कैफिटेरिया, सस्य कार्यक्रम तथा आनुवंशिक रूप से उपज तथा गुणवत्ता में सुधार आदि से संबंधित धारणायें विकसित करने वाले वैज्ञानिक के रूप में भी जाने जाते हैं।

स्वामीनाथन ने नॉरमैन बॉरलॉग के साथ मिलकर कार्य आरंभ किया जिसके परिणामस्वरूप भारतवर्ष में गेहूँ की मैक्सीकन किस्मों के प्रवेश से चरमोत्कर्ष 'हरित क्रांति' आई। इनके इस कार्य को अत्यधिक मान्यता एवं सराहना मिली। आप 'लैब-टू लैंड' कार्यक्रम के, तथा खाद्य-सुरक्षा और कई अन्य पर्यावरणीय कार्यक्रमों के आरंभिक रहे हैं। इन्हें राजकीय सम्मान 'पद्यम भूषण' तथा कई उत्कृष्ट संस्थानों से प्रतिष्ठा पूर्ण पुरस्कार, मेडल तथा फैलोशिप मिलने का गौरव प्राप्त है।

© NCERT not to be republished

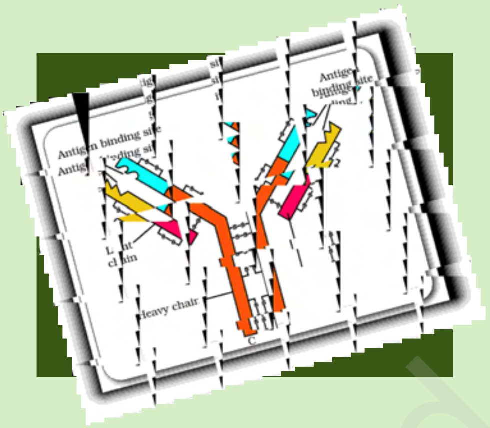

अध्याय 8

मानव स्वास्थ्य और रोग

8.1 मानव में सामान्य रोग

8.2 प्रतिरक्षा

8.3 एड्स

8.4 कैंसर

8.5 ड्रग और ऐल्कोहल कुप्रयोग

एक लंबे समय तक स्वास्थ्य को शरीर और मन की ऐसी स्थिति माना गया, जिसमें देह के कुछ तरलों (ह्यूमर) का संतुलन बना रहता था। प्राचीन यूनानवासी जैसेकि हिप्पोक्रेटीज और चिकित्सा का भारतीय आयुर्वेद तंत्र भी यही दावा करते थे। ऐसा माना जाता था कि 'काले पित्त' (ब्लैक बाइल) वाले व्यक्ति गरम व्यक्तित्व वाले होते हैं और उन्हें बुखार होता है। इस प्रकार के निष्कर्ष का कारण मात्र विमर्शी, विचारधारा थी। विलियम हार्वे द्वारा प्रयोगात्मक विधि अपनाते हुए रक्त परिसंचरण की खोज और थर्मामीटर का उपयोग करते हुए काले पित्त वाले व्यक्तियों के शरीर का तापमान प्रसामान्य दर्शाने से स्वास्थ्य के 'अच्छे तरल' की परिकल्पना (हाइपोथिसिस) को गलत सिद्ध कर दिया। कुछ वर्षों बाद जैविकी ने बताया कि तंत्रिका तंत्र (न्यूरल सिस्टम) और अंत: स्रावी तंत्र (इंडोक्राइन सिस्टम) हमारे प्रतिरक्षा तंत्र (इम्यून सिस्टम) को प्रभावित करता है और हमारा प्रतिरक्षा तंत्र हमारे स्वास्थ्य को बनाए रखता है। इस प्रकार मन और मानसिक अवस्था हमारे स्वास्थ्य पर असर डालती हैं। नि:संदेह, स्वास्थ्य निम्नलिखित बातों से प्रभावित होता है —

(क) आनुवंशिक विकार (जेनेटिक डिसऑर्डर) — वे अपूर्णताएँ जिन को लेकर बच्चा जन्मता है और वे अपूर्णताएँ जो बच्चे को जन्म से ही माँ-बाप से वंशागत रूप से मिलती हैं।

(ख) संक्रमण और

© NCERT not to be republished

(ग) हमारी जीवन शैली जिसमें, जो खाना हम खाते हैं और पानी हम पीते हैं, जो विश्राम हम शरीर को देते हैं और जो व्यायाम हम करते हैं, जो स्वभाव हमारे भीतर है और जिनकी हममें कमी है; आदि शामिल हैं।

हम सभी **स्वास्थ्य** शब्द का प्रयोग धड़ल्ले से करते हैं। इसकी क्या परिभाषा है? स्वास्थ्य का अर्थ मात्र 'रोग की अनुपस्थिति' अथवा 'शारीरिक स्वस्थता' नहीं है। इसे पूर्णरूपेण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। जब लोग स्वस्थ होते हैं तो वे काम में अधिक सक्षम होते हैं। इससे उत्पादकता बढ़ती है और आर्थिक संपन्नता आती है। स्वास्थ्य से लोगों का आयुकाल बढ़ता है और शिशु तथा मातृ मृत्युदर में कमी होती है।

अच्छा स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए संतुलित आहार, व्यक्तिगत स्वच्छता और नियमित व्यायाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पाने के लिए अतिप्राचीन काल से योग का अभ्यास किया जा रहा है। रोग और शरीर के विभिन्न प्रकार्यों पर उनके प्रभाव के बारे में जागरूकता, संक्रामक रोगों के प्रति टीकाकरण (प्रतिरक्षीकरण), अपशिष्टों (वेस्ट) का समुचित निपटान, रोगवाहकों (वेक्टर्स) का नियंत्रण एवं खाने और पानी के संसाधनों का स्वच्छ रखरखाव अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

जब शरीर के एक या अधिक अंगों या तंत्रों के प्रकार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और विभिन्न चिह्न और लक्षण प्रकट होते हैं तो हम कहते हैं कि हम स्वस्थ नहीं हैं अर्थात् हमें **रोग** हो गया है। रोगों को मोटे तौर पर **संक्रामक** और **असंक्रामक** समूहों में बाँटा जा सकता है। जो रोग एक व्यक्ति से दूसरे में आसानी से संचारित हो सकते हैं, उन्हें **संक्रामक रोग** कहते हैं। संक्रामक रोग बहुत आम है और हम सब कभी न कभी इसके शिकार हुए हैं। कुछ संक्रामक रोग, जैसेकि एड्स, घातक होते हैं। असंक्रामक रोगों में कैंसर मृत्यु का प्रमुख कारण है। नशीले पदार्थों (ड्रग) और ऐल्कोहल का कुप्रयोग भी हमारे स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

8.1 मानव में सामान्य रोग

अनेकानेक जीव जिसमें जीवाणु (बैक्टीरिया), विषाणु (वायरस), कवक (फंजाई), प्रोटोजोअन, कृमि (हेल्मिंथ) आदि शामिल हैं, मनुष्य में रोग पैदा करते हैं। ऐसे रोगकारक जीवों को **रोगजनक** (पैथोजन) कहते हैं। इसलिए अधिकांश परजीवी (पैरासाइट) रोगजनक हैं, क्योंकि ये परपोषी (होस्ट) के भीतर या उसके ऊपर रहकर उसे क्षति या हानि पहुँचाते हैं। रोगजनक हमारे शरीर में कई तरह से प्रवेश कर सकते हैं एवं अपनी संख्या में वृद्धि कर हमारी सामान्य अत्यावश्यक क्रियाओं में बाधा पहुँचाते हैं। फलस्वरूप, आकृतिक (मार्फोलॉजिकल) और प्रकार्यात्मक क्षति होती है। रोगजनकों के लिए आवश्यक है कि वे परपोषी के भीतरी वातावरण के अनुसार अपने को अनुकूलित कर लें। उदाहरण के लिए जो रोगजनक आंत्र में प्रवेश करते हैं उनमें आमाशय (स्टोमक) के निम्न पीएच (pH) में जीवित रहने और विभिन्न पाचक एंजाइमों का प्रतिरोध करने की क्षमता होनी चाहिए। रोगजनक जीवों के भिन्न-भिन्न वर्गों के कुछ निरूपकों और उनसे होने वाले रोगों

© NCERT not to be republished

के बारे में यहाँ चर्चा करेंगे। उन रोगों के प्रति निरोधक और नियंत्रक उपायों के बारे में भी संक्षेप में बताएँगे।

साल्मोनेला टाइफी एक रोगजनक जीवाणु है जिससे मानव में **टाइफॉइड** ज्वर होता है। यह रोगजनक आमतौर से संदूषित (कंटामिनेटेड) भोजन और पानी द्वारा छोटी आँत में घुस जाता है और वहाँ से रक्त द्वारा शरीर के अन्य अंगों में पहुँच जाता है। इस रोग के कुछ सामान्य लक्षण हैं— लगातार उच्च ज्वर (39^0 से 40^0 सेंटी.), कमजोरी, आमाशय में पीड़ा, कब्ज, सिरदर्द और भूख न लगना आदि। गंभीर मामलों में आंत्र में छेद और मृत्यु भी हो सकती है। टाइफॉइड ज्वर की पुष्टि **विडाल परीक्षण** से हो सकती है। आयुर्विज्ञान में एक चिरप्रतिष्ठित मामला, मैरी मैलॉन (उपनाम टाइफाइड मैरी) का है जिसका यहाँ उल्लेख करना सटीक है। वह पेशे से रसोईया थी और जो खाना वह बनाती थी उसके द्वारा वर्षों तक टाइफॉइड वाहक के रूप में टाइफॉइड फैलाती रही।

स्ट्रेप्टोकोकस न्युमोनी और *हीमोफिल्स इंफ्लुएँजी* जैसे जीवाणु मानव में **न्युमोनिया** रोग के लिए उत्तरदायी हैं। इस रोग में फुप्फुस (लंग्स) के वायुकोष्ठ (एलव्यूलाई) संक्रमित हो जाते हैं। संक्रमण के फलस्वरूप वायुकोष्ठों में तरल भर जाता है जिसके कारण सांस लेने में गंभीर समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। ज्वर, ठिठुरन, खाँसी और सिरदर्द आदि न्युमोनिया के लक्षण हैं। गंभीर मामलों में, होंठ और हाथ की उंगलियों के नाखूनों का रंग धूसर से लेकर नीला तक हो जाता है। स्वस्थ मनुष्य को संक्रमण किसी संक्रमित व्यक्ति द्वारा छोड़े गए बिंदुकों (ड्रॉप्लेट्स) अथवा एयरोसॉल साँस द्वारा अंदर लेने से या संक्रमित व्यक्ति के गिलास या बर्तन इस्तेमाल करने से भी हो जाता है। मानव में होने वाले कुछ अन्य जीवाण्वीय रोग हैं- अतिसार पेचिश (डाइसेंटरी), प्लेग और डिफ्थीरिया आदि।

बहुत से विषाणु भी मानव में रोग का कारक होते हैं। विषाणुओं का ऐसा ही एक समूह नासाविषाणुओं (राइनोवायरस) का है जो मानव में सबसे ज्यादा संक्रामक रोग, **सामान्य जुकाम** फैलाता है। ये नाक और श्वसन पथ को संक्रमित करते हैं, लेकिन फेफड़ों को नहीं। सामान्य जुकाम (प्रतिश्याय) के अभिलक्षण हैं- नासीय संकुलता (नेजल कंजेसन) और आस्राव, कंठ दाह, स्वररुक्षता अर्थात् फटी आवाज, खाँसी, सिरदर्द, थकावट आदि, जो प्रायः 3-7 दिन तक रहते हैं। संक्रमित व्यक्ति की खाँसी या छींकों से निकले बिंदुक जब स्वस्थ व्यक्ति द्वारा साँस लेने पर अंदर जाते हैं अथवा पेन, किताबों, प्यालों, दरवाजे की मूठों, कंप्यूटरों के कीबोर्ड या माउस जैसी संदूषित हुई वस्तुओं के संपर्क में आता है, तो उसे भी संक्रमण हो जाता है।

मानव में कुछ रोग प्रोटोजोआ से भी होते हैं। आपने **मलेरिया** के बारे में सुना होगा, एक ऐसा रोग जिससे मनुष्य कई सालों से लड़ता आ रहा है। *प्लैजमोडियम* नामक एक बहुत ही छोटा सा प्रोटोजोअन इस रोग के लिए उत्तरदायी है।

प्लैज्मोडिया की विभिन्न जातियाँ (*प्लै.वाइवैक्स, प्लै.मेलिरिआई* और *प्लै.फैल्सीपेरम*) विभिन्न प्रकार के मलेरिया के लिए उत्तरदायी हैं। इनमें से *प्लैज्मोडियम फैल्सीपेरम* द्वारा होने वाला दुर्दम (मेलिगनेंट) सबसे गंभीर है और यह घातक भी हो सकता है।

© NCERT not to be republished

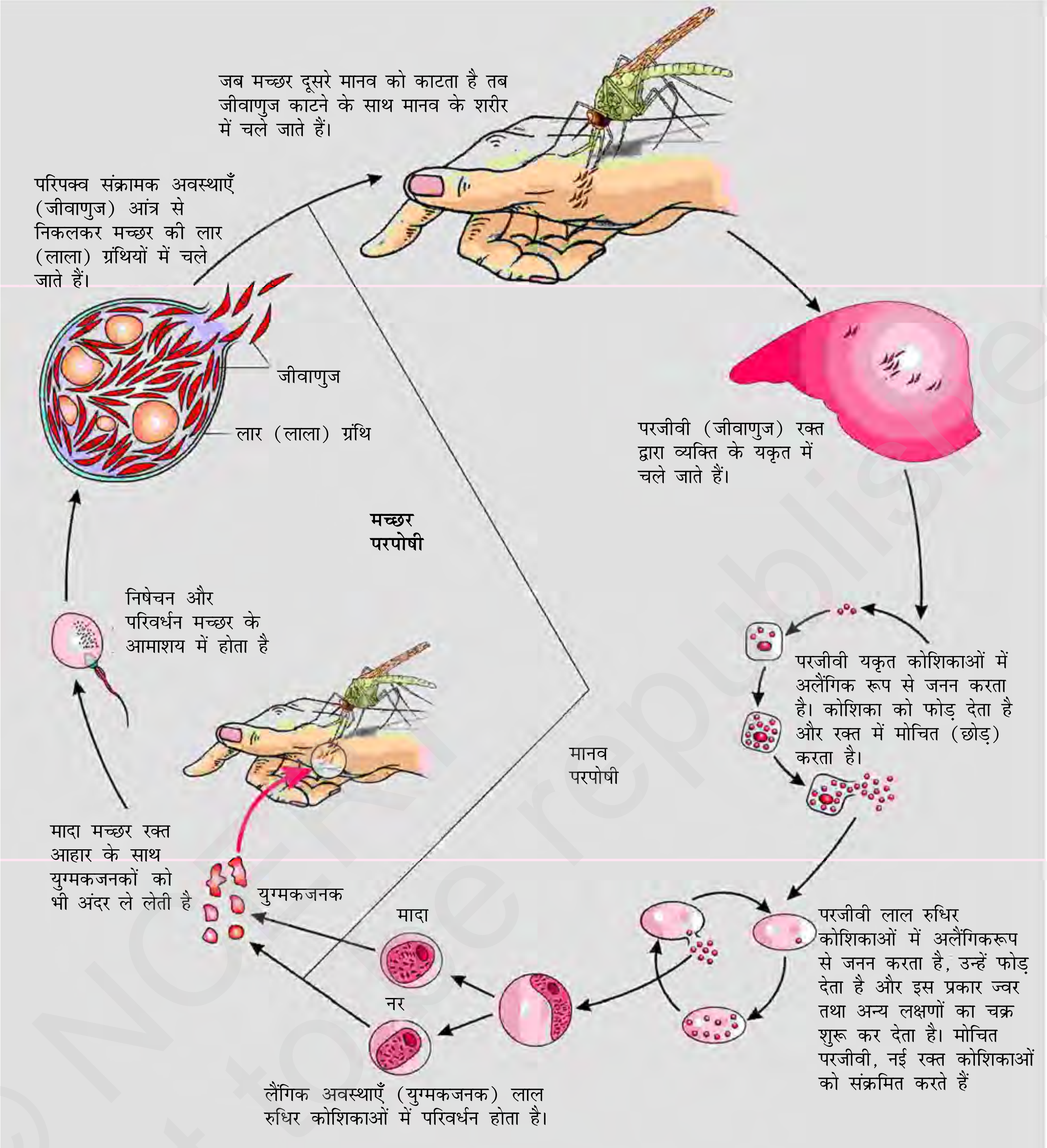

चित्र 8.1 प्लैज्मोडियम के जीवन चक्र में अवस्थाएँ

आइए! **प्लैज्मोडियम** के जीवन चक्र पर एक निगाह डालते हैं (चित्र 8.1) जब संक्रमित मादा *ऐनोफेलीज* मानव को काटती है तो ***प्लैज्मोडियम*** *जीवाणुज* (स्पोरोजॉइट्स) के रूप में मानव शरीर में घुस जाते हैं। जीवाणुज संक्रामक रूप है। प्रारंभ में परजीवी यकृत में अपनी संख्या बढ़ाते रहते हैं और फिर *लाल रुधिर* कणिकाओं पर आक्रमण

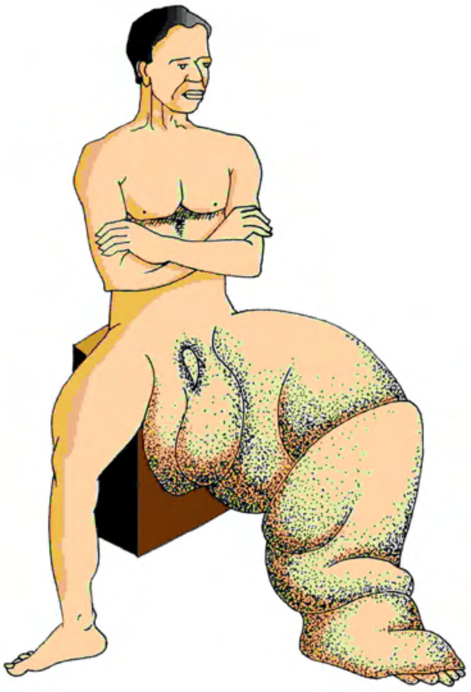

चित्र 8.2 एक निम्न पाद में चिरकारी शोथ दर्शाता चित्र

करते हैं जिससे लाल रक्त कणिकाएँ फट जाती हैं। लाल रक्त कणिकाओं के फटने के साथ ही एक *अविषालु* (टॉक्सिक) पदार्थ हीमोजोइन निकलता है जो ठिठुरन और प्रत्येक तीन से चार दिन के अंतराल से आने वाले उच्च आवर्ती ज्वर के लिए उत्तरदायी है। जब मादा *ऐनोफेलीज* मच्छर किसी संक्रमित व्यक्ति को काटती है, तब परजीवी उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और उनका आगे का *परिवर्धन* वहाँ होता है। ये परजीवी मच्छर में बहु संख्यात्मकरूप से बढ़ते रहते हैं और जीवाणुज बन जाते हैं जो उसकी लार ग्रंथियों में जमा हो जाते हैं। जब यह मच्छर किसी मानव को काटता है तो जीवाणुज उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और इस प्रकार ऊपर वर्णित घटना आरंभ हो जाती है। यह दिलचस्प बात है कि मलेरिया परजीवी को अपना जीवन चक्र (चित्र 8.2) पूरा करने के लिए, मनुष्य और मच्छर, दो परपोषियों की जरूरत पड़ती है। मादा *ऐनोफेलीज* रोगवाहक अर्थात् रोग का संचरण करने वाली भी है।

मानव की वृहत् आंत्र में पाए जाने वाले *एंटअमीबा हिस्टोलिटिका* नामक प्रोटोजोन परजीवी से **अमीबता (*अमीबिएसिस*)** या **अमीबी अतिसार** होता है। कोष्ठबद्धता (कब्ज), उदरीय पीड़ा और ऐंठन, अत्यधिक श्लेषमल और रक्त के थक्के वाला मल इस रोग के लक्षण हैं। घरेलू मक्खियाँ इस रोग की शारीरिक वाहक हैं और परजीवी को संक्रमित व्यक्ति के मल से खाद्य और खाद्य पदार्थों तक ले जाकर उन्हें संदूषित कर देती हैं । मल पदार्थ द्वारा संदूषित पेय जल और खाद्य पदार्थ संक्रमण के प्रमुख स्रोत हैं।

सामान्य गोलकृमि, *ऐस्कारिस* और फाइलेरिया कृमि, *वुचेरेरिया* कुछ ऐसे कृमि हैं जो मनुष्य के लिए रोगजनक हैं। आंत्र परजीवी *ऐस्कारिस* से ऐस्केरिसता **(ऐस्केरिएसिस)** नामक रोग होता है। आंतरिक रक्तस्राव, पेशीय पीड़ा, ज्वर, अरक्तता और आंत्र का अवरोध इस रोग के लक्षण हैं। इस परजीवी के अंडे संक्रमित व्यक्ति के मल के साथ बाहर निकल आते हैं और मिट्टी, जल, पौधों आदि को संदूषित कर देते हैं। स्वस्थ व्यक्ति में यह संक्रमण संदूषित पानी, शाक-सब्जियों, फलों आदि के सेवन से हो जाता है।

वुचेरेरिया (*बु. बैंक्रोफ्टाई और वु.मैलाई*) ऐसे फाइलेरिआई कृमि हैं जिनके कारण अंगों में, प्रायः अर्धः पाद की लसीका वाहिकाओं (लिम्फैटिक वेसेल्स) में, धीरे-धीरे बढ़ने वाला दीर्घकालिक शोथ हो जाता है। ये कृमि इन अंगों में कई वर्षों तक रहते हैं। यह रोग हस्तिपाद (हाथी पाँव) या **श्लीपद (एलीफैंशीएसिस)** अथवा **फाइलेरिया (फाइलेरिएसिस)** कहलाता है (चित्र 8.2)। जननिक अंग भी अक्सर इस रोग से प्रभावित हो जाते हैं और इसकी वजह से बड़ी भारी विरूपताएँ आ जाती हैं। रोगवाहक

मादा मच्छर जब किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटती है, तो रोगजनक उस व्यक्ति के शरीर में संचारित हो जाते हैं।

माइक्रोस्पोरम, ट्राइकोफाइटॉन और *एपिडर्मोफाइटॉन* आदि वंश (जेनरा) के अनेक कवक, **दाद** *(रिंगवर्म)* के लिए उत्तरदायी हैं। यह संक्रामक रोग मनुष्यों में बहुत ही सामान्य है। शरीर के विभिन्न भागों जैसे-त्वचा, नाखून और शिरोवल्क (स्कैल्प) पर सूखी, *शल्की* विक्षतियाँ (स्केली लीजन) (चित्र 8.3) इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। इन विक्षतियों में तेज खुजली होती है। ऊष्मा और नमी इन कवकों को त्वचा के वलनों (फोल्ड), जैसेकि ग्रोइन अथवा पादंगुलियों के बीच पनपने में मदद करती हैं। दाद आमतौर पर मिट्टी से या संक्रमित व्यक्तियों के तौलिए, कपड़े या कंघे तक का प्रयोग करने से हो जाता है।

चित्र 8.3 त्वचा के दाद प्रभावित क्षेत्र को दर्शाता चित्र

अनेक संक्रामक रोगों के निरोध और नियंत्रण के लिए व्यक्तिगत तथा जन स्वच्छता बनाए रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है। व्यक्तिगत स्वच्छता में शरीर को साफ रखना, पीने के लिए साफ पानी, खाना, शाक-सब्जियों, फल आदि का सेवन शामिल है। जन स्वास्थ्य में अपशिष्ट पदार्थ और मल-मूत्र उत्सर्ग (एक्सक्रीटा) का समुचित निपटान; जलाशयों, कुंडों (पूल) और मलकुंडों (सेसपूल्स) और तालाबों की समय-समय पर सफाई और विसंक्रमण तथा जन खान-पान प्रबंध में स्वच्छता के मानक का पालन करना है। ये उपाय विशेषरूप से वहाँ अनिवार्य हैं जहाँ संक्रामक रोग खाद्य पदार्थ और पानी के द्वारा संचारित होते हैं जैसेकि टाइफॉइड, अमीबता, ऐस्केरिसता। न्युमोनिया और सामान्य जुकाम जैसे वायुवाहित (एयर-बॉर्न) रोगों के मामले में ऊपर बताए गए उपायों के अलावा संक्रमित व्यक्तियों के या उनके सामान के निकट संपर्क में आने से बचना चाहिए। कीट रोगवाहकों के द्वारा संचारित होने वाले मलेरिया और फाइलेरिया जैसे रोगों के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय रोगवाहकों और उनके प्रजनन (ब्रीडिंग) की जगहों का नियंत्रण या उन्हें खत्म कर देना है। यह लक्ष्य आवासीय क्षेत्रों में और उसके आस पास पानी को जमा नहीं होने देने, घरेलू शीतलयंत्रों (कूलर) की नियमित सफाई, मच्छरदानी का प्रयोग मच्छर के डिंबकों (लार्वा) को खाने वाली *गंबुज़िया* जैसी मछलियाँ डालने, खाइयों, जलनिकास क्षेत्रों और अनूपों (दलदलों) (स्वांप्स) आदि में कीटनाशकों के छिड़काव से जा सकता है। इसके अलावा दरवाजों और खिड़कियों में जाली लगानी चाहिए, ताकि मच्छर अंदर न घुस सकें। भारतवर्ष के बहुत से भागों में हाल ही में रोगवाहक-वाहित *(एडीज मच्छर)* डेंगू और चिकनगुनिया जैसे रोगों का व्यापक रूप से फैलने के संदर्भ में ऐसे उपाय और भी महत्त्वपूर्ण हो गए हैं।

जीव विज्ञान में हुई प्रगति से हमें अनेक संक्रामक रोगों से निबटने के लिए कारगर हथियार मिल गए हैं। टीका (वैक्सीन) के उपयोग और प्रतिरक्षीकरण कार्यक्रमों से चेचक जैसे जानलेवा रोग का पूरी तरह से उन्मूलन कर दिया गया है। वैक्सीन के इस्तेमाल से पोलियो, डिफ्थीरिया, न्युमोनिया और टिटनस जैसे अनेक संक्रामक रोगों को काफी हद

© NCERT not to be republished

तक नियंत्रित कर लिया गया है। जैवप्रौद्योगिकी (बायोटेक्नोलॉजी), जिसके बारे में आप बारहवें अध्याय में और ज्यादा पढ़ेंगे, नए-नए और अधिक सुरक्षित वैक्सीन बनाने के कगार पर है। प्रतिजैविको (एँटीबायोटिक) एवं अन्य दूसरी औषधियों की खोज ने भी संक्रामक रोगों के प्रभावी ढंग से उपचार करने में हमें सक्षम बनाया है।

8.2 प्रतिरक्षा

हमें हर रोज बड़ी संख्या में संक्रामक कारकों का सामना करना पड़ता है। परंतु, इनमें से कुछ ही रोग के शिकार बनाते हैं- क्यों? इसका कारण यह है कि हमारा शरीर अधिकांश बाह्य कारकों से अपनी रक्षा कर लेता है। परपोषी की रोगकारक जीवों से लड़ने की क्षमता जो उसे प्रतिरक्षी-तंत्र के कारण मिली है, **प्रतिरक्षा** (इम्युनिटी) कहलाती है। प्रतिरक्षा दो प्रकार की होती है- (क) सहज प्रतिरक्षा (ख) उपार्जित प्रतिरक्षा।

8.2.1 सहज प्रतिरक्षा

सहज प्रतिरक्षा (इनेट इम्युनिटी) एक प्रकार की अविशिष्ट रक्षा हैं जो जन्म के समय मौजूद होती है। यह प्रतिरक्षा हमारे शरीर में बाह्य कारकों के प्रवेश के सामने विभिन्न प्रकार के रोध खड़ा करने से हासिल होती है। सहज प्रतिरक्षा में चार प्रकार के रोध होते हैं। ये रोध हैं—

(क) ***शारीरिक रोध (फीजिकल बैरियर)*** - हमारे शरीर पर त्वचा मुख्य रोध है जो सूक्ष्मजीवों के प्रवेश को रोकता है। श्वसन, जठरांत्र (गैस्ट्रोइंटेटाइनल) और जननमूत्र पथ को आस्तरित करने वाली एपिथीलियम का श्लेष्मा आलेप (म्यूकस कोटिंग) भी शरीर में घुसने वाले रोगाणुओं को रोकने में सहायता करता है।

(ख) ***कायिकीय रोध (फीजियोलॉजिकल बैरियर)*** - आमाशय में अम्ल, मुँह में लार, आँखों के आँसू, ये सभी रोगाणीय वृद्धि को रोकते हैं।

(ग) ***कोशिकीय रोध (सेल्युलर बैरियर)*** - हमारे शरीर के रक्त में बहुरूप केंद्रक श्वेताणु उदासीनरंजी (पी एम एन एल-न्युट्रोफिल्स) जैसे कुछ प्रकार के श्वेताणु और एककेंद्रकाणु (मोनोसाइट्स) तथा प्राकृतिक, मारक लिंफोसाइट्स के प्रकार एवं ऊतकों में बृहत् भक्षकाणु (मैक्रोफेजेज) रोगाणुओं का भक्षण करते और नष्ट करते हैं।

(घ) ***साइटोकाइन रोध*** - विषाणु संक्रमित कोशिकाएँ **इंटरफेरॉन** नामक प्रोटीनों का स्रवण करती हैं जो असंक्रमित कोशिकाओं को और आगे विषाणु-संक्रमण से बचाती हैं।

8.2.2 उपार्जित प्रतिरक्षा (एक्वायर्ड इम्युनिटी)

दूसरी ओर उपार्जित प्रतिरक्षा रोगजनक-विशिष्ट है। इसका अभिलक्षण स्मृति है। इसका अर्थ यह है कि हमारे शरीर का जब पहली बार किसी रोगजनक से सामना होता है तो यह एक अनुक्रिया (रेस्पांस) करता है जिसे निम्न तीव्रता की **प्राथमिक अनुक्रिया** कहते

© NCERT not to be republished

हैं। बाद में उसी रोगजनक से सामना होने पर बहुत ही उच्च तीव्रता की द्वितीयक या पूर्ववृत्तीय (एनामिस्टिक) अनुक्रिया होती है। इसका कारण यह तथ्य है कि हमारे शरीर को प्रथम 'मुठभेड़' की स्मृति है।

प्राथमिक और द्वितीयक प्रतिरक्षा अनुक्रियाएँ हमारे शरीर के रक्त में मौजूद दो विशेष प्रकार के लसीकाणुओं द्वारा होती हैं। ये हैं — **बी**-लसीकाणु और **टी**-लसीकाणु। रोगजनकों की अनुक्रिया में बी-लसीकाणु हमारे रक्त में प्रोटीनों की सेना उत्पन्न करते हैं ताकि वे रोगजनकों से लड़ सकें। ये प्रोटीने प्रतिरक्षी (एंटीबायोटिक्स) कहलाती हैं। टी-कोशिकाएँ खुद तो प्रतिरक्षियों का स्रवण नहीं करतीं, लेकिन प्रोटीन उत्पन्न करने में बी-कोशिकाओं की सहायता करती हैं। प्रत्येक प्रतिरक्षी अणु में चार पेप्टाइड शृंखलाएँ होती हैं, दो छोटी जो लघु शृंखलाएँ कहलाती हैं और दो बड़ी जो दीर्घ शृंखलाएँ कहलाती हैं। इसलिए प्रतिरक्षी को H_2L_2 के रूप में दर्शाया जाता है। हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार के प्रतिरक्षी उत्पन्न किए जा सकते हैं जिनमें से IgA, IgM, IgE, IgG कुछ उदाहरण हैं। एक प्रतिरक्षी का कार्टून नीचे दिया गया है (चित्र 8.4)। ये प्रतिरक्षी रक्त में पाई जाती हैं, इसलिए इन्हें **तरल प्रतिरक्षा अनुक्रिया** (ह्युमोरल इम्युन रेसपांस) कहा जाता है। यह दो प्रकार की प्रतिरक्षी माध्यित उपार्जित प्रतिरक्षा अनुक्रियाओं में से एक है। दूसरे प्रकार की अनुक्रिया कोशिका-माध्यित प्रतिरक्षा अनुक्रिया या **कोशिका-माध्यित प्रतिरक्षा** (सी एम आई-सेल मेडिएटेड इम्युनिटी) कहलाती है। टी-लसीकाणु सी एम आई का माध्यम बनते हैं। जब हृदय, नेत्र, वृक्क, यकृत जैसे अंग संतोषजनक रूप से काम करना बंद कर देते हैं तो एकमात्र उपचार प्रतिरोपण होता है जिससे रोगी सामान्य जीवन जी सके। किसी उपयुक्त दाता की तब तलाश शुरू होती है। ऐसा क्यों है कि प्रतिरोपण के लिए हर किसी दाता के अंग नहीं लिए जा सकते? वह क्या है जिसकी जाँच डॉक्टर करते हैं? किसी भी स्रोत - पशु, अन्य प्राइमेट, या किसी भी मानव का निरोप (ग्राफ्ट) नहीं लगाया जा सकता; क्योंकि वे देर-सबेर नकार दिए जाएँगे। कोई भी निरोप/प्रतिरोप लेने से पहले ऊतक मिलान और रक्त मिलान अत्यावश्यक है और इसके बाद भी रोगी को अपने शेष जीवन भर प्रतिरक्षा-निरोधक (इम्युनोसप्रेसेंट) लेने पड़ते हैं। शरीर 'स्वयं' और 'पर' में भेद करने में सक्षम है और कोशिका-माध्यित प्रतिरक्षा अनुक्रिया निरोप को अस्वीकृत करने के लिए उत्तरदायी है।

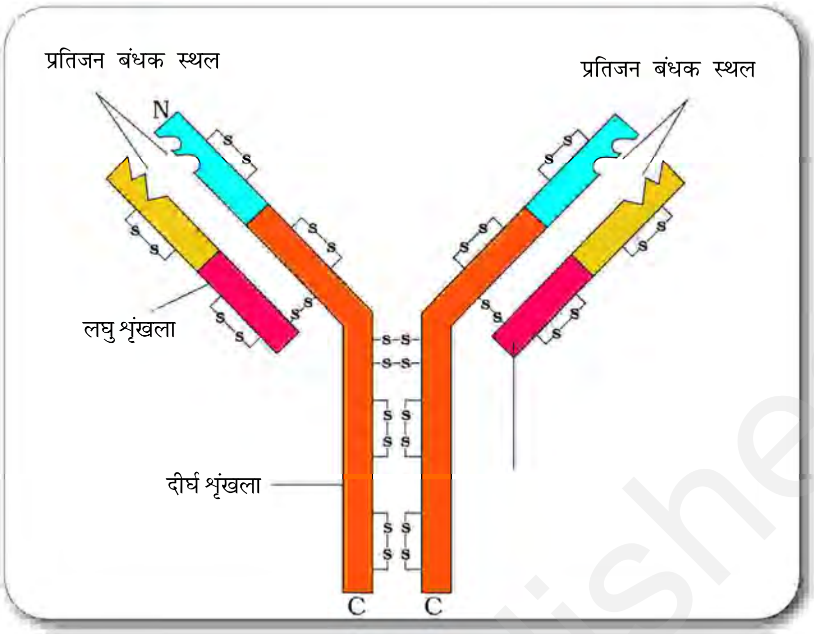

चित्र 8.4 प्रतिरक्षी अणु की संरचना

8.2.3 सक्रिय और निष्क्रिय प्रतिरक्षा

जब परपोषी प्रतिजनों (एंटीजेंस) का सामना करता है तो उसके शरीर में प्रतिरक्षी पैदा होते हैं। प्रतिजन, जीवित या मृत रोगाणु या अन्य प्रोटीनों के रूप में हो सकते हैं। इस प्रकार की प्रतिरक्षा **सक्रिय प्रतिरक्षा** (ऐक्टिव इम्युनिटी) कहलाती है। सक्रिय प्रतिरक्षा धीमी होती है और अपनी पूरी प्रभावशाली अनुक्रिया प्रदर्शित करने में समय लेती है। प्रतिरक्षीकरण (इम्यूनाइजेशन) के दौरान जानबूझकर रोगाणुओं का टीका देना अथवा प्राकृतिक संक्रमण के दौरान संक्रामक जीवों का शरीर में पहुँचना सक्रिय प्रतिरक्षा को प्रेरित करता है। जब शरीर की रक्षा के लिए बने बनाए प्रतिरक्षी सीधे ही शरीर को दिए जाते हैं तो यह **निष्क्रिय प्रतिरक्षा** (पैसिव इम्युनिटी) कहलाती है। *क्या आप जानते हैं कि हाल ही में जन्मे शिशु के लिए माँ का दूध क्यों बहुत ही आवश्यक माना जाता है?* दुग्धस्रवण (लैक्टेशन) के प्रारंभिक दिनों के दौरान माँ द्वारा स्रावित पीले से तरल **'पीयूष** (कोलोस्ट्रम)' में प्रतिरक्षियों (IgA) की प्रचूरता होती है जो शिशु की रक्षा करता है। सगर्भता (प्रीग्नेंसी) के दौरान भ्रूण को भी अपरा (प्लैसेंटा) द्वारा माँ से कुछ प्रतिरक्षी मिलते हैं। ये निष्क्रिय प्रतिरक्षा के कुछ उदाहरण हैं।

8.2.4 टीकाकरण और प्रतिरक्षीकरण

प्रतिरक्षीकरण या टीकाकरण का सिद्धांत प्रतिरक्षा तंत्र की स्मृति के गुण पर आधारित है। टीकाकरण में रोगजनक या निष्क्रियित / दुर्बलीकृत रोगजनक (टीका) की प्रतिजनी प्रोटीनों को निर्मित शरीर में प्रवेश कराई जाती है। इन प्रतिजनों के विरूद्ध शरीर में उत्पन्न प्रतिरक्षियाँ वास्तविक संक्रमण के दौरान रोगजनी कारकों को निष्प्रभावी बना देती हैं। टीका स्मृति-बी और टी-कोशिकाएँ भी बनाते हैं जो परिवर्ती प्रभावन (सब्सीक्वेंट एक्सपोजर) होने पर रोगजनक को जल्दी से पहचान लेती हैं और प्रतिरक्षियों के भारी उत्पादन से हमलावर को हरा देती हैं। अगर व्यक्ति किन्हीं ऐसे घातक रोगाणुओं से संक्रमित होता है जिसके लिए फौरन प्रतिरक्षियों की आवश्यकता है, जैसा कि टिटेनस में, तो प्रभावकारी निष्पादित प्रतिरक्षियों या प्रतिआविष (एंटीटॉक्सिन- एक ऐसी निर्मित जिसमें आविष के लिए प्रतिरक्षियाँ होती हैं) को टीके के रूप में सीधे ही दिए जाने की जरूरत है। साँप के काटे जाने के मामलों में भी रोगी को जो सुई लगाई जाती है उसमें सर्प जीविष (वेनम) के विरूद्ध निष्पादित प्रतिरक्षी होते हैं। इस प्रकार का प्रतिरक्षीकरण **निष्क्रिय प्रतिरक्षीकरण** कहलाता है।

पुनर्योगज डीएनए (रिकम्बिनेंट डीएनए) प्रौद्योगिकी से जीवाणु या खमीर (यीस्ट) में रोगजनक की प्रतिजनी पॉलिपेप्टाइड का उत्पादन होने लगा है। इस विधि से टीकों का बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा है और इसलिए प्रतिरक्षीकरण हेतु उन टीकों की उपलब्धता खूब बढ़ी है, जैसे-खमीर से बनने वाला यकृतशोथ बी टीका।

8.2.5 ऐलर्जी

आपके साथ कितनी बार ऐसा हुआ है कि आप किसी नई जगह गए हैं और बिना किसी स्पष्ट कारण के छींकना और घरघराहट के साथ साँस लेना शुरू करते हैं और जब आप

© NCERT not to be republished

उस जगह से लौट आते हैं तो आपके ये लक्षण गायब हो जाते हैं? हममें से कुछ लोग पर्यावरण में मौजूद कुछ कणों के प्रति संवेदनशील होते हैं। उपर्युक्त अभिक्रिया पराग, चिचड़ी (माइट) आदि के प्रति ऐलर्जी के कारण हो सकती है। जो भिन्न-भिन्न जगहों पर भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

पर्यावरण में मौजूद कुछ प्रतिजनों के प्रति प्रतिरक्षा तंत्र की अतिरंजित अनुक्रिया **ऐलर्जी** कहलाती है। ऐसे पदार्थ, जिनके प्रति ऐसी प्रतिरक्षित अनुक्रिया होती है ऐलर्जन कहलाते हैं। इनके प्रति बनने वाली प्रतिरक्षियाँ IgE प्रकार की होती है। एलर्जन के सामान्य उदाहरण हैं-धूल में चिचड़ी, पराग, प्राणी लघुशल्क (डैंडर) आदि। ऐलर्जीय अनुक्रियाओं के लक्षणों में छींकना, पनीली आँखें, बहती नाक और साँस लेने में कठिनाई शामिल हैं। ऐलर्जी मास्ट कोशिकाओं से हिस्टैमिन और सीरोटोनिन जैसे रसायनों के निकलने के कारण होती है। ऐलर्जी का कारण जानने के लिए रोगी को संभावित एलर्जनों की बहुत ही थोड़ी सी मात्रा टीके द्वारा दी जाती है और प्रतिक्रिया का अध्ययन किया जाता है। प्रतिहिस्टैमिन, एड्रीनेलिन और स्टीराइडों जैसी औषधियों के प्रयोग से ऐलर्जी के लक्षण जल्दी घट जाते हैं। लेकिन, आधुनिक जीवन शैली के फलस्वरूप लोगों में प्रतिरक्षा घटी है और एलर्जनों के प्रति संवेदनशीलता बढ़ी है। भारतवर्ष के महानगरों के अधिकाधिक बच्चे पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता के कारण ऐलर्जियों और दमा (अस्थमा) से पीड़ित रहते हैं। इसका कारण बच्चों के प्रारंभिक जीवनकाल में उन्हें बहुत रक्षित पर्यावरण में रखना हो सकता है।

8.2.6 स्व प्रतिरक्षा

उच्चतर कशेरूकियों में विकसित स्मृति-आधारित उपार्जित प्रतिरक्षा अपनी कोशिकाओं और विजातीय जीवों (जैसे-रोगाणु) के बीच भेद कर सकने की क्षमता पर आधारित है। भेद कर सकने की इस क्षमता का आधार क्या है, यह हमें अभी भी पता नहीं चला है। फिर भी इस बारे में दो उपसिद्धांतों को समझना होगा। पहला, उच्चतर कशेरूकी विजातीय अणुओं और विजातीय जीवों को भी पहचान सकते हैं। प्रयोगात्मक प्रतिरक्षा विज्ञान इस संबंध में जानकारी देता है। दूसरा, कभी-कभी आनुवंशिक और अज्ञात कारणों से शरीर अपनी ही कोशिकाओं पर हमला कर देता है। इसके फलस्वरूप शरीर को क्षति पहुँचती है और यह **स्वप्रतिरक्षा रोग** कहलाता है। हमारे समाज में बहुत से लोग आमवाती संधिशोथ (रूमेटोयाड आर्थाइटिस) से प्रभावित हैं जो एक स्व-प्रतिरक्षा रोग है।

8.2.7 शरीर में प्रतिरक्षा तंत्र

मानव प्रतिरक्षा तंत्र में लसीकाभ अंग (लिम्फ्वायड ऑर्गंस), ऊतक, कोशिकाएँ और घुलनशील अणु जैसाकि प्रतिरक्षी शामिल है। जैसाकि आप पढ़ चुके हैं, प्रतिरक्षा तंत्र इस मायने में बेजोड़ है कि यह विजातीय प्रतिजनों को पहचानता है, इनके प्रति अनुक्रिया करता है और इन्हें याद रखता है। प्रतिरक्षा तंत्र ऐलर्जी प्रतिक्रियाओं, स्व प्रतिरक्षा रोगों और अंग प्रतिरोपण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

© NCERT not to be republished

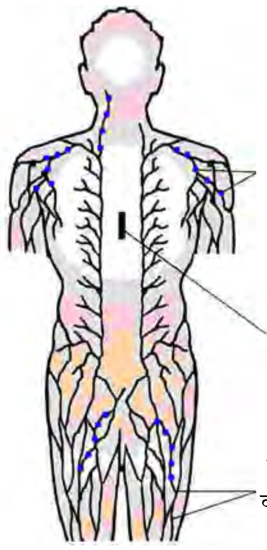

चित्र 8.5 लसीका तंत्र

लसीकाभ अंग: ये ही वे अंग हैं जिनमें लसीकाणुओं की उत्पत्ति और / या परिपक्वन (मैचुरेसन) और प्रचुरोद्भवन (प्रोलिफरेसन) होता है। **अस्थि मज्जा** (बोन मैरो) और **थाइमस** ऐसे प्राथमिक लसीकाभ अंग हैं जहाँ अपरिपक्व लसीकाणु, प्रतिजन संवेदनशील लसीकाणुओं में विभेदित होते हैं। परिपक्वन के बाद लसीकाणु प्लीहा (स्पलीन), लसीका ग्रंथियों, टांसिलों, क्षुद्रांत्र के पेयर पैचों और परिशेषिका (अपेंडिक्स) जैसे द्वितीयक अंगों में चले जाते हैं। द्वितीयक लसीकाभ अंग ऐसे स्थान है जहाँ लसीकाणुओं की प्रतिजन के साथ पारस्परिक क्रिया होती है जो बाद में प्रचुर संख्या में उत्पन्न होकर प्रभावी कोशिकाएँ बन जाते हैं। मानव शरीर में विभिन्न लसीकाभ अंगों की स्थिति चित्र 8.5 में दर्शित है।

अस्थि मज्जा मुख्य लसीकाभ अंग है जहाँ लसीकाणुओं समेत सभी रुधिर कोशिकाएँ उत्पन्न होती हैं। थाइमस एक सपालि (लोब्ड) अंग है जो हृदय के पास उरोस्थि के नीचे स्थित है। जन्म के समय थाइमस काफी बड़ा होता है, लेकिन बढ़ती उम्र के साथ आकार में घटता रहता है और यौवनावस्था आने पर यह बहुत छोटे आकार का रह जाता है। अस्थि मज्जा और थाइमस, दोनों ही टी-लसीकाणुओं के परिवर्धन और परिपक्वन के लिए सूक्ष्म पर्यावरण मुहैया कराते हैं। प्लीहा सेम के आकार का बड़ा अंग है। इसमें मुख्यरूप से लसीकाणु और भक्षकाणु होते हैं। यह रुधिर में पैदा होने वाले सूक्ष्म जीवों को फांसकर रुधिर निस्यंदक (फिल्टर) के रूप में काम करते हैं। प्लीहा में लाल रक्त कणिकाओं का बड़ा भंडार होता है। लसीका ग्रंथियाँ छोटी ठोस संरचनाएँ होती हैं, जो लसीका तंत्र पर भिन्न-भिन्न स्थलों पर स्थित हैं। जो सूक्ष्मजीव या दूसरे प्रतिजन लसीका और ऊतक तरल में आ जाते हैं, लसीका ग्रंथियाँ उन्हें फाँस लेती हैं। लसीका ग्रंथियों में फँसे प्रतिजन वहाँ मौजूद लसीकाणुओं के संक्रियण और प्रतिरक्षा अनुक्रिया के लिए उत्तरदायी हैं।

प्रमुख पथों (श्वसन, पाचन और जननमूत्र पथ) के आस्तरों (लाइनिंग) के भीतर लसीकाभ ऊतक स्थित हैं जो **श्लेष्म संबद्ध लसीकाभ ऊतक** (एम ए एल टी-म्यूकोसल एसोसिएटेड लिम्फॉयड टिशू) कहलाते हैं। यह मानव शरीर के लसीकाभ ऊतक का लगभग 50 प्रतिशत है।

8.3 एड्स

एड्स शब्द **उपार्जित प्रतिरक्षा न्यूनता संलक्षण** (एड्स-एक्वायर्ड इम्यूनो डिफिसियेंसी सिंड्रोम) के लिए प्रयुक्त होता है। इसका अर्थ है प्रतिरक्षा तंत्र की न्यूनता, जो व्यक्ति के जीवनकाल में उपार्जित होती है और जो इस बात का संकेत है कि यह न्यूनता कोई जन्मजात रोग नहीं है। एड्स का सबसे पहले 1981 में पता चला और जो लगभग पिछले 25 वर्षों में सारे विश्व में फैल गया है और इस रोग से दो करोड़ पचास लाख लोगों की मृत्यु हो चुकी है।

© NCERT not to be republished

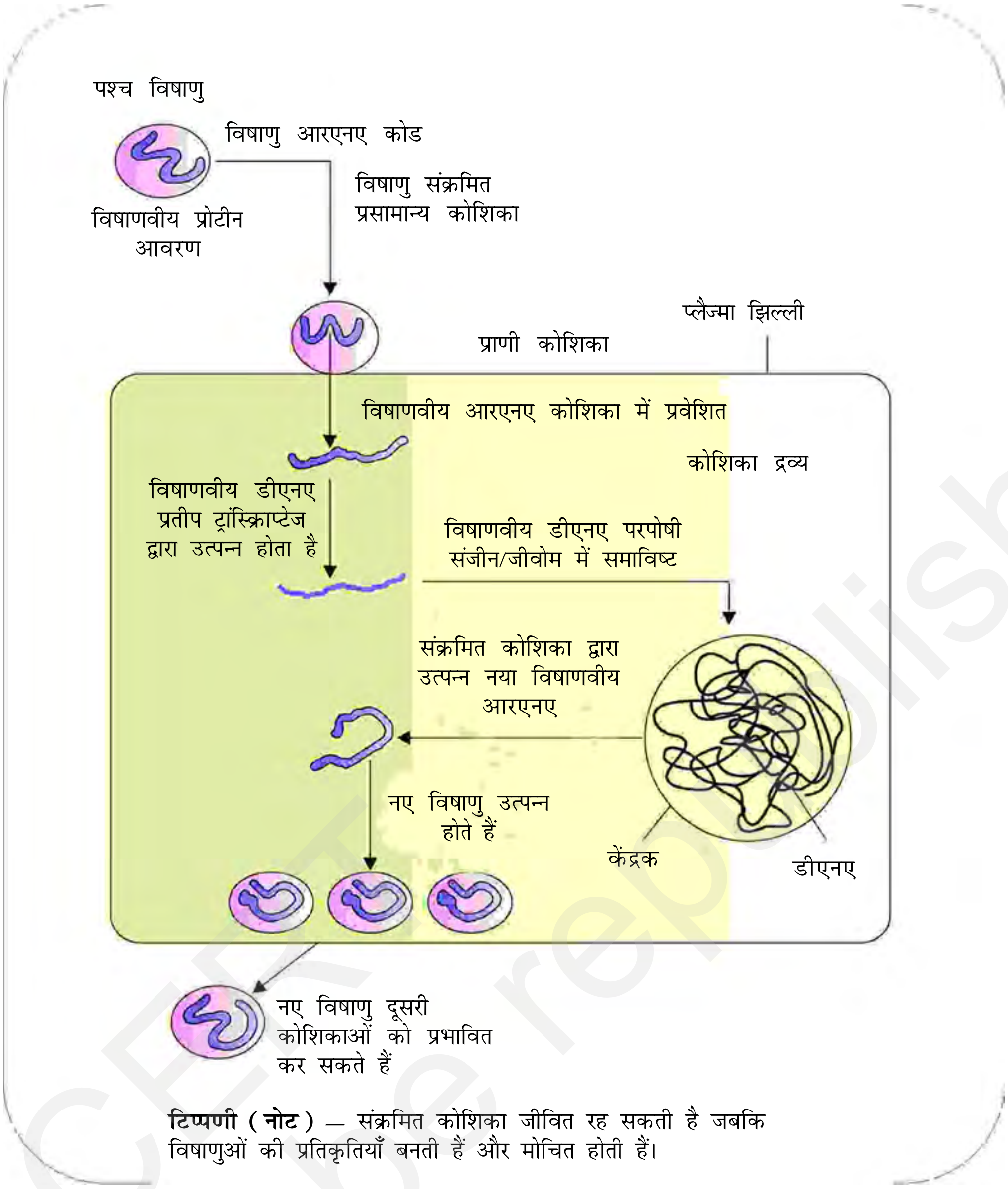

चित्र 8.6 पश्चविषाणु (रेट्रोवायरस) की प्रतिकृति

एड्स एक विषाणु रोग है जो मानव में प्रतिरक्षा न्यूनता विषाणु (एचआईवी- ह्यूमन इम्यूनो डिफिसिएंसी वायरस) के कारण होता है। एचआईवी विषाणुओं के उस समूह में आता है जिसे **पश्चविषाणु** (रिट्रोवायरस) कहते हैं जिनमें आरएनए जीनोम को ढकने वाला आवरण होता है (चित्र 8.6)। आमतौर पर एचआईवी का संक्रमण निम्नलिखित से होता है— (क) संक्रमित व्यक्ति के यौन संपर्क से, (ख) संदूषित रक्त और रुधिर उत्पादों के आधान से, (ग) संक्रमित सुइयों के साझा प्रयोग से जैसाकि अंतः शिरा (इंट्रावेनस) द्वारा ड्रग का कुप्रयोग करने वालों के मामले में और (घ) संक्रमित माँ से अपरा द्वारा उसके बच्चे में। इसलिए, जिन लोगों में यह संक्रमण होने का बहुत ज्यादा खतरा है वे हैं— ऐसे व्यक्ति जो अनेक से मैथुन करते हैं, मादक द्रव्य व्यसनी जो अंतः

© NCERT not to be republished

शिरा द्वारा ड्रग लेते है, ऐसे व्यक्ति जिन्हें बार बार रक्त-आधान की जरूरत होती है और संक्रमित माँ से जन्मे बच्चे। *क्या आपको मालूम है कि लोगों को बार-बार रक्त-आधान की आवश्यकता कब होती है?* यहाँ पर यह ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि एचआईवी एड्स केवल छूने या शरीर के संपर्क में आने से नहीं फैलता है। यह केवल शरीर में स्रवित द्रवों से फैलता है। इसलिए यह भी महत्त्वपूर्ण है कि शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वस्थता के लिए यह आवश्यक है कि एच आई वी/एड्स प्रभावित व्यक्ति को परिवार से या समाज से अलग-थलग न किया जाए। पता लगाइए और ऐसी परिस्थितियों की सूची बनाइए। संक्रमण होने और एड्स के लक्षण प्रकट होने के बीच हमेशा अंतराल होता है यह अवधि कुछ महीनों से लेकर कई वर्षों (प्राय: 5-10 वर्ष) की हो सकती है।

व्यक्ति के शरीर में आ जाने के बाद विषाणु बृहतभक्षकाणु (मेक्रोफेग) में प्रवेश करता है जहाँ उसका आरएनए जीनोम, विलोम ट्रांसक्रिप्टेज प्रकिण्व (रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज एँज़ाइम) की सहायता से प्रतिकृतीयन (रेप्लीकेसन) द्वारा विषाणवीय डी एन ए बनाता है। यह विषाणवीय डीएनए परपोषी की कोशिका के डीएनए में समविष्ट होकर संक्रमित कोशिकाओं को विषाणु कण पैदा करने का निर्देश देता है। बृहतभक्षकाणु विषाणु उत्पन्न करना जारी रखते हैं और इस तरह एक एचआईवी फैक्टरी की तरह काम करते हैं। इसके साथ ही एचआईवी सहायक टी-लसीकाणुओं (टी एच) (टी-लसीकाणुओं के एक प्रकार या उपसमुच्चय है जिसके बारे में आप ऊपर प्रतिरक्षा तंत्र में पढ़ चुके हैं) में घुस जाता है, प्रतिकृति बनाता है और संतति विषाणु पैदा करता है। रुधिर में छोड़े गए संतति विषाणु दूसरे सहायक टी-लसीकाणुओं पर हमला करते हैं। यह क्रम बार-बार दोहराया जाता है जिसकी वजह से संक्रमित व्यक्ति के शरीर में सहायक टी-लसीकाणुओं की संख्या में उत्तरोत्तर कमी होती है। इस अवधि के दौरान, बार-बार बुखार और दस्त आते हैं तथा वजन घटता है। सहायक टी-लसीकाणुओं की संख्या में गिरावट के कारण व्यक्ति जीवाणुओं, विशेषरूप से *माइकोबैक्टीरियम*, विषाणुओं, कवकों यहाँ तक की *टॉक्सोप्लैज्मा* जैसे परजीवियों के संक्रमण का शिकार हो जाता है। रोगी में इतनी प्रतिरक्षा न्यूनता हो जाती है कि वह इन संक्रमणों से अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो जाता है। एड्स के लिए व्यापकरूप से काम में लाया जाने वाला नैदानिक परीक्षण **एंजाइम्स** संलग्न प्रतिरक्षा रोधी आमापन एलीसा (एलीसा-एंजाइम लिंक्ड इम्यूनोजारबेट एस्से) है। प्रति-पश्चविषाणवीय (एंटी रिट्रोवायरल) औषधियों से एड्स का उपचार आंशिक रूप से ही प्रभावी है। ये औषधियाँ रोगी की अवश्यंभावी मृत्यु को आगे सरका सकती हैं, रोक नहीं सकती।

एड्स की रोकथाम - एड्स को ठीक नहीं किया जा सकता; इसलिए इसकी रोकथाम ही सबसे उत्तम उपाय है। इसके अलावा, एचआईवी संक्रमण सचेतन व्यवहार पैटर्न के कारण फैलता है न कि न्यूमोनिया या टाइफॉइड की तरह अनजानें में। यह ठीक है कि रक्त-आधान रोगियों में, नवजातों में (माँ से) आदि में यह संक्रमण सही निगरानी (मॉनिटरिंग) न होने के कारण हो सकता है। एकमात्र बहाना अनभिज्ञता हो सकती है लेकिन कहावत बिल्कुल सही है कि 'अज्ञानता के कारण मत मरो'। हमारे देश में राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (एन ए सी ओ-नेशनल एड्स कंट्रोल आर्गेनाइजेशन) और अन्य

© NCERT not to be republished

गैर-सरकारी संगठन (एन जी ओ) लोगों को एड्स के बारे में शिक्षित करने के लिए बहुत काम कर रहे हैं। एचआईवी संक्रमण को फैलने से रोकने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अनेक कार्यक्रम आरंभ किए हैं। रक्त बैंकों के रक्त को एचआईवी से मुक्त करना, सार्वजनिक और निजी अस्पतालों और क्लिनिकों में केवल प्रयोज्य (डिस्पोजेबल) सुईयाँ और सिरिंज ही काम में लाई जाएँ-इसकी व्यवस्था करना, कंडोम का मुफ्त वितरण, ड्रग के कुप्रयोग को नियंत्रित करना, सुरक्षित यौन संबंधों की सिफारिश करना और सुग्राही समष्टि (ससेप्टेबुल पॉपुलेशन) में एचआईवी के लिए नियमित जाँच को बढ़ावा देना, इन कार्यक्रमों में से कुछ एक है।

एच आई वी से संक्रमण या एड्स से ग्रस्त होना कोई ऐसी बात नहीं है जिसे छुपाया जाए; क्योंकि छुपाने से यह संक्रमण और भी ज्यादा लोगों में फैल सकता है। समाज में एचआईवी/एड्स संक्रमित लोगों को सहायता और सहानुभूति की जरूरत होती है एवं उन्हें हेय दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए। जब तक समाज इसे एक ऐसी समस्या के रूप में नहीं देखेगा जिसका समाधान सामूहिक तौर पर किया जाना चाहिए, तब तक रोग के व्यापक रूप से फैलने की गुंजाइश कई गुना ज्यादा बढ़ेगी । यह एक ऐसी व्याधि है जिसके फैलाव को समाज और चिकित्सक वर्ग के सम्मिलित प्रयास से ही रोका जा सकता है।

8.4 कैंसर

मानव के भयंकर रोगों में से एक **कैंसर** है और विश्वभर में मौत का प्रमुख कारण है। भारतवर्ष में प्रतिवर्ष दस लाख से भी ज्यादा लोग कैंसर से पीड़ित होते हैं और इससे बड़ी संख्या में मर जाते हैं। कैंसर होने की क्रियाविधि अथवा कोशिकाओं का कैंसरजनी रूपांतरण (कार्सिनोजेनिक ट्रांसफारमेशन), इसका उपचार और नियंत्रण जैविकी और आयुर्विज्ञान में गहन अनुसंधान का विषय है।

हमारे शरीर में कोशिका वृद्धि और विभेदन अत्यधिक नियंत्रित और नियमित है। कैंसर कोशिकाओं में, ये नियामक क्रियाविधियाँ टूट जाती हैं। प्रसामान्य कोशिकाएँ ऐसा गुण दर्शाती हैं जिसे **संस्पर्श संदमन** (कांटेक्ट इनहिबिसन) कहते हैं और इसी गुण के कारण दूसरी कोशिकाओं से उनका संस्पर्श उनकी अनियंत्रित वृद्धि को संदमित करता है। ऐसा लगता है कि कैंसर कोशिकाओं में यह गुण खत्म हो गया है। इसके फलस्वरूप कैंसर कोशिकाएँ विभाजित होना जारी रख कोशिकाओं का भंडार खड़ा कर देती हैं जिसे **अर्बुद** (ट्यूमर) कहते हैं। अर्बुद दो प्रकार के होते हैं— सुदम (बिनाइन) और दुर्दम (मैलिग्नेंट)। **सुदम अर्बुद** सामान्यतया अपने मूल स्थान तक सीमित रहते हैं, शरीर के दूसरे भागों में नहीं फैलते तथा इनसे मामूली क्षति होती है। दूसरी और **दुर्दम अर्बुद** प्रचुरोद्भवी कोशिकाओं का पुंज है जो नवद्रव्यीय (नियोप्लास्टिक) कोशिकाएँ कहलाती हैं। ये बहुत तेजी से बढ़ती हैं और आस पास के सामान्य ऊतकों पर हमला करके उन्हें क्षति पहुँचाती हैं। अर्बुद कोशिकाएँ सक्रियता से विभाजित और वर्धित होती है जिससे वे अत्यावश्यक पोषकों के लिए सामान्य कोशिकाओं से स्पर्धा करती हैं और उन्हें भूखा मारती हैं। ऐसे अर्बुदों से उतरी हुई कोशिकाएँ रक्त द्वारा दूरदराज स्थलों पर पहुँच जाती

© NCERT not to be republished

हैं और जहाँ भी ये जाती है नये अर्बुद बनाना प्रारंभ कर देती हैं। **मैटास्टेसिस** कहलाने वाला यह गुण दुर्दम अर्बुदों का सबसे डरावना गुण है।

कैंसर के कारण – प्रसामान्य कोशिकाओं का कैंसरी नवद्रव्यीय कोशिकाओं में रूपांतरण को प्रेरित करने वाले कारक भौतिक, रासायनिक अथवा जैविक हो सकते हैं। ये कारक कैंसरजन कहलाते हैं। एक्स-किरण और गामा किरणों जैसे आयनकारी विकिरण और पराबैंगनी जैसे अनायनकारी विकिरण डीएनए को क्षति पहुँचाते हैं, जिससे नवद्रव्यी रूपांतरण होता है। तंबाकू के धूएँ में मौजूद रासायनिक कैंसरजन फेफड़े के कैंसर के मुख्य कारण हैं। कैंसर उत्पन्न करने वाले विषाणु **अर्बुदीय विषाणु** (आंकोजेनिक वायरस) कहलाते हैं। इनमें जो जीन होते हैं उन्हें **विषाणुवीय अर्बुदजीन** (वायरल आंकोजिन) कहते हैं। इसके अलावा प्रसामान्य कोशिकाओं में कई जीनों का पता चला है जिन्हें कुछ विशेष परिस्थितियों में सक्रियित किए जाने पर वे कोशिकाओं का कैंसरजनी रूपांतरण कर देते हैं। ये जीन **कोशिकीय अर्बुदजीन** (सेल्यूलर आंकोजिन-सी आंक) या **आदिअर्बुद जीन** (प्रोटो-आकोजिन) कहलाते हैं।

कैंसर अभिज्ञान और निदान – कैंसरों का शुरू में ही पता लगाना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि ऐसा होने पर कई मामलों में इस रोग का सफलतापूर्वक उपचार किया जा सकता है। कैंसर अभिज्ञान ऊतकों की जीवूतिपरीक्षा (बायोप्सी) और ऊतक विकृति (हिस्टोपैथोलॉजिकल) अध्ययनों तथा बढ़ती कोशिका गणना के लिए रुधिर तथा अस्थिमज्जा परीक्षण पर आधारित है जैसाकि अधिश्वेतरक्तता (ल्यूकीमिया) के मामले में होता है। जीवूतिपरीक्षा में जिस ऊतक पर शक होता है उसका एक टुकड़ा लेकर पतले अनुच्छेदों में काटकर अभिरंजित करके रोग विज्ञानी द्वारा जाँचा जाता है। आंतरिक अंगों के कैंसर का पता लगाने के लिए विकिरण-चित्रण (रेडियोग्राफी) (एक्स-किरणों का प्रयोग), अभिकलित टॉमोग्राफी (सी टी-कंप्यूटेड टॉमोग्राफी) और चुंबकीय अनुनादी इमेजिंग (एम आर आई- मैगनेटिक रेजोजेंस इमेजिंग) जैसी तकनीकें बहुत उपयोगी है। अभिकलित टॉमोग्राफी एक्स-किरणों का उपयोग करके किसी अंग के भीतरी भागों की त्रिविम प्रतिबिंब बनाती है। जीवित ऊतक में वैकृतिक (पैथोलॉजिकल) और कायिकीय (फिजियोलॉजिकल) परिवर्तनों का एकदम सही पता लगाने के लिए एम आर आई में तेज चुंबकीय क्षेत्रों और अनायनकारी विकिरणों का उपयोग किया जाता है।

कुछ कैंसरों का पता लगाने के लिए कैंसर-विशिष्ट प्रतिजनों के विरूद्ध प्रतिरक्षियों का भी उपयोग किया जाता है। कुछ कैंसरों के प्रति वंशागत सुग्रहिता वाले व्यक्तियों में जीनों का पता लगाने के लिए आण्विक (मॉलीकुलर) जैविकी की तकनीकों को काम में लाया जा सकता है। ऐसे जीनों की पहचान, जो किसी व्यक्ति को विशेष कैंसरों के प्रति प्रवृत (प्रीडिस्पोज) करते हैं, कैंसर की रोकथाम के लिए बहुत उपयोगी हो सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों को कुछ ऐसे विशेष कैंसरजनों से, जिनके प्रति वे सुग्राही हैं, (जैसे-फुप्फुस कैंसर में तंबाकू का धुआँ) से बचने की सलाह देनी चाहिए।

कैंसरों का उपचार – आमतौर पर कैंसरों के उपचार के लिए शल्यक्रिया, विकिरण चिकित्सा और प्रतिरक्षा चिकित्सा का सहारा लिया जाता है। विकिरण चिकित्सा में, अर्बुद कोशिकाओं को घातकरूप से किरणित (इर्रेटेड) किया जाता है लेकिन अर्बुद के ढेर के

© NCERT not to be republished

पास वाले प्रसामान्य ऊतकों का पूरा ध्यान रखा जाता है। कैंसर-कोशिकाओं को मारने के लिए अनेक रसोचिकित्सीय (कीमोथेरा प्यूटिक) औषध काम में लाए जाते हैं। इनमें से कुछ औषध विशेष अर्बुदों के लिए विशिष्ट हैं। अधिकांश औषधों के अनुषंगी प्रभाव या दुष्प्रभाव (साइड इफेक्ट) होते हैं जैसेकि बालों का झड़ना, अरक्तता आदि। अधिकांश कैंसर का उपचार शल्यकर्म, विकिरण चिकित्सा और रसोचिकित्सा के संयोजन से किया जाता है। अर्बुद कोशिकाएँ प्रतिरक्षा तंत्र द्वारा पता लगाए जाने और नष्ट किए जाने से बचती हैं। इसलिए, ऐसे पदार्थ दिए जाते हैं जिन्हें जैविक अनुक्रिया रूपांतरण कहते हैं, जैसेकि Y-इंटरफेरॉन, जो उनके प्रतिरक्षा तंत्र को सक्रियित करता और अर्बुद को नष्ट करने में सहायता करता है।

8.5 ड्रग और ऐल्कोहल कुप्रयोग

सर्वेक्षणों और आँकड़ों से पता चलता है कि ड्रग और ऐल्कोहल का उपयोग, विशेषरूप से नवयुवकों में बढ रहा है। यह सचमुच चिंता का विषय है; क्योंकि इसके अनेक दुष्परिणाम होते हैं। समुचित शिक्षा और मार्गदर्शन से नवयुवक इन खतरनाक आदतों से अपने आप को बचा पायेंगे और स्वस्थ जीवन शैली अपनाएँगे।

आमतौर पर जिन ड्रगों का कुप्रयोग किया जाता है वे हैं— ओपिऑइड्स, कैनेबिनॉइड्स और कोका एल्कैलॉइड्स। इनमें से अधिकांश पुष्पी पादपों से प्राप्त किए जाते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो कवकों से निकाले जाते हैं।

ओपिऑइड्स ऐसे ड्रग हैं जो हमारे केंद्रीय तंत्रिका तंत्र और जठरांत्र पथ में मौजूद विशिष्ट ओपिऑइड्स ग्राहियों (रिसेप्ट्रस) से बंध जाते हैं। आमतौर पर 'स्मैक' के नाम से मशहूर हिरोइन (चित्र 8.7), रासायनिक रूप से डाइएसिटिल मॉर्फीन है जो एक सफेद, गंधहीन, तीखा रवेदार यौगिक होता है। यह मॉर्फिन के एसीटिलीकरण से प्राप्त किया जाता है (चित्र 8.7), जो कि पोस्त के पौधे पैपेवर सोम्नीफेरम (चित्र 8.8) के लेटेक्स के निष्कर्षण द्वारा प्राप्त किया जाता है। आमतौर पर हिरोइन नाक द्वारा जोर से सांस लेकर या टीके द्वारा ली जाती है। यह एक अवसादक (डीप्रेसेंट) है और शरीर के प्रकार्यों को धीमा करती है।

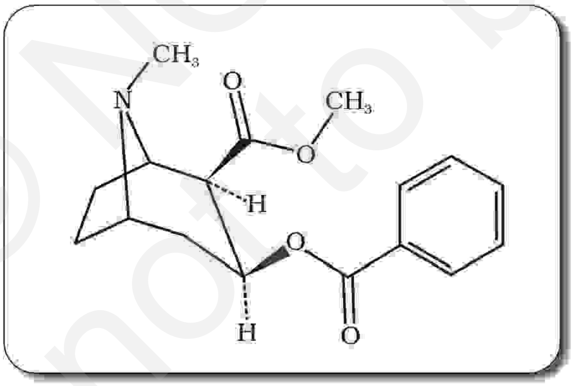

चित्र 8.7 मॉर्फीन की रासायनिक संरचना

चित्र 8.8 सोम्नीफेरम (अफीम पोस्त)

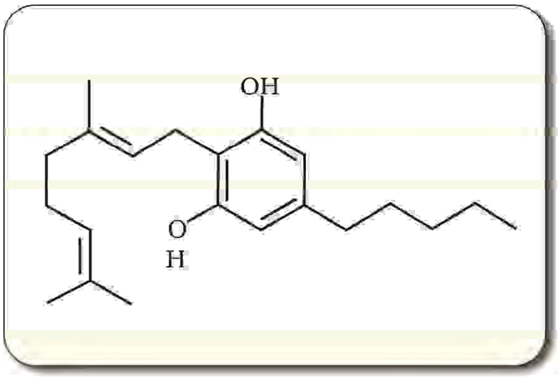

चित्र 8.9 कैनेबिनाइड अणु की संरचना

चित्र 8.10 कैनेबिस सैटाइवा (भाँग) की पत्तियाँ

चित्र 8.11 धतूरा की पुष्पी शाखा

कैनाबिनॉइड्स रसायनों का समूह हैं (चित्र 8.9), जो मुख्यरूप से मस्तिष्क में मौजूद कैनोबिनॉइड ग्राहियों से पारस्परिक क्रिया करते हैं। प्राकृतिक कैनेबिनॉइड कैनेबिस सैटाइवा पौधे के पुष्पक्रम (इंफ्लोरिसेंस) से प्राप्त किए जाते हैं (चित्र 8.10)। भाँग के फूलों के शीर्ष, पत्तियाँ और राल (रेसिन) के विभिन्न संयोजन मैरिजुआना, हशीश, चरस और गाँजा बनाने के काम आते हैं। आमतौर पर अंतःश्वसन और मुँह द्वारा खाए जाने वाले मादक द्रव्य (ड्रग) शरीर के हृद-वाहिका तंत्र (कार्डियो-वैस्कुलर सिस्टम) को प्रभावित करते हैं।

कोका ऐल्कोलॉइड या कोकिन कोका पादप *ऐरिथ्रोज़ाइलम* कोका से प्राप्त किया जाता है जो कि मूलरूप से दक्षिण अमेरिका का पौधा है। यह तंत्रिकाप्रेषक (न्यूरोट्रांसमीटर) डोपेमीन के परिवहन में बाधा डालती है। कोकेन, जिसे आमतौर से **कोक** या **क्रैक** कहा जाता है, प्रायः जोर से साँस द्वारा अंदर खींची जाती है। इसका केंद्रीय तंत्रिका तंत्र पर जोरदार उद्दीपक (स्टीमुलेटिंग) असर पड़ता है जिससे सुखाभास (यूफोरिया) और ऊर्जा में वृद्धि की अनुभूति होती है। कोकेन की अत्यधिक मात्रा से विभ्रम (हैलुसिनेसन) हो जाता है। अन्य प्रसिद्ध पादप, जिनमें विभ्रम पैदा करने का गुण है, ऐट्रोफा बेलेडोना और धतूरा हैं (चित्र 8.11)। आजकल कुछ खिलाड़ी भी कैनोबिनॉइडों का दुरुपयोग करते हैं।

बर्बिट्यूरेट, एंफेटेमीन, बेंजोडायजेपीन और लाइसर्जिक अम्ल डाइएथिल एमाइड्स (एल एस डी) जैसे ड्रग और इन जैसे अन्य ड्रग जो अवसाद (डिप्रेसन) और अनिद्रा (इनसोम्नीया) जैसे मानसिक व्याधि से ग्रस्त रोगियों की सहायता के लिए सामान्यतया औषधियों के रूप में काम में लिए जाते हैं, इनका भी कुप्रयोग होता है। मार्फीन एक बहुत

© NCERT not to be republished

प्रभावी शामक (सेडेटिव) और पीड़ाहर है और जिन रोगियों का शल्यक्रिया (सर्जरी) हुई है, उनके लिए बहुत उपयोगी है। विभ्रमी गुणवाले अनेक पादपों, फलों, बीजों का विश्वभर में लोक औषधि, धार्मिक उत्सवों और अनुष्ठानों में सैकड़ों वर्षों से उपयोग हो रहा है। जब ये औषधियाँ चिकित्सा के बजाय दूसरे उद्देश्य से ली जाती हैं या इतनी मात्रा में इतनी बार ली जाती हैं कि व्यक्ति के शारीरिक, कायिक अथवा मनोवैज्ञानिक प्रकार्यों को गड़बड़ा देती हैं तो यह ड्रगों का कुप्रयोग बन जाता है।

धूम्रपान से इन तीव्र ड्रगों के सेवन का रास्ता खुल जाता है। तंबाकू का प्रयोग मानव 400 वर्षों से भी अधिक समय से करता आ रहा है। तंबाकू (धूम्रपान) पीया जाता है, चबाया जाता है या सुँघा (सुँघनी लेना) जाता है। तंबाकू में बहुत से रासायनिक पदार्थ होते हैं जिनमें एक ऐल्केलाइड, निकोटीन शामिल है। निकोटीन अधिवृक्क ग्रंथि (एड्रीनल ग्लैंड) को उद्दीपित करती है, जिससे एड्रिनलीन और नॉर-एड्रिनलीन रक्त परिसंचरण में मोचित होती हैं अर्थात् छोड़ी जाती हैं। ये दोनों रक्तचाप और हृदय स्पंदन दर बढ़ाती हैं। धूम्रपान फुफ्फुस, मूत्राशय, और गले के कैंसर, श्वसनीशोथ (ब्रोंकाइटिस), वातस्फीति (एम्फीसिमा), हृदयरोग, जठर व्रण (गेस्ट्रिक अल्सर) से संबद्ध है। तंबाकू चबाना मुख कोटर के कैंसर के खतरे को बढ़ा देता है। धूम्रपान से रक्त में कार्बनमोनोक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है और हीमआबद्ध ऑक्सीजन की सांद्रता घट जाती है। इससे शरीर में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है।

जब व्यक्ति सिगरेट के पैकेट खरीदता है तो यह नहीं हो सकता कि उसकी निगाह पैकेट पर छपी उस वैधानिक (कानूनी) चेतावनी पर न पड़े जोकि धूम्रपान से आगाह करती है और बताती है यह किस प्रकार स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। आजकल फिर भी युवाओं और वृद्धों दोनों में धूम्रपान का खूब चलन है। धूम्रपान और तंबाकू चबाने के ख़तरे और इसकी लत पड़ जाने वाली प्रवृत्ति को देखते हुए युवा और वृद्ध दोनों को इसकी आदत से बचना चाहिए। किसी भी लत से छुटकारा पाने के लिए परामर्श तथा चिकित्सा सहायता की आवश्यकता होती है।

8.5.1 किशोरावस्था और ड्रग/ऐल्कोहल कुप्रयोग

किशोरावस्था का अर्थ 'एक अवधि' और 'एक प्रक्रिया' दोनों से है जिसके दौरान एक बालक समाज में अपनी प्रभावी सहभागिता के लिए अपनी वृत्ति और विश्वास के अनुसार परिपक्व होता है। 12-18 वर्ष की आयु की अवधि को किशोरावस्था माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में किशोरावस्था, बचपन और प्रौढ़ता को जोड़ने वाला पुल है। किशोरावस्था के साथ-साथ उनमें अनेक जीवविज्ञान और व्यवहारात्मक परिवर्तन आते हैं। इस प्रकार किशोरावस्था किसी व्यक्ति का मानसिक और मनोवैज्ञानिक विकास का बहुत ही नाजुक समय है।

जिज्ञासा, जोखिम उठाने और उत्तेजना के प्रति आकर्षण और प्रयोग करने की इच्छा, ऐसे सामान्य कारण हैं जो किशोरों को ड्रग तथा ऐल्कोहल के लिए अभिप्रेरित करते हैं। बच्चे की प्राकृतिक जिज्ञासा उसे प्रयोग के लिए अभिप्रेरित करती है। ड्रग और ऐल्कोहल के प्रभाव को फायदे के रूप में देखने से समस्या और भी जटिल हो जाती है। इस प्रकार

© NCERT not to be republished

ड्रग या ऐल्कोहल का पहली बार सेवन जिज्ञासा या प्रयोग करने के कारण हो सकता है, लेकिन बाद में बच्चा इनका उपयोग समस्याओं का सामना करने से बचने के लिए करने लगता है। पिछले कुछ समय से शैक्षिक क्षेत्र में या परीक्षा में सबसे आगे रहने के दबाव से उत्पन्न तनाव ने भी किशोरों को ऐल्कोहल या ड्रगों को आजमाने के लिए फुसलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। युवकों में यह बोध भी कि धूम्रपान करना, ड्रग या ऐल्कोहल का उपयोग व्यक्ति के 'ठंडा' या 'प्रगति' का प्रतीक है, यही इन आदतों को शुरू करने का मुख्य कारण है। इस बोध को बढ़ावा देने में टेलीविजन, सिनेमा, समाचार पत्र, इंटरनेट ने भी सहायता की है। किशोरों में ड्रग और ऐल्कोहल के कुप्रयोग के अन्य कारणों में, परिवार के ढाँचे में अस्थिरता या एक दूसरे को सहारा देने तथा मित्रों के दबाव का अभाव भी है।

8.5.2 व्यसन और निर्भरता

यह समझ कि ड्रग लाभकारी हैं, इन्हें बार-बार लेने का कारण है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ऐल्कोहल और ड्रग की अंतर्निहित व्यसनी प्रकृति है, लेकिन व्यक्ति इस बात को समझ नहीं पाता। ड्रगों और एल्कोहॉल के कुछ प्रभावों के प्रति लत, एक मनोवैज्ञानिक आशक्ति है। (यह प्रभाव है सुखाभास और भला चंगा होने की अस्थाई भावना) जो व्यक्ति को उस समय भी ड्रग एवं ऐल्कोहल लेने के लिए प्रेरित करने से जुड़ी हैं जबकि उनकी जरूरत नहीं होती या उनका इस्तेमाल आत्म-घाती है। ड्रग के बार बार उपयोग से हमारे शरीर में मौजूद ग्राहियों का सह्य स्तर बढ़ जाता है। इसके फलस्वरूप ग्राही, ड्रगों या ऐल्कोहल की केवल उच्चतर मात्रा के प्रति अनुक्रिया करते हैं, जिसके कारण अधिकाधिक मात्रा में लेने की लत पड़ जाती है। लेकिन एक बात बुद्धि में बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिए कि इन ड्रग को एक बार लेना भी व्यसन बन सकता है। इस प्रकार, ड्रग और ऐल्कोहल की व्यसनी शक्ति उन्हें इस्तेमाल करने वाले / वाली को एक दोषपूर्ण चक्र में घसीट लेते हैं, जिससे इनका नियमित सेवन (कुप्रयोग) करने लगते हैं और इस चक्र से बाहर निकलना उनके बस में नहीं रहता। किसी मार्गदर्शन या परामर्श के अभाव में व्यक्ति व्यसनी (लती) बन जाता है और उनके ऊपर आश्रित होने लगता है।

निर्भरता शरीर की वृत्ति है जो ड्रग / ऐल्कोहल की नियमित मात्रा अचानक बंद कर दिए जाने पर अभिलक्षणिक और अप्रिय **विनिवर्तन संलक्षण** (विद्ड्रावल सिंड्रोम) के रूप में व्यक्त होती है। इसके अभिलक्षण हैं चिंता, कंपन, मिचली और पसीना आना जिनसे ड्रग / ऐल्कोहल का इस्तेमाल फिर से चालू कर दिए जाने पर छुटकारा मिल जाता है। कुछ मामले में विनिवर्तन संलक्षण गंभीर हो सकता है और जीवन के लिए खतरनाक भी तथा व्यक्ति को चिकित्सीय देख रेख की आवश्यकता पड़ सकती है।

निर्भरता के कारण रोगी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त धन पाने के लिए तमाम सामाजिक मानदंडों को ताक पर रख देता है। इनसे अनेक सामाजिक समायोजन संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

8.5.3 ड्रग/ऐल्कोहल कुप्रयोग के प्रभाव

ड्रग और ऐल्कोहल के तत्कालिक प्रतिकूल प्रभाव अंधाधुध व्यवहार, बर्बरता और हिंसा के रूप में व्यक्त होते हैं। ड्रगों की अत्यधिक मात्रा से श्वसन-पात (रिस्पाइरेटरी फेल्योर),

© NCERT not to be republished

हृद-पात (हर्ट-फेल्योर) अथवा प्रमस्तिष्क रक्तस्राव (सेरेब्रल हेमरेज) के कारण संमूर्च्छा (कोमा) और मृत्यु हो सकती है। ड्रगों का संयोजन या ऐल्कोहल के साथ उनके सेवन का आमतौर पर यह परिणाम अतिमात्रा होती है युवाओं में ड्रग और ऐल्कोहल दुरुपयोग के सबसे सामान्य लक्षण शैक्षिक क्षेत्र में प्रदर्शन में कमी, बिना किसी स्पष्ट कारण के स्कूल या कालेज से अनुपस्थिति, व्यक्तिगत स्वच्छता के रुचि में कमी, विनिवर्तन, एकाकीपन, अवसाद, थकावट, आक्रमणशील और विद्रोही व्यवहार, परिवार और मित्रों से बिगड़ते संबंध, शौक की रुचि में कमी, सोने और खाने की आदतों में परिवर्तन, भूख और वजन में घट-बढ़ आदि हैं।

ड्रग/ऐल्कोहल के कुप्रयोग के दूरगामी परिणाम भी हो सकते हैं। अगर कुप्रयोगकर्ता को ड्रग/ऐल्कोहल खरीदने के लिए पैसे नहीं मिलें तो वह चोरी का सहारा ले सकता/सकती है। ये प्रतिकूल प्रभाव केवल ड्रग/ऐल्कोहल का सेवन करने वाले तक सीमित नहीं रहता। कभी-कभी ड्रग/ऐल्कोहल आदि का अपने परिवार या मित्र आदि के लिए भी मानसिक और आर्थिक कष्ट का कारण बन सकता/सकती है।

जो अंत:शिरा द्वारा (सुई और सिरिंज से सीधे ही शिरा में इंजेक्शन) ड्रग लेते हैं, उनको एड्स और यकृतशोथ-बी जैसे गंभीर संक्रमण होने की संभावना अधिक होती है। इन रोगों के विषाणु संक्रमित सुई और सिरिंज के साझा प्रयोग से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में स्थानांतरित हो जाते हैं। एड्स और यकृतशोथ-बी, दोनों ही संक्रमण, चिरकारी संक्रमण हैं और अंतत: घातक होते हैं। एड्स पति/पत्नी द्वारा मैथुन से स्थानांतरित होता है, जबकि यकृतशोथ बी संक्रमित रुधिर द्वारा स्थानांतरित होता है।

किशोरावस्था के दौरान ऐल्कोहल के सेवन का दीर्घकालिक प्रभाव भी हो सकता हैं; इससे प्रौढ़ावस्था में बहुत अधिक पीने की लत लग सकती है। ड्रग और ऐल्कोहल के चिरकारी उपयोग से तंत्रिका तंत्र और यकृत को क्षति (सेरोसिस) पहुँचती है। ऐसा भी ज्ञात है कि गर्भावस्था के दौरान ड्रगों एवं ऐल्कोहल का उपयोग गर्भ पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

ड्रगों का एक और दुरुपयोग कुछ खिलाड़ियों द्वारा अपने प्रदर्शन को और बेहतर करने के लिए हो सकता है। वे खेलों में स्वापक पीड़ा हर (नारकोटिक एनलजेसिक्स), उपचयी स्टेराइडों, मूत्रल दवाओं और कुछ हॉर्मोनों का कुप्रयोग, मांसपेशियों को शक्तिशाली बनाने और अक्रामकता को बढ़ाने और फलस्वरूप खेल प्रदर्शन के लिए करते हैं। महिलाओं में उपचयी स्टेराइडों के सेवन के अनुषंगी प्रभावों में पुंस्त्वन (मैस्कुलिनाइजेसन) (यानी पुरूष जैसे लक्षण), बढ़ी अक्रामकता, भावदशा में उतार-चढ़ाव, अवसाद, असामान्य आर्तव चक्र, मुँह और शरीर पर बालों की अत्यधिक वृद्धि, भगशेफ का बढ़ जाना, आवाज का गहरा होना शामिल हैं। पुरूषों में मुँहासे, बढ़ी अक्रामकता, भावदशा में उतार चढ़ाव, अवसाद, वृषणों के आकार का घटना, शुक्राणु उत्पादन में कमी, यकृत और वृक्क की संभावित दुष्क्रियता (डिस्फंकसन), वक्ष (स्तन) का बढ़ना, समयपूर्व गंजापन, प्रोस्टेट ग्रंथि का बढ़ना शामिल हैं। लंबे समय तक सेवन से ये प्रभाव स्थायी हो सकते हैं। युवा नर या स्त्रियों में, मुँह और शरीर के सख्त मुँहासे, और लंबी अस्थियों के वृद्धि केंद्रों का कालपूर्व बंद होने के फलस्वरूप वृद्धि रुद्ध हो सकती है।

© NCERT not to be republished

8.5.4 रोकथाम और नियंत्रण

पुरानी कहावत 'चिकित्सा से रोकथाम (बचाव) अच्छी है' यहाँ पर भी खरी बैठती है। यह भी सच है कि धूम्रपान, ड्रग या ऐल्कोहल के सेवन की आदतें पड़ने की संभावना छोटी उम्र में, ज्यादातर किशोरावस्था के दौरान, अधिक होती है। इसलिए ऐसी परिस्थितियों की पहचान करना सबसे उत्तम है जो किशोर को ऐल्कोहल या ड्रग के सेवन की ओर धकेलती हैं ताकि समय रहते उसके चिकित्सीय उपाय किए जा सकें। इस मामले में माता-पिता और अध्यापकों का विशेष उत्तरदायित्व है। ऐसा लालन-पालन जिसमें पालन-पोषण का स्तर ऊँचा हो और सुसंगत अनुशासन हो, ऐल्कोहल/ड्रग/तंबाकू के कुप्रयोग का खतरा कम कर देता है। यहाँ दिए गए कुछ उपाय किशोरों में ऐल्कोहल और ड्रग के कुप्रयोग की रोकथाम तथा नियंत्रण में विशेषरूप से कारगर होंगे —

(क) ***आवश्यक समकक्षी दबाव से बचें***— प्रत्येक बच्चे की अपनी पसंद और अपना व्यक्तित्व होता है, जिसका सम्मान और जिसे प्रोत्साहित करना चाहिए। चाहे मामला अध्ययन, खेल कूद या अन्य गतिविधियों का हो, बालक को उसकी अवसीमा (थ्रेसोल्ड) से अधिक करने के लिए अनावश्यक दबाव नहीं डालना चाहिए।

(ख) ***शिक्षा और परामर्श***— समस्याओं और दबावों का सामना करने और निराशाओं तथा असफलताओं को जीवन का एक हिस्सा समझकर स्वीकार करने की शिक्षा एवं परामर्श उन्हें देना चाहिए। यह भी उचित होगा कि बालक की ऊर्जा को खेल-कूद, पढ़ाई, संगीत, योग और पाठ्यक्रम के अलावा दूसरी स्वस्थ गतिविधियों की दिशा में भी लगाना चाहिए।

(ग) ***माता-पिता और समकक्षियों से सहायता लेना***— माता-पिता और समकक्षियों से फौरन मदद लेनी चाहिए, ताकि वे उचित मार्गदर्शन कर सकें। निकट और विश्वसनीय मित्रों से भी सलाह लेनी चाहिए। युवाओं की समस्याओं को सुलझाने के लिए समुचित सलाह से उन्हें अपनी चिंता और अपराध भावना को अभिव्यक्त करने में सहायता मिलेगी।

(घ) ***संकट के संकेतों को देखना***— सावधान माता-पिता और अध्यापकों को चाहिए कि ऊपर बताए गए खतरे के संकेतों पर ध्यान दें और उन्हें पहचानें। मित्रों को भी चाहिए कि अगर वे परिचित को ड्रग या ऐल्कोहल लेते हुए देखें तो वे उस व्यक्ति के भले के लिए माता-पिता या अध्यापक को बताने में हिचकिचाएँ नहीं। इसके बाद बीमारी को पहचानने और उसके पीछे छुपे कारणों का पता लगाने के लिए उचित उपाय करने होंगे। इससे समुचित चिकित्सीय उपाय आरंभ करने में सहायता मिलेगी।

(ङ) ***व्यावसायिक और चिकित्सा सहायता लेना***— जो व्यक्ति दुर्भाग्यवश ड्रग/ऐल्कोहल के कुप्रयोग रूपी दलदल में फँस गया है उसकी सहायता के लिए उच्च योग्यता प्राप्त मनोवैज्ञानिकों, मनोरोगविज्ञानियों की उपलब्ध और व्यसन छुड़ाने तथा पुनः स्थापना कार्यक्रमों हेतु काफी सहायता उपलब्ध है। ऐसी सहायता से प्रभावित व्यक्ति पर्याप्त प्रयासों और इच्छाशक्ति द्वारा इस समस्या से पूरी तरह छुटकारा पा सकता है और पूर्णरूपेण प्रसामान्य और स्वस्थ जीवन जी सकता है।

© NCERT not to be republished

सारांश

स्वास्थ्य केवल रोग की अनुपस्थिति नहीं है। यह संपूर्ण शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य की स्थिति है। टाइफॉइड, हैजा, न्युमोनिया, त्वचा का कवकीय संक्रमण, मलेरिया आदि और कई अन्य रोग मानव के लिए कष्ट के प्रमुख कारण हैं। रोगवाहक द्वारा होने वाले रोग जैसे कि मलेरिया, विशेषरूप से प्लैज्मोडियम फैल्सीपेरम से होने वाला मलेरिया का यदि उपचार नहीं किया जाए तो प्राणघातक सिद्ध हो सकता है। व्यक्तिगत स्वच्छता के अलावा, अपशिष्ट का समुचित निपटान, पीने के पानी को प्रदूषणरहित बनाना, मच्छर जैसे रोगवाहकों का नियंत्रण और प्रतिरक्षीकरण, इन रोगों की रोकथाम करने में बहुत सहायक हैं। जब हमें रोग-कारक ऐजेंटों का खतरा होता है तो हमारा प्रतिरक्षा तंत्र इन रोगों की रोकथाम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हमारे शरीर के जन्मजात रक्षा-तंत्र जैसे कि त्वचा, श्लेषमल झिल्लियाँ, हमारे आँसुओं में मौजूद रोगाणुरोधी पदार्थ, लार और भक्षाणुक कोशिकाएँ आदि, रोगाणुओं को हमारे शरीर में प्रवेश करने से रोकने में सहायता देती हैं। अगर रोगाणु हमारे शरीर में प्रवेश करने में सफल हो जाते हैं तो विशिष्ट प्रतिरक्षी (तरल प्रतिरक्षा अनुक्रिया) और कोशिकाएँ (कोशिका माध्यित प्रतिरक्षा अनुक्रिया) इन रोगाणुओं को मार देती हैं। प्रतिरक्षा तंत्र की स्मृति होती है। उसी रोगाणु का पुन: खतरा होने पर, प्रतिरक्षा अनुक्रिया तेज और अधिक तीव्र होती है। टीकाकरण और प्रतिरक्षीकरण से होने वाली रक्षा का यही आधार है। अन्य रोगों में, एड्स और कैंसर से विश्वभर में बहुत मौतें होती हैं। मानव प्रतिरक्षान्यूनता विषाणु (एच आई वी) से होने वाला एड्स घातक होता है, लेकिन अगर कुछ सावधानियाँ बरती जाएँ तो इसकी रोकथाम हो सकती हैं। अगर जल्दी पता लगा लिया जाए और समुचित चिकित्सीय उपाय अपनाएँ जाएँ तो कई कैंसर ठीक हो जाते हैं। हाल ही में, युवकों और किशोरों में ड्रग तथा ऐल्कोहल का कुप्रयोग चिंता का दूसरा कारण बन गया है। ऐल्कोहल और ड्रगों की व्यसनी प्रकृति और उनसे समझे जाने वाले लाभ जैसे कि तनाव से आराम के कारण समकक्षी दबाव, परीक्षा -संबंधी और प्रतियोगिता संबंधित तनावों से सामना होने पर व्यक्ति इन ड्रग/ऐल्कोहल के सेवन का प्रयास कर सकता है। ऐसा करने पर उसे इनकी लत पड़ जाती है। इनके हानिकारक प्रभावों के बारे में बताना और परामर्श देना तथा तुरंत व्यावसायिक और चिकित्सा सहायता लेने से व्यक्ति इन बुराइयों से पूरी तरह मुक्त हो सकता है।

अभ्यास

1. कौन से विभिन्न जन स्वास्थ्य उपाय हैं, जिन्हें आप संक्रामक रोगों के विरूद्ध रक्षा-उपायों के रूप में सुझायेंगे?
2. जैविकी के अध्ययन ने संक्रामक रोगों को नियंत्रित करने में किस प्रकार हमारी सहायता की है?

© NCERT not to be republished

3. निम्नलिखित रोगों का संचरण कैसे होता है?

   (क) अमीबता (ख) मलेरिया (ग) एस्केरिसता (घ) न्युमोनिया

4. जल-वाहित रोगों की रोकथाम के लिए आप क्या उपाय अपनायेंगे?

5. डी एन ए वैक्सीन के संदर्भ में 'उपयुक्त जीन' के अर्थ के बारे में अपने अध्याय से चर्चा कीजिए।

6. प्राथमिक और द्वितीयक लसीकाओं के अंगों के नाम बताइए।

7. इस अध्याय में निम्नलिखित सुप्रसिद्ध संकेताक्षर इस्तेमाल किए गए हैं। इनका पूरा रूप बताइए-

   (क) एमएएलटी (ख) सीएमआई (ग) एड्स (घ) एनएसीओ (च) एचआईवी

8. निम्नलिखित में भेद कीजिए और प्रत्येक के उदाहरण दीजिए।

   (क) सहज (जन्मजात) और उपर्जित प्रतिरक्षा

   (ख) सक्रिय और निष्क्रिय प्रतिरक्षा

9. प्रतिरक्षी (प्रतिपिंड) अणु का अच्छी तरह नामांकित चित्र बनाइए।

10. वे कौन से विभिन्न रास्ते हैं जिनके द्वारा मानव प्रतिरक्षान्यूनता विषाणु (एच आई वी) का संचारण होता है?

11. वे कौन सी क्रियाविधि है जिससे एड्स विषाणु संक्रमित व्यक्ति के प्रतिरक्षा तंत्र का ह्रास करता है।

12. प्रसामान्य कोशिका से कैंसर कोशिका किस प्रकार भिन्न है?

13. मैटास्टेसिस का क्या मतलब है व्याख्या कीजिए।

14. ऐल्कोहल/ड्रग के द्वारा होने वाले कुप्रयोग के हानिकारक प्रभावों की सूची बनाएँ।

15. क्या आप ऐसा सोचते हैं कि मित्रगण किसी को ऐल्कोहल/ड्रग सेवन के लिए प्रभावित कर सकते हैं? यदि हाँ, तो व्यक्ति ऐसे प्रभावों से कैसे अपने आपको बचा सकते हैं?

16. ऐसा क्यों है कि जब कोई व्यक्ति ऐल्कोहॉल या ड्रग लेना शुरू कर देता है तो उस आदत से छुटकारा पाना कठिन होता है? अपने अध्यापक से चर्चा कीजिए।

17. आपके विचार से किशोरों को ऐल्कोहॉल या ड्रग के सेवन के लिए क्या प्रेरित करता है और इससे कैसे बचा जा सकता है?

© NCERT not to be republished

अध्याय 9

खाद्य उत्पादन में वृद्धि की कार्यनीति

9.1 पशुपालन

9.2 पादप प्रजनन

9.3 एकल कोशिका प्रोटीन

9.4 ऊतक संवर्धन

विश्व की बढ़ती जनसंख्या के साथ खाद्य उत्पादन की वृद्धि एक प्रमुख आवश्यकता है। पशुपालन तथा पादप प्रजनन पर लागू होने वाले जैविक सिद्धांत, खाद्य उत्पादन बढ़ाने के हमारे प्रयासों में मुख्य भूमिका निभाते हैं। भविष्य में कई नई तकनीकें, जैसे भ्रूण स्थानांतरण प्रौद्योगिकी तथा ऊतक संवर्धन खाद्य उत्पादन में अतिरिक्त वृद्धि के लिए आधारीय भूमिका निभायेंगे।

9.1 पशुपालन

पशुपालन, पशुप्रजनन तथा पशुधन वृद्धि की एक कृषि पद्धति है। यह किसानों के लिए एक प्रमुख निपुणता तथा वैज्ञानिकों के लिए कला है। पशुपालन का संबंध पशुधन जैसे-भैंस, गाय, सूअर, घोड़ा, भेड़, ऊँट, बकरी आदि के प्रजनन तथा उनकी देखभाल से होता है जो मानव के लिए लाभप्रद हैं। यदि विस्तृत रूप से देखा जाय तो इसमें कुक्कुट तथा मत्स्य पालन भी शामिल हैं। मात्स्यिकी में मत्स्यों (मछलियों), मृदुकवची (मोलस्क), तथा क्रस्टेशिआई (प्रॉन, क्रैब आदि) का पालन पोषण, उनको पकड़ना (शिकार) बेचना आदि शामिल है। अति प्राचीनकाल से मानव द्वारा जैसे— मधुमक्खी, रेशमकीट, झींगा (प्रॉन), केकड़ा (क्रैब), मछलियाँ, पक्षी, सुअर, भेड़, ऊँट आदि का प्रयोग उनके उत्पादों जैसे— दूध, अंडे, माँस, ऊन, रेशम, शहद आदि प्राप्त करने के लिए किया जाता रहा है।

© NCERT not to be republished

एक गणना के अनुसार विश्व की 70 प्रतिशत से भी अधिक पशुधन भारत तथा चीन में है। यद्यपि यह जानकर आश्चर्य होगा कि इनका विश्व *फार्म उत्पादों* का योगदान मात्र 25 प्रतिशत है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रति ईकाई उत्पादकता की दर बहुत ही कम है। अतः पशु प्रजनन तथा देखभाल की पारंपरिक पद्धतियों के अतिरिक्त गुणवत्ता तथा उत्पादकता में सुधार लाने के लिए नयी प्रौद्योगिकी का भी प्रयोग करना होगा।

9.1.1 फार्म तथा फार्म पशुओं का प्रबंधन

फार्म प्रबंधन की पारंपरिक पद्धतियों की एक व्यवसायिक पहुँच होनी चाहिए, जिससे हमारे खाद्य उत्पादन को और अधिक आवश्यक बढ़ावा मिल सके। आइए! विभिन्न पशु–फार्म–प्रणाली में कुछ प्रबंधन प्रक्रियाएँ, जिन्हें प्रयोग में लाया जाता है, उन पर विचार विमर्श करें।

9.1.1.1 डेरी फार्म प्रबंधन

डेरी–उद्योग एक पशु प्रबंधन है, जिससे मानव खपत के लिए दुग्ध तथा इसके उत्पाद प्राप्त होते हैं। क्या आप ऐसे पशुओं की सूची तैयार कर सकते हैं जो डेरी में रहते हैं? डेरी फार्म के दुग्ध से बने विभिन्न प्रकार के उत्पाद कौन–कौन से होते हैं? डेरी *फार्म प्रबंधन* में हम उन संसाधनों तथा तंत्रों के विषय में अध्ययन करते हैं जिनसे दुग्ध की गुणवत्ता में सुधार तथा उसका उत्पादन बढ़ता है। दुग्ध उत्पादन मूल रूप से फार्म में रहने वाले पशुओं की नस्ल की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। अच्छी नस्ल, जिसमें उच्च उत्पादन क्षमता वाली अच्छी नस्ल (क्षेत्र की जलवायु परिस्थितियों के तहत) का चयन तथा उनकी रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता को महत्त्वपूर्ण माना जाता है। अच्छी उत्पादन क्षमता प्राप्त करने के लिए पशुओं की अच्छी देखभाल, जिसमें उनकें रहने का अच्छा घर तथा पर्याप्त जल तथा रोगमुक्त वातावरण होना आवश्यक है। पशुओं को भोजन प्रदान करने का ढंग वैज्ञानिक होना चाहिए। इसमें विशेषकर चारे की गुणवत्ता तथा मात्रा पर बल दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त दुग्धीकरण, तथा दुग्ध उत्पादों के भंडारण, तथा परिवहन के दौरान कड़ी सफाई तथा स्वास्थ्य (पशु तथा पशु पर कार्य करने वाला व्यक्ति) का महत्त्व सर्वोपरि है। यद्यपि; इन दिनों इनमें से अधिकांश संसाधन यांत्रिक हो चुके हैं, परिणामस्वरूप जो व्यक्ति इस कार्य को देखता है; उसके संपर्क में यह उत्पाद सीधे नहीं आते। इन कठोर उपायों को सुनिश्चित करने के लिए सही–सही रिकार्ड रखने एवं निरीक्षण की आवश्यकता होती है। इससे समस्याओं की पहचान और उनका समाधान शीघ्रतापूर्वक निकालना संभव हो जाता है। पशु–चिकित्सक का नियमित जाँच हेतु आना अनिवार्य है।

संभवतः आपको अत्यंत ही रोचक लगेगा यदि आपको डेरी उद्योग के विविध पहलुओं पर एक प्रश्नावली तैयार करने को कहा जाय, आप अपने पास में स्थित डेरी फार्म जाकर उसका निरीक्षण करें और अपने द्वारा तैयार प्रश्नावली के उत्तर प्राप्त करें।

9.1.1.2 कुक्कुट फार्म प्रबंधन

कुक्कुट, पालतू कुक्कुटादि का एक वर्ग है जिसका प्रयोग भोजन के लिए अथवा उनके अंडों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। प्रारूपिक रूप से इसमें कुक्कुट, बतख,

© NCERT not to be republished

तथा कभी-कभी टर्की और गीज भी शामिल किये गए हैं। बहुधा कुक्कुट (पोलट्री) शब्द का प्रयोग केवल इन पक्षियों के माँस के लिए ही किया जाता है; परंतु सामान्यत: अन्य पक्षियों का माँस भी इसमें शामिल है।

Msjh m|ksx dh Hkkfr oqDoqV *फार्म प्रबंधन* के लिए भी उपयुक्त नस्लें, सही, सुरक्षित फार्म की परिस्थितियाँ, सही-सही आहार तथा जल और सफाई एवं स्वास्थ्य महत्त्वपूर्ण घटक हैं।

आपने टेलीविज़न की खबरों तथा अखबारों में बर्ड फ्लू वायरस के बारे में तो अवश्य देखा, सुना और पढ़ा होगा। इससे देशभर में सनसनी और डर का वातावरण उत्पन्न हो गया था। इसके परिणाम स्वरूप अंडों तथा चिकन की खपत पर भयंकर प्रभाव पड़ा। इसके बारे में और अधिक जानने का प्रयत्न करो और विचार-विमर्श करके पुष्टि करो कि उत्पन्न डर का वातावरण कहाँ तक सही था? यदि कुछ कुक्कुट संक्रमित हों तब इस फ्लू को फैलने से किस प्रकार रोकेंगे।

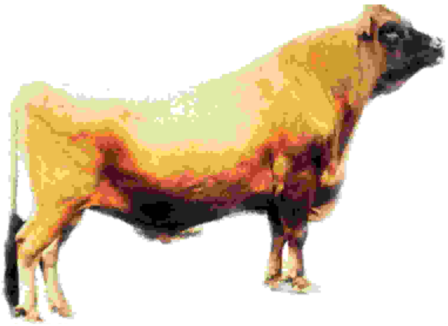

(अ)

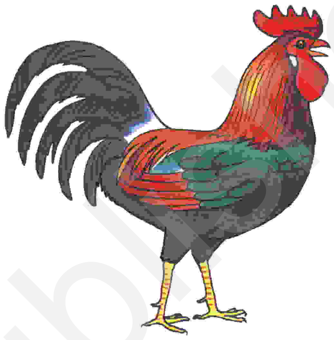

(ब)

चित्र 9.1 उन्नत प्रजनित पशु तथा कुक्कुट (चिकिन) की नस्ल (अ) जर्सी (ब) लेगहार्न

9.1.2 पशु प्रजनन

पशु प्रजनन, पशु पालन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। पशु प्रजनन का उद्देश्य पशुओं के उत्पादन को बढ़ाना तथा उनके उत्पादों की वांछित गुणवत्ता में सुधार करना है। *किस किस्म के लक्षणों को प्राप्त करने के लिए हम पशु-प्रजनन करते हैं? क्या लक्षणों का चयन पसंद के पशुओं से अलग है?*

हम नस्ल शब्द से क्या समझते हैं। पशुओं का वह समूह जो वंश तथा सामान्य लक्षणों जैसे सामान्य दिखावट, आकृति, आकार, संरूपण आदि में समान हों, एक नस्ल के कहलाते हैं। *आप अपने क्षेत्र के फार्म के पशुओं को कुछ सामान्य नस्लों के नामों का पता लगाएँ।*

एक ही नस्ल के पशुओं के मध्य जब प्रजनन होता है तो वह **अंत:प्रजनन** कहलाता है। जबकि भिन्न-भिन्न नस्लों के मध्य प्रजनन कराया जाए वह **बहि:प्रजनन** कहलाता है।

(क) ***अंत: प्रजनन*** – अंत:प्रजनन का अर्थ एक ही नस्ल के अधिक निकटस्थ व्यक्ति के मध्य 4-6 पीढ़ी तक संगम होना है। प्रजनन की कार्यनीति निम्न प्रकार से होती है। एक नस्ल से उत्तम किस्म का नर तथा उत्तम किस्म की मादा को पहले अभिनिर्धारित किया जाता है तथा जोड़ों में उनका संगम कराया जाता है। ऐसे संगम से जो संतति उत्पन्न होती है, उस संतति का मूल्यांकन किया जाता है तथा भविष्य में कराए जाने वाले संगम के लिए अत्यंत ही उत्तम किस्म के नर तथा मादा की पहचान की जाती है। पशुओं में श्रेष्ठ मादा, चाहे वह गाय अथवा भैंस हो, प्रति दुग्धीकरण पर अधिक दूध देती हैं। दूसरी ओर, साँड़ों में श्रेष्ठ अन्य नरों की तुलना में श्रेष्ठ किस्म की संतति उत्पन्न कर सकते हैं।

© NCERT not to be republished

मेंडल द्वारा विकसित समयुग्मजी शुद्धवंशक्रम अध्याय 5 में वर्णित का पुनः स्मरण करें! ठीक इसी ही प्रकार की कार्यनीति का प्रयोग मटरों की भाँति पशुओं में शुद्ध वंशक्रम विकसित करने में किया गया है। अंतः प्रजनन **समयुग्मता** को बढ़ावा देता है। इस प्रकार यदि हम किसी भी प्रकार के पशु में शुद्ध वंशक्रम विकसित करना चाहते हैं तो अंत:प्रजनन आवश्यक है। अंत:प्रजनन हानिप्रद अप्रभावी जीन, जो चयन द्वारा निष्कासित किए जाते हैं, उन्हें उद्भासित करता है। यह श्रेष्ठ किस्म के जीनों के संचयन में तथा कम वांछनीय जीनों के निष्कासन में सहायता प्रदान करता है। अतः यह तरीका, जहाँ प्रत्येक पद पर चयन हो, वहाँ अंतप्रजात व्यष्टि की उत्पादकता बढ़ाती है। यद्यपि अंतः प्रजनन में यदि लगातार सतत् बनी रहे; विशेषकर निकट अंत:प्रजनन से; सामान्यतः जनन क्षमता और यहाँ तक कि उत्पादकता घट जाती है। इसे **अंत:प्रजनन अवसादन** कहते हैं। जब कभी यह समस्या के रूप में सामने आए; तब प्रजनन व्यष्टि के चयनित पशुओं का उसी नस्ल के असंबद्ध श्रेष्ठ पशुओं से संगम कराया जाए। इससे सामान्यतः जनन क्षमता तथा उत्पादन दोनों को बनाए रखने में सहायता मिलती है।

(ख) ***बहि:प्रजनन*** – बिना किसी संबंध वाले पशुओं के मध्य होने वाला प्रजनन ही बहि:प्रजनन होता है। इसमें एक नस्ल की (परंतु इनका पूर्वज सामान्य नहीं होना चाहिए) अथवा भिन्न-भिन्न नस्लों (पर प्रजनन) अथवा भिन्न प्रजातियों (अंत विशिष्ट संकरण) की व्यष्टियाँ भाग लेती हैं।

(ग) ***बहि:संकरण*** – एक ही नस्ल के भीतर पशुओं के संगम की यह क्रिया बहि:संकरण कहलाती है परंतु इसमें 4-6 पीढ़ियों तक दोनों ओर की किसी भी वंशावली में उभय पूर्वज नहीं होना चाहिए। इस संगम के परिणामस्वरूप जो संतति उत्पन्न होती है, वह बहि:संकरण कहलाती है। प्रजनन की यह विधि ऐसे पशुओं के लिए सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, जिनकी दुग्ध उत्पादन क्षमता तथा माँसदायी दर औसत से कम होती है। एकल बहि:संकरण से बहुधा अंत:प्रजनन अवसादन समाप्त हो जाता है।

(घ) ***संकरण*** – इस विधि में एक नस्ल के श्रेष्ठ नर का दूसरी नस्ल की श्रेष्ठ मादा के साथ संगम कराया जाता है। संकरण दो विभिन्न नस्लों के वांछनीय गुणों के संयोजन में सहायक होता है। संतति संकर पशुओं का प्रयोग व्यापारिक स्तर पर उत्पादन के लिए किया जा सकता है। इनका प्रयोग अंतः प्रजनन के किसी रूप एवं चयन के विकल्पी रूप में विकसित हो सके, जिससे नयी स्थायी नस्लें जो वर्तमान नस्लों से हर प्रकार से श्रेष्ठ हैं। इसी विधि द्वारा पशुओं की अनेक नयी नस्लों का विकास हुआ है। *हिसरडैल* भेड़ की एक नयी नस्ल है, जिसका विकास पंजाब में बीकानेरी ऐवीज (भेड़) तथा मैरीनो रेम्स (मेढ़ा या मेष) के बीच संगम कराने से हुआ।

(ङ) ***अंत:विशिष्ट संकरण*** – इस विधि में दो विभिन्न प्रजातियों के नर तथा मादा पशुओं के मध्य संगम कराया जाता है। कुछ मामलों में संतति में दोनों जनकों

© NCERT not to be republished

के वांछनीय गुण सम्मिलित हो जाते हैं तथा इस संतति का पर्याप्त आर्थिक महत्त्व होता है; जैसे- खच्चर (चित्र 9.2)। *क्या आप जानते हैं कि खच्चर की उत्पत्ति किस संकरण का परिणाम है?*

चित्र 9.2 खच्चर

कृत्रिम वीर्यसेचन का प्रयोग करते हुए नियंत्रित प्रजनन प्रयोगों को संपन्न किया जाता है। जिस नर का चयन एक जनक के रूप में किया गया हो, उसका वीर्य एकत्रित करके प्रजनक द्वारा चयनित मादा के जनन पथ में अंतक्षेप कर दिया जाता है। वीर्य का प्रयोग तुरंत किया जाना चाहिए या इसे हिमीकृत कर बाद में प्रयोग में लाना चाहिए। इसे हिमीकृत रूप में वहाँ अभिगमनित भी किया जा सकता है, जहाँ मादा रह रही हैं। इस प्रकार वांछनीय संगम की क्रिया संपन्न होती है। सामान्य संगम से उत्पन्न अनेक समस्याएँ कृत्रिम वीर्यसेचन की प्रक्रिया से दूर हो जाती है। क्या आप इस पर विचार-विमर्श कर कुछ को सूचीबद्ध कर सकते हैं?

यद्यपि कृत्रिम वीर्यसेचन की क्रिया को अपनाया जाता है फिर भी बहुधा परिपक्व नर तथा मादा पशुओं के मध्य होने वाले संगम से, उत्पन्न संकरण की दर से मिलने वाली सफलता कुछ कम ही होती है। संकरों के सफल उत्पादन में सुधार लाने के लिए अन्य विधियों का भी प्रयोग किया जाता है। मल्टीपिल औवियूलेशन, ऐम्ब्रयो ट्रांसफर (भ्रूण अंतरण) तकनीक गौ पशुओं में सुधार का एक कार्यक्रम है। इस विधि में, एक गाय में पुटक परिपक्वन तथा उच्च अंडोत्सर्जन को प्रेरित करने के लिए जब एफएसएच प्रकार का हॉर्मोन दिया जाता है। सामान्यत: प्रतिचक्र में एक अंडे की तुलना में 6-8 अंडे उत्पन्न होते हैं। पशु को या तो सर्वोत्कृष्ट साँड़ (बैल) अथवा कृत्रिम वीर्यसेचन द्वारा संगमनित कराया जाता है। 8-32 कोशिका अवस्थाओं वाले निषेचित अंडे को बिना शल्य चिकित्सा से प्राप्त कर प्रतिनियुक्त मादा (माँ) में स्थानांतरित कर दिया जाता है आनुवंशिक मादा (माँ) उच्च अंडोत्सर्जन के दूसरी पारी के लिए उपलब्ध हो जाती है। यह प्रौद्योगिकी गौपशु, भेड़, खरगोश, भैंस, घोड़ी आदि में प्रदर्शित की जा चुकी है। उच्च दुग्ध उत्पादन वाली नस्ल की मादाओं तथा उच्च गुणवत्ता वाले माँस (कम वसा वाला माँस) प्रदान करने वाली नस्लों के बैलों को सफलतापूर्वक जनित किया गया है, जिससे अल्प काल में ही बड़ी संख्या में गौपशु प्राप्त हुए हैं।

9.1.3 मधुमक्खी पालन (Bee keeping)

शहद के उत्पादन के लिए मधुमक्खियों के छत्तों का रखरखाव ही **मधुमक्खी पालन** अथवा **मौन पालन** है। यह प्राचीन काल से चला आ रहा एक कुटीर उद्योग है। शहद उच्च पोषक महत्त्व का एक आहार है तथा औषधियों की देशी प्रणाली (आयुर्वेद) में भी इसका प्रयोग किया जाता है। मधुमक्खियाँ मोंम भी पैदा करती हैं जिसका कांतिवर्द्धक वस्तुओं की तैयारी तथा विभिन्न प्रकार के पालिश वाले उद्योगों में प्रयोग किया जाता है। शहद की बढ़ती हुई माँग ने मधुमक्खियों को बड़े पैमाने पर पालने के लिए बाध्य किया है।

© NCERT not to be republished

यह उद्योग चाहे लघु अथवा वृहत् पैमाने का ही क्यों न हों, एक आय जनक व्यवसाय (उद्योग) बन चुका है।

मधुमक्खी पालन का व्यवसाय किसी भी क्षेत्र में जहाँ जंगली झाड़ियों, फलों के बगीचों तथा लहलहाती फसलों के पर्याप्त कृषि क्षेत्र या चारागाह हों, वहाँ किया जा सकता है। मधुमक्खी की बहुत सी प्रजातियाँ होती हैं जिन्हें पाला जा सकता है। इनमें *ऐपिस इंडिका* अत्यंत ही सामान्य प्रजाति है। मक्खी के छत्तों को किसी के घर के आँगन तथा बरामदों अथवा यहाँ तक कि छत पर भी रखा जा सकता है। मधुमक्खी पालन में अत्यधिक श्रम की आवश्यकता नहीं होती।

मधुमक्खी पालन यद्यपि अपेक्षाकृत आसान है, परंतु इसके लिए विशेष प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है तथा कई संगठन इस पालन की शिक्षा प्रदान करते हैं। सफल मधुमक्खी पालन के लिए निम्नलिखित बिन्दु अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण हैं-

(क) मधुमक्खियों की प्रकृति तथा स्वभाव का ज्ञान (ख) मक्खी के छत्तों को रखने के लिए उपयुक्त स्थान का चयन (ग) मक्खियों के समूह (दल) को पकड़ना तथा उन्हें छत्ते में रखना (घ) विभिन्न मौसमों में छत्तों का प्रबंधन (ङ) शहद तथा मोम का रख-रखाव तथा एकत्रीकरण। मधुमक्खियाँ हमारी बहुत सी फसलों (अध्याय 2 देखें) जैसे— सूर्यमुखी, सरसों, सेब तथा नाशपाती के लिए परागणक हैं। पुष्पीकरण के समय यदि इन छत्तों को खेतों के बीच रख दिया जाय तो इससे पौधों की परागण क्षमता बढ़ जाती है और इस प्रकार फसल तथा शहद दोनों के उत्पादन में सुधार हो जाता है।

9.1.4 मात्स्यकी (Fisheries)

मात्स्यकी एक प्रकार का उद्योग है जिसका संबंध मछली अथवा अन्य जलीय जीव को पकड़ना, उनका प्रसंस्करण तथा उन्हें बेचने से होता है। हमारी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग आहार के रूप में मछली, मछली उत्पादों तथा अन्य जलीय जंतुओं जैसे— झींगा (प्रॉन), केकड़ा (क्रैब), लॉबस्टर, खाद्य आयस्टर आदि पर आश्रित है। कुछ मछलियाँ जैसे— कतला, रोहू, तथा कॉमन कार्प सामान्यत: अलवण जल में पाई जाती हैं। कुछ समुद्री मछलियाँ जैसे—हिलसा, सरडाइन, मैकेरल, तथा पामफ्रैट आदि भी खाई जाती हैं। *पता लगाओ कि आपके क्षेत्र में कौन सी मछलियों को सामान्यत: खाया जाता है।*

भारतीय अर्थव्यवस्था में *मात्स्यकी* का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह तटीय राज्यों में विशेषकर लाखों मछुआरों तथा किसानों को आय तथा रोजगार प्रदान करती है। बहुत से लोगों के लिए यही जीविका का एक मात्र साधन है। *मात्स्यकी* की बढ़ती हुई माँग को देखते हुए इसके उत्पादन को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार की तकनीकें अपनाई जा रही हैं। उदाहरण के लिए जलकृषि तथा मत्स्य पालन के द्वारा हम अलवण तथा लवण जलीय पादपों तथा जंतुओं के उत्पादन को बढ़ा सके हैं। मत्स्य पालन तथा जल कृषि के मध्य पाए जाने वाले भेदों का पता लगाओ। इससे *मात्स्यकी* उद्योग विकसित हुआ है तथा फला-फूला है, जिससे सामान्यत: देश को तथा विशेषत: किसानों को काफी आमदनी हुई है। अब हम 'नील क्रांति' की बात करने लगे हैं। हरित क्रांति की भाँति इस पर भी वही बातें लागू होती हैं।

© NCERT not to be republished

9.2 पादप प्रजनन

पारंपरिक खेती-बाड़ी से मनुष्यों तथा पशुओं के भोजन के लिए सीमित मात्रा में जैवमात्रा का उत्पादन होता है। अच्छे प्रबंधन के तौर-तरीकों तथा भूमि का क्षेत्रफल बढ़ने से उत्पादन बढ़ सकता है, परंतु केवल एक सीमा तक। बड़ी सीमा तक उत्पादन को बढ़ाने में पादप प्रजनन ने एक प्रौद्योगिकी के रूप में सहायता की है। भारत में कौन ऐसा व्यक्ति है जिसने **हरित क्रांति** शब्द न सुना हो? जो खाद्य उत्पादन की राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति ही नहीं; बल्कि इसके निर्यात के लिए भी उत्तरदायी है। हरित क्रांति काफी हद तक पादप प्रजनन तकनीकों पर गेहूँ, धान, मक्का आदि में अधिक उत्पादन तथा रोग निरोधक किस्मों के विकास के लिए आश्रित थी।

9.2.1 पादप प्रजनन क्या है?

पादप प्रजनन पादप प्रजातियों का एक उद्देश्यपूर्ण परिचालन है; ताकि वांछित पादप किस्में तैयार हो सकें। यह किस्में खेती के लिए अधिक उपयोगी, अच्छा उत्पादन करने वाली एवं रोग प्रतिरोधी होती हैं। मानव सभ्यता के आरंभ से हजारों वर्ष पूर्व से पारंपरिक रूप में पादप प्रजनन पर कार्य चल रहा है। पादप प्रजनन के बारे में लगभग 9000-11000 वर्षों पूर्व के लिखित प्रमाण आज भी उपलब्ध हैं। आज भी ऐसी फसलें उपलब्ध हैं जो प्राचीन काल से घरों में प्रयोग होती आ रही हैं। आज जितनी भी मुख्य फसलें हैं; वह सभी पुरानी किस्मों के व्युत्पन्न हैं। प्रतिष्ठित पादप-प्रजनन में शुद्ध वंशक्रम का संकरण अथवा क्रासिंग शामिल है, जिसके पश्चात् कृत्रिम चयन होता है; ताकि अधिक उत्पादन देने वाले, पोषणज तथा रोगों के प्रति प्रतिरोधी, पादपों के वांछनीय विशेषक को तैयार किया जा सके। आनुवंशिकी, आण्विक, जीव विज्ञान तथा ऊतक संवर्धन में हुई उन्नति के साथ साथ आण्विक आनुवंशिक साधन का प्रयोग अब पादप प्रजनन में किया जा रहा है।

यदि हमें ट्रेटों अथवा लक्षणों की सूची तैयार करनी पड़े जिसे प्रजनक इन लक्षणों को अपनी फसलों में समाविष्ट करने का प्रयास कर रहे हैं तो बढ़े हुए फसली उत्पादन तथा उन्नत गुणवत्ता वाली प्रथम सूची तैयार होगी। पर्यावरणीय तनाव (लवणता, अत्यधिक ताप, सूखा) के प्रति सहनशीलता, रोगजनकों (विषाणु, कवक तथा जीवाणु) के प्रति प्रतिरोधकता तथा पीड़कों के प्रति सहनशीलता आदि भी हमारी सूची में होंगे।

पादप प्रजनन कार्यक्रम अत्यंत सुव्यवस्थित रूप से पूरे विश्व के सरकारी संस्थानों तथा व्यापारिक कंपनियों द्वारा चलाए जाते हैं। फसल की एक नयी आनुवंशिक नस्ल के प्रजनन में निम्न मुख्य पद होते हैं—

(क) ***परिवर्तनशीलता का संग्रहण***- आनुवांशिक परिवर्तनशीलता किसी भी प्रजनन कार्यक्रम का मूलाधार है। बहुत सी शस्यों (फसलों) में पूर्ववर्ती आनुवंशिक परिवर्तनशीलता उन्हें अपनी जंगली प्रजातियों से प्राप्त होती है। विभिन्न जंगली किस्मों, प्रजातियों, तथा कृष्टय प्रजातियों के संबंधियों का संग्रहण एवं परिरक्षण तथा उनके अभिलक्षणों का मूल्यांकन उनके समष्टि में उपलब्ध प्राकृतिक जीन के प्रभावकारी समुपयोजन के लिए पूर्वापेक्षित होता है। किसी

© NCERT not to be republished

फसल में पाए जाने वाले सभी जीनों के विविध अलील का समस्त संग्रहण (पादपों/बीजों) को उसका जननद्रव्य (जर्मप्लाज्म) संग्रहण कहते हैं।

(ख) ***जनकों का मूल्यांकन तथा चयन***— जननद्रव्य (जर्मप्लाज्म) मूल्यांकित किए जाते हैं, ताकि पादपों को उनके लक्षणों के वांछनीय संयोजनों के साथ अभिनिर्धारित किया जा सके। चयनित पादपों को बहुगुणित कर उनका प्रयोग संकरण की प्रक्रिया में किया जाता है। इस प्रकार जहाँ वांछनीय तथा संभव है, वहाँ शुद्ध वंशक्रम उत्पन्न कर ली जाती है।

(ग) ***चयनित जनकों के बीच पर संकरण***— वांछित लक्षणों को बहुधा दो भिन्न पादपों (जनकों) से प्राप्त कर संयोजित किया जाता है, उदाहरणार्थ एक जनक जिसमें उच्च प्रोटीन गुणवत्ता है और अन्य जनक जिसमें रोग निरोधक गुण हैं, दोनों के संयोजन की आवश्यकता है। यह परसंकरण द्वारा संभव है कि दो जनक ऐसे संकर पैदा करें, जिससे आनुवंशिक वांछित लक्षणों का संगम एक पौधे में हो सके। वांछित पौधे के परागकण का संग्रहण जिसे नर जनक के रूप में चुना गया है तथा उसे मादा पौधे के वर्तिकाग्र पर डालना जिसे मादा जनक के रूप में चुना गया है (संकरण के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए अध्याय 2 देखें), यह काफी कठिन तथा अधिक समय लेने वाली प्रक्रिया है। यह भी आवश्यक नहीं है कि संकर वांच्छनीय लक्षणों को संयोजित करे ही। सामान्यत: कुछ सैकड़ों से हजार क्रॉस में केवल एक में ही वांच्छनीय संयोजन प्रदर्शित होता है।

(घ) ***श्रेष्ठ पुनर्योगज का चयन तथा परीक्षण***— इसके अंतर्गत संकरों की संतति के बीच से पादप का चयन किया जाता है जिनमें वांच्छित लक्षण संयोजित हों। प्रजनन उद्देश्यों को प्राप्त करने में चयन की यह प्रक्रिया काफी महत्त्वपूर्ण है। अत: संतति का वैज्ञानिक मूल्यांकन की आवश्यकता होती है। इस चरण के परिणामस्वरूप ऐसे पादप उत्पन्न होते हैं, जो दोनों जनकों में श्रेष्ठ होते हैं (बहुधा एक से अधिक श्रेष्ठ संतति पादप उपलब्ध होता है)। ये कई पीढ़ियों तक स्वपरागण तब तक करते हैं जब तक कि समरूपता की अवस्था नहीं आ जाती (समयुग्मजता)। जिससे संतति में लक्षण विसंयोजित नहीं हो पाते।

(ङ) ***नये कंषणों का परीक्षण, निर्मुक्त होना तथा व्यापारीकरण***— नव चयनित वंशक्रम का उनके उत्पादन तथा अन्य गुणवत्ता वाली शस्यी विशेषकों, रोगप्रतिरोधकता आदि गुणों के आधार पर मूल्यांकित किया जाता है। मूल्यांकित पौधों को अनुसंधान वाले खेतों में जहाँ उन्हें आदर्श उर्वरक प्राप्त हो रहे हों, उन्हें सिंचाई का पानी मिल रहा हो तथा अन्य समुचित शस्य प्रबंधन आदि उपलब्ध हों, वहाँ पैदा किया जाता है तथा उसमें उपर्युक्त गुणों का मूल्यांकन किया जाता है। अनुसंधानिक खेत में मूल्यांकन के बाद पौधों का परीक्षण देश भर में किसानों के खेत में कई स्थानों पर, कम से कम तीन ऋतुओं तक किया जाता है। इन स्थानों में सभी शस्य खंडों का निरूपण होना चाहिए, जहाँ सामान्यत: खेती होती है। उपरोक्त विधि से उत्पन्न शस्य की तुलना सर्वोत्तम उपलब्ध स्थानीय शस्य कंषणों चेक या संदर्भ कंषण से करने के बाद मूल्यांकित करना चाहिए।

© NCERT not to be republished

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत के सकल घरेलू उत्पाद (डी जी पी) की लगभग 33 प्रतिशत आय तथा समष्टि की लगभग 62 प्रतिशत जनता को रोजगार कृषि से प्राप्त होता है। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् देश के सामने मुख्य चुनौती उसकी बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त आहार उत्पादन करना था। जैसा कि हमें ज्ञात है कि खेती के लिए सीमित भूमि ही उपलब्ध है। अत: भारत को इसी उपलब्ध भूमि से प्रति यूनिट उत्पादन को बढ़ाने के लिए प्रयास करने होंगे। 1960 के मध्य से गेहूँ, तथा धान की बहुत सी उच्च उत्पादन वाली किस्मों का विकास पादप प्रजनन तकनीकों के प्रयोग से किया गया। परिणामस्वरूप खाद्य उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई। यही प्रावस्था सामान्यत: हरितक्रांति के नाम से जानी जाती है। चित्र 9.3 में उच्च उत्पादन वाली किस्मों की भारतीय संकर फसलों को दर्शाया गया है।

गेहूँ तथा धान - 1960 से 2000 तक के वर्षों के दौरान गेहूँ का उत्पादन 11 मिलियन टन से बढ़कर 75 मिलियन टन हुआ जबकि धान का उत्पादन 35 मिलियन टन से बढ़कर 89.5 मिलियन टन तक पहुँच गया। इसका कारण गेहूँ तथा धान की अर्द्ध-वामन किस्मों का विकसित होना है। मैक्सिको स्थित इंटरनेशनल सेंटर फॉर व्हीट एंड मेंज में

(अ)

(ब)

(स)

चित्र 9.3 कुछ भारतीय संकर फसलें (अ) मक्का (ब) गेहूँ (स) उद्यानी मटर

© NCERT not to be republished

नोबेल पुरस्कार पुरस्कृत नॉरमैन ई. बारलौग ने गेहूँ की अर्द्ध-वामन किस्म का विकास किया। यह उसी का परिणाम है कि 1963 में उच्च उत्पादन तथा रोग प्रतिरोधी किस्मों की वंश रेखाएँ जैसे *सोनालिका* तथा *कल्याण सोना* का विकास कर उन्हें भारतवर्ष की गेहूँ पैदा करने वाले क्षेत्रों में प्रयोग किया गया। अर्द्ध-वामन धान की किस्मों को IR-8 (इंटरनेशनल राइस रिसर्च इंस्टीट्यूट IRRI, फिलिपींस में पैदा) तथा थाइचूंग नेटिव-1 (तायवान से) से व्युत्पन्न किया गया। 1966 में इन व्युत्पन्नों को प्रयोग में लाया गया। बाद में और अधिक अच्छा उत्पादन देने वाली अर्द्ध-वामन किस्में *जया* तथा *रत्ना* को भारत में विकसित किया गया।

गन्ना— *सैकेरम बारबरी* को मूलतः उत्तरी भारत में पैदा किया जाता था, परंतु इसका शर्करा अंश तथा उत्पादन क्षमता बहुत कम था। दक्षिण भारत में पैदा होने वाला उष्णकटिबंधीय गन्ना *सैकेरम ऑफीसिनेरम* का तना मोटा था तथा इसमें शर्करा अंश कहीं अधिक था, परंतु यह उत्तरी भारत में ठीक से नहीं पनप पाया। इन दोनों किस्मों को सफलता पूर्वक संकरित कराया गया ताकि उच्च उत्पादन के वांच्छनीय गुण जैसे कि मोटा तना तथा उच्च शर्करा वाले पौधे प्राप्त हो सकें और साथ ही इसे उत्तरी भारत के गन्ना उत्पादन क्षेत्रों में भी पैदा किए जा सकें।

ज्वार— भारत में संकर मक्का, ज्वार, तथा बाजरा का सफलतापूर्वक विकास किया जा चुका है। जल अभाव के प्रति प्रतिरोधी उच्च उत्पादन वाली किस्में हैं उनका विकास संकर प्रजनन के परिणामस्वरूप हुआ।

9.2.2 रोग प्रतिरोधकता के लिए पादप प्रजनन

कवक, जीवाणु तथा विषाणु रोगजनकों का एक विशाल वर्ग उष्णकटिबंधीय जलवायु को कृष्य प्रजातियों के उत्पादों को प्रभावित करते हैं। अक्सर शस्य हानि महत्त्वपूर्ण होती है तथा यह हानि 20-30 प्रतिशत अथवा कभी-कभी तो इससे पूर्ण हानि होती है। इन परिस्थितियों में रोग के प्रति प्रतिरोधी खेतिहार जातियों (कल्टीवास) के प्रजनन तथा विकास से खाद्य उत्पादन बढ़ जाएगा। इससे कवकनाशियों तथा जीवाणुनाशियों का प्रयोग कम हो जाता है तथा उन पर आश्रिता भी घट जाती है। पोषी पादपों की प्रतिरोधकता उसकी रोगजनकों को रोग उत्पन्न करने से रोकने की क्षमता है तथा इसका निर्धारण पोषी पादप के आनुवंशिक ढाँचे द्वारा किया जाता है। प्रजनन की क्रिया अपनाने से पूर्व रोगकारक जीव के बारे में जानकारी तथा उसके प्रसार की क्रियाविधि की जानकारी महत्त्वपूर्ण है। कवकों द्वारा उत्पन्न कुछ रोगों के उदाहरण हैं - गेहूँ का भूरा किट्ट, गन्ने का रैड रॉट रोग तथा आलू पछेती अंगमारी जीवाणु द्वारा उत्पन्न रोग है। क्रूसीफर का ब्लैक रॉट तथा विषाणु द्वारा उत्पन्न रोग तंबाकू मोजेक, शलजम मोजेक आदि है।

रोगप्रतिरोधकता के लिए प्रजनन विधियाँ— प्रजनन, पारंपरिक प्रजनन तकनीकों (जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है) अथवा उत्परिवर्तन (म्यूटेसन) द्वारा संपन्न किया जाता है। रोग प्रतिरोधकता के लिए प्रजनन की पारंपरिक विधि संकरण तथा चयन हैं। इसके पद अन्य शस्यी लक्षणों जैसे—उच्च उत्पादन के लिए प्रजनन की विधि के आवश्यक रूप से समरूप हैं। विभिन्न पद क्रमानुसार इस प्रकार हैं— प्रतिरोधकता स्रोतों

© NCERT not to be republished

के लिए जननद्रव्य को छानना, चयनित जनकों का संकरण, संकरों का चयन तथा मूल्यांकन तथा नयी किस्मों का परीक्षण तथा उन्हें उत्पन्न करना।

संकरण तथा चयन द्वारा प्रजनित कुछ शस्य कवकों, जीवाणुओं तथा विषाणुओं के प्रति रोग प्रतिरोधक होती है। ये शस्य किस्में सारणी 9.1 में दी गयी है।

सारणी 9.1

फसल/शस्य	**किस्म**	**रोग के प्रति प्रतिरोधक**
गेंहूँ	हिमगिरी	पर्ण तथा धारी किट्ट, हिलबंट
सरसों	पूसा स्वर्णिम (करन राई)	श्वेत किट्ट
फूलगोभी	पूसा शुभ्रा, पूसा स्नोबॉल K-1	कृष्ण विगलन तथा कुंचित अंगमारी (शीर्णन) कृष्ण विगलन
लोबिया	पूसा कोमल	जीवाणुवीय अंगमारी (शीर्णन)
मिर्च	पूसा सदाबहार	चिली मोजेक वायरस, तंबाकू मोजेक वायरस तथा पर्ण कुंचन

रोग प्रतिरोधी जीन जो विभिन्न फसलों की किस्मों अथवा उनके जंगली प्रजातियों में उपस्थित रहती हैं। लेकिन इनकी सीमित संख्या की उपलब्धता के कारण पारंपरिक प्रजनन बहुधा निरूद्ध होती हैं। पादपों में विविध उपायों द्वारा उत्परिवर्तन प्रेरित किया जाता है तथा बाद में प्रतिरोधकता के लिए पादप पदार्थों का स्क्रीनिंग करने से वांछनीय जीन की पहचान प्राप्त हो जाती है। वांछनीय लक्षण वाले पादप को या तो सीधे ही गुणित किया जा सकता है अथवा इसका प्रयोग प्रजनन में किया जा सकता है। उत्परिवर्तन सोमाक्लोनल वैरिएंट तथा आनुवंशिक अभियांत्रिकी में चुनाव की अन्य प्रजनन विधियाँ हैं। जिनका प्रयोग इस कार्य में किया जाता है।

उत्परिवर्तन— जीन के भीतर आधार अनुक्रम में परिवर्तन द्वारा जो आनुवंशिक विविधताएँ उत्पन्न हो जाती हैं, वही उत्परिवर्तन है (अध्याय 5 देखें)। इसी के परिणामस्वरूप नए लक्षण अथवा ट्रेट (विशेषक) विकसित होते हैं। वह जनकों में नहीं पाए जाते। उत्परिवर्तन को कृत्रिम रूप से रसायनों के प्रयोग, अथवा विकिरण (गामा विकिरण के समान) द्वारा प्रेरित किया जा सकता है तथा ऐसे पादपों के चयन एवं प्रयोग द्वारा जिनमें प्रजनन के लिये वांच्छनीय लक्षण स्रोत के रूप में हों, **उत्परिवर्तन प्रजनन** कहलाता है। मूँग (बीन) में जो पीत मोजेक वायरस तथा चूर्णिल आसिता के प्रति प्रतिरोधक क्षमता हैं; वह उत्परिवर्तन द्वारा प्रेरित थी।

पादपों के विभिन्न कृष्य प्रजातियों के संबंधी अधिकांश जंगली पादप कुछ प्रतिरोधक लक्षण प्रदर्शित करते हैं परंतु उनका उत्पादन बहुत ही कम होता है; अत: उच्च उत्पादन प्रदान करने वाली कृष्य किस्मों में प्रतिरोधक जीनों को मिलाने की आवश्यकता है। भिंडी

© NCERT not to be republished

(ऐबेलमॉसकास ऐसक्यूलैंटस) में पीत मोजेक वायरस के प्रति प्रतिरोधकता इसकी जंगली प्रजाति से स्थानांतरित किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप ए. ऐसकुलैंटस की एक नयी किस्म परभनी क्रांति उत्पन्न हुई।

उपर्युक्त सभी उदाहरण में प्रतिरोधक जीन के स्रोत शामिल हैं। यह जीव उसी फसल की प्रजाति अथवा संबंधी जंगली प्रजाति के होते हैं; जिन्हें रोग प्रतिरोधकता के लिए प्रजनित करना पड़ता है। प्रतिरोधक जीनों का स्थानांतरण लक्ष्य तथा स्रोत पादप के मध्य लैंगिक संकरण करने के पश्चात् चयन द्वारा संपन्न किया जाता है।

9.2.3 पीड़कों (नाशीकीट) के प्रति प्रतिरोधकता के विकास के लिए पादप-प्रजनन

शस्य पादप तथा शस्य उत्पादों के बड़े पैमाने पर विनाश का अन्य प्रमुख कारण कीट तथा पीड़कों का ग्रसन है। पोषी पादप फसलों में कीट प्रतिरोधकता आकारिकीय, जैव रसायन, अथवा शरीर क्रियात्मक अभिलक्षणों के कारण होता है। अधिकांश पादपों में रोमिल पत्तियाँ पीड़कों के प्रति प्रतिरोधकता से संबंध रखती हैं; जैसे कपास में जैसिड तथा गेहूँ में धान्यपर्ण भृंग। गेहूँ के विशेष प्रकार के तने की वजह से स्टैम सॉफ्लाई उनके पास नहीं आती तथा चिकनी पत्तियों वाली तथा नैक्टर विहीन कपास की किस्में बॉलवर्म को अपनी ओर आकर्षित नहीं करते। मक्का में उच्च ऐस्पारटिक एसिड, लघु नाइट्रोजन तथा शर्करा अंश मक्का के तना भेदक के प्रति प्रतिरोधकता उत्पन्न करते हैं।

पीड़क प्रतिरोधकता के लिए प्रजनन विधियों के वही क्रम लागू होते हैं जो अन्य शस्य संबंधी विशेषकों में पाए जाते हैं; जैसे उत्पादन, गुणवत्ता आदि, जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। कृषि तथा इसकी जंगली प्रजातियों के प्रतिरोधक जीन का स्रोत कृषक किस्में तथा जननद्रव्य संग्रहण है।

नाशी कीटों के प्रति प्रतिरोधकता विकसित करने के लिए संकरण तथा चयन द्वारा प्रजनित फसलों की कुछ विमुक्त किस्में सारणी 9.2 में प्रदर्शित की गई है-

सारणी 9.2

ब्रैसिका (रेपसीड मस्टर्ड)	*पूसा गौरव*	*ऐफिड*
फ्लैट बीन	*पूसा सेम 2* *पूसा सेम 3*	*जैसिड, ऐफिड तथा फल भेदक*
ओकरा (भिंडी)	*पूसा स्वामी* *पूसा- ए-4*	*शूट तथा फल भेदक*

9.2.4 उन्नत खाद्य गुणवत्ता के लिए पादप प्रजनन

विश्व में लगभग 840 मिलियन से भी अधिक लोगों को उनकी रोजाना की खाद्य तथा पोषण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त आहार प्राप्त नहीं होता। इस संख्या

से कही अधिक लोग तीन बिलियन सूक्ष्मपोषकों, प्रोटीन तथा विटामिन अपर्याप्तता अथवा छिपी भूख के शिकार हैं, क्योंकि ये लोग फल, सब्जियाँ, लैग्यूम (फलियाँ), मछली तथा मीट आदि को पर्याप्त मात्रा में नहीं खरीद सकते। भोजन जिसमें आवश्यक सूक्ष्मपोषक विशेषकर विटामिन-ए, आयोडीन, तथा जिंक का अभाव होता है; उससे रोग उत्पन्न होने का जोखिम बढ़ जाता है, परिणामस्वरूप जीवन काल तथा मानसिक सामर्थ्य घट जाती है। जैवपुष्टि-कारण-विटामिन तथा खनिज के उच्च स्तर वाली अथवा उच्च प्रोटीन तथा स्वास्थ्य वर्द्धक वसा वाली प्रजनित फसलें जन स्वास्थ्य को सुधारने के अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रायोगिक माध्यम हैं। उन्नत पोषण/पोषक गुणवत्ता के लिए निम्न को सुधारने के उद्देश्य से प्रजनन किया गया है—

(क) प्रोटीन अंश तथा गुणवत्ता

(ख) तेल अंश तथा गुणवत्ता

(ग) विटामिन अंश

(घ) सूक्ष्मपोषक तथा खनिज अंश

पहले से विद्यमान संकर मक्का की तुलना में, 2000 में विमुक्त संकर मक्का में अमीनो एसिड, लायसीन तथा ट्रिप्टोफैन की दुगनी मात्रा विकसित की गई। गेहूँ की किस्म जिसमें उच्च प्रोटीन अंश हों, एटलस 66 कृष्य गेहूँ की ऐसी उन्नतशील किस्म तैयार करने के लिए दाता की तरह से प्रयोग किया गया है। लौह तत्व बहुल धान की किस्म को विकसित करना अब संभव हो गया है, इसमें सामान्यत: प्रयोग में लाई गई किस्मों की तुलना में लौह तत्व की मात्रा पाँच गुना अधिक होती है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नयी दिल्ली ने बहुत सी सब्जियों की फसलों का मोचन किया है जिनमें विटामिन तथा खनिज प्रचुर मात्रा में होते हैं जैसे गाजर, पालक, कद्दू में विटामिन—ए; करेला, बथुआ, सरसों, टमाटर में विटामिन—सी; पालक तथा बथुआ जिनमें आयरन तथा कैल्सियम प्रचुर मात्रा में; तथा ब्रॉड बींस, लबलब, फ्रैंच तथा गार्डन मटर में प्रोटीन प्रचुर मात्रा में पाई जाती है।

9.3 एकल कोशिका प्रोटीन

धान्यों, दलहनों, सब्जियों, फलों आदि के पारंपरिक कृषि उत्पादन से मनुष्यों तथा पशुओं की संख्या जिस दर से बढ़ रही है; आहार संबंधी उसकी माँग पूरी नहीं हो पाती। अनाज से माँसाहार की ओर झुकने से भी धान्यों की माँग बढ़ गई है क्योंकि पशुओं के फार्मिंग (रख-रखाव) के दौरान एक किग्रा. माँस उत्पन्न करने के लिए उसे 3-10 किग्रा. धान्यों की आवश्यकता होती है। 25प्रतिशत से भी अधिक मानव की जनसंख्या भूख तथा कुपोषण का शिकार है। पशु तथा मानव पोषण के लिए प्रोटीन के वैकल्पिक स्रोतों में से एक **एकल कोशिका प्रोटीन** (एस टी पी) हैं।

सूक्ष्मजीवों का प्रोटीन के अच्छे स्रोत के रूप में बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जा रहा है वास्तव में, अधिकांश लोगों द्वारा मशरूम भोजन के रूप में खाए जाने लगे हैं। अत: बड़े पैमाने पर मशरूम संवर्धन एक प्रकार से बढ़ता हुआ उद्योग है। जिससे अब विश्वास सा होने लगा है कि सूक्ष्मजीव भी आहार के रूप में स्वीकार्य हो जायेंगे। सूक्ष्मजीव जैसे

© NCERT not to be republished

स्पाइरूलाइना को, आलू संसाधन संयत्र (जिसमें स्टार्च है), घासफूस, शीरा, पशुखाद और यहाँ तक कि वाहितमल पर आसानी से उगाया जा सकता है; ताकि बड़ी मात्रा में यह प्राप्त हो सके। स्पाइरूलाइना में प्रोटीन, खनिजों, वसा, कार्बोहाइड्रेटों तथा विटामिनों की प्रचुर मात्रा विद्यमान है। संयोग से इसका उपयोग पर्यावरणीय प्रदूषण को भी कम करता है।

गणना की गई है कि प्रतिदिन 250 किग्रा. वाली गाय 200 ग्राम प्रोटीन पैदा करती है। इतने ही समय में 250 ग्राम सूक्ष्मजीव जैसे *मिथायलोफिलस मिथायलोट्रोपस* इनकी वृद्धि तथा बायोमास उत्पादन की उच्च दर से संभावित 25 टन तक प्रोटीन उत्पन्न कर सकते हैं।

9.4 ऊतक संवर्धन

पर्याप्त एवं उन्नत किस्म की फसलें प्रदान करने वाले दक्ष तंत्र द्वारा भोजन की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए हमारी पारंपरिक प्रजनन तकनीकें जब असफल हुई तब एक अन्य प्रौद्योगिकी का जन्म हुआ जिसे **ऊतक संवर्धन** कहते हैं। ऊतक संवर्धन का क्या अर्थ है? 1950 के दौरान वैज्ञानिकों ने जान लिया कि एक पूर्ण पादप **कर्त्तोतकी** से पुनर्जनित किया जा सकता है; जैसे पादप का कोई भाग ले लीजिए; उसे विशिष्ट पोषक मीडिया तथा रोगाणुरहित स्थिति में एक टेस्टट्यूब में उगने दिया। किसी कोशिका कर्त्तोतकी से पूर्ण पादप में जनित्र होने की यह क्षमता **पूर्णशक्तता** कहलाती है। उच्च वर्ग के प्राणियों में आप इसे किस प्रकार निष्पादित करेंगे? इसके बारे में जब आप बड़ी कक्षा में जाएँगे तो ज्ञान प्राप्त होगा। इस बात पर यहाँ बल देने की आवश्यकता है कि पोषक माध्यम कार्बन स्रोत जैसे स्युक्रोज तथा अकार्बनिक लवण, विटामिन, अमीनो अम्ल तथा वृद्धि नियंत्रक जैसे ऑक्सिन, सायटोकाइनिन आदि प्रदान करें! इन विधियों के प्रयोग द्वारा अत्यंत ही अल्प अवधि में हजारों पादपों का प्रवर्धन संभव हो सका। ऊतक संवर्धन द्वारा हजारों की संख्या में पादपों को उत्पन्न करने की विधि **सूक्ष्मप्रवर्धन** कहलाती है। इनमें प्रत्येक पादप आनुवंशिक रूप से मूलपादप के समान होते हैं, जहाँ से वह पैदा हुए हैं, यह **सोमाक्लोन** कहलाते हैं। अधिकांश महत्त्वपूर्ण खाद्य पादपों जैसे—टमाटर, केला, सेब आदि का बड़े पैमाने पर उत्पादन इस विधि द्वारा किया गया है। किसी ऊतक संवर्धन प्रयोगशाला में आप अपने अध्यापक के साथ जाएँ, ताकि आप इस क्रिया का अवलोकन कर सकें तथा समझ सकें।

इस विधि का अन्य महत्त्वपूर्ण उपयोग रोग ग्रसित पादपों से स्वस्थ पादपों में पुनर्लाभ है, यद्यपि पादप विषाणु से संक्रमित है, परंतु विभज्योतक (शीर्ष तथा कक्षीय) विषाणु से अप्रभावित रहता है। अतः **विभज्योतक** (मेरेस्टेम) को अलग कर उसे विट्रो में उगाया जाता है ताकि विषाणु मुक्त पादप तैयार हो सकें। वैज्ञानिकों को केला, गन्ना, आलू आदि संवर्धित विभज्योतक तैयार करने में काफी सफलता मिली है।

यहाँ तक कि वैज्ञानिकों ने पादपों से एकल कोशिकाएँ अलग की हैं तथा उनकी कोशिका भित्ति का पाचन हो जाने से प्लाज्मा झिल्ली द्वारा घिरा नग्न प्रोटोप्लास्ट पृथक किया जा सका है। प्रत्येक किस्म में वांछनीय लक्षण विद्यमान होते हैं। पादपों की दो विभिन्न किस्मों से अलग किया गया प्रोटोप्लास्ट युग्मित होकर संकर प्रोटोप्लास्ट उत्पन्न

© NCERT not to be republished

करता है जो आगे चलकर नए पादप को जन्म देता है। यह संकर **कायिक संकर**; जबकि यह प्रक्रम **कायिक संकरण** कहलाता है। ऐसी स्थिति की कल्पना करो जब टमाटर का प्रोटोप्लास्ट आलू के प्रोटोप्लास्ट से युग्मित होता है तथा वृद्धि करने के बाद इससे नए संकर पादप का जन्म होता है। इसमें टमाटर तथा आलू के अभिलक्षण संयुक्त रूप से होते हैं। इस प्रक्रम के परिणामस्वरूप 'पोमेटो' का निर्माण होता है; परंतु दुर्भाग्यवश इस पादप में व्यावसायिक उपयोग के लिए वांछित समुच्चित अभिलक्षणों का अभाव था।

सारांश

वैज्ञानिक सिद्धांतों को अपनाते हुए पालतू पशुओं की देखभाल तथा उनकी प्रजनन संबंधी प्रक्रियाएँ ही पशुपालन हैं। गुणात्मक तथा मात्रात्मक दोनों के दृष्टिगत अच्छी पशुपालन पद्धतियों को अपनाने से पशुओं तथा पशु उत्पादों से खाद्यों की बढ़ती हुई माँग को पूरा किया जा सकता है। इन पद्धतियों में (क) फार्म तथा फार्म पशु प्रबंधन तथा (ख) पशु प्रजनन शामिल हैं। शहद का उच्च पोषक मान तथा इसके औषधीय महत्त्व को ध्यान में रखते हुए मधुमक्खी पालन अथवा मौन पालन पद्धति में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। मात्स्यकी एक अन्य फलता-फूलता उद्योग है, जो मछली, मछली उत्पादों तथा अन्य जलीय खाद्यों की बढ़ती हुई माँग को पूरा कर रहा है।

पादप प्रजनन का प्रयोग ऐसी नयी किस्मों के विकास में किया जा रहा है जो रोगजनकों तथा नाशीकीटों के प्रति प्रतिरोधक हैं। इससे खाद्य उत्पादन बढ़ा है इस विधि का प्रयोग पादप खाद्यों के प्रोटीन अंशों तथा खाद्य की गुणवत्ता को बढ़ाने में किया जाता है। भारतवर्ष में शस्य पादपों की भिन्न-भिन्न किस्में पैदा की गई हैं। इन सभी उपायों से खाद्य उत्पादन बढ़ा है। ऊतक संवर्धन तथा कायिक संकरण की तकनीकों एवं पादपों के पत्ति संवर्धन से नई किस्में प्राप्त करने की विपुल संभावना है।

अभ्यास

1. मानव कल्याण में पशु पालन की भूमिका की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
2. यदि आपके परिवार के पास एक डेरी फार्म है तब आप दुग्ध उत्पादन में उसकी गुणवत्ता तथा मात्रा में सुधार लाने के लिए कौन-कौन से उपाय करेंगे।
3. 'नस्ल' शब्द से आप क्या समझते हैं? पशु प्रजनन के क्या उद्देश्य हैं?
4. पशु प्रजनन के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली विधियों के नाम बताएँ। आपके अनुसार कौन सी विधि सर्वोत्तम है? क्यों?
5. मौन (मधुमक्खी) पालन से आप क्या समझते हैं? हमारे जीवन में इसका क्या महत्त्व है?
6. खाद्य उत्पादन को बढ़ाने में मत्स्यकी की भूमिका की विवेचना करें।

© NCERT not to be republished

7. पादप प्रजनन में भाग लेने वाले विभिन्न चरणों का संक्षेप में वर्णन करो।
8. जैव प्रबलीकरण का क्या अर्थ है? व्याख्या कीजिए।
9. विषाणु मुक्त पादप तैयार करने के लिए पादप का कौन सा भाग सबसे अधिक उपयुक्त है तथा क्यों?
10. सूक्ष्मप्रवर्धन द्वारा पादपों के उत्पादन के मुख्य लाभ क्या हैं?
11. पत्ती में कर्त्तोतक पादप के प्रवर्धन में जिस माध्यम का प्रयोग किया गया है, उसमें विभिन्न घटकों का पता लगाओ।
12. शस्य पादपों के किन्हीं पाँच संकर किस्मों के नाम बताएँ, जिनका विकास भारतवर्ष में हुआ है।

© NCERT not to be republished

अध्याय 10

मानव कल्याण में सूक्ष्मजीव

© NCERT not to be republished

प्रस्तावना

10.1 घरेलू उत्पादों में सूक्ष्मजीव

10.2 औद्योगिक उत्पादों में सूक्ष्मजीव

10.3 वाहितमल उपचार में सूक्ष्मजीव

10.4 बायोगैस के उत्पादन में सूक्ष्मजीव

10.5 जैव नियंत्रण कारक के रूप में सूक्ष्मजीव

10.6 जैव उर्वरक के रूप में सूक्ष्मजीव

असूक्ष्म पादपों तथा प्राणियों के अतिरिक्त इस पृथ्वी पर जीव विज्ञानी तंत्र के प्रमुख घटक सूक्ष्मजीव हैं। कक्षा 11 में आपने जीवित जीवों में पाई जाने वाली विविधता के बारे में अध्ययन किया होगा। *क्या आपको याद है; जीवित जीवों में कौन से जगत के अंतर्गत सूक्ष्मजीवी जीव आते हैं? वे कौन से जीव हैं, जिन्हें केवल सूक्ष्मदर्शीय माना जाए?* सूक्ष्मजीव सर्वव्यापी होते हैं। यह मृदा, जल, वायु, हमारे शरीर के अंदर तथा अन्य प्रकार के प्राणियों तथा पादपों में पाए जाते हैं। जहाँ किसी प्रकार जीवन संभव नहीं है जैसे — गीज़र के भीतर गहराई तक (तापीय चिमनी) जहाँ ताप 100°C तक बढ़ा हुआ रहता है, मृदा में गहराई तक, बर्फ की पर्तों के कई मीटर नीचे तथा उच्च अम्लीय पर्यावरण जैसे स्थानों पर भी पाए जाते हैं। सूक्ष्मजीव विविध रूपायित- प्रोटोजोआ, जीवाणु, कवक तथा सूक्ष्मदर्शीय पादपों से होते हैं। विषाणु, विरायड तथा प्रायोन भी प्रोटीनीय संक्रमित कारक हैं। कुछ सूक्ष्मजीवियों को चित्र 10.1 तथा 10.2 में दिखाया गया है।

जीवाणु तथा अधिकांश कवकों के समान सूक्ष्मजीवियों को पोषक मीडिया (माध्यमों) पर उगाया जा सकता है, ताकि वृद्धि कर यह कालोनी का रूप ले लें और इन्हें नग्न नेत्र से देखा जा सके (चित्र 10.3)। ऐसे संवर्धनजन सूक्ष्मजीवियों पर अध्ययन के दौरान काफी लाभदायक होते हैं।

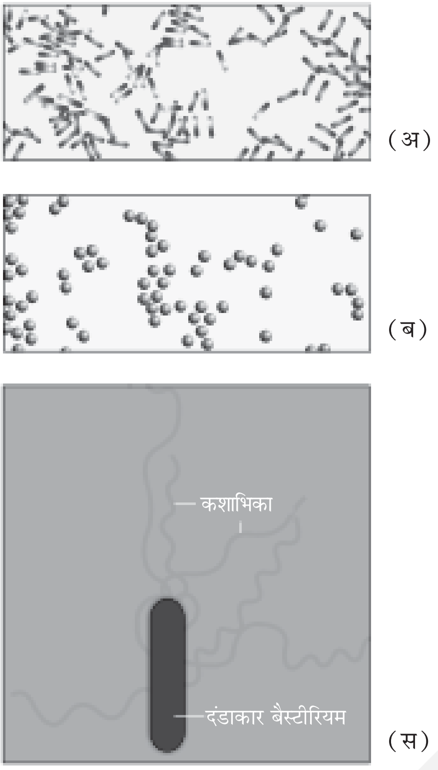

चित्र 10.1 जीवाणु (बैक्टीरिया) (अ) दंडाकार (आवर्धित रूप 1500 x) (ब) गोलाकार आवर्धित 1500 x (स) कशाभिका प्रदर्शित करते हुए 50,000 x आवर्धित दंडाकार बैक्टीरियम

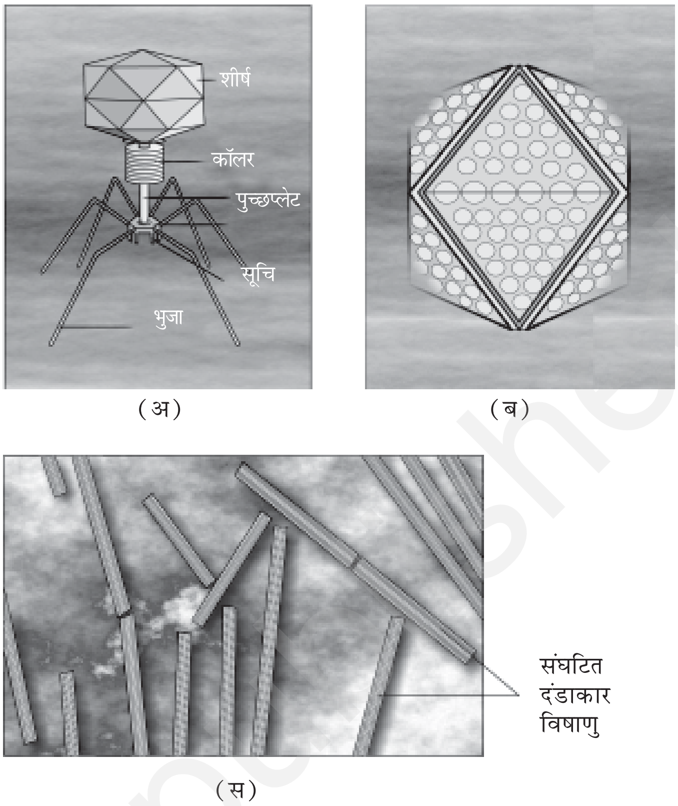

चित्र 10.2 विषाणु (अ) जीवाणुभोजी (ब) ऐडीनोवायरस जो श्वसनीय संक्रमण उत्पन्न करता है (स) दंडाकार टोबैको मोजेक वायरस (टीएमवी) 100,000-15,00,000 तक आवर्धित

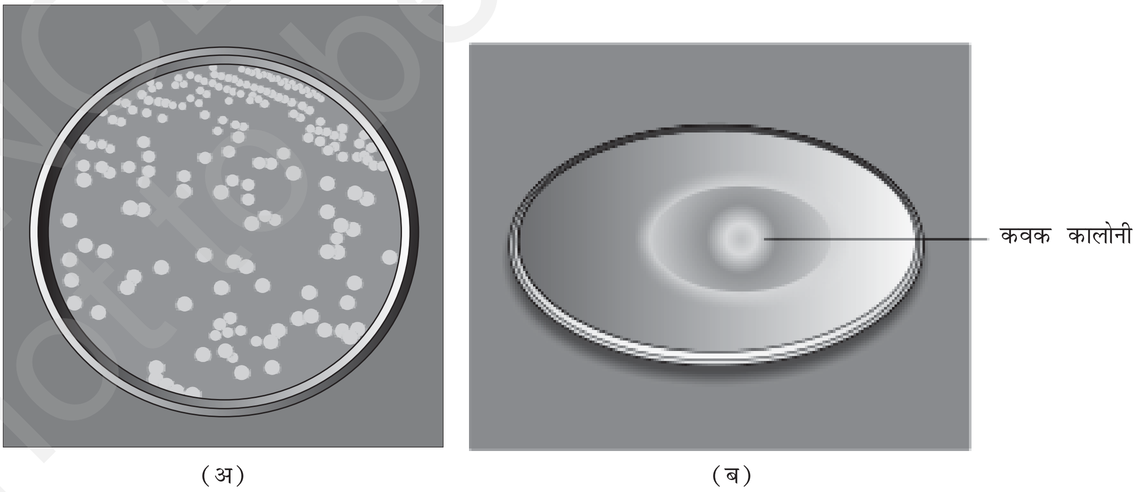

चित्र 10.3 (अ) पैट्री प्लेटों में वृद्धि कर रही जीवाणुओं की कालोनियाँ (ब) पैट्री प्लेटों में वृद्धि कर रही कवकीय कालोनियाँ

© NCERT not to be republished

इस पुस्तक के 8वें अध्याय में, आपने पढ़ा होगा कि सूक्ष्मजीवी मनुष्यों में बहुत से रोग उत्पन्न करते हैं। ये पशुओं तथा पादपों में भी रोग उत्पन्न करते हैं; परंतु इससे आपको यह नहीं समझ लेना चाहिए कि सभी सूक्ष्मजीव हानिप्रद हैं। अधिकांशत: सूक्ष्मजीव मनुष्यों के लिए कई प्रकार से लाभप्रद हैं। मानव कल्याण के प्रति सूक्ष्मजीवों के कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदानों पर निम्नलिखित पृष्ठों में परिचर्चा की गई है।

10.1 घरेलू उत्पादों में सूक्ष्मजीव

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हम प्रतिदिन सूक्ष्मजीवियों अथवा उनसे व्युत्पन्न उत्पादों का प्रयोग करते हैं। इसका सामान्य उदाहरण दूध से दही का उत्पादन है। सूक्ष्मजीव जैसे लैक्टोबैसिलस तथा अन्य जिन्हें सामान्यत: **लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया** (एल ए बी) कहते हैं; दूध में वृद्धि करते हैं और उसे दही में परिवर्तित कर देते हैं। वृद्धि के दौरान लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया अम्ल उत्पन्न करता है जो दुग्ध प्रोटीन को स्कंदित तथा आंशिक रूप में पचा देता है। दही की थोड़ी सी मात्रा निवेश द्रव्य अथवा आरंभक के रूप में ताजे दूध में मिलाया जाता है। इस निवेशद्रव्य में लाखों-करोड़ों की संख्या में लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया होते हैं जो उपयुक्त ताप पर कई गुना वृद्धि करते हैं और परिणामस्वरूप दूध को दही में बदल देते हैं। इतना ही नहीं; विटामिन बी 12 की मात्रा बढ़ने से पोषण संबंधी गुणवत्ता में भी सुधार हो जाता है। हमारे पेट में भी, सूक्ष्मजीवियों द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों को रोकने में लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया एक लाभदायक भूमिका का निर्वाह करते हैं।

दाल-चावल का बना ढीला-ढाला आटा जिसका प्रयोग *'डोसा'* तथा *'इडली'* जैसे आहार को बनाने में किया जाता है। वह भी बैक्टीरिया द्वारा किण्वित होता है? इस आटे की फूली उभरी शक्ल CO_2 गैस के उत्पादन के कारण होती है। *क्या आप बता सकते हैं कि कौन सा उपापचयी पथ CO_2 के निर्माण में कार्य कर रहा है?* क्या आप जानते हैं कि किण्वन की क्रिया के लिए यह बैक्टीरिया कहाँ से आ रहे हैं। ठीक इसी प्रकार ढीला-ढाला आटा जिसका प्रयोग ब्रैड बनाने में किया जाता है उसमें बेकर यीस्ट (सैकरोमाइसीज़ सैरीवीसी) का प्रयोग किया जाता है। पारंपरिक पेय तथा आहारों की एक बड़ी संख्या सूक्ष्मजीवियों द्वारा किण्वित कराकर तैयार की जाती हैं। दक्षिण भारत के कुछ भागों में एक पारंपरिक पेय 'टोडी' है। इसे ताड़वृक्ष के तने के स्राव को किण्वित कराकर तैयार किया जाता है। सूक्ष्मजीवियों का प्रयोग किण्वित मत्स्य (मछली), सोयाबीन तथा बाँस प्रोह आदि के भोजन तैयार करने में किया जाता है। 'पनीर' या 'चीज' एक प्राचीन भोज्य पदार्थ है। इसे तैयार करने में सूक्ष्मजीवियों का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न किस्मों के पनीर अपनी गठनसंरचना, सुगंध तथा स्वाद जैसे अभिलक्षणों से पहचाने जाते हैं; विशेष सूक्ष्मजीवों के प्रयोग से आते हैं। उदाहरण के लिए 'स्विस चीज' में पाए जाने वाले बड़े-बड़े छिद्र प्रोपिओनिबैक्टीरियम शारमैनाई नामक बैक्टीरियम द्वारा बड़ी मात्रा में उत्पन्न CO_2 के कारण होते हैं। 'रॉक्यूफोर्ट चीज' एक विशेष प्रकार के कवक की वृद्धि से परिपक्व होते हैं जिससे विशेष सुगंध आने लगती है।

© NCERT not to be republished

चित्र 10.4 किण्वक (फरमैंटर)

10.2 औद्योगिक उत्पादों में सूक्ष्मजीव

यहाँ तक कि उद्योगों में भी सूक्ष्मजीवियों का प्रयोग बहुत से उत्पादों के संश्लेषण में किया जाता है जो कि मनुष्य के लिए काफी मूल्यवान होते हैं। मादक पेय तथा प्रतिजैविक (ऐंटीबॉयटिक) इसके कुछ उदाहरण हैं। व्यावसायिक पैमाने पर सूक्ष्मजीवियों को पैदा करने के लिए बड़े बर्तन की आवश्यकता होती है जिसे **फरमैंटर** या **किण्वक** कहते हैं (चित्र 10.4)।

10.2.1 किण्वित पेय

सूक्ष्मजीव विशेषकर यीस्ट का प्रयोग प्राचीन काल से वाइन, बियर, ह्विस्की, ब्रांडी या रम जैसे पेयों के उत्पादन में किया जाता आ रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वही यीस्ट सैकेरोमाइसीज़ सैरीबिसी(जो सामान्यतः ब्रीवर्स यीस्ट के नाम से भी प्रसिद्ध है;) ब्रेड बनाने तथा माल्टीकृत धान्यों तथा फलों के रसों में ऐथानॉल उत्पन्न करने में प्रयोग किया जाता है। क्या आपको वे उपापचयी अभिक्रियाएँ याद हैं जिसके परिणामस्वरूप यीस्ट द्वारा ऐथानॉल उत्पादित होता है। विभिन्न प्रकार के एल्कोहलीय पेय की प्राप्ति। किण्वन तथा विभिन्न प्रकार के संसाधन (आसवन अथवा उसके बिना) कच्चे पदार्थों पर निर्भर करती है; वाइन तथा बियर का उत्पादन बिना आसवन के; जबकि ह्विस्की, ब्रांडी तथा रम किण्वित रस के आसवन द्वारा तैयार किए जाते हैं। किण्वन संयंत्र (प्लांट) का फोटोग्राफ चित्र 10.5 में दिखाया गया है।

चित्र 10.5 किण्वन संयंत्र

10.2.2 प्रतिजैविक (ऐंटीबॉयोटिक)

सूक्ष्मजीवों द्वारा प्रतिजैविकों (ऐंटीबॉयोटिकों) का उत्पादन 20वीं शताब्दी की अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण खोज और मानव समाज के कल्याण के लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। ऐंटी एक ग्रीक भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ *खिलाफ* तथा *बॉयो* का अर्थ *जीवन* है। दोनों को मिला देने से इसका अर्थ 'जीवन के खिलाफ' हुआ (रोग जो जीवों से उत्पन्न होते हैं उनके संदर्भ में) जबकि मनुष्यों के संदर्भ में यह जीवन के खिलाफ न होकर जीवन के प्रति माने जाते हैं। प्रतिजैविक (ऐंटीबॉयोटिक) एक प्रकार के रसायनिक पदार्थ हैं, जिनका निर्माण कुछ सूक्ष्मजीवियों द्वारा होता है। यह अन्य (रोग उत्पन्न करने वाले) सूक्ष्मजीवियों की वृद्धि को मंद अथवा उन्हें मार सकते हैं।

आप सामान्य रूप से प्रयोग में लाए जाने वाले ऐंटीबॉयोटिक पैनीसीलिन से तो परिचित ही हैं। क्या आप जानते हैं कि पैनीसीलिन सबसे पहला ऐंटीबॉयोटिक था, जिसकी

© NCERT not to be republished

खोज एक प्रकार का हादसा (घटना) थी? एलैग्जैंडर फ्लैमिंग जब *स्टैफिलोकोकस* बैक्टीरिया पर कार्य कर रहे थे; तब उन्हें एक बार दिखाई दिया कि जिन प्लेटों पर वह कार्य कर रहे थे, उनमें एक बिना धुली प्लेट पर मोल्ड उत्पन्न हो गए हैं जिस कारण स्टैफिलोकोकस वृद्धि न कर सका। उन्होंने पाया कि यह प्रभाव मोल्ड द्वारा उत्पन्न एक रसायन 'पैनीसिलीन' द्वारा होता है। चूँकि पैनीसिलीन, *पैनीसीलियम नोटेटम* नामक मोल्ड से उत्पन्न होता है। इस कारण इसका नाम उन्होंने 'पैनीसिलीन' रखा। यद्यपि बाद में अरनैस्ट चैन तथा हावर्ड फ्लौरे ने इसकी एक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली ऐंटीबॉयोटिक के रूप में पुष्टि की। इस ऐंटीबॉयोटिक का प्रयोग दूसरे विश्व युद्ध में घायल अमरीकन सिपाहियों के उपचार में व्यापक रूप से किया गया। फ्लैमिंग, चैन तथा फ्लौरे को इस खोज के लिए 1945 में नोबल पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया।

पैनीसिलिन के बाद अन्य सूक्ष्मजीवियों से अन्य ऐंटीबॉयोटिकों को भी परिशुद्ध किया गया। क्या आप कुछ अन्य प्रतिजैविकी (ऐंटीबॉयोटिकों) के नाम तथा उनके स्रोतों के बारे में बता सकते हैं। प्लेग, काली खाँसी, डिप्थीरिया (गलघोंटू), लैप्रोसी (कुष्ठरोग) जैसे भयानक रोग, जिनसे संसार में लाखों लोग मरे हैं, के उपचार के लिए ऐंटीबॉयोटिकों ने हमारी क्षमता में वृद्धि की एक शक्ति के रूप में आये हैं। आज हम ऐंटीबॉयोटिकों से रहित संसार की कल्पना ही नहीं कर सकते हैं।

10.2.3 रसायन, एंजाइम तथा अन्य जैवसक्रिय अणु

कुछ विशेष प्रकार के रसायनों; जैसे कार्बनिक अम्ल, ऐल्कोहल तथा एंजाइम आदि के व्यावसायिक तथा औद्योगिक उत्पादन में सूक्ष्मजीवों का बड़े पैमाने पर उपयोग किया जाता है। अम्लीय उत्पादकों के उदाहरण सिट्रिक अम्ल का *ऐस्परजिलस नाइगर* (एक कवक), एसीटिक अम्ल का *एसीटोबैक्टर एसिटाई* (जीवाणु) ब्युट्रिक अम्ल का *क्लोस्ट्रीडियम ब्यूटायलिकम* (एक जीवाणु) तथा लेक्टिक अम्ल का लैक्टोबैसिलस आदि हैं।

ऐथानॉल के बड़े पैमाने पर उत्पादन के लिए यीस्ट *(सैकेरोमाइसीज़ सैरीविसेएई)* का प्रयोग किया जाता है। लाइपेज का प्रयोग अपमार्जक संरूपण तथा धुलाई में कपड़ों से तेल के धब्बे हटाने में किया जाता है। आपने अवश्य देखा होगा कि आप बाजार से खरीद कर फल-रस की जो बोतल लाते हैं उसका रस घर में बने रस की तुलना में अधिक साफ दिखाई पड़ता है। पैक्टीनेजिज तथा प्रोटीऐजिज के प्रयोग के कारण बोतल वाला रस अधिक स्वच्छ एवं साफ होता है। स्ट्रैप्टोकाइनेज *स्ट्रैप्टोकोकस* जीवाणु (बैक्टीरियम) द्वारा उत्पन्न होता है जो आनुवंशिक इंजीनियरिंग द्वारा रूपांतरित किया जाता है। इसका प्रयोग उन रोगियों में रक्त वाहिकाओं से थक्का (क्लॉट) हटाने में यानि 'थक्का स्फोटन' के रूप में प्रयोग किया जाता है। हृदयाघात के अग्रग मायोकार्डियल इंफैक्शन से गुजरते हैं।

अन्य जैव सक्रिय अणु 'साइक्लोस्पोरिन-ए' है। जिसका प्रयोग अंग प्रतिरोपण में प्रतिरक्षा निरोधक (इम्युनोसप्रेसिव) कारक के रूप में रोगियों में किया जाता है। इसका उत्पादन *ट्राइकोडर्मा पॉलोस्पोरम* नामक कवक से किया जाता है। *मोनॉस्कस परप्यूरीअस यीस्ट* से उत्पन्न इस स्टैटिन का व्यापारिक स्तर पर प्रयोग रक्त-कॉलिस्ट्रॉल को कम करने

© NCERT not to be republished

चित्र 10.6 वाहित मल उपचार संयंत्र का वायुवीय टैंक

वाले कारक के रूप में किया जाता है। कॉलिस्ट्रॉल के संश्लेषण के लिए उत्तरदायी एंजाइम स्पर्धा संदमन (निरोधण) की तरह क्रिया करते हैं।

10.3 वाहितमल उपचार में सूक्ष्मजीव

हम जानते हैं कि प्रतिदिन नगर एवं शहरों से व्यर्थ-जल की एक बहुत बड़ी मात्रा जनित होती है। इस व्यर्थ जल का प्रमुख घटक मनुष्य का मलमूत्र है। नगर के इस व्यर्थ जल को वाहित मल (सीवेज) भी कहते हैं। इसमें कार्बनिक पदार्थों की बड़ी मात्रा तथा सूक्ष्मजीव पाये जाते हैं जो अधिकांशत: रोगजनकीय होते हैं। आपको आश्चर्य होता होगा कि वाहितमल की बड़ी मात्रा अथवा शहरी व्यर्थजल का रोजाना निपटान कैसे होता होगा? इसे प्राकृतिक जल स्रोतों जैसे नदी, झरने में सीधे विसर्जित नहीं किया जा सकता है। आप समझ सकते हैं क्यों? अत: विसर्जन से पूर्व वाहित मल का उपचार वाहितमल संयंत्र में किया जाता है ताकि वह प्रदूषण मुक्त हो जाय। व्यर्थ जल का उपचार परपोषित सूक्ष्मजीव से किया जाता है जो वाहित मल में प्राकृतिक रूप से वास करते हैं। यह उपचार निम्नलिखित दो चरणों में संपन्न किया जाता है—

प्राथमिक उपचार — मूलभूत रूप से उपचार के इस पद में वाहित मल से बड़े छोटे कणों का निस्यंदन (फिल्ट्रेशन) तथा अवसादन (सेडीमिंटेशन) द्वारा भौतिक रूप से अलग कर दिये जाते हैं। इन्हें भिन्न-भिन्न चरणों में अलग किया जाता है। आरंभ में तैरते हुए कूड़े-करकट को अनुक्रमिक निस्यंदन द्वारा हटा दिया जाता है। इसके बाद शितबालुकाश्म (ग्रिट) (मृदा तथा छोटे गुटिकाओं पेवल) को अवसादन द्वारा निष्कासित किया जाता है। सभी ठोस जो **प्राथमिक आंपक** (स्लज) के नीचे बैठे कण हैं, वह और प्लावी (सुपरनैटेंट) बहि:स्राव (इफ्लुएंट) का निर्माण करता है। बहि:स्राव को प्राथमिक नि:सादन (सेटलिंग) टैंक से द्वितीयक उपचार के लिए ले जाया जाता है।

द्वितीयक उपचार अथवा जीव विज्ञानीय उपचार — प्राथमिक बहि:स्राव को बड़े वायुवीय टैंकों में से गुजारा जाता है (चित्र 10.6)। जहाँ यह लगातार यांत्रिक रूप से हिलाया जाता है और वायु को इसमें पंप किया जाता है। इससे लाभदायक वायुवीय सूक्ष्मजीवियों की प्रबल सशक्त वृद्धि **ऊर्णक** (कवकीय तंतुओं से जुड़े जीवाणुओं के जाली जैसी संरचना का झुंड) के रूप में होने लगती है। वृद्धि के दौरान यह सूक्ष्मजीव बहि:स्राव में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों के प्रमुख भागों की खपत करता है। यह बहि:स्राव के **बी ओ डी (बॉयोकेमीकल ऑक्सीजन डिमांड)** को महत्त्वपूर्ण रूप से घटाने लगता है। बी ओ डी ऑक्सीजन की उस मात्रा को संदर्भित करता है जो जीवाणु द्वारा एक लीटर पानी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों की खपत कर उन्हें ऑक्सीकृत कर दें। वाहित मल का तब तक उपचार किया जाता है जब तक बी ओ डी घट न जाय। जल के एक नमूने में सूक्ष्मजीवियों द्वारा ऑक्सीजन के उद्ग्रहण की दर का मापन बी ओ डी परीक्षण

© NCERT not to be republished

से किया जाता है; अत: अप्रत्यक्ष रूप से जल में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों का मापन ही बी ओ डी है। जब व्यर्थ-जल का बी ओ डी अधिक होगा, तब इसकी प्रदूषण क्षमता भी अधिक होगी।

एक बार वाहित मल अथवा व्यर्थ जल का बी ओ डी पर्याप्त मात्रा में घट जाय, तब बहि:स्राव को नि:सादन (सैटलिंग) टैंक में भेजते हैं; जहाँ जीवाणु झुंड (फ्लॉक्स) उसे अवसाद में परिवर्तित करते हैं। यह अवसाद **सक्रियीत आपंक** कहलाता है। सक्रियीत आपंक के छोटे से भाग को फिर से पीछे वायुवीय टैंक में पंप करते हैं। यह आपंक निवेशद्रव्य की तरह से कार्य करता है। आपंक का बचा-खुचा मुख्य भाग बड़े टैंक में पंप किया जाता है। जिसे **अवायवीय आपंक संपाचित्र** (ऐनारोबिक स्लज डाइजेस्टर) कहते हैं। यहाँ जीवाणुओं की अन्य किस्में जो अवायुवीय रूप से वृद्धि करती हैं। वे आपंक में उपस्थित जीवाणुओं तथा कवकों का पाचन कर लेती हैं। पाचन के दौरान जीवाणु गैसों का मिश्रण जैसे मीथेन, हाइड्रोजन सल्फाइड तथा कार्बन डायक्साइड उत्पन्न करते हैं। ये गैसें **बॉयोगैस** का निर्माण करती हैं। चूँकि यह ज्वलनशील होती हैं; इस कारण इनका प्रयोग ऊर्जा के स्रोत के रूप में किया जा सकता है।

चित्र 10.7 वाहित मल उपचार संयंत्र का आकाशी चित्र

द्वितीयक उपचार प्लांट से बहि:स्राव सामान्यत: जल के प्राकृतिक स्रोतों जैसे नदियों, झरनों में छोड़ दिया जाता है। वाहित मल उपचार संयंत्र का आकाशी चित्र 10.7 में दिखाया गया है।

आप समझ सकते हैं कि किस प्रकार सूक्ष्मजीवी प्रतिदिन विश्वभर में व्यर्थ जल के लाखों-करोड़ों गैलन पानी के उपचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका-निभाते हैं। संसार के लगभग-समस्त भागों में लगभग सदियों से इसी कार्य प्रणाली का प्रयोग किया जाता आ रहा है। आज के दिन तक कोई भी मनुष्य द्वारा तैयार की गई प्रौद्योगिकी वाहित मल के सूक्ष्मजीवी उपचार के सामने नहीं टिक पाई।

आप जानते ही हैं कि बढ़ते हुए शहरीकरण के कारण पहले की तुलना में वाहित मल की एक बहुत बड़ी मात्रा उत्पन्न हो जाती है, अत: वाहितमल की इतनी बड़ी मात्रा को उपचारित करने में इन उपचार संयंत्रों की संख्या पर्याप्त नहीं बढ़ाई गई है। इसलिए अपचारित वाहितमल को सीधे ही नदियों में छोड़ दिया जाता है। परिणामस्वरूप प्रदूषण और जल जनित रोगों की संख्या बढ़ रही है।

पर्यावरण तथा वन मंत्रालय ने हमारे देश की प्रमुख नदियों को प्रदूषण से बचाने के लिए **गंगा ऐक्शन प्लान** तथा **यमुना ऐक्शन प्लान** जैसी योजनाओं का सूत्रपात किया है। इन योजनाओं के तहत एक बड़ी संख्या में नए वाहित मल उपचार संयंत्रों को बनाने का प्रस्ताव है; ताकि केवल उपचारित वाहित मल को ही नदियों में छोड़ा जा सके। आप अपने आस-पास स्थित ऐसे किसी भी वाहित मल उपचार संयंत्र में जाएँ। जो अत्यंत ही रोचक तथा शिक्षाप्रद अनुभव होगा।

© NCERT not to be republished

10.4 बॉयोगैस के उत्पादन में सूक्ष्मजीव

बॉयोगैस एक प्रकार से गैसों (जिसमें मुख्यत: मीथेन शामिल है) का मिश्रण है जो सूक्ष्मजीवी सक्रियता द्वारा उत्पन्न होती हैं। आप पढ़ चुके हैं कि वृद्धि तथा उपापचयन के दौरान सूक्ष्मजीव विभिन्न किस्मों के गैसीय अंतिम उत्पाद उत्पन्न करते हैं; जो गैस उत्पन्न होती है, वह इन सूक्ष्मजीवियों द्वारा खपत किए गए कार्बनिक पदार्थों पर निर्भर करती है। उपर्युक्त उदाहरण जैसे गीले आटे का किण्वन, पनीर (चीज) निर्माण तथा पेयों का उत्पादन में CO_2 गैस ही मुख्य रूप से उत्पन्न होती है। यद्यपि कुछ बैक्टीरिया जो सैल्यूलोजीय पदार्थों पर अवायुवीय रूप से उगते हैं; वह CO_2 तथा H_2 के साथ-साथ बड़ी मात्रा में मीथेन भी उत्पन्न करते हैं। सामूहिक रूप से इन जीवाणुओं को **मीथैनोजेन** कहते हैं। इनमें सामान्य जीवाणु *मीथैनोबैक्टीरियम* है। ये बैक्टीरिया (जीवाणु) सामान्यत: अवायुवीय गाढ़े कीचड़ में पाया जाता है जिसका वर्णन वाहित मल उपचार में पहले किया गया है। यह जीवाणु पशुओं के रूमेन (प्रथम आमाशय) में भी पाए जाते हैं। रूमेन में सैल्यूलोजीय पदार्थों की एक बड़ी मात्रा उपलब्ध रहती है। रूमेन में यह जीवाणु सैल्यूलोज को तोड़ने में सहायक होते हैं; और पशुओं के पोषण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। *क्या आप समझते हैं कि अपने आहार में उपस्थित सैल्यूलोज को हम मानव भी पचाने के योग्य हैं?* इस प्रकार पशुओं के मल (डंग) उनमें, जिसे सामान्यत: गोबर कहते हैं, यह जीवाणु प्रचुर संख्या में पाए जाते हैं। गोबर में पादपों के सैल्यूलोजीय व्युत्पन्न प्रचुर मात्रा में होते हैं; अत: इनका प्रयोग बॉयोगैस को पैदा करने में किया जाता है जिसे सामान्यत: **'गोबर गैस'** भी कहते हैं।

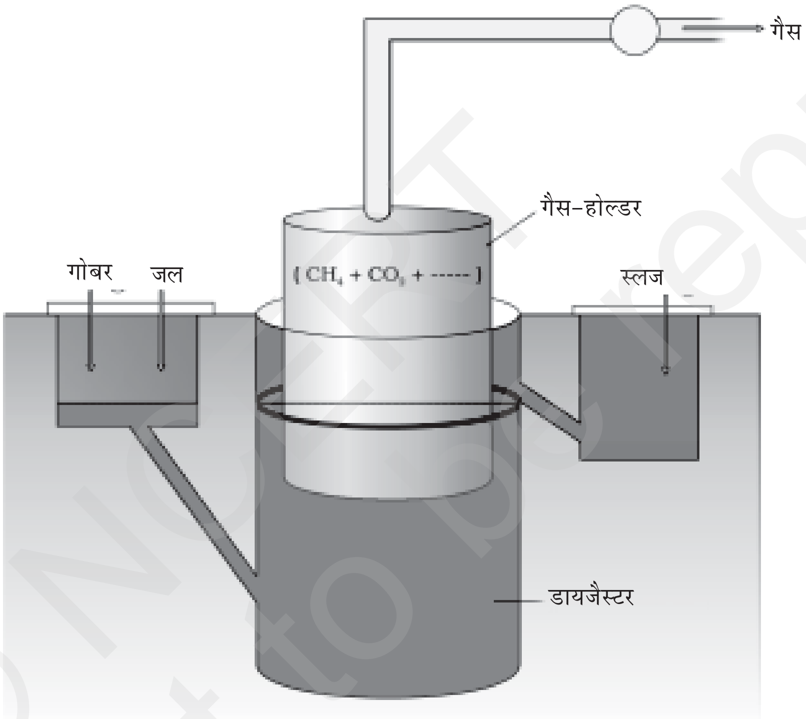

चित्र 10.8 संयंत्र का एक प्रारूप बायोगैस

बॉयोगैस संयंत्र एक टैंक (10-15 फीट गहरा) होता है; जिसमें अपशिष्ट संग्रहीत एवं गोबर की कर्दम (स्तरी) भरी जाती है। कर्दम के ऊपर एक सचल ढक्कन रखा जाता है सूक्ष्मजीवी सक्रियता के कारण टैंक में गैस बनती है। जिससे ढक्कन ऊपर को उठता है। बॉयोगैस संयंत्र में एक निकास होता है जो एक पाइप से जुड़ा रहता है। इसी पाइप की सहायता से आस-पास के घरों में बॉयोगैस की आपूर्ति की जाती है। उपयोग की गई कर्दम दूसरे निकास द्वार से बाहर निकाल दी जाती है। इसका प्रयोग उर्वरक के रूप में किया जाता है। गोबर ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में मिलता है, जहाँ

© NCERT not to be republished

पशुओं को पाला जाता है। यही कारण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में इन बॉयोगैस संयंत्रों (प्लांटों) को अधिक बनाया जाता है। उत्पन्न बॉयोगैस का प्रयोग खाना बनाने तथा प्रकाश पैदा करने में किया जाता है। बॉयोगैस संयंत्र चित्र 10.8 में दिखाया गया है। भारत में बॉयोगैस उत्पादन की प्रौद्योगिकी का विकास मुख्यत: भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान तथा खादी एवं ग्रामीण उद्योग आयोग के प्रयासों के परिणामस्वरूप हुआ। यदि आपका विद्यालय किसी गाँव अथवा गाँव के आस-पास स्थित है तो इसका पता लगाकर बॉयोगैस संयंत्र (प्लांट) को देखने जाएँ और जो लोग इसके प्रबंधन में जुड़े हैं; उन लोगों से मिलें आपको बहुत कुछ सीखने को मिलेगा।

10.5 जैव नियंत्रण कारक के रूप में सूक्ष्मजीव

पादप रोगों तथा पीड़कों के नियंत्रण के लिए जैव वैज्ञानिक विधि का प्रयोग ही जैव नियंत्रण है। आधुनिक समाज में यह समस्याएँ रसायनों, कीटनाशियों तथा पीड़कनाशियों के बढ़ते हुए प्रयोगों की सहायता से नियंत्रित की जाती हैं। ये रसायन मनुष्यों तथा जीव जंतुओं के लिए अत्यंत ही विषैले तथा हानिकारक हैं। ये पर्यावरण (मृदा, भूमिगत जल) को प्रदूषित करते तथा फलों, साग-सब्जियों और फसलों पर भी हानिकारक प्रभाव डालते हैं। खरपतवार नाशियों का प्रयोग खरपतवार को हटाने में किया जाता है। यह भी हमारी मृदा को प्रदूषित करते हैं।

पीड़क तथा रोगों का जैव नियंत्रण- कृषि में, पीड़कों के नियंत्रण की यह विधि रसायनों के प्रयोग की तुलना में प्राकृतिक परभक्षण पर अधिक निर्भर करती है। आर्गेनिक फॉर्मर (कृषक) के अनुसार जैव विविधता ही स्वास्थ्य की कुंजी है। भूदृश्य पर जितनी अधिक किस्में होंगी, वह उतनी ही अधिक स्थायित्व प्रदान करती हैं अत: आर्गेनिक फॉर्मर (कृषक) एक तंत्र को विकसित करने के लिए कार्य करते हैं, जिसमें कीट, इन्हें पीड़क भी कहते हैं, उन्मीलित न हो, वे इसके बजाय उन्हें नियंत्रणीय स्तर पर एक जीवित तथा कंपायमान पारिस्थितिक तंत्र के भीतर संतुलन तथा जाँच के जटिल तंत्र का निर्माण करते हैं। अधिक परंपरागत 'फार्मिंग प्रैक्टिस' के विपरीत बहुधा लाभप्रद तथा हानिप्रद बागवानी जीवों को रसायन प्रयोग द्वारा मार दिया जाता है। जैव नियंत्रण एक प्रकार का समग्रतात्मक दृष्टिकोण है, जिससे करोड़ों जीवों के मध्य पारस्परिक क्रियाओं के जाल की व्याख्या का विकास होता है। खेत प्राणिजात (फौना) तथा पेड़-पौधों (फ्लोरा) का निर्माण करते हैं। आर्गेनिक फॉर्मर (कृषक) में बहुधा एक दृष्टिकोण विकसित हो जाता है; उदाहरणार्थ जीवों का उन्मूलन, जिन्हें बहुधा पीड़क कहा गया है, उनका उन्मूलन केवल असंभव ही नहीं; बल्कि अवांछनीय भी है। इनके बिना लाभप्रद परभक्षी तथा परजीवी कीट जीवित नहीं रह पायेंगे जो पीड़कों पर अपने पोषण अथवा भोजन के लिए आश्रित है। इस प्रकार जैवनियंत्रण विधि से विषाक्त रसायन तथा पीड़कनाशियों पर हमारी जो आश्रिता है, वह काफी हद तक घट जायेगी। जीवविज्ञानी फॉर्मिंग के उपगमन (प्रस्ताव) का महत्त्वपूर्ण भाग विभिन्न जीवन के रूपों से परिचित होता है। उदाहरणार्थ खेतों को परभक्षी तथा पीड़कों द्वारा उनके जीवन चक्र, आहार ग्रहण करने की विधि तथा वास

© NCERT not to be republished

स्थल के रूप में पसंद किया है। यह सब मिलकर जैव नियंत्रण के उचित साधनों को विकसित करने में सहायक होते हैं।

जाना पहचाना भृंग (बीटल) जिन पर लाल तथा काली धारियाँ पाई जाती हैं तथा व्याध पतंग (ड्रैगनफ्लाई) क्रमश: ऐफिडों तथा मच्छरों से छुटकारा दिलवाने में अत्यंत ही लाभप्रद हैं। परंतु जहाँ तक सूक्ष्मजीवी जैव नियंत्रण कारकों का प्रश्न है, वहाँ बैक्टीरिया *वैसीलस थूरिजिऐंसिस* (बहुधा Bt लिखा जाता है) का प्रयोग बटरफ्लाई केटरपिलर नियंत्रण में किया जाता है। शुष्क बीजाणु (स्पोर्स) सुगंधीय थैली के रूप में उपलब्ध रहते हैं, जिन्हें पानी में मिला दिया जाता है और इस मिश्रण को दोषपूर्ण पादपों जैसे सरसों समूह (ब्रैसिका) तथा फल वृक्षों जिनकी पत्तियाँ, कीट लार्वा द्वारा खा ली गई है, पर छिड़काव किया जाता है। लार्वा की पाचननली में टॉक्सिन निकलता है और लार्वा की मृत्यु हो जाती है। जीवाणुवीय रोग केटरपिलर को मार देता है, परंतु अन्य कीटों को हानि नहीं पहुँचाता। लगभग पिछले दशक में आनुवंशिक अभियांत्रिकी की विधियों के विकास से वैज्ञानिक वैसीलस *थूरिनजिऐंसिस* टॉक्सिन जीन को पादपों में पहुँचा सके हैं। ऐसे पादप पीड़क द्वारा किए गए आक्रमण के प्रति प्रतिरोधी हैं। **Bt-कॉटन** इसका एक उदाहरण है, जिसे हमारे देश के कुछ राज्यों में उत्पन्न किया जाता है। इसके बारे में आपको अधिक जानकारी अध्याय 12 में मिलेगी।

जैव वैज्ञानिक नियंत्रण के तहत कवक *ट्राइकोडर्मा* का उपयोग पादप रोगों के उपचार में किया जाता है। *ट्राइकोडर्मा* प्रजाति एक मुक्त जीवित कवक है, जो मूल-पारिस्थितिक तंत्र में सामान्य रूप से पाया जाता है। यह बहुत से पादप रोगजनकों के प्रभावशील जैव नियंत्रण कारक हैं।

बैक्यूलोवायरेसिस ऐसे रोगजनक हैं जो कीटों तथा संधिपादों (ऑर्थोपोडों) पर हमला करते हैं। अधिकांश बैक्यूलोवायरेसिस जो जैव वैज्ञानिक नियंत्रण कारकों की तरह से किए जाते हैं। वे *न्यूक्लिओपॉलीहीड्रोसिसवायरस* जींस के अंतर्गत आते हैं। यह विषाणु प्रजाति-विशेष, संकरे स्पैक्ट्रम कीटनाशीय उपचारों के लिए अति उत्तम माने गए हैं। ऐसा प्रदर्शित किया जा चुका है कि इनका पादपों, स्तनधारियों, पक्षियों, मछलियों अथवा यहाँ तक कि लक्ष्यविहीन कीट पर किसी भी प्रकार का हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता। यह विशेषकर तभी वांछनीय है, जब लाभप्रद कीटों का संरक्षण किया जाए। ताकि समाकलित पीड़क प्रबंधन कार्यक्रम की सहायता हो सके अथवा जब संपूर्ण पारिस्थितिक सुग्राही क्षेत्र का उपचार हो।

10.6 जैव उर्वरक के रूप में सूक्ष्मजीव

आज के तौर तरीकों के साथ यदि जीवन को देखें तो पता चलता है कि पर्यावरण प्रदूषण चिंता का एक मुख्य कारण है। कृषि उत्पादों की बढ़ती माँगों को पूरा करने के लिए रसायन उर्वरकों का प्रयोग इस प्रदूषण के लिए महत्त्वपूर्ण है। हालाँकि, हम समझने लगे हैं कि रसायन उर्वरकों के अधिकाधिक प्रयोग से कई समस्याएँ जुड़ी हुई हैं? इसके परिणामस्वरूप *कार्बनिक-खेती* करने पर तथा *जैव उर्वरकों* के प्रयोग पर दबाव बढ़ता जा रहा है। जैव उर्वरक एक प्रकार के जीव हैं; जो मृदा की पोषक गुणवत्ता को बढ़ाते हैं।

© NCERT not to be republished

जैव उर्वरकों का मुख्य स्रोत जीवाणु, कवक तथा सायनोबैक्टीरिया होते हैं। लैग्यूमिनस पादपों की जड़ों पर स्थित ग्रंथियों के बारे में आपने अध्ययन किया होगा। इन ग्रंथियों का निर्माण *राइज़ोबियम* के सहजीवी संबंध द्वारा होता है। यह जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकृत कर कार्बनिक रूप में परिवर्तित कर देते हैं। पादप इसका प्रयोग पोषकों के रूप में करते हैं। अन्य जीवाणु (उदाहरण *ऐज़ोस्पाइरिलम तथा ऐजोबैक्टर*) मृदा में मुक्तावस्था में रहते हैं। यह भी वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर कर सकते हैं। इस प्रकार मृदा में नाइट्रोजन अवयव बढ़ जाते हैं।

कवक पादपों के साथ सहजीवी संबंध (**माइकोराइजा**) स्थापित करते हैं। *ग्लोमस* जीनस के बहुत से सदस्य माइकोराइजा बनाते हैं। इस संयोजन में कवकीय सहजीवी मृदा से फास्फोरस का अवशोषण कर उसे पादपों में भेज देते हैं। ऐसे संबंधों से युक्त पादप कई अन्य लाभ जैसे मूलवातोढ़ रोगजनक के प्रति प्रतिरोधकता, लवणता तथा सूखे के प्रति सहनशीलता तथा कुलवृद्धि तथा विकास प्रदर्शित करते हैं। *क्या आप बता सकते हैं कि इस संयोजन से कवक क्या लाभ प्राप्त करते हैं?*

सायनोबैक्टीरिया स्वपोषित सूक्ष्मजीव हैं जो जलीय तथा स्थलीय वायुमंडल में विस्तृत रूप से पाए जाते हैं। इनमें बहुत से वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकृत कर सकते हैं– जैसे– *ऐनाबीना, नॉसटॉक, ऑसिलेटोरिया* आदि। धान के खेत में सायनोबैक्टीरिया महत्त्वपूर्ण जैव उर्वरक की भूमिका निभाते हैं। नील हरित शैवाल भी मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ा देते हैं; जिससे उसकी उर्वरता बढ़ जाती है। हाल ही में, हमारे देश में जैव उर्वरकों की एक बड़ी संख्या बड़े पैमाने पर बाजार में उपलब्ध है। किसान अपने खेतों में लगातार इनका प्रयोग कर रहे हैं। इससे मृदा पोषक की भरपाई तथा रसायन उर्वरकों पर आश्रिता भी कम हो रही है।

सारांश

सूक्ष्मजीव पृथ्वी पर उपस्थित जीवन के बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटक हैं। सभी सूक्ष्मजीव रोगजनकीय नहीं होते हैं। बहुत से सूक्ष्मजीव मनुष्यों के लिए अत्यंत ही लाभप्रद होते हैं। हम प्रतिदिन सूक्ष्मजीवों तथा सूक्ष्मजीवीय व्युत्पन्न उत्पादों का प्रयोग करते हैं। जीवाणु (बैक्टीरिया) जो लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया (एलएबी) दूध में वृद्धि करते हैं जिससे वह दही में बदल जाता है। गीला गुँथा आटा, जिसका प्रयोग ब्रैड बनाने में किया जाता है, का किण्वन सेकेरोमाइसीज सेरीविसी नामक यीस्ट से किया जाता है। कुछ पकवान जैसे इडली तथा डोसा ऐसे गीले आटे से बनाए जाते हैं; जिन्हें सूक्ष्मजीवियों द्वारा किण्वित किया गया होता है। जीवाणु तथा कवकों का प्रयोग 'चीज' (पनीर) को एक विशेष बनावट, स्वाद तथा सुंगध देने के लिए किया जाता है। सूक्ष्मजीवों का प्रयोग औद्योगिक उत्पाद जैसे लैक्टिक एसिड, एसिटिक एसिड तथा ऐल्कोहल उत्पन्न करने में किया जाता है, जिनका प्रयोग उद्योग में अलग-अलग संसाधनों में किया जाता

© NCERT not to be republished

है। प्रतिजैविक (ऐंटीबायटिक) जैसे पैनीसिलिन का उत्पादन लाभप्रद सूक्ष्मजीवों द्वारा किया जाता है। यह प्रतिजैविक हानिकारक रोगों को उत्पन्न करके सूक्ष्मजीवों को मारने के काम आते हैं। प्रतिजैविक संक्रमित रोग जैसे डिप्थीरिया, काली खाँसी, तथा निमोनिया की रोकथाम में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सौ वर्षों से अधिक के समय से सूक्ष्मजीवों का प्रयोग वाहितमल (व्यर्थ जल) का उपचार सक्रियीत आपंक (अवमल) निर्माण की प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। इससे प्रकृति में जल के पुन:चक्रण में भी सहायता मिलती है। मीथैनोजेन संयंत्र अपशिष्ट के अवकर्षण के दौरान मीथेन (बायोगैस) उत्पन्न करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में सूक्ष्मजीव द्वारा उत्पन्न बायोगैस का उपयोग ऊर्जा के रूप में किया जाता है। सूक्ष्मजीवों का प्रयोग जैवनियंत्रण विधि द्वारा हानिप्रद पीड़कों को मारने के लिए भी किया जाता है। जैवनियंत्रण मापन से विषैले पीड़कनाशियों के प्रयोग में भारी कमी आई है। जिनका उपयोग पीड़क नियंत्रण में किया जाता है। आज समय की माँग है कि रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैव उर्वरकों का प्रयोग किया जाय। इनके विविध उपयोगों से स्पष्ट हो चुका है कि जिनका प्रयोग मनुष्य कर रहा है, मानव समाज के कल्याण में इन सूक्ष्मजीवियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हैं।

अभ्यास

1. जीवाणुओं को नग्न नेत्रों द्वारा नहीं देखा जा सकता, परंतु सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखा जा सकता है। यदि आपको अपने घर से अपनी जीव विज्ञान प्रयोगशाला तक एक नमूना ले जाना हो और सूक्ष्मदर्शी की सहायता से इस नमूने से सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति को प्रदर्शित करना हो, तो किस प्रकार का नमूना आप अपने साथ ले जायेंगे और क्यों?
2. उपापचय के दौरान सूक्ष्मजीव गैसों का निष्कासन करते हैं; उदाहरण द्वारा सिद्ध करें।
3. किस भोजन (आहार) में लैक्टिक एसिड बैक्टीरिया मिलते हैं? इनके कुछ लाभप्रद उपयोगों का वर्णन करें।
4. कुछ पारंपरिक भारतीय आहार जो गेहूँ, चावल तथा चना (अथवा उनके उत्पाद) से बनते हैं और उनमें सूक्ष्मजीवों का प्रयोग शामिल हो, उनके नाम बताएँ।
5. हानिप्रद जीवाणु द्वारा उत्पन्न करने वाले रोगों के नियंत्रण में किस प्रकार सूक्ष्मजीव महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं?
6. किन्हीं दो कवक प्रजातियों के नाम लिखें, जिनका प्रयोग प्रतिजैविकों (ऐंटीबॉयोटिकों) के उत्पादन में किया जाता है।
7. वाहितमल से आप क्या समझते हैं, वाहितमल हमारे लिए किस प्रकार से हानिप्रद हैं?
8. प्राथमिक तथा द्वितीयक वाहितमल उपचार के बीच पाए जाने वाले मुख्य अंतर कौन से हैं?

© NCERT not to be republished

9. सूक्ष्मजीवों का प्रयोग ऊर्जा के स्रोतों के रूप में भी किया जा सकता है। यदि हाँ; तो किस प्रकार से इस पर विचार करें?

10. सूक्ष्मजीवों का प्रयोग रसायन उवर्रकों तथा पीड़कनाशियों के प्रयोग को कम करने के किए भी किया जा सकता है। यह किस प्रकार संपन्न होगा? व्याख्या कीजिए।

11. जल के तीन नमूने लो एक- नदी का जल, दूसरा अनुपचारित वाहितमल जल तथा तीसरा-वाहितमल उपचार संयत्र से निकला द्वितीयक बहि:स्राव; इन तीनों नमूनों पर 'अ' 'ब' 'स' के लेबल लगाओ। इस बारे में प्रयोगशाला कर्मचारी को पता नहीं है कि कौन सा क्या है? इन तीनों नमूनों 'अ' 'ब' 'स' का बीओडि का रिकार्ड किया गया जो क्रमश: 20 mg/L, 8 mg/L तथा 400 mg/L निकाला। इन नमूनों में कौन सा सबसे अधिक प्रदूषित नमूना है? इस तथ्य को सामने रखते हुए कि नदी का जल अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छ है। क्या आप सही लेबल का प्रयोग कर सकते हैं?

12. उस सूक्ष्मजीवी का नाम बताओ जिससे साइक्लोस्पोरिन-ए (प्रतिरक्षा निषेधात्मक औषधि) तथा स्टैटिन (रक्त कोलिस्ट्रॉल लघुकरण कारक) को प्राप्त किया जाता है।

13. निम्नलिखित में सूक्ष्मजीवियों की भूमिका का पता लगाओ तथा अपने अध्यापक से इनके विषय में विचार-विमर्श करें।
    (क) एकल कोशिका प्रोटीन (एससीपी)
    (ख) मृदा

14. निम्नलिखित को घटते क्रम में मानव समाज कल्याण के प्रति उनके महत्त्व के अनुसार संयोजित करें; महत्त्वपूर्ण पदार्थ को पहले रखते हुए कारणों सहित अपना उत्तर लिखें।

    बायोगैस, सिट्रिक एसिड, पैनीसिलिन तथा दही

15. जैव उर्वरक किस प्रकार से मृदा की उवर्रता को बढ़ाते हैं?

© NCERT not to be republished

ईकाई नौ
जैव प्रौद्योगिकी

अध्याय 11
जैव प्रौद्योगिकी—सिद्धांत व प्रक्रम

अध्याय 12
जैव प्रौद्योगिकी एवं उसके उपयोग

17वीं शताब्दी के फ्राँसीसी दार्शनिक, गणितज्ञ तथा जीव वैज्ञानिक रैनी डैसकार्टीज के दिनों से ही समस्त मानव ज्ञान विशेषकर प्रकृत विज्ञान प्रौद्योगिकी के विकास की ओर निर्दिष्ट हुआ; परिणामस्वरूप मानव के जीवन में सुख-साधनों तथा नैतिक मूल्यों में वृद्धि हुई। इस प्रकृत घटना को समझने के तमाम उपगमन मानवोद्‌भवी बन चुके हैं। भौतिकी तथा रसायन विज्ञान ने अभियांत्रिकी, प्रौद्योगिकी तथा औद्योगिकी को जन्म दिया। इन सभी ने मिलकर मानव सुविधाओं तथा उनके कल्याण के लिए कार्य किया। जैव वैज्ञानिक संसार का मुख्य उपयोग खाद्य के स्रोत के रूप में हो रहा है। जैव प्रौद्योगिकी 20वीं शताब्दी में आधुनिक जीव विज्ञान की प्रशाखा है, जिसने हमारी रोजाना की जिंदगी में परिवर्तन ला दिए हैं जीव विज्ञान के उत्पादों ने स्वास्थ्य में गुणात्मक तथा खाद्य उत्पादन में सुधार पैदा कर दिये हैं। जैव प्रौद्योगिकीय प्रक्रमों के मूल भूत सिद्धांतों तथा इनमें कुछ उपयोगों को इस ईकाई में उजागर किया गया तथा उनपर विचार-विमर्श किया गया है।

© NCERT
not to be republished

हरबर्ट बोयर का जन्म 1936 में हुआ तथा उनका पालन-पोषण पश्चिमी पैनसिलवेनिया के एक कोने में जहाँ रेल, सड़कें तथा सुरंगे आदि अधिकांश किशोर व्यक्तियों की नियति थी। पिट्सबर्ग के विश्वविद्यालय में इन्होंने अपना स्नातक अध्ययन समाप्त किया तथा वर्ष 1963 में येले में तीन वर्षों तक इन्होंने स्नात्कोत्तर अध्ययन में बिताए।

वर्ष 1966 में बोयर ने सैन फ्राँसिसको स्थित केलीफोर्निया विश्वविद्यालय में सहायक प्राध्यापक का कार्यभार ग्रहण किया। 1969 तक इन्होंने विशिष्ट लाभदायक गुणों से युक्त ई.कोलाई बैक्टीरियम के प्रतिबंध एंजाइम पर अध्ययन संपन्न किया। बोयर ने पाया कि इन एंजाइमों में डीएनए स्ट्रेंडों को एक विशेष आकृति में काटने की क्षमता होती है और जो शेष बचता है वह स्ट्रैंड पर 'चिपचिपा शीर्ष' कहलाता है। यह कथित शीर्ष सुस्पष्ट अभ्यास में डीएनए के टुकड़ों के साथ जुड़ जाते हैं।

इस खोज के परिणामस्वरूप हवाई स्थित स्टैनफोर्ड वैज्ञानिक स्टैनले कोहेन के मध्य बहुमूल्य तथा लाभदायक विचार-विमर्श हो सका। कोहेन डीएनए के छोटे-छोटे रिंगलैट्स जिन्हें प्लाज्मिड कहते हैं पर कार्य कर रहे थे। यह प्लाज्मिड कुछ विशेष जीवाणुवीय कोशिकाओं के कोशिकाद्रव्य में मुक्त रूप से तैरते रहते हैं तथा डीएनए के कोडिंग स्ट्रैंड से स्वतंत्र रूप में प्रतिकृत करते हैं। कोहन् ने कोशिकाओं से इन प्लाज्मिडों को हटाने तथा इन्हें फिर से अन्य कोशिकाओं में भेजने की विधि विकसित की। डीएनए संघटन का इस प्रक्रम के साथ जुड़ने के कारण बोयर तथा कोहन वांछित विन्यास में डीएनए के खंडों को पुर्नयोजित तथा जीवाणुवीय कोशिकाओं में डीएनए का सन्निवेश तथा आगे चलकर विशिष्ट प्रोटीनों के लिए उत्पादनशील पादपों के रूप में कार्य कर सकना। यह सफलता जैव प्रौद्योगिक विषय का मूलभूत आधार है।

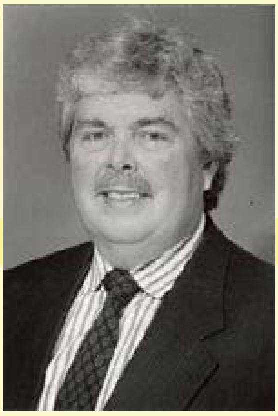

हरबर्ट बोयर
(1936)

© NCERT not to be republished

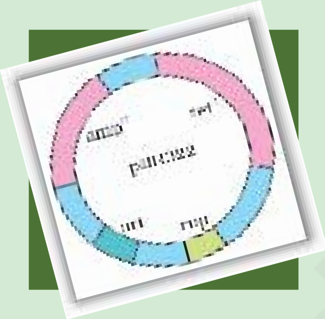

अध्याय 11

जैव प्रौद्योगिकी- सिद्धांत व प्रक्रम

11.1 जैव प्रौद्योगिकी के सिद्धांत

11.2 पुनर्योगज डी एन ए तकनीक के साधन

11.3 पुनर्योगज डी एन ए तकनीक के प्रक्रम

जैव प्रौद्योगिकी (बायोटेक्नॉलजी) में उन तकनीकों का वर्णन मिलता है जिसमें जीवधारियों या उनसे प्राप्त एंजाइमों का उपयोग करते हुए मनुष्य के लिए उपयोगी उत्पाद या प्रक्रमों (प्रोसेस) का विकास किया जाता है। डबल रोटी, शराब इत्यादि सभी, सूक्ष्म जीवों द्वारा संपन्न प्रक्रमों से बनते हैं। यह भी एक प्रकार से जैव प्रौद्योगिकी का परिणाम है। वर्तमान समय में, सीमित अर्थ में जैव प्रौद्योगिकी को देखा जाए तो इनमें वे प्रक्रम आते हैं; जिनमें आनुवंशिकत: रूपांतरित (जेनेटिकली मोडीफाइड) जीवों का उपयोग उपर्युक्त पदार्थों को अधिक मात्रा में उत्पादन के लिए किया जाता है। आगे चलकर अनेक प्रक्रमों / तकनीकों का समावेश जैव प्रौद्योगिकी में किया गया। उदाहरणार्थ- **पात्रे (इन वीट्रो)** निषेचन द्वारा परखनली शिशु का निर्माण, जीन का संश्लेषण एवं उपयोग, डीएनए टीका का निर्माण या दोषयुक्त जीन का सुधार, ये सभी जैव प्रौद्योगिकी के ही भाग हैं।

यूरोपीय जैव प्रौद्योगिकी संघ (इ एफ बी) द्वारा जो जैव प्रौद्योगिकी की परिभाषा दी गयी है, उसमें दोनों परंपरागत विचार व आधुनिक आणविक जैव प्रौद्योगिकी का समावेश है। इ एफ बी द्वारा दी गयी परिभाषा निम्नवत् है- 'नए उत्पादों तथा सेवाओं के लिए। प्राकृतिक विज्ञान व जीवों' कोशिकाओं व इसके अंग तथा आणविक अनुरूपों का समायोजन।

© NCERT not to be republished

11.1 जैव प्रौद्योगिकी के सिद्धांत

आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी के विकास में निम्न दो प्रमुख तकनीकों का योगदान है। ये हैं;

(क) ***आनुवंशिक इंजीनियरिंग***— इस तकनीक द्वारा आनुवंशिक पदार्थो (डीएनए या आरएनए) के रसायन में कर इसे परपोषी जीवों (होस्ट आर्गेनिज़्म) में प्रवेश कराकर इसके समलक्षणी (फीनोटाइप) में परिवर्तन करते हैं।

(ख) ***रासायनिक इंजीनियरिंग प्रक्रमों में रोगाणुरहित*** (सूक्ष्म जीव संदूषण रहित) वातावरण बनाकर केवल वांछित सूक्ष्मजीवों / सुकेंद्रकी कोशिकाओं में वृद्धिकर अधिक मात्रा में जैव प्रौद्योगिकी उत्पादों जैसे- प्रतिजैविकों (एंटीबॉयोटिक), टीके, एंजाइमों आदि का निर्माण किया जाता है।

अब आनुवंशिक इंजीनियरिंग के सिद्धांतों के संकल्पनात्मक विकास के बारे में अध्ययन करेंगे। संभवत: आप अलैंगिक जनन (रिप्रोडेक्शन) की अपेक्षा लैंगिक जनन के फायदों के बारे में जानते हैं। अलैंगिक जनन आनुवंशिकी सूचनाओं को परिरक्षित रखता है जबकि लैंगिक जनन द्वारा विभिन्नता व विशिष्ट आनुवंशिक व्यवस्था के संयोजन के प्रतिपादन का अवसर मिलता है जो जीव या आबादी हेतु लाभकारी हो सकता है। लैंगिक जनन से विभिन्नता उत्पन्न होती है। परंपरागत संकरण की विधियाँ जो पौधों एवं जंतुओं के जनन में उपयोगी है, इनके द्वारा वांछित जीन के साथ-साथ अवांछित जीन का समावेश व गुणन भी हो जाता है। उपर्युक्त कमियों को दूर करने हेतु आनुवंशिक इंजीनियरिंग तकनीकों में **जीन क्लोनिंग** एवं **जीन स्थानांतरण** का उपयोग कर **पुनर्योगज डीएनए** (रीकॉम्बीनेंट डीएनए) का निर्माण किया जाता है जिससे, बिना अवांछित जीनों के केवल एक या एक से अधिक वांछित जीन को चुने हुए जीवों में स्थानांतरित करते हैं।

क्या आप जानते हैं कि विजातीय (एलियन) जीवों में किसी प्रकार से स्थानांतरित किए हुए डीएनए खंड का क्या भविष्य है? संभवत: यह डीएनए जीव की संतति कोशिकाओं में स्वयं गुणित नहीं हो पाएगा। किंतु, जब यह डीएनए आदाता (ग्राही) के जीनोम में जुड़ जाता है तब यह गुणित होकर परपोषी डीएनए के साथ वंशागत हो जाता है। यह विजातीय डीएनए खंड, गुणसूत्र का अंग हो जाता है जिसमें प्रतिकृति करने की क्षमता होती है। एक गुणसूत्र में एक विशिष्ट डीएनए अनुक्रम होता है जिसे **प्रतिकृतीयन (रेप्लिकेशन) का उत्पत्ति** कहते हैं और जो प्रतिकृतियन के लिए उत्तरदायी हैं। किसी भी जीव में किसी विजातीय डीएनए खंड के गुणन हेतु इसे गुणसूत्र का अंग होना आवश्यक है जिसमें एक विशिष्ट अनुक्रम मिलता है जिसे 'प्रतिकृति का मूल (औरिजिन ऑफ रेप्लीकेशन)' कहते हैं। इस प्रकार एक विजातीय डीएनए प्रतिकृति के मूल से जुड़ा रहता है, ताकि डीएनए का विजातीय खंड परपोषी जीव में स्वयं प्रतिकृति व गुणित हो सके। इसे **क्लोनिंग** भी कह सकते हैं या किसी टेम्पलेट डीएनए की समान गुणित संरचना का निर्माण कह सकते हैं।

अब एक कृत्रिम पुनर्योगज डीएनए अणु के निर्माण के बारे में अध्ययन करेंगे।

प्रथम पुनर्योगज डीएनए का निर्माण *सालमोनेला टाइफीमूरियम* के सहज प्लाज्मिड (यह गोलाकार गुणसूत्र बाह्य डीएनए है जो स्वत: प्रतिकृति करता है।) में प्रतिजैविक

© NCERT not to be republished

प्रतिरोधी कूटलेखन जीन के जुड़ने से हो सका था। स्टेनले कोहेन व हरबर्ट बोयर ने 1972 में उपर्युक्त कार्य प्लाज्मिड से डीएनए का टुकड़ा काटकर संपन्न किया जिनमें प्रतिजैविक प्रतिरोध प्रदान करने के लिए जिम्मेदार जीन था। आणविक कैंची कहे जाने वाले **'प्रतिबंधन एंजाइम्स'** (रिस्ट्रिक्सन एंजाइम) की खोज से डीएनए को विशिष्ट जगहों पर काटना संभव हो सका। कटे हुए डीएनए का भाग प्लाज्मिड डीएनए से जोड़ा जाता है। यह प्लाज्मिड डीएनए संवाहक (वेक्टर) की तरह कार्य करता है जो इससे जुड़े डीएनए को स्थानांतरित करता है। संभवत: आप जानते हो कि मच्छर, कीट संवाहक के रूप में मलेरिया परजीवी को मनुष्य शरीर में स्थानांतरित करता है। ठीक उसी तरह से प्लाज्मिड को संवाहक के रूप में प्रयोगकर विजातीय डीएनए के खंड को परपोषी जीवों में पहुँचाया जाता है। प्रतिजैविक प्रतिरोधी जीन को संवाहक के साथ जोड़ने का काम एंजाइम डीएनए लाइगेज के द्वारा होता है जो डीएनए अणु के कटे हुए भाग पर कार्य कर उसके किनारों को जोड़ने का काम करता है। इस संयोजन से पात्रे (इन विट्रो) नये गोलाकार स्वत: प्रतिकृति बनाने वाले डीएनए का निर्माण होता है जिसे पुर्नयोगज डीएनए कहते हैं। जब यह डीएनए *एशरिकिआ कोलाई (ई.कोलाई)* (एक जीवाणु जो सालमोनेल से काफी मिलता-जुलता है) में स्थानांतरित किया जाता है तो यह नए परपोषी के डीएनए पॉलिमरेज एंजाइम का उपयोग कर अनेक प्रतिकृतियाँ बना लेता है। प्रतिजैविक प्रतिरोधी जीन की प्रति का *ई.कोलाई* का गुणन, *ई.कोलाई* में प्रति जैविक प्रतिरोधी जीन की क्लोनिंग कहलाता है।

आप अनुमान लगा सकते हैं कि जीव के आनुवंशिक रूपांतर में मूलभूत तीन चरण हैं—

(क) वांछित जीन युक्त डीएनए की पहचान

(ख) चिह्नित डीएनए का परपोषी में स्थानांतरण

(ग) स्थानांतरित डीएनए को परपोषी में सुरक्षित रखना तथा उसकी संतति में स्थानांतरित करना।

11.2 पुनर्योगज डीएनए तकनीक के साधन

अब हम पूर्ववर्णित चर्चा से जान चुके हैं कि आनुवंशिक इंजीनियरिंग या पुनर्योगज डीएनए तकनीक तभी संपादित हो सकती जब हमारे पास तकनीकी साधन जैसे प्रतिबंधन एंजाइम, पॉलिमरेज एंजाइम, लाइगेज, संवाहक व परपोषी जीव हों। अब इनमें से कुछ के बारे में विस्तृत अध्ययन करेंगे।

11.2.1 प्रतिबंधन एंजाइम

वर्ष 1963 में दो एंजाइम पृथक किए गए जो ई.कोलाई में जीवाणु भोजी (बैक्टीरियोफाज) की वृद्धि को रोक देते है। इनमें एक डीएनए से मिथिल समूह को जोड़ता है, जबकि दूसरा डीएनए को काटता है। बाद वाले एंजाइम को **प्रतिबंधन एंडोन्युक्लिएज** कहा गया।

प्रथम प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लियेज- हिंड II, जिसका कार्य डीएनए न्यूक्लियोटाइड विशिष्ट क्रम पर निर्भर है। यह पाँच वर्ष बाद पृथक किया और पहचाना गया। ऐसा पाया गया कि हिंड II, डीएनए अणु को उस विशेष बिंदु पर काटते हैं जहाँ पर छह क्षारक युग्मों (बेस पेयर) का एक विशेष अनुक्रम होता है। इस **विशिष्ट क्षारक अनुक्रम** को हिंड II,

© NCERT not to be republished

को पहचान अनुक्रम कहते हैं। हिंड II, के अलावा आज 900 से अधिक प्रतिबंधन एंजाइमों के बारे में जानकारी है जो जीवाणुओं के 230 से अधिक प्रभेदों (स्ट्रेंस) से पृथक किए गए हैं; जिनमें से प्रत्येक विभिन्न पहचान अनुक्रमों को पहचानते हैं।

इन एंजाइमों के नामकरण में परंपरानुसार नाम का पहला शब्द वंश व दूसरा एवं तीसरा शब्द प्राकेंद्रकी कोशिकाओं की जाति से लिया गया है, जिनसे ये पृथक किए गए थे। जैसे-ईको आर I (EcoRI) *एशरिशिया कोलाई* आर वाई 13, ईको आर I में वर्ण 'आर (R)' प्रभेद के नाम से लिया गया है। नाम के बाद रोमन अंक उस क्रम को दर्शाते हैं जिसको जीवाणु के प्रभेद से एंजाइम पृथक किए गए थे।

प्रतिबंधन एंजाइम, **न्यूक्लिएजेज** कहलाने वाले एंजाइमों के बड़े वर्ग में आते हैं। **एक्सोन्यूक्लिएज** दो प्रकार के होते हैं— एवं **एंडोन्यूक्लिएज** एक्सोन्यूक्लिएज डीएनए के सिरे से न्यूक्लियोटाइड को अलग करते हैं, जबकि एंडोन्यूक्लिएज डीएनए को भीतर विशिष्ट स्थलों पर काटते हैं। प्रत्येक प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएज डीएनए अनुक्रम की लंबाई के 'निरीक्षण' के बाद कार्य करता है। जब यह अपना विशिष्ट पहचान अनुक्रम पा जाता है तब यह डीएनए से जुड़ता है तथा द्विकुंडलिनी की दोनों लड़ियों को शर्करा-फॉस्फेट आधारस्तंभों में विशिष्ट केंद्रों पर काटता है (चित्र 11.1) प्रत्येक प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएज डीएनए में विशिष्ट **पैलीन्डोमिक न्यूक्लियोटाइड अनुक्रमों** को पहचानता है।

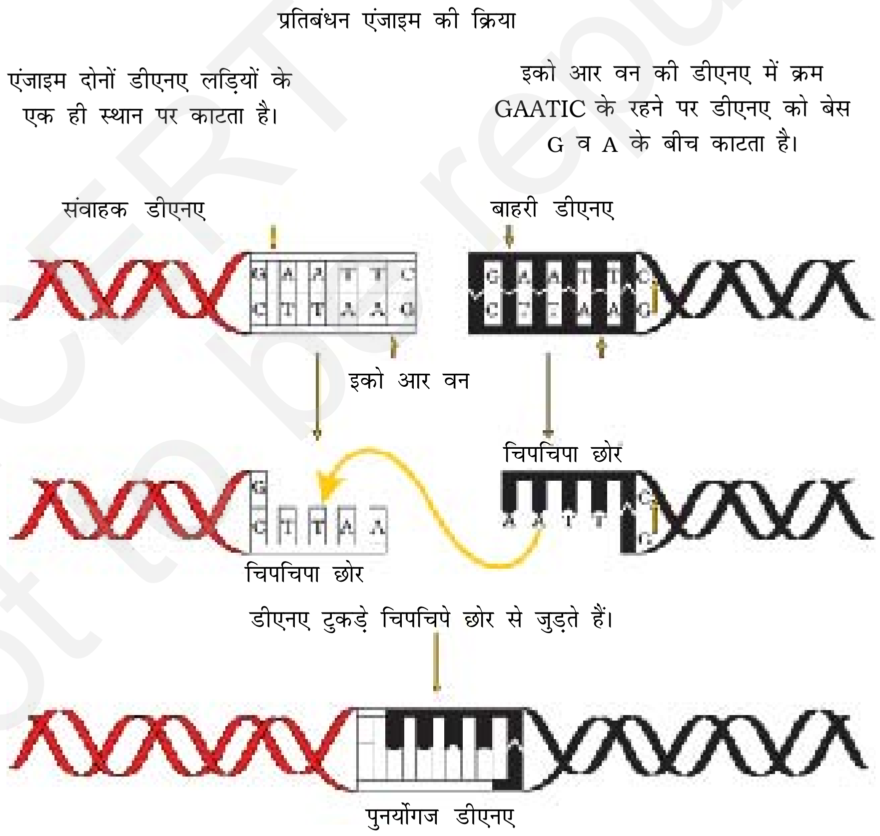

चित्र 11.1 प्रतिबंधन एंजाइम - इको आर वन (EcoR1) की क्रिया द्वारा पुनर्योगज डीएनए के निर्माण के चरण

© NCERT not to be republished

क्या आप जानते हो कि पैलिंड्रोम क्या हैं? ये वर्णों के समूह हैं जिन्हें आगे व पीछे दोनों तरफ से पढ़ने पर एक ही शब्द बनता है जैसे 'मलयालम'। शब्द पैलिंड्रोम और डीएनए पैलिंड्रोम में अंतर है। डीएनए में पैलिंड्रोम क्षारक युग्मों का एक ऐसा अनुक्रम होता है जो पढ़ने के अभिविन्यास को समान रखने पर दोनों लड़ियों में एक जैसे पढ़ा जाता है। उदाहरणार्थ- निम्न अनुक्रमों को '5 → 3' दिशा में पढ़ने पर दोनों लड़ियों में एक जैसा पढ़ा जाएगा। अगर इसे 3' → 5' दिशा में पढ़ा जाए तब भी यह बात सही बैठती है-

5' — जी ए ए टी टी सी — 3'
(GAATTC),
3' — सी टी टी ए ए जी — 5'
(GAATTC)

प्रतिबंधन एंजाइम डीएनए लड़ी को पैलिंड्रोम स्थल के केंद्र से थोड़ी दूरी पर लेकिन विपरीत लड़ियों में दो समान क्षारकों के बीच काटते हैं। जिसके फलस्वरूप सिरों पर एक लड़ीय भाग रह जाता है। प्रत्येक लड़ी में प्रलंबी फैलाव मिलते हैं जिन्हें चिपचिपा

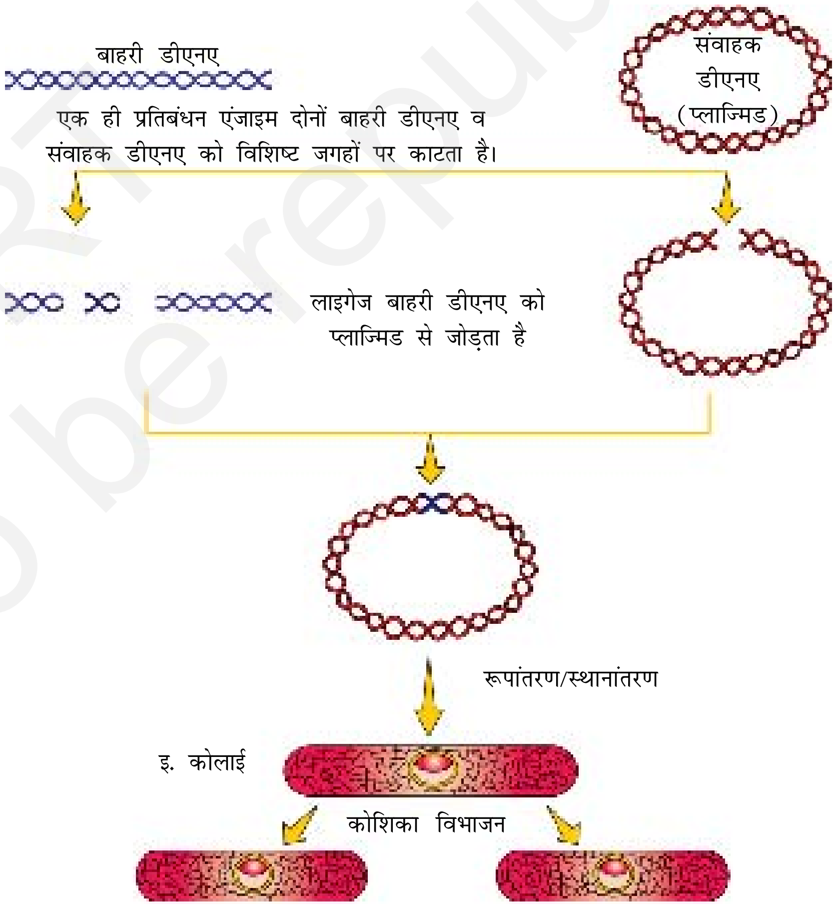

चित्र 11.2 पुनर्योगज डीएनए तकनीक का आरेखीय प्रदर्शन

© NCERT not to be republished

(स्टिकी) सिरा कहते हैं (चित्र 11.1)। इसे यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि यह अपने पूरक कटे प्रतिरूप के साथ हाइड्रोजन आबंध (बॉन्ड) बनाते हैं। सिरों का यह चिपचिपापन एंजाइम डीएनए लाइगेज के कार्य में सहायता प्रदान करता है।

प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएज का उपयोग आनुवंशिक इंजीनियरिंग में डीएनए के पुनर्योगज अणु बनाने में किया जाता है जो विभिन्न स्रोतों या जीनोमों से प्राप्त डीएनए से मिलकर बना होता है।

एक ही प्रतिबंधन एंजाइम द्वारा काटने पर प्राप्त होने वाले डीएनए खंडों में समान प्रकार को 'चिपचिपे सिरे' होते हैं, जो डीएनए लाइगेज की सहायता से आपस में (किनारे से किनारा) जुड़ जाते हैं (चित्र 11.2)।

आप पूर्ण रूप से समझ चुके होंगे कि सामान्यत: जब तक संवाहक व स्रोत डीएनए एक ही प्रतिबंधन एंजाइम द्वारा नहीं काटे जाते हैं तब तक पुनर्योगज संवाहक अणु का निर्माण नहीं हो सकता है।

डीएनए खंड का पृथक्करण एवं विलगन- प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएज द्वारा डीएनए को काटने के परिणामस्वरूप डीएनए का खंडन हो जाता है। इन खंडों को एक तकनीक द्वारा अलग कर सकते हैं जिसे **जेल वैद्युत का संचलन (इलेक्ट्रोफोरेसिस)** कहते हैं। चूँकि डीएनए खंड ऋणात्मक आवेशित (चार्जड) अणु होते हैं, इसलिए इन्हें विद्युत क्षेत्र में माध्यम / आधात्री द्वारा ऐनोड की तरफ बलपूर्वक भेजकर अलग कर सकते हैं। आजकल बहुत ही सामान्य रूप से उपयोग किया जाने वाला माध्यम, ऐगारोज है जो समुद्रीय घास (सी वीडस) से निकाला गया एक प्राकृतिक बहुलक (पॉलिमर) है। डीएनए खंडों को ऐगारोज जेल के छलनी प्रभाव द्वारा उनके आकार के अनुसार अलग करते हैं। इस कारण खंड जितने छोटे आकार के होंगे, वे अधिक दूर तक जायेंगे। चित्र 11.3 देखिए और अनुमान लगाइए कि जेल के किस सिरे पर प्रतिदर्श (सेंपल) लादा गया था।

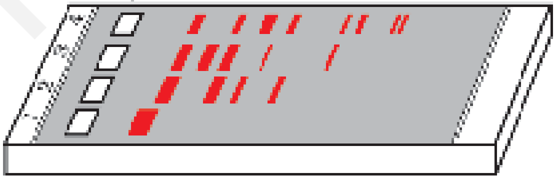

चित्र 11.3 एक प्रारूपी एगरोज जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस जो असार संग्रही (पथ 1) व सार संग्रही डीएनए खंडों के समूह का स्थानांतरण प्रदर्शित करता है (पथ 2 से 4)

पृथक्कृत डीएनए खंडों को तभी देख सकते हैं जब इस डीएनए को इथीडियम ब्रोमाइड नामक यौगिक से अभिरंजित कर पराबैंगनी विकिरणों से अनावृत्त करते हैं। (आप शुद्ध डीएनए खंडों को दृश्य प्रकाश में बिना अभिरंजित किए नहीं देख सकते।) इथीडियम ब्रोमाइड अभिरंजित (स्टेन्ड) जेल को पराबैंगनी प्रकाश से अनावृत्त करने पर डीएनए की चमकीली नारंगी रंग की पट्टी दिखाई पड़ती है (चित्र 11.3)। डीएनए की पृथक्कृत पट्टियों को ऐगारोज जेल से काट कर निकालते हैं और जेल के टुकड़ों से निष्कर्षित (एक्सट्रेक्ट) कर लेते हैं। इस प्रक्रिया को क्षालन (इलूसन) के कहते हैं। इस तरह से शुद्ध किए गए डीएनए को क्लोनिंग संवाहक से जोड़कर, पुनर्योगज डीएनए निर्माण में उपयोग किया जाता है।

11.2.2 क्लोनिंग संवाहक

आप जानते ही हैं कि प्लाज्मिड व जीवाणुभोजी, जीवाणु कोशिकाओं में, बिना गुणसूत्रीय डीएनए नियंत्रण के स्वतंत्र रूप से प्रतिकृति करने की क्षमता रखते हैं। जीवाणुभोजियों की प्रत्येक कोशिका में काफी अधिक संख्या होने से जीवाणु कोशिका में इनके जीनोम की कई प्रतिकृति मिलती है। कुछ प्लाज्मिड की, प्रतिकोशिका केवल एक या दो जबकि दूसरों की 15 से 100 प्रतिकृति मिलती है। इनकी संख्या इससे भी ज्यादा हो सकती है। यदि हम विजातीय डीएनए खंड को जीवाणुभोजी या प्लाज्मिड डीएनए के साथ जोड़ सकें तो इनकी संख्या को भी जीवाणुभोजी या प्लाज्मिड की प्रतिकृति संख्या के समान गुणित कर सकते हैं। वर्तमान समय में उपयोग किये जा रहे संवाहक इस प्रकार से तैयार किए जाते हैं कि इन्हें बाहरी डीएनए से जोड़ने व अपुनर्योगिजों से पुनर्योगजों के चयन में सहायता मिलती है।

संवाहक में क्लोनिंग करने हेतु निम्न विशेषताओं की आवश्यकता होती है—

(क) ***प्रतिकृतियन का उत्पत्ति (ori का प्रारंभ)*** — यह वह अनुक्रम है जहाँ से प्रतिकृतीयन की शुरुआत होती है और जब कोई डीएनए का कोई खंड इस अनुक्रम से जुड़ जाता है तब परपोषी कोशिकाओं के अंदर प्रतिकृति कर सकता है। यह अनुक्रम जोड़े गए डीएनए के प्रतिरूपों की संख्या के नियंत्रण के लिए भी उत्तरदायी है। इसलिए यदि कोई लक्ष्य डीएनए की काफी संख्या प्राप्त करना चाहता है तो इसे ऐसे संवाहक में क्लोन करना चाहिए जिसका मूल (ori) अत्यधिक प्रतिरूप बनाने में सहयोग करता है।

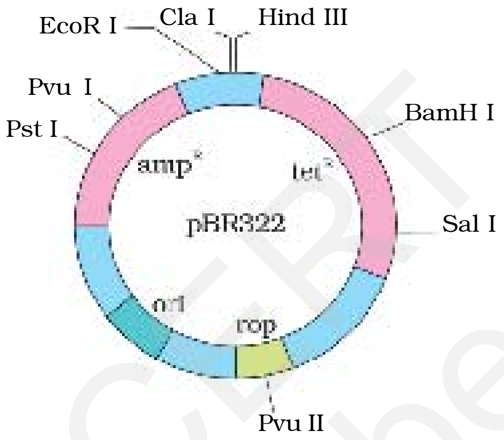

चित्र 11.4 इ. कोलाई क्लोनिंग संवाहक pBR322 में प्रतिबंधन स्थल (*Hind* III, *EcoR* I, *BamH* I, *Sal* I, *Pvu* II, *Pst* I, *Cla* I), ori व प्रतिजैविक प्रतिरोधी जीन (**amp**^{R} व **tet**^{R}) **rop** प्लाज्मिड के प्रतिकृति में भाग लेने वाले प्रोटीन का कूट लेखन करता है।

(ख) ***वरण योग्य चिह्नक*** — 'ori' के साथ संवाहक को वरणयोग्य चिह्नक की आवश्यकता भी होती है, जो अरूपांतरजों (नॉन-ट्रॉन्स्फॉर्मिन्ट्स) की पहचान व उन्हें समाप्त करने में सहायक हो और रूपांतरजों की चयनात्मक वृद्धि को होने दे **रूपांतरण** (ट्रॉन्स्फार्मेशन) एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा डीएनए के एक खंड को परपोषी जीवाणु में प्रवेश कराते हैं। (आप आगे के खंडों में इस प्रक्रिया का अध्ययन करेंगे)। सामान्यतया एंपिसिलिन, क्लोरैम्फेनिकॉल, टेट्रोसाइक्लीन या केनामाइसीन जैसे प्रतिजैविक (एंटीबॉयोटिक) के प्रति प्रतिरोध कोडित करने (एन्कोडिंग) वाले जीन ई.कोलाई के लिए उपयोगी वरणयोग्य चिह्नक माने जाते हैं। सामान्य ई.कोलाई कोशिकाओं में इनमें से किसी प्रतिजैविक के प्रति, प्रतिरोध नहीं होता।

(ग) ***क्लोनिंग स्थल*** — विजातीय डीएनए को जोड़ने हेतु सामान्यत: काम में लिए जा रहे प्रतिबंधित एंजाइम के लिए संवाहक में कुछ या एक ही पहचान स्थल होना चाहिए। संवाहक के अंदर एक से अधिक पहचान स्थल होने पर इसके कई खंड बन जाते हैं जो जीन क्लोनिंग को जटिल बना देते हैं। (चित्र 11.4) विजातीय डीएनए का बंधन (लीगेशन) उन दोनों प्रतिजैविक

© NCERT not to be republished

प्रतिरोधी जीनों में से एक में स्थित प्रतिबंध स्थल पर किया जाता है। उदाहरणार्थ आप विजातीय डीएनए को संवाहक पी बी आर 322 (PBR322) में स्थित टेट्रासाइक्लीन प्रतिरोधी जीन के स्थल से जोड़ सकते हैं। पुनर्योगज प्लाज्मिड का ट्रेटासाइक्लीन प्रतिरोध बाहरी डीएनए के निवेशन (इन्सर्शन) से समाप्त हो जाता है लेकिन रूपांतरज को एंपिसिलिन युक्त माध्यम पर फैलाकर इसका अपुनर्योगज से अभी भी चयन कर सकते हैं। एंपिसिलिन युक्त माध्यम पर वृद्धि करने वाले रूपांतरजों को तब टेट्रासाइक्लीन युक्त माध्यम पर स्थानांतरित कर देते हैं। पुनर्योगज एंपिसिलिन युक्त माध्यम पर तो वर्धन करेगा, लेकिन टेट्रासाइक्लीन युक्त माध्यम पर वर्धन नहीं करेगा। लेकिन अपुनर्योगज दोनों ही प्रतिजैविक युक्त माध्यम पर वर्धन करेगा। इस मामले में एक प्रतिजैविक प्रतिरोधी जीन रूपांतरजों के चुनाव में सहायता करता है जबकि दूसरा प्रतिजैविक प्रतिरोध जीन विजातीय डीएनए के 'निवेशन' से निष्क्रिय' हो जाता है और पुनर्योगजों के चुनाव में सहायता करता है।

प्रतिजैविकों के निष्क्रियण के कारण पुर्नयोगज का चयन एक जटिल विधि है क्योंकि इसमें दो प्लेटों, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रतिजैविक होता है, पर साथ- साथ प्लेटिंग की जरूरत होती है। इस कारण से वैकल्पिक वरणयोग्य चिह्नकों का विकास हुआ जो पुर्नयोगजों को अपुर्नयोगजों से इस आधार पर विभेद करता है वे वर्णोकोत्पादकी (क्रोमोजेनिक) पदार्थ की उपस्थिति में रंग पैदा करने में सक्षम होते हैं। इसमें एक पुनर्योगज डीएनए को बीटा गैलक्टोसाइडेज एंजाइम निष्क्रिय हो जाता है जिसे **निवेशी निष्क्रियता** (इनसर्शनल इनएक्टीवेशन) कहते हैं। यदि जीवाणु में प्लाज्मिड में संसर्गिका (इंसर्ट) नहीं होता है तब वर्णोकात्पादकी पदार्थ की उपस्थिति में नीले रंग को निवह (कालोनी) का निर्माण होता है। संसर्गिका की उपस्थिति के परिणामस्वरूप बीटा-गलैक्टोसाइडेस का निवेशी निष्क्रियण हो जाता है जिससे बिना रंग वाली कालोनी बनती है जिसे पुर्नयोगज कालोनी के रूप में पहचानते हैं।

(घ) ***पौधों व जंतुओं में जीन क्लोनिंग हेतु संवाहक*** — आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जीनों को पादप और जंतुओं में स्थानांतरित करना हमने जीवाणुओं और विषाणुओं से सीखा जिन्हें यह बात चिरकाल से पता थी — वे जानते थे कि सुकेंद्रकी (यूकैरियोटिक) कोशिकाओं के रूपांतरित करने के लिए जीनों का कैसे उपयोग किया जाए और वे (जीवाणु तथा विषाणु) जो चाहते हैं वैसा करने के लिए जीनो को बाध्य करते हैं। उदाहरणार्थ— एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमीफेशिएंस कई द्विबीज पत्री पौधों का रोगजनक पैथोजन है। वह डीएनए के एक खंड जिसे 'टी.-डीएनए' कहते हैं, को स्थानांतरित कर सामान्य पौधों की कोशिकाओं को **अर्बुद (ट्यूमर)** में रूपांतरित करता है और ये अर्बुद कोशिकाएँ रोगजनक के लिए जरूरी रसायनों का उत्पादन करते हैं। ठीक इसी तरह से जंतु कोशिकाओं में पश्चविषाणु (रीट्रोवायरस) सामान्य कोशिकाओं को **कैंसर** कोशिकाओं में रूपांतरित कर देते हैं। रोगजनकों द्वारा

© NCERT not to be republished

अपने सुकेंद्रकी परपोषी में जीन स्थानांतरण की कला को अच्छी तरह से समझ कर रोग जनकों की इस विधि का उपयोग कर, अच्छे संवाहक के रूप में प्रयोग कर, मानव के लिए उपयोगी जीन का स्थानांतरण कर सकते हैं। एग्रोवैक्टीरीयम ट्यूमीफेशियंस का टी आई (Ti) प्लाज्मिड क्लोनिंग संवाहक के रूप में अब रूपांतरित कर दिया गया है जो पौधों के लिए रोग जनक नहीं है, लेकिन इसका उपयोग अपनी अभिरूचि के जीन को अनेक पौधों में स्थनांतरित करने में किया जाता है। ठीक इसी तरह से पश्चविषाणु को अहानिकारक बनाकर जंतु कोशिकाओं में वांछित जीन को रूपांतरित करने में उपयोग किया जाता है। इस तरह से जब एक जीन या डीएनए के खंड को उचित संवाहक से जोड़ दिया जाता है तब इसे जीवाणु, पौधों व जंतु परपोषी में स्थानांतरित किया जाता है (जहाँ यह गुणित होता रहता है)।

11.2.3 सक्षम परपोषी आतिथेय (पुनर्योगज डीएनए के साथ रूपांतरण हेतु)

चूँकि डीएनए जलरागी (हाइड्रोफिलिक) अणु है, इसलिए यह कोशिका झिल्ली से होकर नहीं गुजर सकता है। क्यों? जीवाणु को प्लाज्मिड लेने के लिए बाध्य करने से पूर्व यह आवश्यक है कि जीवाणु कोशिका को डीएनए लेते हेतु 'सक्षम' बनाया जाए। ऐसा करने के लिए पहले द्विसंयोजन धनायन (डाइबैलेंट कैटायन) जैसे कि कैल्सियम की विशिष्ट सांद्रता के साथ संसाधित किया जाता है। इससे डीएनए को जीवाणु की कोशिका भित्ति में स्थित छिद्रों से प्रवेश करने में काफी सहायता मिलती है। ऐसी कोशिकाओं को पुनर्योगज डीएनए के साथ पहले बर्फ पर रखा जाता है तब पुनर्योगज डीएनए को उन कोशिकाओं में बलपूर्वक प्रवेश कराया जाता है। इसके बाद उन्हें थोड़े समय के लिए 42 डिग्री. सेल्सीयस (तापप्रघात) पर रखा जाता है और पुनः इसे वापस बर्फ पर रखा जाता है। ऐसा करने से पुर्नयोगज डीएनए जीवाणु में प्रवेश कर जाता है।

परपोषी कोशिकाओं में विजातीय डीएनए को प्रवेश कराने हेतु केवल यही विधि नहीं है। **सूक्ष्म अंतःक्षेपण** (माइक्रोइंजेक्सन) विधि में पुनर्योगज डीएनए को सीधे जंतु कोशिका के केंद्रक के भीतर अंतःक्षेपित किया जाता है। दूसरी विधि जो पौधों के लिए उपयोगी है, कोशिकाओं पर डीएनए से विलेपित, स्वर्ण या टंगस्टन के उच्च वेग सूक्ष्म कणों से बमबारी करते हैं जिसे **बायोलिस्टीक** या **जीन गन** कहते हैं। अंतिम विधि जिसमें 'अहानिकारक रोगजनक' संवाहक का उपयोग किया जाता है। इन सवांहकों को जब कोशिकाओं को संक्रमित करने दिया जाता है तब ये पुनर्योगज डीएनए को परपोषी में स्थानांतरित कर देते हैं।

आप पुनर्योगज डीएनए निर्माण के तरीकों के बारे में सीख चुके होंगे। अब उन प्रक्रमों का वर्णन करेंगे जो पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी को आगे बढ़ाने में सुगम बनाते हैं।

11.3 पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी के प्रक्रम

पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी (टेक्नोलॉजी) चरण विशिष्ट अनुक्रम में सम्मिलित हैं जैसे डीएनए का विलगन (पृथक्करण), डीएनए का खंडन, डीएनए खंड का संवाहक से

© NCERT not to be republished

बंधन, पुनर्योगज डीएनए का परपोषी में स्थानांतरण, परपोषी कोशिकाओं का माध्यम में व्यापक स्तर पर संवर्धन व वंछित उत्पाद का निष्कर्षण। अब इन सभी चरणों की थोड़ा विस्तृत रूप में अध्ययन करेंगे।

11.3.1 आनुवंशिक पदार्थ (डीएनए) का पृथक्करण

याद रखें कि बिना अपवाद के सभी जीव का आनुवंशिक पदार्थ न्यूक्लिक अम्ल है। अधिकांश जीवों में यह डिऑक्सीराबोन्यूक्लिक अम्ल या डीएनए है। डीएनए को प्रतिबंधन एंजाइम द्वारा काटने के लिए यह आवश्यक है कि यह दूसरे वृहद्-अणुओं से मुक्त, शुद्ध रूप में होना चाहिए। डीएनए झिल्लियों से घिरा रहता है इसलिए कोशिका को तोड़कर खोलना पड़ेगा ताकि डीएनए दूसरे वृहद अणुओं जैसे आरएनए, प्रोटीन, बहुशर्करा, लिपिड के साथ मोचित (रिलीज) हो सके। यह तभी संभव है जब जीवाणु कोशिका/पादप या जंतु ऊतक, **लाइसोजाइम** (जीवाणु), **सेलुलेज** (पादपकोशिका), **काइटिनेज** (कवक) जैसे एंजाइम द्वारा संसाधित किए जाते हैं। आप जानते हो जीन डीएनए के लंबे अणुओं पर स्थित होते हैं व हिस्टोन जैसे प्रोटीनों के साथ गुँथे रहते हैं। आरएनए को राइबोन्यूक्लियेज से उपचारित कर अलग कर सकते हैं जबकि प्रोटीन को प्रोटीएज से उपचारित कराने के बाद अलग कर सकते हैं। दूसरे अणुओं को उचित उपचार द्वारा अलग कर सकते हैं। अंततोगत्वा द्रुतशीतित (चिल्ड) एथेनॉल मिलाने से शोधित डीएनए अवक्षेपित (प्रेसिपिटेट) हो जाता है। इसे निलंबन में महीन धागों के समूह के रूप में देख सकते हैं (चित्र 11.5)।

चित्र 11.5 पृथक किए गए डीएनए को स्पूलिंग द्वारा अलग करना

11.3.2 डीएनए को विशिष्ट स्थलों पर काटना

शोधित डीएनए अणुओं को प्रतिबंधन एंजाइम के साथ उनकी इष्टतम (ऑप्टिमम) परिस्थितियों में रखने पर प्रतिबंधन एंजाइम द्वारा पाचन संपन्न होता है। ऐगारोज जेल वैद्युत का संचलन प्रतिबंधन एंजाइम पाचन को नियंत्रित करने के काम में आता है। डीएनए एक ऋणात्मक आवेशित अणु है। इस कारण से यह धनात्मक इलेक्ट्रोड (एनोड) की ओर गति करता है (चित्र 11.3)। यह प्रक्रम संवाहक डीएनए के साथ भी दोहराया जाता है।

डीएनए के जुड़ने में कई प्रक्रम शामिल हैं। स्रोत डीएनए व संवाहक डीएनए को भी विशिष्ट प्रतिबंधन एंजाइम द्वारा काटे जाने के बाद, स्रोत डीएनए से कटा हुआ 'उपयोगी जीन' तथा उसकी खाली जगह के साथ संवाहक आपस में लाइगेज द्वारा जोड़ दिए जाते हैं। परिणामस्वरूप एक पुनर्योगज डीएनए का निर्माण होता है।

11.3.3 पीसीआर का उपयोग करते हुए लाभकारी जीन का प्रवर्धन

पीसीआर का अर्थ **पोलीमरेजचेन रिऐक्शन (पॉलिमरेज शृंखला अभिक्रिया)** है। इस अभिक्रिया में उपक्रमकों (प्राइमर्स- छोटे रासायनिक संश्लेषित अल्पन्यूक्लियोटाइड जो

© NCERT not to be republished

डीएनए क्षेत्र के पूरक होते हैं) के दो समुच्चयों (सेट्स) व डीएनए पॉलिमरेज एंजाइम का उपयोग करते हुए पात्रे (इनविट्रो) विधि द्वारा उपयोगी जीन के कई प्रतिकृतियों का संश्लेषण होता है। यह एंजाइम जिनोमिक डीएनए को टेंपलेट के रूप में काम में लेकर; अभिक्रिया से मिलने वाले न्यूक्लियोटाइडों का उपयोग करते हुए उपक्रामकों को विस्तृत कर देता है। यदि डीएनए प्रतिकृतयेन प्रक्रम कई बार दोहराया जाता है तब डीएनए खंड को लगभग एक अरब गुना (एक बिलियन) प्रवर्धित किया जा सकता है अर्थात् एक अरब प्रतिरूपों का निर्माण होता है। यह सतत् प्रवर्धन तापस्थायी (थर्मोस्टेबल) डीएनए पॉलिमरेज (जीवाणु, *थर्मस एक्वेटिकस* से पृथक किया गया है) द्वारा किया जाता है। उच्च तापमान द्वारा प्रेरित द्विलड़ीय डीएनए के विकृतीकरण के समय भी यह हमेशा सक्रिय बना रहता है। यदि आवश्यकता पड़े, तो अब प्रवर्धित खंड को संवाहक के साथ बांध कर आगे क्लोनिंग में प्रयोग कर सकते हैं। (चित्र 11.6)

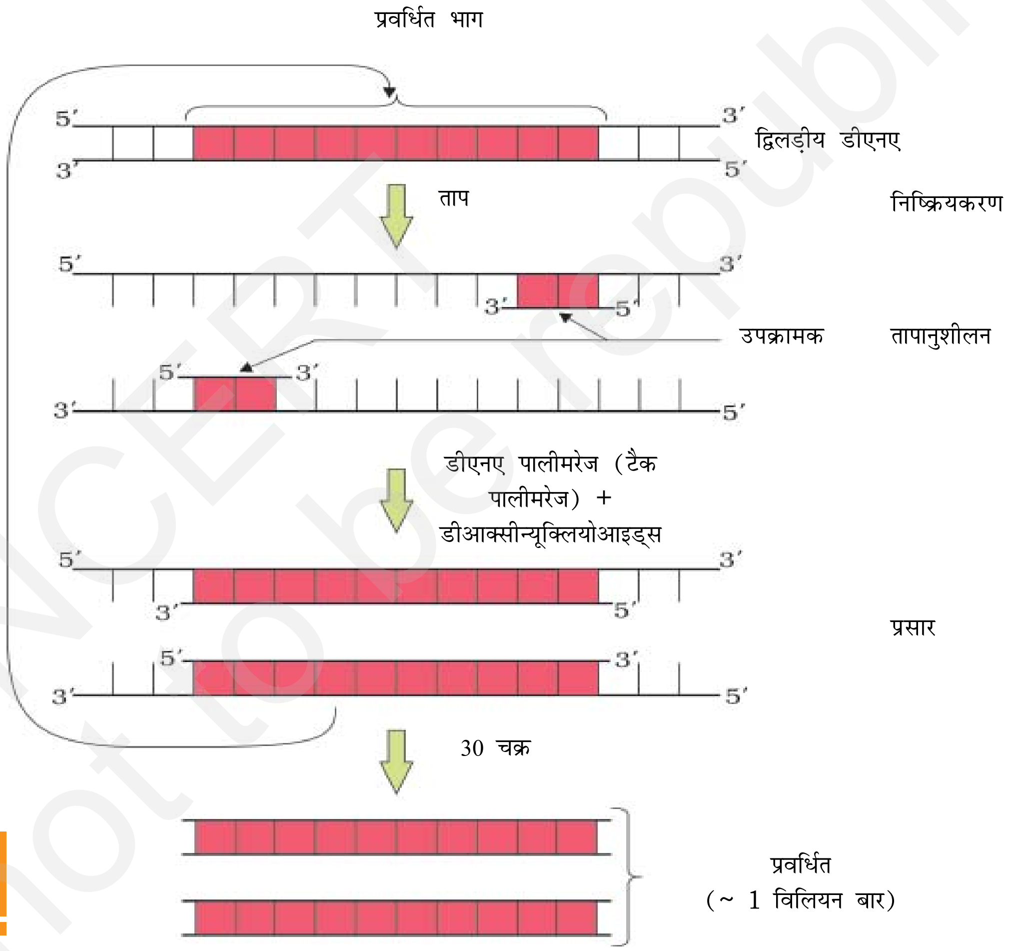

चित्र 11.6 पालिमरेज शृंखला अभिक्रिया (पीसीआर) का प्रदर्शन — प्रत्येक चक्र में तीन चरण हैं — (अ) निष्क्रियकरण (ब) उपक्रामक तापानुशीलन व (स) उपक्रामकों का विस्तार

© NCERT not to be republished

11.3.4 पुनर्योगज डीएनए का परपोषी कोशिका/जीव में निवेशन

बँधे हुए डीएनए को आदाता कोशिका में प्रवेश कराने की अनेक विधियाँ हैं। यह कार्य जब आदाता कोशिका अपने चारों तरफ स्थित डीएनए को धारण करने में सक्षम हो जाए तब किया जा सकता है। यदि पुनर्योगज डीएनए को जिसमें प्रतिजैविक (उदाहरण-एंपिसिलिन) के प्रति प्रतिरोधी जीन स्थित होता है, ई कोलाई कोशिकाओं में स्थानांतरित किया जाए तो परपोषी कोशिकाएँ प्रतिरोधी कोशिकाओं में रूपांतरित हो जाती है। यदि रूपांतरित कोशिकाओं को युक्त ऐगार प्लेट पर फैलाया जाता है तो केवल कोशिकाएँ ही विकसित हो पाती हैं जबकि अरूपांतरित आदाता कोशिकाओं की मृत्यु हो जाती है। प्रतिरोधी जीन के कारण कोई भी एंपिसिलिन की उपस्थिति में रूपांतरित कोशिका का चयन कर सकता है। इस मामलें में प्रतिरोधी जीन को **वरणयोग्य चिह्नक** कहते हैं।

11.3.5 बाहरी जीन उत्पाद को प्राप्त करना

जब आप विजातीय डीएनए खंड का क्लोनिंग संवाहक में निवेश कराकर किसी भी जीवाणु, पौधा या जंतु कोशिका में स्थानांतरित करते हैं तो विजातीय डीएनए इनमें गुणित होने लगता है। लगभग सभी पुनर्योगज प्रौद्योगिकियों का अंतिम उद्देश्य वांछित प्रोटीन का उत्पादन करना ही होता है। इसके लिए पुनर्योगज डीएनए के अभिव्यक्त होने की आवश्यकता होती है। बाहरी जीन उपयुक्त परिस्थितियों में अभिव्यक्त होते हैं। बाहरी जीन की परपोषी कोशिकाओं में अभिव्यक्ति को समझने के लिए कई तकनीकी बातों को विस्तारपूर्वक जानना जरूरी है।

वांछित जीन को क्लोन करने, लक्ष्य प्रोटीन की अभिव्यक्ति को प्रेरित करने वाली परिस्थितियों को अनुकूलतम बनाने के बाद कोई भी इनका व्यापक स्तर पर उत्पादन करने के बारे में सोच सकता है। *क्या आप कोई कारण बता सकते हैं कि बड़े पैमाने पर उत्पादन क्यों आवश्यक है?* यदि कोई प्रोटीन कूटलेखन (इनकोडिंग) जीन किसी विषमजात (हेटेरोलोगस) परपोषी में अभिव्यक्त होता है तो इसे **'पुनर्योगज प्रोटीन'** कहते है। लाभकारी क्लोनित जीनों को आश्रय देने वाली कोशिकाओं का छोटे पैमाने पर प्रयोगशाला में वर्धन किया जा सकता है। संवर्धन को वांछित प्रोटीन के निष्कर्षण में प्रयोग कर सकते हैं व पृथक्करण की विभिन्न तकनीकों का प्रयोग करते हुए इस प्रोटीन का शोधन करते हैं। कोशिकाओं को सतत् संवर्धन तंत्र में गुणित कर सकते हैं, जिसमें उपयोग किए गए माध्यम को एक तरफ से निकालकर दूसरी तरफ से ताजा माध्यम को भरते हैं ताकि कोशिकाएँ अपने क्रियात्मक रूप से सर्वाधिक सक्रिय लॉग (एक्स्पोनेन्शियल) प्रावस्था में बनी रहें। यह संवधन विधि अधिक जैवमात्रा के उत्पादन से वांछित प्रोटीन के अधिक उत्पादन हेतु उपयोगी है।

कम आयतन संवर्धन से उत्पाद की पर्याप्त मात्रा का उत्पादन नहीं हो सकता। इन उत्पादों के अधिक मात्रा में उत्पादन हेतु **बायोरिटर** के विकास की आवश्यकता थी, जहाँ सवंर्धन का अधिक आयतन (100-1000लीटर) संशोधित किया जा सके। इस प्रकार बायोरिएक्टर एक बर्तन के समान है, जिसमें सूक्ष्मजीवों, पौधों, जंतुओं व मानव कोशिकाओं का उपयोग करते हुए कच्चे माल को जैव रूप से विशिष्ट उत्पादों व्यष्टि

© NCERT not to be republished

एंजाइम आदि, में परिवर्तित किया जाता है। बायोरिएक्टर, वांछित उत्पाद पाने के लिए, अनुकूलतम परिस्थितियाँ उपलब्ध करता है। वृद्धि के लिए ये अनुकूलतम परिस्थितियाँ है– तापमान, ph, क्रियाधार, लवण, विटामिन, ऑक्सीजन। जो बायोरिएक्टर सामान्यतया सर्वाधिक उपयोग में लाया जाता है वह विलोडन (स्टिरिंग) प्रकार का है जिसे चित्र 11.7 में दर्शाया गया है।

विलोडित हौज रिएक्टर सामान्यतया बेलनाकार होते हैं या जिनके आधार घुमावदार होने से रिएक्टर के अंदर अंर्तवस्तु के मिश्रण में सहायता मिलती है। विलोडक बायोरिएक्टर में ऑक्सीजन उपलब्धता व उसके मिश्रण का काम करते हैं। विकल्पत: हवा बुलबले के रूप में बायोरिएक्टर में भेजी जा सकती है। यदि आप चित्र को ध्यान से देखें तो पायेंगे कि रिएक्टर में एक प्रक्षोभक तंत्र (एजिटेटर सिस्टम), ऑक्सीजन प्रदाय तंत्र, झाग नियंत्रण तंत्र, तापक्रम नियंत्रण तंत्र, पीएच नियंत्रण तंत्र व प्रतिचयन प्रद्वार लगा होता है जिससे संवर्धन की थोड़ी मात्रा समय-समय पर निकाली जा सकती है।

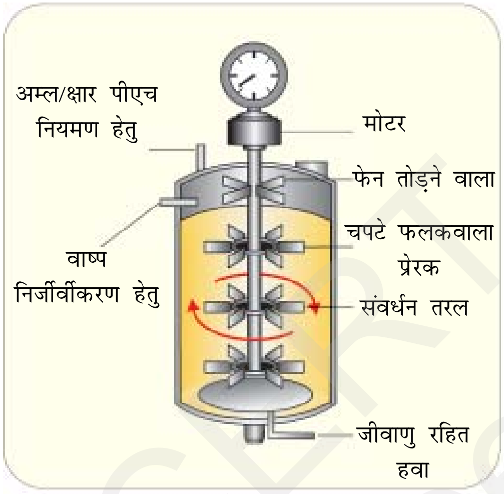

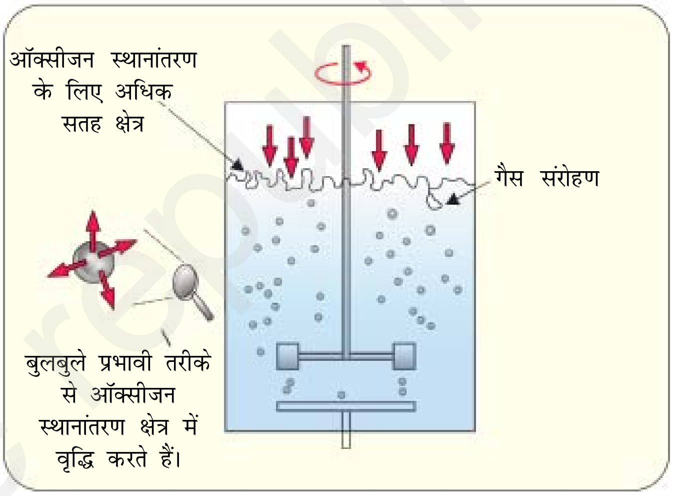

चित्र 11.7 (अ) साधारण बिलोडन हौज बायोरिएक्टर (ब) दंड विलोडक हौज बायोरिएक्टर जिसके द्वारा जीवाणु विहीन हवा के बुलबुलों का प्रवेश

11.3.6 अनुप्रवाह संसाधन

जैव संश्लेषित अवस्था के पूर्ण होने के बाद परिष्कृत तैयार होने व विपणन के लिए भेजे जाने से पहले कई प्रक्रमों से होकर गुजरता है। इन प्रक्रमों में पृथक्करण व शोधन सम्मिलित है और इसे सामूहिक रूप से अनुप्रवाह संसाधन कहते हैं। उत्पाद को उचित परिरक्षक के साथ संरूपित करते हैं। औषधि के मामले में ऐसे संरूपण (फार्मुलेशन) को चिकित्सीय परीक्षण से गुजारते हैं। प्रत्येक उत्पाद के लिए सुनिश्चित गुणवत्ता नियंत्रण परीक्षण की भी आवश्यकता होती है। अनुप्रवाह संसाधन व गुणवत्ता नियंत्रण परीक्षण प्रत्येक उत्पाद के लिए भिन्न-भिन्न होता है।

सारांश

जैव प्रौद्योगिकी जीवधारियों, कोशिकाओं व एंजाइमों का प्रयोग करते हुए उत्पादों व प्रक्रमों का व्यापक स्तर पर उत्पादन व विपणन करने से संबंधित है। आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी में आनुवंशिकत: रूपांतरित जीवों का उपयोग तभी संभव हो पाया जब मनुष्य ने डीएनए के रसायन को परिवर्तित व पुनर्योगज डीएनए का निर्माण करना सीख लिया। इस प्रमुख प्रक्रम को पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी या आनुवंशिक इंजीनियरिंग कहते हैं। इस प्रक्रम में प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएज, डीएनए लाइगेज, समुचित प्लाज्मिड या विषाणु संवाहक को डीएनए के पृथक करने व परपोषी जीवों में विजातीय डीएनए का स्थानांतरण, बाहरी जीन की अभिव्यक्ति, जीन उत्पाद अर्थात् सक्रिय प्रोटीन का शोधन और अंत में विपणन के लिए उपयुक्त संरूपण बनाना शामिल है। व्यापक स्तर पर उत्पादन में बायोरिएक्टर का उपयोग होता है।

अभ्यास

1. क्या आप दस पुनर्योगज प्रोटीन के बारे में बता सकते हैं जो चिकित्सीय व्यवहार के काम में लाए जाते हैं? पता लगाइये कि वे चिकित्सीय औषधि के रूप में कहाँ प्रयोग किए जाते हैं। (इंटरनेट की सहायता लें)।
2. एक सचित्र (चार्ट) (आरेखित निरूपण के साथ) बनाइए जो प्रतिबंधन एंजाइम को, (जिस क्रियाधार डीएनए पर यह कार्य करता है उसे), उन स्थलों को जहाँ यह डीएनए को काटता है व इनसे उत्पन्न उत्पाद को दर्शाता है।
3. कक्षा ग्यारहवीं में जो आप पढ़ चुके हैं उसके आधार पर क्या आप बता सकते हैं कि आणविक आकार के आधार पर एंजाइम बड़े हैं या डीएनए। आप इसके बारे में कैसे पता लगायेंगे?
4. मानव की एक कोशिका में डीएनए की मोलर सांद्रता क्या होगी? अपने अध्यापक से परामर्श लीजिए।
5. क्या सुकेंद्रकी कोशिकाओं में प्रतिबंधन एंडोन्यूक्लिएज मिलते हैं? अपने उत्तर सही सिद्ध कीजिए।
6. अच्छी हवा व मिश्रण विशेषता के अतिरिक्त की तुलना में कौन सी अन्य कंपन्न फ्लास्क सुविधाएँ हैं?
7. शिक्षक से परामर्श कर पाँच पैलिंड्रोमिक अनुप्रयास करना होगा कि क्षारक-युग्म नियमों का पालन करते हुए पैलिंड्रोमिक अनुक्रम बनाने के उदाहरण का पता लगाइए।
8. अर्धसूत्री विभाजन को ध्यान में रखते हुए क्या बता सकते हैं कि पुनर्योगज डीएनए किस अवस्था में बनते हैं?

© NCERT not to be republished

9. क्या आप बता सकते हैं कि प्रतिवेदक (रिपोर्टर) एंजाइम को वरणयोग्य चिह्न की उपस्थिति में बाहरी डीएनए को परपोषी कोशिकाओं में स्थानांतरण के लिए मॉनिटर करने के लिए किस प्रकार उपयोग में लाया जा सकता है?

10. निम्नलिखितों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए-
    (क) प्रतिकृतीयन का उद्भव
    (ख) बायोरिएक्टर
    (ग) अनुप्रवाह संसाधन

11. संक्षेप में बताइए
    (क) पीसीआर
    (ख) प्रतिबंधन एंजाइम और डीएनए
    (ग) काइटिनेज

12. अपने अध्यापक से चर्चा करके पता लगाइए कि निम्नलिखित के बीच कैसे भेद करेंगे-
    (क) प्लाज्मिड डीएनए और गुणसूत्रीय डीएनए
    (ख) आरएनए और डीएनए
    (ग) एक्सोन्यूक्लिएज और एंडोन्यूक्लिएज

© NCERT not to be republished

अध्याय 12

जैव प्रौद्योगिकी एवं उसके उपयोग

12.1 कृषि में जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग

12.2 चिकित्सा में जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग

12.3 पारजीवी जंतु (ट्रांसजेनिक एनीमल)

12.4 नैतिक प्रश्न

तुम पिछले अध्याय में जैव प्रौद्योगिकी जिसके बारे में पढ़ चुके हो, उसमें मुख्यतया आनुवंशिक रूप से रूपांतरित सूक्ष्मजीवों, कवक, पौधों व जंतुओं का उपयोग करते हुए जैव भैषजिक व जैविक पदार्थों का औद्योगिक स्तर पर उत्पादन किया जाता है। जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग चिकित्सा शास्त्र, निदानसूचक, कृषि में आनुवंशिकतः रूपांतरित फसलें, संसाधित खाद्य, जैव सुधार, अपशिष्ट प्रतिपादन व ऊर्जा उत्पादन में हो रहा है। जैव प्रौद्योगिकी के तीन विवेचनात्मक अनुसंधान क्षेत्र हैं —

(क) उन्नत जीवों जैसे-सूक्ष्मजीवों या शुद्ध एंजाइम के रूप में सर्वोत्तम उत्प्रेरक का निर्माण करना।

(ख) उत्प्रेरक के कार्य हेतु अभियांत्रिकी द्वारा सर्वोत्तम परिस्थितियों का निर्माण करना, तथा

(ग) अनुप्रवाह प्रक्रमण तकनीक का प्रोटीन/कार्बनिक यौगिक के शुद्धीकरण में उपयोग करना।

अब हम पता लगाएँगे कि मनुष्य जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग विशेषरूप से स्वास्थ्य व खाद्य उत्पादन के क्षेत्र में जीवनस्तर के सुधार में किस प्रकार से लगा हुआ है।

12.1 कृषि में जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग

खाद्य उत्पादन में वृद्धि हेतु हम तीन संभावनाओं के बारे में सोच सकते हैं-— (क) कृषि रसायन आधारित कृषि (ख) कार्बनिक कृषि और

© NCERT not to be republished

(ग) आनुवंशिकतः निर्मित फसल आधारित कृषि। **हरित क्रांति** द्वारा खाद्य आपूर्ति में तिगुनी वृद्धि में सफलता मिलने के बावजूद मनुष्य की बढ़ती जनसंख्या का पेट भर पाना संभव नहीं है। उत्पादन में वृद्धि आंशिक रूप से उन्नत किस्मों की फसलों के उपयोग के कारण हैं जबकि इस वृद्धि में मुख्यतया उत्तम प्रबंधकीय व्यवस्था और कृषि रसायनों (खादों तथा पीडकनाशिकों) का प्रयोग एक कारण है। हालाँकि विकासशील देशों के किसानों के लिए कृषि रसायन काफी महंगे पड़ते हैं व परंपरागत प्रजनन के द्वारा निर्मित किस्मों से उत्पादन में वृद्धि संभव नहीं है। क्या ऐसा कोई वैकल्पिक रास्ता है जिसमें आनुवंशिक जानकारी का उपयोग करते हुए किसान अपने खेतों से सर्वाधिक उत्पादन ले सकेंगे? क्या ऐसा कोई तरीका है जिसके द्वारा खादों एवं रसायनों का न्यूनतम उपयोग कर उसके द्वारा पर्यावरण पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों को घटा सकते हैं? आनुवंशिकतः रूपांतरित फसलों का उपयोग ही इस समस्या का हल है।

ऐसे पौधे, जीवाणु, कवक व जंतु जिनके जींस हस्तकौशल द्वारा परिवर्तित किए जा चुके हैं। **आनुवंशिकतः रूपांतरित जीव** (जेनेटिकली मोडीफाइड आर्गेनाइजेशन) कहलाते हैं। जीएमओ का व्यवहार स्थानांतरित जीन की प्रकृति, परपोषी पौधों, जंतुओं या जीवाणुओं की प्रकृति व खाद्य जाल पर निर्भर करता है। जीएम पौधों का उपयोग कई प्रकार से लाभदायक है। आनुवंशिक रूपांतरण द्वारा—

(क) अजैव प्रतिबलों (ठंडा, सूखा, लवण, ताप) के प्रति अधिक सहिष्णु फसलों का निर्माण

(ख) रासायनिक पीड़कनाशकों पर कम निर्भरता करना (पीड़कनाशी-प्रतिरोधी फसल)

(ग) कटाई पश्चात् होने वाले (अन्नादि) नुकसानों को कम करने में सहायक

(घ) पौधों द्वारा खनिज उपयोग क्षमता में वृद्धि (यह शीघ्र मृदा उर्वरता समापन को रोकता है)

(ङ) खाद्य पदार्थों के पोषणिक स्तर में वृद्धि; उदाहरणार्थ—विटामिन ए समृद्ध धान

उपरोक्त उपयोगों के साथ - साथ जी एम का उपयोग तदनुकुल पौधों के निर्माण में सहायक है, जिनसे वैकल्पिक संसाधनों के रूप में उद्योगों में वसा, ईंधन व भेषजीय पदार्थों की आपूर्ति की जाती है।

कृषि में जैव प्रौद्योगिकी के उपयोगों में जिनके बारे में तुम विस्तृत रूप से अध्ययन करोगे; वह पीड़क प्रतिरोधी फसलों का निर्माण है जो पीड़कनाशकों की मात्रा को कम प्रयोग में लाती है। बीटी (**Bt**) एक प्रकार का जीवविष है जो एक जीवाणु जिसे *बैसीलस थूरीनजिएंसीस* (संक्षेप में **बीटी**) कहते हैं, से निर्मित होता है। बीटी जीवविष जीन जीवाणु से क्लोनिकृत होकर पौधों में अभिव्यक्त होकर कीटों (पीड़कों) के प्रति प्रतिरोधकता पैदा करता है जिससे कीटनाशकों के उपयोग की आवश्यकता नहीं रह गई है। इस तरह से जैव-पीड़कनाशकों का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ— बीटी कपास, बीटी मक्का, धान, टमाटर, आलू व सोयाबीन आदि।

बीटी कपास— *बैसीलस थूरीनजिएंसीस* की कुछ नस्लें ऐसी प्रोटीन का निर्माण करती हैं जो विशिष्ट कीटों जैसे— लीथीडोप्टेशन (तंबाकू की कलिका कीड़ा, सैनिक कीड़ा), कोलियोप्टेरान (भृंग) व डीप्टेरान (मक्खी, मच्छर) को मारने में सहायक है।

© NCERT not to be republished

बी. थूरीनजिएंसीस अपनी वृद्धि के विशेष अवस्था में कुछ प्रोटीन रवा का निर्माण करती है। इन रवों में विषाक्त **कीटनाशक प्रोटीन** होता है। यह जीवविष बैसीलस को क्यों नहीं मारता है? वास्तव में बीटी जीव-विष प्रोटीन, प्राक्जीव विष निष्क्रिय रूप में होता है, ज्योंहि कीट इस निष्क्रिय जीव विष को खाता है, इसके रवे आँत में क्षारीय पी एच के कारण घुलनशील होकर सक्रिय रूप में परिवर्तन हो जाते हैं। सक्रिय जीव विष मध्य आँत के उपकलीय कोशिकाओं की सतह से बँधकर उसमें छिद्रों का निर्माण करते हैं, जिस कारण से कोशिकाएँ फूलकर फट जाती हैं और परिणामस्वरूप कीट की मृत्यु हो जाती है।

विशिष्ट बीटी जीव विष जींस *बैसीलस थुरीनजिएंसिस* से पृथक कर कई फसलों जैसे कपास में समाविष्ट किया जा चुका है। जींस का चुनाव फसल व निर्धारित कीट पर निर्भर करता है, जबकि सर्वाधिक बीटी जीव विष कीट-समूह विशिष्टता पर निर्भर करते हैं। जीव विष जिस जीन द्वारा कूटबद्ध होते हैं उसे क्राई कहते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं। उदाहरणस्वरूप — जो प्रोटींस जीन *क्राई 1 एसी* व *क्राई 2 एबी* द्वारा कूटबद्ध होते हैं वे कपास के मुकुल कृमि को नियंत्रित करते हैं (चित्र 12.1) जबकि *क्राई 1 एबी* मक्का छेदक को नियंत्रित करता है।

चित्र 12.1 कपास (अ) गोलक शलभ कृमि द्वारा नष्ट व (ब) पूर्णतया परिपक्व कपास गोलक

पीड़क प्रतिरोधी पौधा— विभिन्न सूत्रकृमि, मानव सहित जंतुओं व कई किस्म के पौधों पर परजीवी होते हैं। सूत्रकृमि मिल्वाडेगाइन इनकोगनीशिया तंबाकू के पौधों की जड़ों को संक्रमित कर उसकी पैदावार को काफी कम कर देता है। उपरोक्त संक्रमण को रोकने हेतु एक नवीन योजना को स्वीकार किया गया है जो आरएनए अंतरक्षेप की प्रक्रिया पर आधारित है। **आरएनए अंतरक्षेप** सभी ससीमकेंद्रकी जीनों में कोशकीय सुरक्षा की एक विधि है। इस विधि में विशिष्ट दूत आरएनए, पूरक द्विसूत्री आरएनए से वर्धित होने के पश्चात् निष्क्रिय हो जाता है जिसके फलस्वरूप दूत आरएनए के स्थानांतरण (ट्रांसलेशन)

© NCERT not to be republished

को रोकता है। इस द्विसूत्रीय आरएनए का स्रोत, संक्रमण करने वाले विषाणु में पाए जाने वाले पूरक आरएनए जीनोम / पारांतरेक (ट्रांसपॉजान) के प्रतिकृत के उपरांत बनने वाले मध्यवर्ती आरएनए हैं।

एग्रोबैक्टिरियम संवाहकों का उपयोग कर सूत्रकृमि विशिष्ट जीनों को परपोषी पौधों में प्रवेश कराया जा चुका है (चित्र 12.2)। डीएनए का प्रवेश इस प्रकार कराया जाता है कि परपोषी कोशिकाओं में अर्थ (सैंस) व प्रति-अर्थ (ऐंटीसैंस) आरएनए का निर्माण करता है। ये दोनों आरएनए एक दूसरे के पूरक होते हैं जो द्विसूत्रीय आरएनए का निर्माण करते हैं; जिससे आरएनए अंतरक्षेप प्रारंभ होता है और इसी कारण से सूत्रकृमि के विशिष्ट दूत आरएनए निष्क्रिय हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप पारजीवी परपोषी में विशिष्ट अंतरक्षेपी आरएनए की उपस्थिति से परजीवी जीवित नहीं रह पाता है। इस प्रकार पारजीवी पौधे अपनी सुरक्षा परजीवी से करते हैं (चित्र 12.2)।

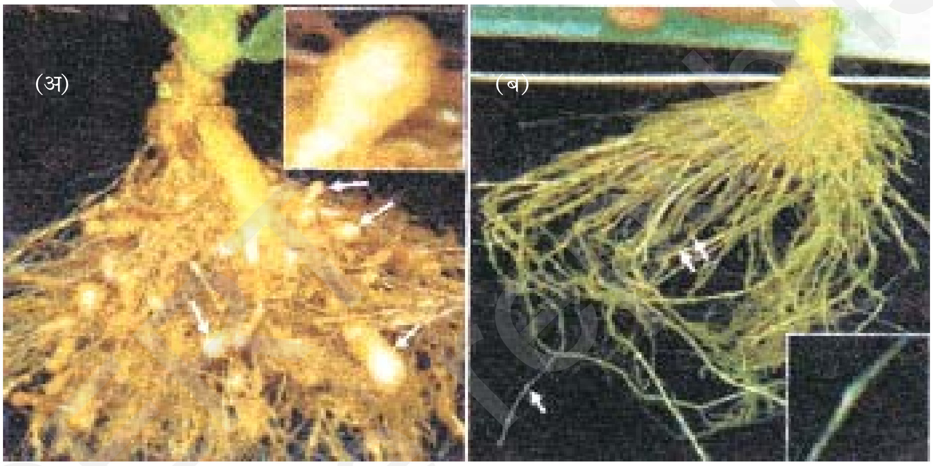

चित्र 12.2 पोषी पादप जनित ds आरएनए द्वारा सूत्रकृमि ग्रसन के विरूद्ध सुरक्षा में वृद्धि (अ) प्रारूपी नियंत्रित पादप मूलें (ब) पाँच दिनों तक जानबूझकर सूत्रकृमि द्वारा पारजीवी पादप की जड़ों का संक्रमण तथा साथ ही नवीन विधि द्वारा सुरक्षा

12.2 चिकित्सा में जैव प्रोद्यौगिकी का उपयोग

पुनर्योगज डीएनए प्रोद्यौगिकी विधियों का स्वास्थ्य सुरक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक प्रभाव डाला है; क्योंकि इसके द्वारा उत्पन्न सुरक्षित व अत्यधिक प्रभावी चिकित्सीय औषधियों का उत्पादन अधिक मात्रा में संभव है। पुनर्योगज चिकित्सीय औषधियों का अवांछित प्रतिरक्षात्मक प्रभाव नहीं पड़ता है जबकि ऐसा देखा गया है कि उपरोक्त उत्पाद जो अमानवीय स्रोतों से विलगित किए गए हैं, वे अवाँछित प्रतिरक्षात्मक प्रभाव डालते हैं। वर्तमान समय में लगभग 30 पुनर्योगज चिकित्सीय औषधियाँ विश्व में मनुष्य के प्रयोग हेतु स्वीकृत हो चुकी हैं। वर्तमान में; इनमें से 12 भारत में विपणित हो रही हैं।

© NCERT not to be republished

12.2.1 आनुवंशिकतः निर्मित इंसुलीन

वयस्कों में होने वाले मधुमेह का नियंत्रण निश्चित समय अंतराल पर इंसुलीन लेने से ही संभव है। *मानव इंसुलीन पर्याप्त उपलब्ध न होने पर मधुमेह रोगी क्या करेंगे?* उस पर विचार करने पर हम इस बात को स्वीकार करेंगे कि हमें अन्य जानवरों से इंसुलीन वियुक्त कर उपयोग में लाना होगा। *क्या अन्य जंतुओं से वियुक्त इंसुलीन मानव शरीर में भी प्रभावी है और उसका मानव शरीर के प्रतिरक्षा अनुक्रिया पर कोई हानिकारक प्रभाव तो नहीं पड़ता है?* तुम कल्पना करो कि यदि कोई जीवाणु मानव इंसुलीन बना सकता है तो निश्चय ही पूरी प्रक्रिया सरल हो जाएगी। तुम आसानी से ऐसे जीवाणु को अधिक मात्रा में विकसित कर जितना चाहे अपनी आवश्यकता के अनुसार इंसुलीन बना सकते हो। *सोचो क्या इंसुलीन मधुमेही लोगों को मुख से दिया जा सकता है कि नहीं। क्यों?*

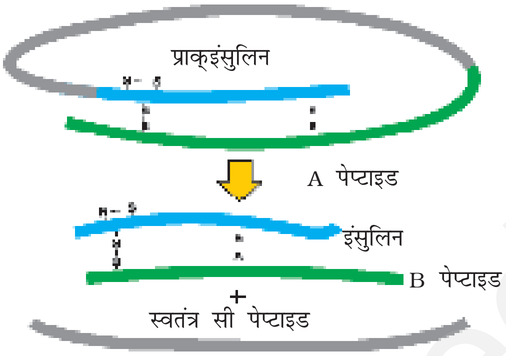

चित्र 12.3 प्राक-इंसुलिन का सी-पेप्टाइड के अलग होने के बाद इंसुलिन में परिपक्वता

मधुमेह रोगियों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाला इंसुलीन जानवरों व सुअरों को मारकर उनके अग्नाशय से निकाला जाता था। जानवरों द्वारा प्राप्त इंसुलीन से कुछ रोगियों में प्रत्यूर्जा (एलर्जी) या बाह्य प्रोटीन के प्रति दूसरे तरह की प्रतिक्रिया होने लगती थी। इंसुलीन दो छोटी पालीपेप्टाइड शृंखलाओं का बना होता है, शृंखला 'ए' व शृंखला 'बी' जो आपस में डाईसल्फाइड बंधों द्वारा जुड़ी होती हैं (चित्र 12.3)। मानव सहित स्तनधारियों में इंसुलिन प्राक्-हार्मोन (प्राक् -एंजाइम की तरह प्राक् -हार्मोन को पूर्ण परिपक्व व क्रियाशील हार्मोन बनने के पहले संसाधित होने की आवश्यकता होती है) संश्लेषित होता है; जिसमें एक अतिरिक्त फैलाव होता है जिसे **पेप्टाइड 'सी'** कहते हैं। यह 'सी' पेप्टाइड परिपक्व इंसुलिन में नहीं होता, जो परिपक्वता के दौरान इंसुलिन से अलग हो जाता है। आर डीएनए तकनीकियों का प्रयोग करते हुए इंसुलिन के उत्पादन में मुख्य चुनौती यह है कि इंसुलिन को एकत्रित कर परिपक्व रूप में तैयार किया जाए। 1983 में एली लिली नामक एक अमेरिकी कंपनी ने दो डीएनए अनुक्रमों को तैयार किया जो मानव इंसुलिन की शृंखला ए और बी के अनुरूप होती हैं जिसे इ. कोलाई के प्लाज्मिड में प्रवेश कराकर इंसुलिन शृंखलाओं का उत्पादन किया। इन अलग-अलग निर्मित शृंखलाओं ए और बी को निकालकर डाईसल्फाइड बंध बनाकर आपस में संयोजित कर मानव इंसुलिन का निर्माण किया गया।

12.2.2 जीन चिकित्सा

यदि एक व्यक्ति आनुवंशिक रोग के साथ पैदा हुआ है, तो क्या इस रोग के उपचार हेतु कोई चिकित्सा व्यवस्था है? जीन चिकित्सा ऐसा ही एक प्रयास है। जीन चिकित्सा में उन विधियों का सहयोग लेते हैं जिनके द्वारा किसी बच्चे या भ्रूण में चिह्नित किए गए जीन दोषों का सुधार किया जाता है। उसमें रोग के उपचार हेतु जीनों को व्यक्ति की कोशिकाओं या ऊतकों में प्रवेश कराया जाता है। आनुवंशिक दोष वाली कोशिकाओं के

© NCERT not to be republished

उपचार हेतु सामान्य जीन को व्यक्ति या भ्रूण में स्थानांतरित करते हैं जो निष्क्रिय जीन की क्षतिपूर्ति कर उसके कार्यों को संपन्न करते हैं।

जीन चिकित्सा का पहले पहल प्रयोग वर्ष 1990 में एक चार वर्षीय लड़की में एडीनोसीन डिएमीनेज (एडीए) की कमी को दूर करने के लिए किया गया था। यह एंजाइम प्रतिरक्षातंत्र के कार्य के लिए अति आवश्यक होता है। उपरोक्त समस्या जो एंजाइम एडीनोसीन डिएमीनेज के लिए जिम्मेदार है जो इसके लोप होने के कारण होता है। कुछ बच्चों में एडीए की कमी का उपचार अस्थिमज्जा के प्रत्यारोपण से होता है। जबकि दूसरों में एंजाइम प्रतिस्थापन चिकित्सा द्वारा उपचार किया जाता है; जिसमें सुई द्वारा रोगी को सक्रिय एडीए दिया जाता है। उपरोक्त दोनों विधियों में यह कमी है कि ये पूर्णतया रोगनाशक नहीं है। जीन चिकित्सा में सर्वप्रथम रोगी के रक्त से लसीकाणु को निकालकर शरीर से बाहर संवर्धन किया जाता है। सक्रिय एडीए का सी डीएनए (पश्च विषाणु संवाहक का प्रयोगकर) लसीकाणु में प्रवेश कराकर अंत में रोगी के शरीर में वापस कर दिया जाता है। ये कोशिकाएँ मृतप्राय होती हैं; इसलिए आनुवंशिक निर्मित लसीकाणुओं को समय-समय पर रोगी के शरीर से अलग करने की आवश्यकता होती है। यदि मज्जा कोशिकाओं से विलगित अच्छे जीनों को प्रारंभिक भ्रूणीय अवस्था की कोशिकाओं से उत्पादित एडीए में प्रवेश करा दिए जाएँ तो यह एक स्थायी उपचार हो सकता है।

12.2.3 आणविक निदान

आप जानते हैं कि रोग के प्रभावी उपचार के लिए उसकी प्रारंभिक पहचान व उसके रोग क्रिया विज्ञान को समझना अति आवश्यक है। उपचार की परंपरागत विधियों (सीरम व मूत्र विश्लेषण आदि) का प्रयोग करते हुए रोग का प्रारंभ में पता लगाना संभव नहीं है। पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी, पॉलीमरेज शृंखला अभिक्रिया व एंजाइम सहलग्न प्रतिरक्षा शोषक आमापन (एलाइजा) कुछ ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा रोग की प्रारंभिक पहचान की जा सकती है।

रोग जनक (जीवाणु, विषाणु आदि) की उपस्थिति का सामान्यतया तब पता चलता है जब उसके द्वारा उत्पन्न रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। उस समय तक रोगजनक की संख्या शरीर में पहले से काफी अधिक हो चुकी होती है। जब बहुत कम संख्या में जीवाणु या विषाणु (उस समय जब रोग के लक्षण स्पष्ट दिखाई नहीं देते) हो तब उनकी पहचान पीसीआर द्वारा उनके न्यूक्लिक अम्ल के प्रवर्धन (एंप्लीफिकेशन) द्वारा कर सकते हैं। *क्या तुम बता सकते हो कि पीसीआर द्वारा डीएनए की बहुत कम मात्रा की पहचान कैसे की जाती है?* संदेहात्मक एड्स रोगियों में एच आइ वी की पहचान हेतु पीसीआर आजकल सामान्यतया उपयोग में लाया जा रहा है। उसका उपयोग संदेहात्मक कैंसर रोगियों के जीन में होने वाले उत्परिवर्तनों को पता लगाने में भी किया जा रहा है। यह एक उपयोगी तकनीकी है जिसके द्वारा बहुत सारी दूसरे आनुवंशिक दोषों की पहचान की जा सकती है।

डीएनए या आरएनए की एकल शृंखला से एक विकिरण सक्रिय अणु (संपरीक्षित्र) जुड़कर कोशिकाओं के क्लोन में अपने पूरक डीएनए से संकरित होते हैं, जिसे बाद में

© NCERT not to be republished

स्वविकिरणी चित्रण (आटोरेडियोग्राफी) द्वारा पहचानते हैं। क्लोन जिसमें उत्परिवर्तित जीन मिलते हैं। छायाचित्र पटल (फोटोग्रैफिक फिल्म) पर दिखाई नहीं देते हैं; क्योंकि संपरीक्षित्र (प्रोब) व उत्परिवर्तित जीन आपस में एक दूसरे के पूरक नहीं होते हैं।

एंजाइम सहलग्न प्रतिरक्षा शोषक आमापन (एलाइजा) प्रतिजन- प्रतिरक्षी पारस्परिक क्रिया के सिद्धांत पर कार्य करता है। रोग जनकों के द्वारा उत्पन्न संक्रमण की पहचान प्रतिजनों (प्रोटीनजन, ग्लाइकोप्रोटींस आदि) की उपस्थिति या रोग जनकों के विरूद्ध संश्लेषित प्रतिरक्षी की पहचान के आधार पर की जाती है।

12.3 पारजीवी जंतु (ट्रांसजेनिक एनिमल्स)

ऐसे जंतुओं जिनके डीएनए में परिचालन द्वारा एक अतिरिक्त (बाहरी) जीन व्यवस्थित होता है जो अपना लक्षण व्यक्त करता है उसे **पारजीवी जंतु** कहते हैं। पारजीवी चूहे, खरगोश, सूअर, भेड़, गाय व मछलियाँ आदि पैदा हो चुके हैं उसके बावजूद उपस्थित पारजीवी जंतुओं में 95 प्रतिशत से अधिक चूहे हैं। उस तरह के जंतुओं का उत्पादन क्यों किया जाता है? इस तरह के परिवर्तन से मानव को क्या लाभ है? अब हम कुछ सामान्य कारणों का पता करेंगे—

(क) ***सामान्य शरीर क्रिया व विकास*** — पारजीवी जंतुओं का निर्माण विशेषरूप से इस प्रकार किया जाता है जिनमें जीनों के नियंत्रण व इनका शरीर के विकास व सामान्य कार्यों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है; उदाहरणार्थ- विकास में भागीदार जटिल कारकों जैसे-इंसुलिन की तरह विकास कारक का अध्ययन। दूसरी जाति (स्पीशीज़) के जींस को प्रवेश कराने के उपरांत उपरोक्त कारकों के निर्माण में होने वाले परिवर्तनों से होने वाले जैविक प्रभाव का अध्ययन तथा कारकों की शरीर में जैविक भूमिका के बारे में सूचना मिलती है।

(ख) ***रोगों का अध्ययन*** — अनेकों पारजीवी जंतु इस प्रकार निर्मित किए जाते हैं जिनसे रोग के विकास में जीन की भूमिका क्या होती है? यह विशिष्ट रूप से निर्मित है जो मानव रोगों के लिए नमूने के रूप में प्रयोग किए जाते हैं ताकि रोगों के नए उपचारों का अध्ययन हो सके। वर्तमान समय में मानव रोगों जैसे-कैंसर, पुटीय रेशामयता (सिस्टीक फाइब्रोसिस), रूमेटवाएड संधिशोथ व एल्जिमर हेतु पारजीवी नमूने उपलब्ध हैं।

(ग) ***जैविक उत्पाद*** — कुछ मानव रोगों के उपचार के लिए औषधि की आवश्यकता होती है जो जैविक उत्पाद से बनी होती है। ऐसे उत्पादों को बनाना अक्सर बहुत महँगा होता है। पारजीवी जंतु जो उपयोगी जैविक उत्पाद का निर्माण करते हैं उनमें डीएनए के भाग (जीनों) को प्रवेश कराते हैं जो विशेष उत्पाद के निर्माण में भाग लेते हैं। उदाहरण-मानव प्रोटीन (अल्फा-1 एंटीट्रिप्सीन) का उपयोग इंफासीमा के निदान में होता है। ठीक उसी तरह का प्रयास फिनाइल कीटोनूरिया (पीकेयू) व पुटीय रेशामयता के निदान हेतु किया गया है। वर्ष 1977 में सर्वप्रथम पारजीवी गाय 'रोजी' मानव प्रोटीन संपन्न दुग्ध (2.4 ग्राम

© NCERT not to be republished

प्रति लीटर) प्राप्त किया गया। इस दूध में मानव अल्फा-लेक्टएल्बुमिन मिलता है जो मानव शिशु हेतु अत्यधिक संतुलित पोषक तत्त्व है जो साधारण गाय के दूध में नहीं मिलता है।

(घ) ***टीका सुरक्षा*** — टीकों का मानव पर प्रयोग करने से पहले टीके की सुरक्षा जाँच के लिए पारजीवी चूहों को विकसित किया गया है। पोलियो टीका की सुरक्षा जाँच के लिए पारजीवी चूहों का उपयोग किया जा चुका है। यदि उपरोक्त प्रयोग सफल व विश्वसनीय पाए गए तो टीका सुरक्षा जाँच के लिए बंदर के स्थान पर पारजीवी चूहों का प्रयोग किया जा सकेगा।

(ङ) ***रासायनिक सुरक्षा परीक्षण*** — यह आविषालुता सुरक्षा परीक्षण कहलाता है। यह वही विधि है जो औषधि आविषालुता परीक्षण हेतु प्रयोग में लाई जाती है। पारजीवी जंतुओं में मिलने वाले कुछ जीन इसे आविषालु पदार्थों के प्रति अतिसंवेदनशील बनाते हैं जबकि अपारजीवी जंतुओं में ऐसा नहीं है। पारजीवी जंतुओं को आविषालु पदार्थों के संपर्क में लाने के बाद पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। उपरोक्त जंतुओं में आविषालुता परीक्षण करने से कम समय में परिणाम प्राप्त हो जाता है।

12.4 नैतिक मुद्दे

माजव जाति द्वारा अन्य जीवधारियों से हितसाधन बिना विनियमों के और अधिक नहीं किया जा सकता है। सभी मानवीय क्रियाकलापों के लिए जो जीवधारियों के लिए असुरक्षात्मक या सहायक हो उनमें आचरण की परख के लिए कुछ नैतिक मानदंडों की आवश्यकता है।

ऐसे मुद्दों में नैतिकता से इनमें जैववैज्ञानिक महत्त्व भी है। जीवों के आनुवंशिक रूपांतरण के तब अप्रत्याशित परिणाम निकल सकते हैं जब ऐसे जीवों का पारिस्थितिक तंत्र में सन्निविष्ट कराया जाए।

इसीलिए, भारत सरकार ने ऐसे संगठनों को स्थापित किया है जैसे कि जी ई ए सी (जेनेटिक इंजीनयरिंग एप्रवल कमेटी अर्थात् आनुवंशिक अभियांत्रिकी संस्तुति समिति); जो कि जी एम अनुसंधान संबंधी कार्यों की वैधानिकता तथा जन सेवाओं के लिए जी एम जीवों के सन्निवेश की सुरक्षा आदि के बारे में निर्णय लेगी।

जन सेवा (जैसे कि आहार एवं चिकित्सा स्रोतों हेतु) में जीवों के रूपांतरण/उपयोगिता जो इनके जीवों के लिए अनुमत एकस्व की समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।

जनमानस में इस बात को लेकर आक्रोश है कि कुछ कंपनियाँ आनुवंशिक पदार्थों, पौधों व अन्य जैविक संसाधनों का उपयोग कर, बनने वाले उत्पाद व तकनीकी के लिए एकस्व (पेटेंट) प्राप्त कर रहे हैं जबकि यह बहुत समय पहले से विकसित व पहचानी जा चुकी है और किसान तथा विशेष क्षेत्र या देश के लोगों द्वारा इनका उपयोग किया जा रहा है।

धान एक महत्त्वपूर्ण खाद्यान्न है जिसके बारे में हजारों वर्ष पूर्व एशिया के कृषि के इतिहास में वर्णन मिलता है। एक अनुमान के अनुसार केवल भारत में धान की लगभग 2 लाख किस्में मिलती हैं। भारत में धान की जो विविधता है, वह विश्व की सर्वाधिक

© NCERT not to be republished

विविधताओं में एक है। बासमती धान अपनी सुगंध व स्वाद के लिए मशहूर है और इसकी 27 पहचानी गयी किस्में भारत में उगायी जाती हैं। पुराने ग्रंथों, लोकसाहित्य व कविताओं में बासमती का वर्णन मिलता है, जिससे यह पता चलता है कि यह कई सौ वर्ष पहले से उगाया जाता रहा है। वर्ष 1977 में एक अमरीकी कंपनी ने बासमती धान पर अमेरिकन एकस्व व ट्रेडमार्क कार्यालय द्वारा एकस्व अधिकार प्राप्त कर लिया था। इससे कंपनी बासमती की नई किस्मों को अमेरिका व विदेशों में बेच सकती है। बासमती की यह नयी किस्म वास्तव में भारतीय किसानों की किस्मों से विकसित की गयी थी। भारतीय बासमती को अर्द्ध बौनी किस्मों से संकरण कराकर नयी खोज या एक नयी उपलब्धि का दावा किया था। एकाधिकार के लागू होने के बाद इस एकाधिकार के तहत अन्य लोगों द्वारा बासमती का विक्रय प्रतिबंधित हो सकता था।

मल्टीनेशनल कंपनियों व दूसरे संगठनों द्वारा किसी राष्ट्र या उससे संबंधित लोगों से बिना व्यवस्थित अनुमोदन व क्षतिपूरक भुगतान के जैव संसाधनों का उपयोग करना **बायोपाइरेसी** कहलाता है।

बहुत सारे औद्योगिक राष्ट्र आर्थिक रूप से काफी सम्पन्न हैं लेकिन उनके पास जैव विविधता एवं परंपरागत ज्ञान की कमी है। इसके विपरीत विकसित व अविकसित विश्व जैव विविधता व जैव संसाधनों से संबंधित परंपरागत ज्ञान से संपन्न है। जैव-संसाधनों से संबंधित परंपरागत ज्ञान का उपयोग आधुनिक उपयोगों में किया जा सकता है जिसके फलस्वरूप इनके व्यापारीकरण के दौरान, समय, शक्ति व खर्च को बचाया जा सकता है।

विकसित व विकासशील राष्ट्रों के बीच अन्याय, अपर्याप्त क्षतिपूर्ति व लाभों की भागीदारी के प्रति भावना विकसित हो रही है। इसके कारण कुछ राष्ट्रों ने अपने जैव संसाधनों व परंपरागत ज्ञान का बिना पूर्व अनुमति के उपयोग पर प्रतिबंध के लिए नियमों को बना रहे हैं।

भारतीय संसद ने हाल ही में भारतीय एकस्व बिल (इंडियन पेटेंट बिल) में दूसरा संशोधन पारित किया है जो ऐसे मुद्दों को ध्यानार्थ लेगा, जिसके अंतर्गत एकस्व नियम संबंधी आपात्कालिक प्रावधान तथा अनुसंधान एवं विकासीय प्रयास शामिल हैं।

सारांश

सूक्ष्मजीवों, पौधों, जंतुओं व अनेक उपापचयी कार्यप्रणाली का उपयोग करते हुए जैव प्रौद्योगिकी द्वारा मनुष्य के लिए कई उपयोगी पदार्थों का निर्माण हो चुका है। पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी ने ऐसे सूक्ष्मजीवों, पौधों व जंतुओं का निर्माण संभव कर दिया है जिनमें अभूतपूर्व क्षमता निहित है। आनुवंशिकतः रूपांतरित जीवों का निर्माण एक या एक से अधिक जीन का, एक जीव से दूसरे जीव में स्थानांतरण की प्राकृतिक विधि के अतिरिक्त पुनर्योगज डी एन ए प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए किया गया है।

जीएम पौधों का उपयोग फसल उत्पादन बढ़ाने, पश्च फसल उत्पाद नुकसान में कमी व फसलों का प्रतिबंधों के प्रति अधिक सहनशील बनाने में अत्यन्त उपयोगी है। ऐसे बहुत

© NCERT not to be republished

जीएम फसल पौधे हैं जिनका खाद्य पौष्टिक स्तर काफी उन्नत है व उन (पीड़क-प्रतिरोधी फसलों) की रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता काफी कम है ।

पुनर्योगज डीएनए प्रौद्योगिकी प्रक्रियाओं का स्वास्थ्य सुरक्षा के क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है; क्योंकि इनके द्वारा सुरक्षित व अत्यधिक प्रभावशाली औषधियों का निर्माण संभव है। पुनर्योगज चिकित्सीय औषधियाँ मनुष्य के प्रोटीन के समतुल्य हैं। इस कारण से इनका प्रतिरक्षात्मक अवांछित प्रभाव नहीं पड़ता है व इनसे संक्रमण के खतरे भी नहीं होते हैं जैसा कि अमानवीय स्रोतों से विलगित इस प्रकार के पदार्थों से होता है। जीवाणु में रचित मानव इंसुलिन जो संरचनात्मक प्राकृतिक अणु से पूर्णतया समान होता है।

पारजीवी जंतु मानव रोगों जैसे- कैंसर, पुटीय रेशामयता, रूमेट्वाएड संधिशोथ व एल्जीमर के लिए नमूने के रूप में उपयोग किए जाते हैं, जिससे हमें रोग के विकास में जीन की भूमिका को पता लगाने में सुविधा होती है।

जीन चिकित्सा द्वारा खासतौर से आनुवंशिक रोगों को दूर करने के लिए व्यक्ति विशेष की कोशिकाओं व ऊतकों में जीन को प्रवेश कराते हैं। इसके कारण खराब उत्परिवर्तित विकल्पी के स्थान पर सक्रिय विकल्पी या जीन टारगेटिंग के द्वारा उपचार होता है, जिनमें जीन प्रवर्धन शामिल हैं। विषाणु जो अपने परपोषी पर आक्रमण कर अपने विभाजन चक्र के लिए अपना आनुवंशिक पदार्थ परपोषी की कोशिकाओं में प्रवेश करता है। इसे संवाहक के रूप में प्रयोग कर स्वस्थ जीन या नए जीन के भाग को स्थानांतरित किया जा सकता है।

सूक्ष्मजीवों, पौधों व जंतुओं के व्यवहार के प्रति वर्तमान दिलचस्पी ने गंभीर नैतिक प्रश्न खड़े कर दिए हैं। भारत सरकार ने इस दिशा में कुछ ठोस कदम उठाए हैं।

अभ्यास

1. बीटी (Bt) आविष के रवे कुछ जीवाणुओं द्वारा बनाए जाते हैं लेकिन जीवाणु स्वयं को नहीं मारते हैं; क्योंकि—
   (क) जीवाणु आविष के प्रति प्रतिरोधी है।
   (ख) आविष अपरिपक्व है।
   (ग) आविष निष्क्रिय होता है।
   (घ) आविष जीवाणु की विशेष थैली में मिलता है।
2. पारजीवी जीवाणु क्या है? किसी एक उदाहरण द्वारा सचित्र वर्णन करो।
3. आनुवंशिक रूपांतरित फसलों के उत्पादन के लाभ व हानि का तुलनात्मक विभेद किजिए।
4. क्राई प्रोटींस क्या है? उस जीव का नाम बताओ जो इसे पैदा करता है। मनुष्य इस प्रोटीन को अपने फायदे के लिए कैसे उपयोग में लाता है।

© NCERT not to be republished

5. जीन चिकित्सा क्या है? एडीनोसीन डिएमीनेज (ए डी ए) की कमी का उदाहरण देते हुए इसका सचित्र वर्णन करें।
6. ई.कोलाई जैसे जीवाणु में मानव जीन की क्लोनिंग एवं अभिव्यक्ति के प्रायोगिक चरणों का आरेखीय निरूपण प्रस्तुत करें।
7. तेल के रसायन शास्त्र तथा आरडीएनए जिसके बारे में आपको जितना भी ज्ञान प्राप्त है, उसमें आधार बीजों तेल हाइड्रोकार्बन हटाने की कोई एक विधि सुझाओ।
8. इंटरनेट से पता लगाओ कि गोल्डन राइस (गोल्डन धान) क्या है?
9. क्या हमारे रक्त में प्रोटीओजेज तथा न्यूक्लीऐजिज हैं?
10. इंटरनेट से पता लगाओ कि मुखीय सक्रिय औषध प्रोटीन को किस प्रकार बनाएँगे। इस कार्य में आने वाली मुख्य समस्याओं का वर्णन करें।

© NCERT not to be republished

ईकाई दस
पारिस्थितिकी

अध्याय 13
जीव तथा समष्टियाँ

अध्याय 14
पारितंत्र

अध्याय 15
जीव विविधतता एवं संरक्षण

अध्याय 16
पर्यावरण के मुद्दे

विविधता ही जीवित जीवों का केवल लक्षण नहीं है; बल्कि जीव विज्ञान पाठ्यपुस्तक का भी अंश है। जीव विज्ञान का प्रस्तुतीकरण या तो वनस्पति विज्ञान, प्राणि विज्ञान तथा सूक्ष्म जीव विज्ञान अथवा चिर प्रतिष्ठित तथा आधुनिक रूप में किया गया है। इसका पिछला भाग जीव विज्ञान के आणविक पहलुओं की प्रियोक्ति (युफ्रिमज़्म) है। भाग्यवश हमारे पास बहुत से सूत्र हैं, जिनका प्रयोग हम जीव-विज्ञानीय सूचना को एक से सिद्धांत के अनुरूप विभिन्न क्षेत्रों में बुनते हैं। पारिस्थितिकी भी एक ऐसा ही सूत्र है जो जीव विज्ञान को समग्रात्मक दृष्टिकोण प्रदान करता है। जीव विज्ञान संबंधी ज्ञान का सार यह है कि जीव व्यष्टि के रूप में किस प्रकार रहते हैं, अन्य जीवों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं तथा समूह के रूप में इनका भौतिक वास किस प्रकार का है। यह किस प्रकार संगठित होकर समष्टि, सामुदायिक पारिस्थितिक तंत्र; यहाँ तक कि संपूर्ण जीव मंडल का निर्माण करते हैं, इन सभी के बारे में पारिस्थितिकी हमें ज्ञान प्राप्त कराती है। इसका विशेष पहलू मानवजनिक पर्यावरणीय विघटन तथा इससे उत्पन्न सामाजिक, राजनैतिक मामलों का अध्ययन कराना है। इस इकाई में उपर्युक्त पहलुओं पर विशेष ध्यान देते हुए वर्णन किया गया है।

© NCERT not to be republished

रामदेव मिश्रा
(1908-1998)

भारतवर्ष में रामदेव मिश्रा पारिस्थितिकी के जनक के रूप में जाने जाते हैं। इनका जन्म 26 अगस्त 1908 में हुआ था। इन्होंने यूनाइटेड किंगडम में लीड्स विश्वविद्यालय से प्रोफेसर डब्ल्यू एच पीयरसाल, एफ आर एस के आधीन वर्ष 1937 में पारिस्थितिकी में डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि ग्रहण की। इन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी के वनस्पति विभाग में पारिस्थितिकी विषय में शिक्षण तथा अनुसंधान के विभाग की स्थापना की। इनके अनुसंधान ने उष्णकटिबंधी समुदायों तथा उनके अनुक्रमण–पादप समष्टि की पर्यावरणीय अनुक्रिया तथा उष्णकटिबंधीय वन में पोषक चक्रण तथा उत्पादनशीलता और चारागाह पारिस्थितिक तंत्र आदि विषयों पर ज्ञान की आधार शिला रखी। मिश्रा जी ने भारतवर्ष में पारिस्थितिकी पर प्रथम स्नात्कोत्तर पाठयक्रम की शुरुआत की। इनके शिष्यत्व में रहकर 50 से भी अधिक विद्यार्थियों ने पीएच डी की उपाधि प्राप्त की और उन्होंने देश के अन्य विश्वविद्यालयों तथा अनुसंधान संस्थानों में जाकर पारिस्थितिकी शिक्षण एवं अनुसंधान का सूत्रपात किया। इन्हें इंडियन नेशनल साइंस ऐकेडमी तथा वर्ल्ड ऐकेडमी ऑफ आर्ट्स एंड साइंस ने फैलोशिप से तथा पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी के लिए, संजय गांधी जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इन्हीं के प्रयासों से, भारत सरकार ने नेशनल कमेटी फार इनवॉयरमेंटल प्लानिंग तथा कोऑरडिनेशन (1972) की स्थापना की। बाद में जिसने पर्यावरण तथा वन मंत्रालय को स्थापित (1984) करने का मार्ग प्रशस्त किया।

© NCERT not to be republished

अध्याय 13

जीव और समष्टियाँ

13.1 जीव और इसका पर्यावरण

13.2 समष्टियाँ

हमारे जैविक विश्व में लुभावनी विविधता और आश्चर्यजनक जटिलता है। हम जीव विज्ञानीय संगठन के विभिन्न स्तरों पर अन्वेषी प्रक्रमों से इसकी जटिलता को समझने का प्रयास कर सकते हैं। ये जीव विज्ञानीय संगठन स्तर हैं— बृहतअणु, कोशिकाएँ, ऊतक, अंग, व्यष्टि जीव, समष्टियाँ, समुदाय तथा पारितंत्र और जीवोम। इस संगठन के किसी भी स्तर पर हमारे मन में दो प्रकार के प्रश्न उठ सकते हैं— उदाहरण के लिए जब हम बाग में सुबह बुलबुल को गाते सुनते हैं तो प्रश्न उठता है 'पक्षी कैसे गाता है?' या 'पक्षी क्यों गाता है?' 'कैसे प्रकार' के प्रश्नों में प्रक्रम के पीछे **क्रियाविधि** जानने की जिज्ञासा है जबकि 'क्यों प्रकार' के प्रश्नों में प्रक्रम का **महत्त्व** तलाशा जाता है। इस उदाहरण में पहले प्रश्न का उत्तर पक्षी में वाक् यंत्र और कंपमान अस्थि का प्रचालन हो सकता है जबकि दूसरे प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि प्रजनन ऋतु के दौरान पक्षी को अपने साथी से बात करने की आवश्यकता हो सकती है। जब आप अपने चारों ओर प्रकृति को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखेंगे तो आपके मन में निश्चित रूप से दोनों प्रकार के अनेक दिलचस्प प्रश्न उठेंगे— *रात को खिलने वाले फूल आमतौर पर सफेद क्यों होते हैं? भ्रमर को कैसे पता चलता है कि किस फूल में मकरंद है? कैक्टस में इतने सारे काँटे क्यों होते हैं?* चूज़े कैसे अपनी *माँ* को पहचान लेते हैं? आदि-आदि।

© NCERT not to be republished

आप पिछली कक्षाओं से सीख चुके हैं कि पारिस्थितिकी ऐसा विषय है जिसमें जीवों के बीच या जीवीय तथा भौतिक (अजीवीय/अबायोटिक) पर्यावरण के बीच होने वाली पारस्परिक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

मूलरूप से पारिस्थितिकी जीवीय संगठन के चार स्तरों से संबंधित है- जीव, समष्टियाँ, समुदाय और जीवोम। इस अध्याय में हम पारिस्थितिकी के जैविक और समष्टि स्तरों के बारे में अध्ययन करेंगे।

13.1 जीव और इसका पर्यावरण

जैविक स्तर पर पारिस्थितिकी मूलरूप से कायिकीय पारिस्थितिकी है जिसमें विभिन्न जीव न केवल जीवित रहने बल्कि जनन के संदर्भ में अपने पर्यावरणों के प्रति अनुकूलित हो जाते हैं। आपने पहले की कक्षाओं में पढ़ा होगा कि पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर घूर्णन, इसके अक्ष का झुकाव तापमान की तीव्रता और अवधि किस प्रकार वार्षिक परिवर्तनों का कारण बनता है जिसके फलस्वरूप भिन्न ऋतुएँ बनती हैं। ये परिवर्तन और वर्षण मिलकर

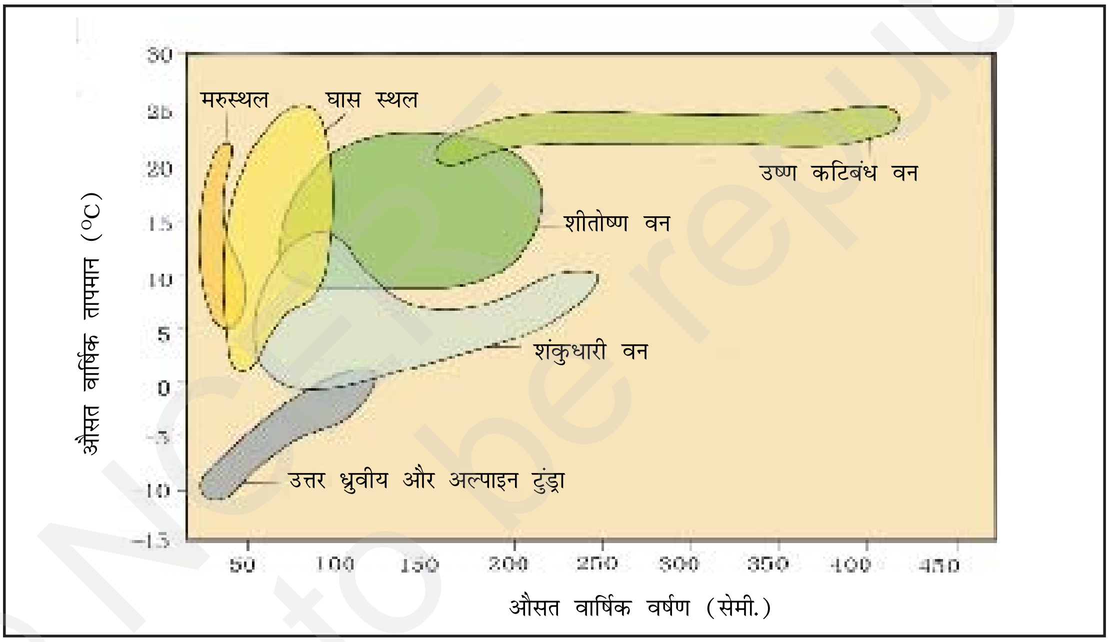

चित्र 13.1 वार्षिक तापमान और वर्षण के संदर्भ में जीवोम का वितरण

प्रमुख जीवोम का निर्माण करते हैं जैसे कि मरुस्थल, वर्षा वन और टुंड्रा (चित्र 13.1)। (बरसात या वर्षण में वर्षा और हिम दोनों शामिल हैं।) प्रत्येक जीवोम के अंदर ही क्षेत्रीय और स्थलीय विभिन्नताओं के कारण आवासों में व्यापक विविधता है। भारत के प्रमुख जीवोम चित्र 13.2 में दिखाए गए हैं। पृथ्वीग्रह पर जीवन न केवल थोड़े से अनुकूल आवासों में ही है बल्कि चरम और कठोर आवासों में भी है जैसे कि झुलसते राजस्थानी मरुस्थल, निरंतर वर्षा से भीगे मेघालय के वन, गहरे महासागर की खाइयाँ, वेगवती

© NCERT not to be republished

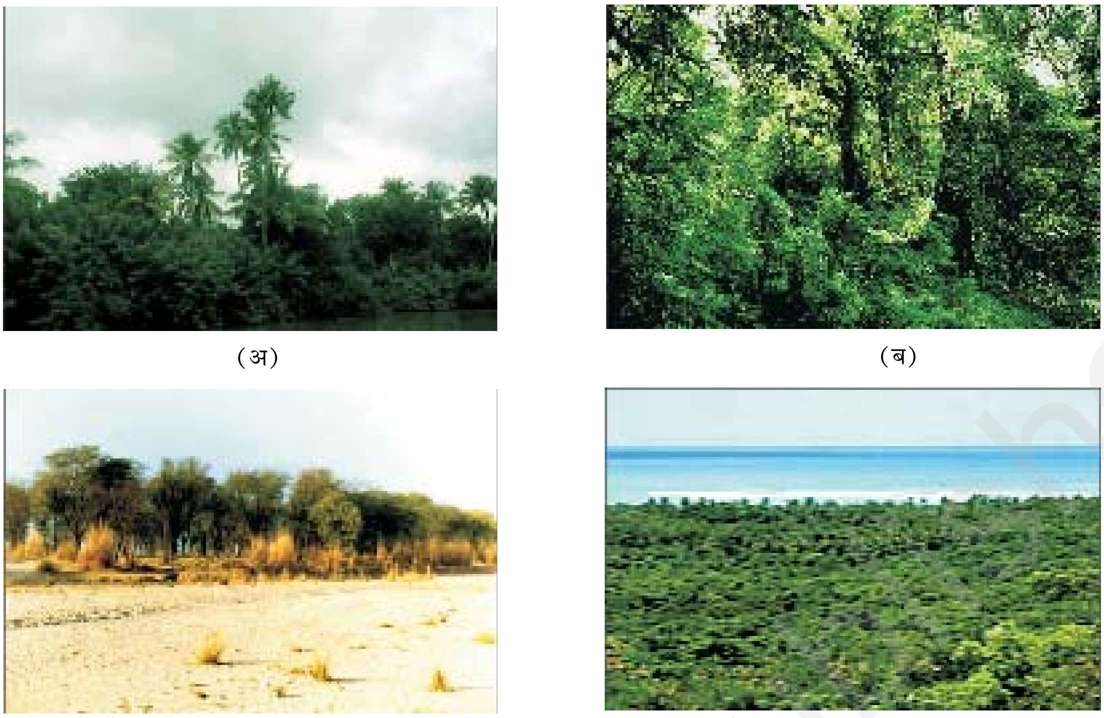

(अ) (ब) (स) (द)

चित्र 13.2 भारतवर्ष के प्रमुख जीवोम (अ) उष्ण कटिबंधीय-वर्षा वन (ब) पर्णपाती वन (स) मरुस्थल (द) समुद्र तट

सरिताएँ, ध्रुवीय क्षेत्रों की स्थायी तुषार भूमि, ऊँचे पर्वत शिखर, उबलते गरम झरने और दुर्गंधयुक्त कंपोस्ट गर्त आदि कुछ नाम हैं। यहाँ तक कि हमारी आँत भी सूक्ष्मजीवों की हजारों जातियों का बेजोड़ आवास है।

विभिन्न आवासों की भौतिक और रासायनिक स्थितियों में इतनी अधिक विविधता के मुख्य तत्त्व क्या हैं? सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व तापमान, जल, प्रकाश और मृदा हैं। हमें यह याद रखना जरूरी है कि भौतिक-रासायनिक (अजीवीय या अजैव) घटक अपने आप में पूरी तरह से किसी जीव के आवास की विशेषता नहीं बताते। आवास में जीवीय (बायोटिक) घटक भी शामिल हैं जैसे कि रोगजनक (पैथोजन), परजीवी, परभक्षी और जीव के वे स्पर्धी जिनके साथ वह लगातार पारस्परिक-क्रिया करता है। हम यह मानते हैं कि एक लंबे समय में प्राकृतिक वरण द्वारा अपने आवास में उत्तरजीविता (सर्वाइवल) और जनन को इष्टतम बनाने के लिए जीव ने अनुकूलनों का विकास किया।

13.1.1 प्रमुख अजैव कारक

तापमान पारिस्थितिक रूप से सबसे ज्यादा प्रासंगिक पर्यावरणीय कारक है। आप जानते ही हैं कि पृथ्वी पर औसत तापमान ऋतु के अनुसार बदलता रहता है। भूमध्यरेखा से ध्रुवों की ओर और मैदानों से पर्वत शिखरों की ओर उत्तरोत्तर घटता रहता है। ध्रुवीय क्षेत्रों और

© NCERT not to be republished

उच्च तुंगता (एल्टिट्यूड) वाले क्षेत्रों में तापमान अवशून्य (सबजीरो) से लेकर ग्रीष्म में उष्णकटिबंधी मरुस्थलों में 50 डिग्री सेंटी से अधिक पहुँच जाता है। लेकिन कुछ बेजोड़ आवास भी हैं जैसे कि गरम झरने और गंभीर सागर यानी गहरे सागर के उष्णजलीय निकास जहाँ औसत तापमान 100 डिग्री. सेंटी से अधिक होता है। यह सामान्य ज्ञान है कि आम के पेड़ कनाडा और जर्मनी जैसे शीतोष्ण देशों में नहीं होते हैं और न हो सकते हैं। हिम चीते केरल के जंगलों में नहीं मिलते और ट्यूना मछली महासागर में शीतोष्ण अक्षांशों से आगे कभी-कभार ही पकड़ी जाती है। जीवधारियों के लिए तापमान के महत्त्व को आप उस समय अच्छी तरह से सराह सकते हैं जब आप को पता चले कि यह प्रकिण्वों (एंजाइमों) की बलगति (काइनेटिक्स) को प्रभावित करता है और इसके द्वारा आधारी उपापचय, जीव के अन्य कार्यिकीय प्रकार्यों तथा उसकी गतिविधियों को प्रभावित करता है। कुछ जीव तापमानों के व्यापक परास (चरम) सहन कर सकते हैं और उसमें खूब बढ़ते हैं ये **पृथुताजापी/यूरीथर्मल** कहलाते हैं), लेकिन उनमें से अधिकांश तापमानों की कम परास में ही रहते हैं ऐसी जीव तनुतापी (स्टेनोथर्मल) कहलाते हैं। विभिन्न जातियों के भौगोलिक वितरण काफी हद तक उनकी तापीय सहनशक्ति पर निर्भर है। *(क्या आपके ध्यान में कुछ पृथुतापी और तनु तापी प्राणियों और पादपों के नाम आते हैं?*

हाल ही के वर्षों में धीरे-धीरे बढ़ते हुए औसत भूमंडलीय तापमान पर चिंता बढ़ी है (अध्याय 16)। *अगर यह बढोत्तरी जारी रही तो क्या आपको आशा है कि कुछ जातियों के वितरण का दायरा प्रभावित होगा?*

जल— तापमान के बाद, जीवों के जीवन को प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण कारक जल है। वास्तव में, पृथ्वी पर जीवन पानी में ही जन्मा था और यह बिना पानी के अपने आप में इसका प्रतिपालन नहीं हो सकता। मरुस्थल में इसकी उपलब्धता इतनी सीमित है कि केवल विशेष अनुकूलताओं के कारण ही वहाँ रहना संभव है। पादपों की उत्पादकता और वितरण भी पानी पर बहुत ज्यादा निर्भर है। आप सोचते होंगे कि महासागरों, झीलों और नदियों में रहने वाले जीवों को जल-संबंधित समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता होगा लेकिन यह सच नहीं है; जलीय जीवों के लिए जल की गुणता (रासायनिक संघटन, पीएच) महत्त्वपूर्ण होता है। लवण की सांद्रता (प्रति हजार भाग में लवणता के रूप में मापी गई), अंत:स्थलीय जल में 5 प्रतिशत से कम, समुद्र में 30-35 प्रतिशत और कुछ अतिलवणीय लगूनों में 100 प्रतिशत से अधिक होती है। कुछ जीव लवणता की व्यापक परास के प्रति सहनशील होते हैं (*पृथुलवणी/यूरीहेलाइन*) लेकिन अन्य कम परास में सीमित होते हैं (*तनुलवणी/स्टेनोहेलाइन*)। बहुत से अलवण जल प्राणी समुद्र के पानी में और समुद्री प्राणी अलवण जल में लंबे समय तक नहीं रह सकते; क्योंकि उन्हें परासरणी (ऑस्मोटिक) समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

प्रकाश— पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा खाद्य उत्पन्न करते हैं। यह ऐसी प्रक्रिया है जो ऊर्जा के स्रोत के रूप में धूप उपलब्ध होने पर संभव है। इसलिए हम जीवधारियों के लिए, विशेषरूप से स्वपोषियों (ऑटोट्रॉफ्स) के लिए, प्रकाश के महत्त्व को समझ सकते हैं। वनों में अनेक जातियों के छोटे पौधे (शाक और झाड़ियाँ) बहुत हल्के प्रकाश वाली परिस्थितियों में इष्टतम प्रकाश संश्लेषण करने के लिए अनुकूलित हैं; क्योंकि उन पर

© NCERT not to be republished

सतत् लंबे, वितानमय पेड़ों की छाया रहती है। बहुत से पौधे भी पुष्पन हेतु अपनी दीप्तिकालिक (फोटोपीरिऑडिक) आवश्यकता की पूर्ति के लिए धूप पर निर्भर होते हैं। बहुत से प्राणियों के लिए भी प्रकाश इस रूप में महत्त्वपूर्ण है कि वे प्रकाश की तीव्रता और अवधि (दीप्तिकाल) में दैनिक तथा मौसमी विभिन्नताओं को अपनी चारे की खोज, (फोरेजिंग), जनन और प्रवासी गतिविधियों का समय तय करने के लिए संकेत के रूप काम में लाते हैं। पृथ्वी पर प्रकाश की उपलब्धता तापमान से निकट से संबंधित हैं क्योंकि दोनों का स्रोत सूर्य है। लेकिन महासागरों की गहराई (500 मीटर से अधिक) में पर्यावरण निरंतर अंधकारमय रहता है और वहाँ रहने वालों को यह मालूम नहीं है कि सूर्य नामक खगोलीय ऊर्जा का कोई स्रोत भी है। *तब, उनकी ऊर्जा का स्रोत क्या है?* सौर विकिरण की स्पेक्ट्रमी गुणवत्ता भी जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है। सौर विकिरण की स्पेक्ट्रम का पराबैंगनी घटक बहुत से जीवों के लिए हानिकारक है जबकि महासागर की भिन्न-भिन्न गहराइयों में मिलने वाले समुद्री पादपों के लिए दृश्य स्पेक्ट्रम के सभी रंग घटक उपलब्ध नहीं है। *समुद्रवासी लाल, हरे और भूरे शैवालों में से किन की गंभीरतम जल में मिलने की संभावना है?* क्यों?

मृदा— विभिन्न स्थानों में मृदा की प्रकृति और गुण भिन्न-भिन्न होते हैं। यह जलवायु, अपक्षय-प्रक्रम (विदरिंग-प्रोसेस, क्या यह वाहित या अवसादी (सेडिमेंटरी) है तथा इसका विकास कैसे हुआ; इन सब बातों पर निर्भर है। मृदा की विभिन्न विशेषताएँ जैसे कि मृदा संघटक, कण-साइज और पुंजन मृदा के अंत:स्रवण (पर्कोलेशन) तथा जलधारण क्षमता का निर्धारण करते हैं। इन विशेषताओं के साथ-साथ पीएच, खनिज संघटन और स्थलाकृति (टोपोग्राफी) जैसे प्राचल काफी हद तक किसी क्षेत्र की वनस्पति का निर्धारण करते हैं। इसके बाद यह सब मिलकर तय करते हैं कि उस क्षेत्र में किस प्रकार के प्राणियों का पालन-पोषण हो सकता है। इसी प्रकार, जलीय पर्यावरण, अवसादी विशेषताएँ प्राय: वहाँ पनपने वाले नितलस्थ प्राणियों के प्रकार का निर्धारण करती हैं।

13.1.2 अजीवीय कारकों के प्रति अनुक्रियाएँ

यह अनुभव कर लेने के बाद कि अनेक आवासों की अजीवीय परिस्थितियाँ कभी न कभी सशक्तरूप से परिवर्तित हो सकते हैं, अब हम पूछते हैं "इस तरह के आवासों में रहने वाले जीव दबाव वाली परिस्थितियों का कैसे सामना करते हैं या कैसे उन परिस्थितियों में रहने की युक्ति ढूँढ़ लेते हैं?" लेकिन इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करने से पहले हमें यह पूछना चाहिए कि आखिर अत्यधिक परिवर्तनशील बाहरी पर्यावरण जीवों को क्यों परेशान करता है। व्यक्ति यह आशा करेगा कि अपने अस्तित्व के लाखों सालों के दौरान, अनेक जातियों ने अपेक्षाकृत स्थिर स्थायी आंतरिक (शरीर के भीतर ही) पर्यावरण विकसित कर लिया होगा। यह आंतरिक पर्यावरण सारे जैवरासायनिक अभिक्रियाओं (रिएक्शंस) और कार्यिकीय प्रकार्यों को अधिकतम दक्षता से होने देता है और इस प्रकार जातियों की 'तंदुरूस्ती' को बढ़ाता है। उदाहरण के लिए यह निरंतरता शरीर के इष्टतम तापमान और शरीर के तरल पदार्थों के परासरणी सांद्रण के रूप में हो सकता है। तब आदर्शत: जीव को अपने आंतरिक पर्यावरण (समस्थापन/होमिओस्टैसिस) कहा जाने वाला

© NCERT not to be republished

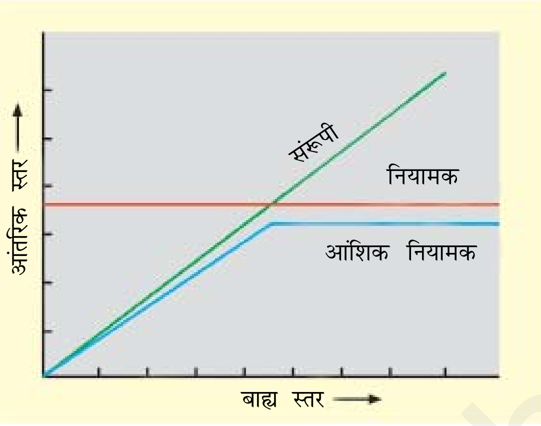

चित्र 13.3 जैविक अनुक्रिया के तरीकों का आरेखीय निरूपण

प्रक्रम की स्थिरता (कांस्टेंसी) बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए भले ही परिवर्ती बाह्य पर्यावरणीय परिस्थितियाँ उसके समस्थापन को बिगाड़ना चाहें। इस महत्त्वपूर्ण संकल्पना को स्पष्ट करने के लिए हम एक सादृश्य की चर्चा करते हैं। मान लीजिए कोई व्यक्ति परिवेश का तापमान 25 डिग्री सें. होने पर सर्वोत्तम रूप से कार्य कर सकता है और जब बाहर झुलसाने वाली गर्मी होने या जमा देने वाली ठंड होने पर भी अपने निष्पादन को सर्वोत्तम बनाए रखना चाहता है। यह घर में, कार में यात्रा करते हुए और अपने कार्यस्थल पर गर्मियों में वातानुकूलक (एयरकंडीशनर) और सर्दियों में तापक (हीटर) का प्रयोग करके ऐसा किया जा सकता है। तब भले ही उसके बाहर का मौसम कुछ भी हो उसका निष्पादन हमेशा अधिकतम होगा। यहाँ व्यक्ति का समस्थापन, कार्यिकीय साधनों के बजाय कृत्रिम साधनों द्वारा हासिल किया जाता है। *दूसरे जीव इन स्थितियों में कैसे रह सकते हैं? हमें विभिन्न संभावनाओं का ध्यान करना चाहिए* (चित्र 13.3)।

(क) ***नियमन करना*** — कुछ जीव समस्थापन कार्यिकीय (कभी-कभी व्यावहारिक भी) साधनों द्वारा बनाए रखते हैं जिससे शरीर का तापमान, परासरणी सांद्रण, आदि स्थिर रहता है। सभी पक्षी और स्तनधारी और बहुत थोड़े से निम्न कशेरूकी और कुछ अकशेरूकी जातियाँ वास्तव में ऐसा नियमन (ताप नियमन और परासरण नियमन) बनाए रखने में सक्षम हैं। विकासवादी जीव वैज्ञानिकों का विश्वास है कि स्तनधारियों की 'सफलता' इस कारण है कि वे शरीर का तापमान स्थिर बनाए रखने में सक्षम है चाहे वे अंटार्कटिका में रहे या सहारा के रेगिस्तान में।

अधिकतर स्तनधारियों द्वारा अपने शरीर के तापमान को नियमित करने के लिए जो क्रियाविधि अपनायी जाती है वह वैसी ही है जैसी कि मानव अपनाते हैं। हम शरीर का तापमान 37°C स्थिर रखते हैं। ग्रीष्म ऋतु में जब बाहर का तापमान हमारे शारीरिक तापमान से अधिक होता है तब हमें बेहद पसीना आता है। गर्मी के फलस्वरूप पसीना के वाष्प बन कर उड़ने से होने वाला शीतलन वैसा ही है जैसे कि डेजर्ट कूलर चलने पर शरीर का तापमान कम हो जाता है। शीत ऋतु जब पर्यावरणीय तापमान 37°C से बहुत कम होता है। हम काँपने लगते हैं जो एक प्रकार का व्यायाम है जिससे ऊष्मा पैदा होती है और शरीर का तापमान बढ़ जाता है। लेकिन पौधों में आंतरिक तापमान को स्थिर बनाए रखने के लिए ऐसी कोई क्रियाविधि नहीं होती।

(ख) ***संरूपण रखना*** — प्राणियों की बहुत बड़ी संख्या (लगभग 99 प्रतिशत) और लगभग सभी पौधे स्थिर आंतरिक पर्यावरण नहीं बनाए रख सकते। उनके शरीर का तापमान परिवेशी तापमान के अनुसार बदलता रहता है। जलीय प्राणियों में

© NCERT not to be republished

शरीर के तरल की परासरणी सांद्रता परिवेशी जल की परासरणी सांद्रता के अनुसार बदलती रहती है। ये प्राणि और पादप संरूपी (कॉनफॉर्मर्स) कहलाते हैं। जीव के लिए स्थिर आंतरिक पर्यावरण के लाभ को देखते हुए, हमें यह अवश्य पूछना चाहिए कि ये संरूपी विकसित होकर नियामक क्यों नहीं बने। हमने ऊपर जिस मानव सादृश्य का उदाहरण दिया है उसे स्मरण कीजिए। कितने लोग नहीं चाहते हैं कि उनके पास भी 'वातानुकूलक' हो? और कितने हैं जो वास्तव में उसे खरीद सकते हैं? बहुत से लोग गरमी के महीनों में केवल पसीना निकल जाने देते हैं और उपानुकूलतम (सबऑप्टिमन) निष्पादन से ही संतोष कर लेते हैं। बहुत से जीवों के लिए ताप नियमन (सबऑप्टिमल) ऊर्जा के संदर्भ में खर्चीला है। यह बात मंजोरू (श्रू) और गुंजन पक्षी जैसे छोटे प्राणियों के मामले में विशेष रूप से सच है। ताप हानि या ताप लाभ पृष्ठीय क्षेत्रफल (सर्फेस एरिया) का प्रकार्य है। चूँकि छोटे प्राणियों का पृष्ठीय क्षेत्रफल उनके आयतन की अपेक्षा ज्यादा होता है इसलिए जब बाहर ठंड होती है तो उनके शरीर की ऊष्मा बहुत तेजी से कम होती है। ऐसी स्थिति में उन्हें उपापचय (मेटाबोलिज्म) द्वारा शरीर की ऊष्मा पैदा करने के लिए काफी ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। यह मुख्य कारण है कि बहुत छोटे प्राणी बिरले ही ध्रुवीय क्षेत्रों में पाए जाते हैं। विकास क्रम के दौरान स्थिर आंतरिक पर्यावरण बनाए रखने की लागत और लाभ का विचार किया जाता है। कुछ जातियों ने नियमन करने की क्षमता विकसित कर ली है, लेकिन केवल सीमित परास वाली पर्यावरणीय परिस्थितियों में। यदि पर्यावरणीय परास ज्यादा हो तो वे केवल संरूपण करते हैं। अगर दबावभरी बाहरी परिस्थितियाँ स्थान विशेष में हैं अथवा केवल थोड़ी अवधि के लिए हैं तो जीव के पास दो अन्य विकल्प हैं—

(ग) ***प्रवास करना*** — जीव दबावपूर्ण आवास से अस्थायी रूप से अधिक अनुकूल क्षेत्र में चला जाए और जब दबावभरी अवधि बीत जाय तो वापस लौट आए। मानव सादृश्य में, यह नीति ऐसी है जैसे गरमी की अवधि में व्यक्ति दिल्ली से शिमला चला जाए। अनेक प्राणी, विशेषत: पक्षी, शीतऋतु के दौरान लंबी दूरी का प्रवास करके अधिक अतिथि अनुकूली क्षेत्रों में चले जाते हैं। प्रत्येक शीतकाल में राजस्थान स्थित प्रसिद्ध केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान (भरतपुर) साइबेरिया और अन्य अत्यधिक ठंडे उत्तरी क्षेत्रों से आने वाले प्रवासी पक्षियों को अतिथि के रूप में स्वागत करता है।

(घ) ***निलंबित करना*** — जीवाणुओं, कवकों और निम्न पादपों में विभिन्न प्रकार के मोटी भित्ति वाले बीजाणु बन जाते हैं, जिससे उन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों में जीवित बचे रहने में सहायता मिलती है। उपयुक्त पर्यावरण उपलब्ध होने पर ये अंकुरित हो जाते हैं। उच्च पादपों में, बीज और कुछ दूसरी वनस्पतिक जनन संरचनाएँ उनके परिक्षेपण में सहायता करने के अतिरिक्त दबाव वाले समय से पार पाने के साधन के रूप में काम आते हैं। नमी और तापमान की अनुकूल परिस्थितियों में वे नए पादपों के रूप में अंकुरित होते हैं। वे अपनी उपापचयी

© NCERT not to be republished

सक्रियता को कम कर और 'प्रसुप्ति' (डॉरमेंसी) अवस्था में जाकर ऐसा करते हैं और प्राणियों में, अगर जीव प्रवास नहीं कर सकता तो वह समय में पलायन करके दबाव से बचता है। शीतऋतु में भालुओं की *शीतनिष्क्रियता* (हाइबर्नेशन) में जाना तथा उस समय पलायन से बचाव करने का जाना पहचाना मामला है। कुछ घोंघे और मछलियाँ ग्रीष्म ऋतु से संबंधित ताप तथा जलशुष्कन जैसी समस्याओं से बचने के लिए *ग्रीष्मनिष्क्रियता* (अस्टिवेशन) में चली जाती हैं। प्रतिकूल परिस्थिति में झीलें और तालाबों में प्राणिप्लवक (जूप्लैंकटन) की अनेक जातियाँ *उपरति* (डायापॉज) में आ जाती है जो निलंबित परिवर्धन की एक अवस्था है।

13.1.3 अनुकूलन

अपने पर्यावरण की चरम परिस्थितियों का सामना करने के लिए हमने जीवों को उपलब्ध अनेक विकल्पों को अपनाते देखा है जहाँ कुछ जीव विशेष कार्यिकीय सामंजस्य द्वारा अनुक्रिया करने में समर्थ होते हैं जबकि दूसरे जीव व्यावहारिक अनुक्रिया द्वारा करते हैं (अस्थायी रूप से कम दबाव भरे आवास में प्रवास करके)। ये अनुक्रियाएँ वास्तव में उनका अनुकूलन भी हैं। इसलिए, हम **अनुकूलन** की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं— यह जीव का कोई एक ऐसा गुण (आकारिकीय, कार्यिकीय, व्यावहारिक) है जो उसे अपने आवास में जीवित बने रहने और जनन करने के योग्य बनाता है। अनेक अनुकूलन लंबे समय की विकास यात्रा के बाद विकसित हुए हैं और आनुवंशिकत: स्थिर हो गए हैं। जल के बाह्य स्रोत न होने पर उत्तरी अमेरीका के मरुस्थल में कंगारू-चूहा अपनी जल की आवश्यकता की पूर्ति अपनी आंतरिक वसा के ऑक्सीकरण (जिसमें जल एक उप-उत्पाद है) से पूरी करने में सक्षम है। इसमें अपने मूत्र को सांद्रित करने की क्षमता भी है जिससे उत्सर्जी पदार्थों को हटाने के लिए जल के न्यूनतम आयतन काम में लाई जाती है।

अनेक मरुस्थलीय पौधों की पत्तियों की सतह पर मोटी उपत्वचा (क्यूटिकल) होती है और उनके रंध्र (स्टोमैटा) गहरे गर्त में व्यवस्थित होते हैं, ताकि वाष्पोत्सर्जन (ट्रांस्पिरेशन) द्वारा जल की न्यूनतम हानि हो। उनके प्रकाश संश्लेषी (सी ए एम) मार्ग भी विशेष प्रकार के होते हैं जिसके कारण वे अपने रंध्र दिन के समय बंद रख सकते हैं। कुछ मरुस्थली पादपों जैसे *नागफनी* (ओपंशिया) *कैक्टस*, आदि में पत्तियाँ नहीं होती बल्कि वे कांटे की रूप में रूपांतरित हो जाती हैं और प्रकाश संश्लेषण का प्रकार्य चपटे तनों द्वारा होता है।

ठंडी जलवायु वाले स्तनधारियों के कान और पाद आमतौर पर छोटे होते हैं ताकि ऊष्मा की हानि न्यूनतम हो (यह *'ऐलन का नियम'* कहलाता है)। ध्रुवीय समुद्रों में सील जैसे जलीय स्तनधारियों में उनकी त्वचा के नीचे वसा (तिमिवसा/बलबर) की मोटी परत होती है जो ऊष्मारोधी (इंसुलेटर) का काम करती है और शरीर की ऊष्मा हानि को कम करती है।

कुछ जीवों के अनुकूलन कार्यिकीय होते हैं जिसकी वजह से वे दबावपूर्ण परिस्थितियों के प्रति शीघ्र अनुक्रिया करते हैं। अगर आपको कभी उच्च तुंगता वाले क्षेत्र

© NCERT not to be republished

में जाने का मौका मिले (3,500 मी. से अधिक, मनाली के पास रोहतांग दर्रा, तिब्बत में मानसरोवर) तो आपने *'तुंगता बीमारी'* का अवश्य अनुभव किया होगा। इस 'बीमारी' के लक्षण है मिचली, थकान, और हृदय स्पंदन में वृद्धि। इसका कारण यह है कि उच्च तुंगता वाले क्षेत्र में वायुमंडलीय दाब कम होता है इसलिए शरीर को पर्याप्त ऑक्सीजन नहीं मिलती। लेकिन धीरे-धीरे आप पर्यानुकूलित (एक्लेमिटाइज्ड) हो जाते हैं और आपको तुंगता बीमारी का अनुभव नहीं होता। आपके शरीर ने इस समस्या का समाधान कैसे किया? आपका शरीर कम ऑक्सीजन उपलब्ध होने की क्षतिपूर्ति लाल रुधिर कोशिका का उत्पादन बढ़ाकर, हीमोग्लोबिन की बंधनकारी क्षमता घटाकर और श्वसन दर बढ़ाकर लेता है। *हिमालय के ऊँचे क्षेत्रों में अनेक जनजातियाँ रहती हैं। पता लगाइए कि क्या मैदानी इलाकों में रहने वाले लोगों की तुलना में उन जनजातियों में सामान्यतया लाल रुधिर कोशिका की संख्या (या कुल हीमोग्लोबिन) ज्यादा होती हैं?*

अधिकांश प्राणियों में उपापचयी अभिक्रियाएँ और इसलिए सभी कार्यिकीय प्रकार्य संकीर्ण तापमान परास में इष्टतम होते हैं (मानव में यह तापमान 37°C है)। लेकिन ऐसे सूक्ष्मजीव (आर्किबैक्टीरिया) भी हैं जो तप्त झरनों और गहरे समुद्र के उष्णजलीय निकासों में, जहाँ तापमान 100 डिग्री से भी ज्यादा होता है, में खूब फलते-फूलते हैं। यह कैसे संभव है? अनेक मछलियाँ दक्षिण ध्रुवीय जल में खूब पनपती हैं जहाँ का तापमान हमेशा शून्य से कम रहता है। *वे अपने शरीर के तरल को जमने से कैसे बचा लेती हैं?*

अनेकों समुद्री अकेशरूकी और मछलियाँ महासागर की बहुत गहराई में रहती हैं जहाँ का दाब उस सामान्य वायुमंडलीय दाब से 100 गुना अधिक होता है जो हम पृथ्वी पर अनुभव करते हैं। *वे ऐसे जबरदस्त दाब में कैसे रहती हैं और क्या उनमें कोई विशेष एंजाइम होते हैं?* ऐसी चरम पर्यावरणीय परिस्थितियों में रहने वाले जीव जैवरासायनिक अनुकूलनों का मोहक क्रमविन्यास दर्शाते हैं।

कुछ जीव अपने पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों का सामना करने के लिए व्यावहारिक अनुक्रियाएँ दर्शाते हैं। स्तनधारियों में अपने आवास के उच्च तापमान से निबटने के लिए जो कार्यिकीय योग्यता होती है, मरुस्थल की छिपकलियों में इस योग्यता की कमी है लेकिन वे व्यावहारिक साधनों द्वारा अपने शरीर के तापमान को काफी स्थिर बनाए रखती हैं। जब उनका तापमान सुविधा स्तर से नीचे चला जाता है तब वे धूप सेंक कर ऊष्मा अवशोषित करती हैं लेकिन जब परिवेश का तापमान बढ़ने लगता है तब वे छाया में चली जाती हैं। कुछ जातियों में भूमि से ऊपर की ऊष्मा से बचने के लिए मिट्टी में बिल खोदने की क्षमता होती है।

13.2 समष्टियाँ

13.2.1 समिष्ट गुण

प्रकृति में, हमें किसी भी जाति के पृथक, एकल व्यष्टि के दर्शन बिरले ही होते हैं; उनमें से अधिकांश सुपरिभाषित भौगोलिक क्षेत्र में समूह में रहते हैं, समान संसाधनों का साझा

© NCERT not to be republished

उपयोग करते हैं अथवा उनके लिए स्पर्धा करते हैं, संकरण (इनब्रीड) करते हैं और इस प्रकार वे **समष्टि** की रचना करते हैं। हालाँकि संकरण शब्द में लैंगिक जनन कार्य अंतर्निहित है, अलैंगिक जनन से भी जन्म लेने वाले व्यष्टियों का समूह को भी पारिस्थितिक अध्ययन के लिए आमतौर से समष्टि मान लिया जाता है। आर्द्र भूमि में सभी जलकाक, वन क्षेत्र के सागवान (टीकवूड) के पेड़, संवर्धन प्लेट के जीवाणु, त्याग दिए गए आवास में चूहे, और तालाब में कमल के पौधे, आदि समिष्ट के कुछ उदाहरण हैं। पहले अध्यायों में आपने यह सीखा कि हालाँकि व्यष्टि जीव वह है जो परिवर्तित पर्यावरण का सामना करे, प्राकृतिक वरण द्वारा वांछित विशेषकों (ट्रेट) को विकसित करने का कार्य समष्टि स्तर पर ही होता है। इसलिए समष्टि पारिस्थितिकी, पारिस्थितिकी का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है क्योंकि यह पारिस्थितिकी को समष्टि आनुवंशिकी (जेनेटिक्स) और विकास से जोड़ता है।

समष्टि में कुछ ऐसे गुण होते हैं जो व्यष्टि जीव में नहीं होते। व्यष्टि जन्मता और मरता है लेकिन समष्टि में **जन्म दरें और मृत्यु दरें** होती हैं। समष्टि में इन दरों को क्रमश: प्रति व्यक्ति जन्म दर और मृत्यु दर कहते हैं। इसलिए दर को समष्टि के सदस्यों के संबंधों में संख्या में परिवर्तन (वृद्धि या ह्रास) के रूप में प्रकट किया उदाहरण के लिए अगर किसी ताल में पिछले साल कमल के 20 पौधे थे और जनन द्वारा 8 नए पौधे और हो जाते हैं जिससे वर्तमान समष्टि 28 हो जाती है, तो हम जन्म दर को $8/20 = 0.4$ संतति प्रति कमल प्रतिवर्ष के हिसाब से परिकलन (कैल्कुलेट) करते हैं। अगर प्रयोगशाला समष्टि में 40 फलमक्खियों में से 4 व्यष्टि किसी विशिष्टीकृत समय अंतराल में, मान लीजिए एक सप्ताह के दौरान मर जाते हैं, तो उस समय के दौरान समष्टि में मृत्यु दर $4/40= 0.1$ व्यष्टि प्रति फलमक्खी प्रति सप्ताह कहलाएगी।

समष्टि का दूसरा विशिष्ट गुण **लिंग अनुपात** यानि नर एवं मादा का अनुपात है। व्यष्टि या तो नर है या मादा है, लेकिन समष्टि का लिंग अनुपात होता है (जैसे कि समष्टि का 60 प्रतिशत स्त्री हैं और 40 प्रतिशत नर हैं)।

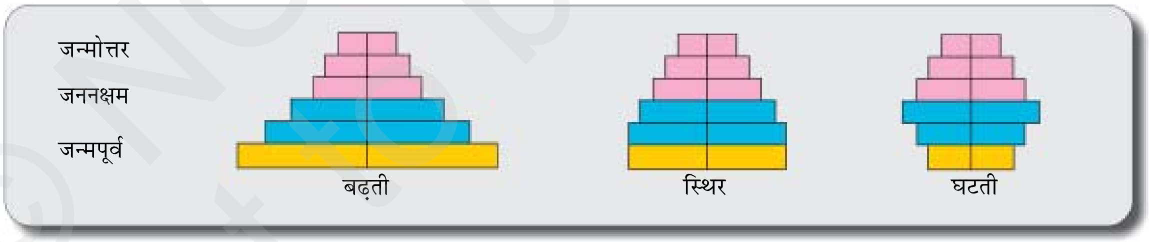

चित्र 13.4 मानव समष्टि के लिए आयु पिरैमिडों का निरूपण

किसी दिए गए समय में समष्टि भिन्न आयु वाले व्यष्टियों से मिलकर बनती है। अगर समष्टि के लिए आयु वितरण (दी गई आयु अथवा आयु वर्ग के व्यष्टियों का प्रतिशत) आलेखित (प्लॉटेड) किया जाता है तो बनने वाली संरचना आयु पिरैमिड कहलाती है (चित्र 13.4)। मानव समष्टि के लिए आयु पिरैमिड आमतौर पर नर और

© NCERT not to be republished

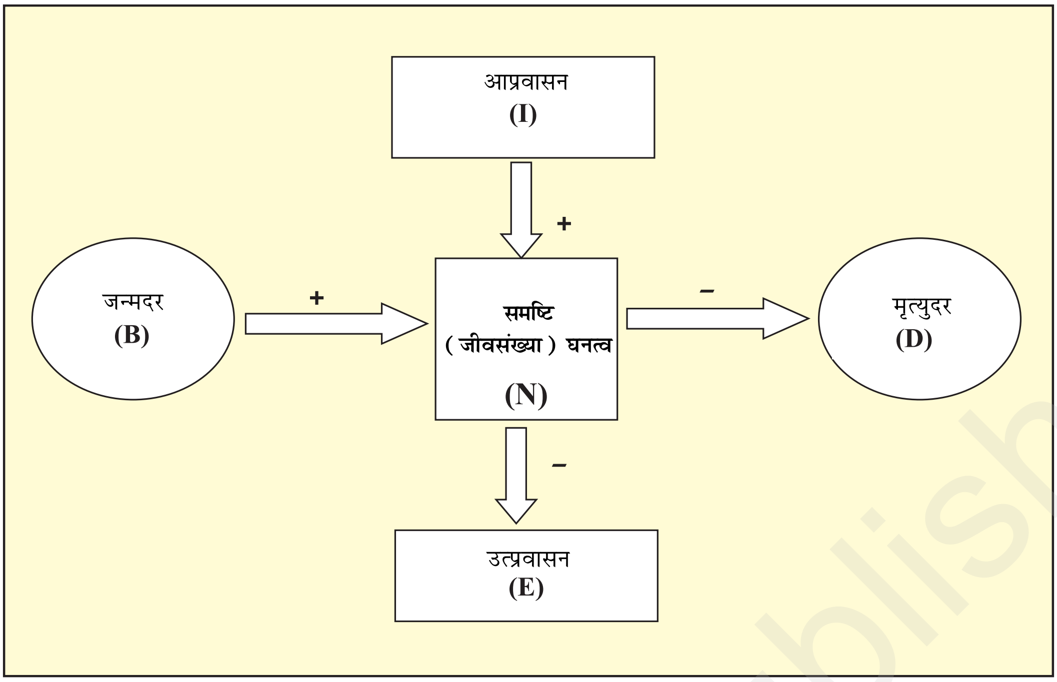

स्त्रियों का आयु वितरण संयुक्त आरेख को दर्शाता है। पिरैमिड का आकार समष्टि की स्थिति प्रतिबिंबित करता है – (क) क्या यह बढ़ रहा है, (ख) स्थिर है या (ग) घट रहा है।

समष्टि का साइज आवास में उसकी स्थिति के बारे में बहुत कुछ बताता है। समष्टि हम कैसे भी पारिस्थितिक प्रक्रम अन्वेषण (इन्वेस्टिगेट) करना चाहें, भले ही यह दूसरी जातियों से स्पर्धा का परिणाम हो, परभक्षी का प्रभाव हो, या पीड़कनाशी (पेस्टिसाइड) अनुप्रयुक्त (एप्लाइड) करने का प्रभाव हो, हम उनका मूल्यांकन हमेशा ही समष्टि के साइज में कोई परिवर्तन के संदर्भ में करते हैं। प्रकृति में समष्टि के साइज की इतनी कम संख्या में भी (10 से कम भरतपुर आर्द्रभूमि क्षेत्रों में) साइबेरियाई सारस या किसी साल लाखों में हो सकती है (तालाब में *क्लेमिडोमोनास*)। यह आवश्यक नहीं है कि समष्टि को, जो अधिक तकनीकी रूप से **समष्टि घनत्व** कहलाती है। (N के रूप में अभिहित)। हालाँकि समष्टि घनत्व की सबसे उपयुक्त माप आमतौर पर कुल संख्या है, कुछ मामलों में यह अर्थहीन होती है अथवा इसका निर्धारण कठिन होता है। किसी क्षेत्र में, अगर 200 *पार्थेनियम* पादप हैं, लेकिन केवल एक अकेला बड़े वितान (कैनोपी) वाला बरगद का विशाल वृक्ष है तो यह कहना कि पार्थेनियम के सापेक्ष बरगद का समष्टि घनत्व कम है उस समुदाय में बरगद की महत्त्वपूर्ण भूमिका को अवांकलन करने के बराबर है। ऐसे मामलों में, समष्टि साइज के माप के लिए प्रतिशत आवरण अथवा जीव भार (बायोमास) अधिक अर्थपूर्ण है। अगर समष्टि बहुत बड़ी है और गणना असंभव है अथवा बहुत समय लेने वाली है तो कुल संख्या को अपनाने का आधार भी सरल नहीं है। *अगर आपके पास प्रयोगशाला में पेट्रीडिश में जीवाणुओं का घना संवर्ध (कल्चर) है तो उसका घनत्व बताने की सर्वोतम माप क्या है?* कभी-कभी, पारिस्थितिक अन्वेषणों के लिए निरपेक्ष समष्टि घनत्व जानने की आवश्यकता नहीं है; आपेक्षिक घनत्वों से भी उद्देश्य की पूर्ति

भली भाँति हो जाती है। उदाहरण के लिए प्रति पाश (ट्रैप) पकड़ी गई मछलियों की संख्या, झील में कुल समष्टि घनत्व की काफी ठीक माप है। हम बहुधा समष्टि के साइज के बिना वास्तव में गिने अथवा बिना देखे अप्रत्यक्ष रूप से आकलन करते हैं। हमारे राष्ट्रीय उद्यानों और बाघ आरक्षितियों (रिजर्ब्स) में बाघ गणना प्रायः पग चिह्नों और मल गुटिकाओं (पैलेट) आधारित होती है।

13.2.2 समष्टि वृद्धि

किसी जाति के लिए समष्टि की साइज स्थैतिक प्राचल नहीं है। यह समय-समय पर बदलता रहता है जो विभिन्न कारकों पर आहार उपलब्धता, परभक्षण दाब, और मौसमी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। वास्तव में ये परिवर्तन हमें समष्टि में क्या घटित हो रहा है, इसका कुछ बोध कराते हैं। क्या समष्टि घनत्व बढ़ रहा है या घट रहा है। अंतिम कारण कुछ भी रहे हों, परंतु दी गई अवधि के दौरान दिए गए आवास में समष्टि का घनत्व चार मूलभूत प्रक्रमों (प्रोसेस) में घटता-बढ़ता है। इन चारों में से दो (जन्मदर और आप्रवासन) समष्टि घनत्व को बढ़ाते हैं और दो (मृत्युदर तथा उत्प्रवासन) इसे घटाते हैं।

(क) ***जन्मदर***— जन्मदर से मतलब समष्टि में जन्मी उस संख्या से है जो दी गई अवधि के दौरान आंरभिक घनत्व में जुड़ती है।

(ख) ***मृत्युदर***— यह दी गई अवधि समष्टि में होने वाली मौतों की संख्या है

(ग) ***आप्रवासन***— उसी जाति के व्यष्टियों की वह संख्या है जो दी गई समय अवधि के दौरान आवास में कहीं और से आए हैं।

(घ) ***उत्प्रवासन***— समष्टि के व्यष्टियों की वह संख्या है जो दी गई समयावधि के दौरान आवास छोड़कर कहीं और चले गए हैं।

इसलिए अगर समय t पर समष्टि घनत्व N है तो समय $t+1$ पर इसका घनत्व

$$N_{t+1} = N_t + [(B + I) - (D + E)]$$ है

ऊपर दिए गए समीकरण से आप देख सकते हैं कि अगर जन्म लेने वालों की संख्या जमा आप्रवासियों की संख्या $(B+I)$ मरने वालों की संख्या जमा उत्प्रवासियों की संख्या $(D+E)$ से अधिक है तो समष्टि घनत्व बढ़ जाएगा अन्यथा यह घट जाएगा। सामान्य परिस्थितियों में, समष्टि घनत्व को प्रभावित करने वाले कारकों में जन्म और मृत्यु सबसे महत्त्वपूर्ण है, दूसरे दो कारक विशेष परिस्थितियों में ही महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, अगर आवास की बस्ती अभी बनी है, तो जन्म दरों की अपेक्षा आप्रवासन समष्टि की वृद्धि में अधिक महत्त्वपूर्ण है।

वृद्धि मॉडल — क्या किसी समष्टि की वृद्धि समय के साथ कोई विशिष्ट और प्रागुक्ति योग्य प्रतिरूप दर्शाती है? हम अपने देश में मानव समष्टि की अनियंत्रित वृद्धि और इससे जन्मी समस्याओं से चिंतित हैं और इसलिए अगर प्रकृति में भिन्न प्राणी समष्टियाँ इसी तरह वृद्धि करती हैं अथवा वृद्धि पर कुछ नियंत्रण दर्शाती हैं। इस बारे में हमारी जिज्ञासा स्वाभाविक है। समष्टि वृद्धि को कैसे नियंत्रित रखा जा सकता है इस बारे में शायद हम प्रकृति से एक दो बातें सीख सकते हैं।

(क) ***चरघातांकी वृद्धि***— किसी समष्टि की अबाधित वृद्धि के लिए स्पष्टतः संसाधन (आहार और स्थान) उपलब्ध होना अत्यावश्यक है। आदर्शतः आवास

© NCERT not to be republished

में जब संसाधन असीमित होते हैं तो प्रत्येक जाति में संख्या में वृद्धि कर सकने की अपनी जन्मजात शक्ति को पूरी तरह अनुभव करने की योग्यता होती है जैसा कि डार्विन ने अपने प्राकृतिक वरण के सिद्धांत को प्रतिपादित करते हुए प्रेक्षित किया। तब समष्टि चरघातांकी (एक्सपोनेन्शियल) अथवा ज्यामितीय (ज्योमेट्रिकल) शैली में वृद्धि करती है। अगर N साइज की समष्टि में, जन्म दरें (कुल संख्या नहीं, बल्कि प्रति व्यक्ति जन्म) b के रूप में और मृत्यु दरें (प्रति व्यक्ति मृत्यु दर) d के रूप में निरूपित की जाती हैं तब इकाई समय अवधि t (dN/dt) के दौरान वृद्धि या कमी निम्नलिखित होगी—

$$dN/dt = (b - d) \times N$$

मान लीजिए $(b-d) = r$, तब

$$\mathbf{dN/dt = rN}$$

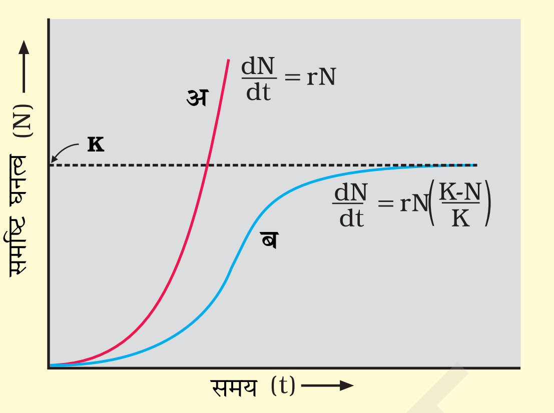

चित्र 13.5 समष्टि वृद्धि वक्र
(अ) जब अनुक्रियाएँ वृद्धि को सीमित करने वाली नहीं हैं तब आरेख चरघातांकी है,
(ब) जब अनुक्रियाएँ वृद्धि के लिए सीमाकारी हैं तब आरेख लॉजिस्टिक है,
(K) पोषण क्षमता है

इस समीकरण में r' 'प्राकृतिक वृद्धि की इंट्रीन्जिक दर' कहलाती है और समष्टि वृद्धि पर किसी भी जैविक अथवा अजीवीय कारक के प्रभाव को निर्धारित करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण प्राचल है।

r मूल्यों के परिणाम (मैग्निट्यूड) के बारे में आपको कुछ बोध कराने के लिए, नार्वे चूहे के लिए r 0.015 है और आटा भृंग के लिए यह 0.12 है। 1981 में भारतवर्ष में मानव समष्टि के लिए r मान 0.0205 थी। *वर्तमान r मान क्या है पता कीजिए। इसके परिकलन के लिए आपको जन्म दरों और मृत्युदरों का पता होना जरूरी है।*

ऊपर दिया गया समीकरण समष्टि के चरघातांकी अथवा ज्यामितीय वृद्धि बताता है (चित्र 13.5) और जब N को समय के संदर्भ में आरेखित करते हैं तो इसका नतीजा J- आकार का वक्र है। अगर आपको मूलभूत कलन आता है तो आप चरघातांकी वृद्धि समीकरण के समाकलित रूप को निम्न प्रकार से दिखा सकते हैं–

$N^t = N_o e^{rt}$

N^t = समय t में समष्टि घनत्व

N_O = समय शून्य में समष्टि घनत्व

r = प्राकृतिक वृद्धि की इंट्रीन्जिक दर

e = प्राकृतिक लघुगणकों (लॉगेरिथ्मों) का आधार (2.71828)

असीमित संसाधन परिस्थितियों में चरघातांकी रूप से वृद्धि करने वाली कोई भी जाति थोड़े समय में ही विशाल समष्टि घनत्वों तक पहुँच सकती है। डार्विन ने दर्शाया कि हाथी जैसा धीमे बढ़ने वाला प्राणी, रोक न होने पर विशाल संख्या तक पहुँच सकता है। चरघातांकी रूप से वृद्धि करने पर विशाल समष्टि कितनी जल्दी निर्मित हो जाती है। इसके बारे में निम्नलिखित किस्सा लोकप्रिय है–

(राजा और मंत्री शतरंज खेलने बैठे। अपनी जीत के प्रति आश्वस्त राजा मंत्री द्वारा प्रस्तावित किसी शर्त को स्वीकार करने के लिए तैयार था। मंत्री ने नम्रतापूर्वक कहा कि

© NCERT not to be republished

अगर वह जीत गया तो वह गेहूँ के केवल कुछ दाने लेगा जिसकी मात्रा शतरंज की बिसात के पहले खाने (वर्ग) में एक दाना, तब दूसरे खाने में 2, तीसरे में 4, चौथे में 8 और इस प्रकार दानों को पिछली मात्रा से दुगना करते हुए अगले खानों में रखते जाना है जब तक कि सभी 64 खाने भर नहीं जाते। राजा ने मूर्खतापूर्ण लगने वाली शर्त मान ली और खेल शुरू किया लेकिन राजा के दुर्भाग्यवश मंत्री जीत गया। राजा को लगा कि मंत्री की शर्त पूरी करना बहुत आसान था। उसने पहले खाने में एक दाना रखकर शुरुआत की और मंत्री द्वारा सुझाई गई प्रक्रिया के अनुसार अन्य खानों को भरता गया लेकिन बिसात के आधे खाने भरने तक राजा ने अनुभव किया कि उसके राज्य में उत्पादित सारे गेहूँ मिलकर भी सभी 64 वर्गों को नहीं भर पाएँगे। अब छोटे से पैरामीशियम के बारे में सोचिए जो केवल एक व्यष्टि से आरंभ करके द्वि-विभाजन (बाइनरीफिशन) द्वारा प्रतिदिन संख्याओं को दुगुना करता रहता है और कल्पना कीजिए कि 64 दिनों में इसकी समष्टि साइज दिमाग को चकरा देने वाली हो जाएगी। बशर्ते असीमित आहार और स्थान उपलब्ध होता रहे)।

(ख) ***संभार तंत्र (लॉजिस्टिक) वृद्धि***— प्रकृति में किसी भी समष्टि के पास इतने असीमित संसाधन नहीं होते कि चरघातांकी वृद्धि होती रहे। इसके कारण सीमित संसाधनों के लिए व्यष्टियों में प्रतिस्पर्धा होती है। आखिर में 'योग्यतम्' व्यष्टि जीवित बना रहेगा और जनन करेगा। अनेक देशों की सरकारों ने भी इस तथ्य को समझा है और मानव समष्टि वृद्धि को सीमित करने के लिए विभिन्न प्रतिबंध लागू किए हैं। प्रकृति में, दिए गए आवास के पास अधिकतम संभव संख्या के पालन — पोषण के लिए पर्याप्त संसाधन होते हैं इससे आगे और वृद्धि संभव नहीं है। उस आवास में उस जाति के लिए इस सीमा को प्रकृति की **पोषण क्षमता** (k) मान लेते हैं।

किसी आवास में सीमित संसाधनों के साथ वृद्धि कर रही समष्टि आरंभ में पश्चता प्रावस्था (लैग फेस) दर्शाती है। उसके बाद त्वरण और मंदन और अंतत: अनंतस्पर्शी प्रावस्थाएँ आती हैं, जब समष्टि घनत्व पोषण क्षमता तक पहुँच जाती है। समय (t) के संदर्भ में N का आरेख (प्लॉट) से सिग्मॉइड वक्र बन जाता है। इस प्रकार की समष्टि वृद्धि *विर्हुस्ट-पर्ल लॉजिस्टिक वृद्धि* (चित्र 13.5) कहलाता है और निम्नलिखित समीकरण द्वारा वर्णित है—

$$dN/dt = rN\frac{(K-N)}{K}$$

जहाँ N = समय t पर समष्टि घनत्व

r = प्राकृतिक वृद्धि की (इंट्रीन्जिक) दर

K = पोषण क्षमता

अधिकांश प्राणियों की समष्टियों में वृद्धि के लिए संसाधन परिमित (फाइनाइट) हैं और देर-सबेर सीमित होने वाले हैं, इसलिए लॉजिस्टिक वृद्धि मॉडल को अधिक यथार्थपूर्ण माना जाता है।

सरकारी (जन) गणना से भारतवर्ष के लिए पिछले 100 वर्षों के समष्टि आँकड़े एकत्रित कीजिए उन्हें आरेखित कीजिए और जाँचिए कि कौन सा वृद्धि प्रतिरूप स्पष्ट है।

© NCERT not to be republished

13.2.3 जीवन-वृत्त विभिन्नता

समष्टियाँ जिस आवास में रहती हैं उसमें अपनी जनन योग्यता, जिसे डार्विनी योग्यता (डार्विनियन फिटनेस) भी कहा जाता है (उच्च r मान), को अधिकतम बनाने के लिए विकसित होती हैं। खास प्रकार के वरण दबाव-सेट में जीव सर्वाधिक दक्ष जनन-युक्ति की ओर विकास करते हैं कुछ अपने जीवन काल में केवल एक बार प्रजनन करती हैं (प्रशांत महासागरीय सामन मछली और बाँस) जबकि अन्य अपने जीवन काल में कई बार प्रजनन करती हैं (अधिकांश पक्षी और स्तनधारी), कुछ छोटी साइज की संतति बहुत बड़ी संख्या में उत्पन्न करती हैं (ऑयस्टर और पैलेजीक मछलियाँ) जबकि दूसरी बड़ी साइज की संतति कम संख्या में उत्पन्न करती हैं (पक्षी और स्तनधारी)। इसलिए योग्यता को अधिकतम करने के लिए कौन वांछनीय है? पारिस्थितिकविज्ञों का सुझाव है कि जीवों के जीवन-वृत्त विशेषक (ट्रेट) जिस आवास में वे रहते हैं; उसके अजीवीय और जीवीय घटकों द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों के संदर्भ में विकसित होते हैं। भिन्न जातियों में जीवन वृत्त विशेषकों का विकास इस समय अनुसंधान का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है और पारिस्थितिकीविज्ञ अनुसंधान में लगे हुए हैं।

13.2.4 समष्टि पारस्परिक क्रियाएँ

क्या आप पृथ्वी पर किसी ऐसे प्राकृतिक आवास के बारे में सोच सकते हैं जहाँ केवल एक ही जाति का वास हो? ऐसा कोई आवास है ही नहीं और इसलिए ऐसी परिस्थिति अकल्पित है। किसी भी जाति के लिए न्यूनतम आवश्यकता एक और जाति की है जिसको वह भोजन के रूप में ले सके। पादप जाति भी जो अपना आहार स्वयं बनाती है, अकेली जीवित नहीं रह सकती; इसे मृदा के कार्बनिक पदार्थ को तोड़ने और अकार्बनिक पोषकों को इसके अवशोषण के लिए लौटने के लिए मृदा के सूक्ष्मजीवों की जरूरत पड़ती है। इसके अलावा बिना प्राणी एजेंट के पादप परागण की व्यवस्था कैसे करेगा? यह स्पष्ट है कि प्रकृति में प्राणी, पादप और सूक्ष्मजीव न तो पृथक रह सकते हैं और न ही रहते हैं, बल्कि जैव समुदाय बनाने के लिए विभिन्न तरीकों से परस्पर क्रिया करते हैं। न्यूनतम समुदायों में भी, अनेक परस्पर क्रियाशील अनुबंधताएँ होती हैं, हालाँकि सभी बंधताएँ आसानी से दिखाई नहीं देती।

अंतराजातीय पारस्परिक क्रियाएँ दो भिन्न जातियों की समष्टियों की पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न होती हैं। वे क्रियाएँ एक जाति या दोनों जातियों के लिए हितकारी, हानिकारक या उदासीन (न हानिकारक न लाभदायक) हो सकती हैं। लाभदायक पारस्परिक क्रियाओं के लिए '+' चिह्न तथा हानिकारक के लिए '–' चिह्न और उदासीन के लिए '0' चिह्न से दर्शाएँ। आइए! अंतराजातीय पारस्परिक क्रियाओं के सभी संभावित परिणामों पर विचार करें। (सारणी 13.1)

एक दूसरे से पारस्परिक क्रिया में- सहोपकारिता में दोनों जातियों को लाभ होता है और स्पर्धा में दोनों को हानि होती है। **परजीविता** और **परभक्षण** दोनों में केवल एक जाति को लाभ होता है (क्रमशः परजीवी और परभक्षी को) और पारस्परिक क्रिया दूसरी

© NCERT not to be republished

सारणी 13.1 समष्टियों की पारस्परिक क्रिया

जाति अ	जाति ब	पारस्परिक क्रिया का नाम
+	+	*सहोपकारिता*
–	–	*स्पर्धा*
+	–	*परभक्षण*
+	–	*परजीविता*
+	0	*सहभोजिता (कमन्सेलिज्म)*
–	0	*अंतरजातीय परजीविता (एमेन्सेलिज्म)*

जाति (क्रमशः परपोषी और शिकार) के लिए हानिकारक है। ऐसी पारस्परिक क्रिया जिसमें एक जाति को लाभ होता है और दूसरी को न लाभ होता है न हानि। उसे **सहभोजिता** कहते हैं। दूसरी ओर, अंतरजातीय परजीविता में एक जाति को हानि होती है जबकि दूसरी जाति-अप्रभावित रहती है। परभक्षण, परजीविता और सहभोजिता इन तीनों की एक साझा विशेषता है — पारस्परिक क्रिया करने वाली जातियाँ निकटता से साथ-साथ रहती हैं।

(क) *परभक्षण* — *यदि किसी समुदाय में पादपों को खाने के लिए प्राणी ही न हों तो स्वपोषी जीवों द्वारा स्थिर की गई उस सारी ऊर्जा का क्या होगा?* परभक्षण को आप प्रकृति का ऐसा तरीका सोच सकते हैं जिसमें पादपों द्वारा स्थिर की गई ऊर्जा उच्चतर पोषी स्तरों को स्थानांतरित होती है। जब हम परभक्षी और शिकार के बारे में सोचते हैं तो शायद बाघ और हरिण का उदाहरण सहज ही हमारे दिमाग में आता है, लेकिन बीज को खाने वाली गोरैया भी परभक्षी से कम नहीं। हालाँकि पौधों को खाने वाले प्राणियों को *शाकाहारी* के रूप में अलग श्रेणी में रखा जाता है, लेकिन सामान्य पारिस्थितिक संदर्भ में वे भी परभक्षी से ज्यादा भिन्न नहीं हैं।

पोषी स्तरों तक ऊर्जा स्थानांतरण के लिए संनाल ('कंड्यूट') के रूप में कार्य करने के अलावा, परभक्षी एक दूसरी महत्त्वपूर्ण भूमिका भी निभाते हैं। वे शिकार समष्टि को नियंत्रण रखते हैं। अगर परभक्षी नहीं होते तो शिकार जातियों का समष्टि घनत्व बहुत ज्यादा हो जाता और परितंत्र में अस्थिरता आ जाती । जब किसी भौगोलिक क्षेत्र में कुछ विदेशज जातियाँ लाई जाती हैं तो वे आक्रामक हो जाती हैं और तेजी से फैलने लगती हैं क्योंकि आक्रांत भूमि में उसके प्राकृतिक परभक्षी नहीं होते। 1920 के आरंभ में आस्ट्रेलिया में लाई गई नागफनी ने वहाँ लाखों हेक्टेयर प्रक्षेत्र में तेजी से फैलकर तबाही मचा दी। अंत में नागफनी खाने वाले परभक्षी (एक प्रकार का शलभ) को उसके प्राकृतिक आवास ऑस्ट्रेलिया लाए जाने के बाद ही आक्रामक नागफनी को नियंत्रित किया जा सका। कृषि पीड़कनाशी के नियंत्रण (पेस्ट कंट्रोल) में अपनाए गए जैव नियंत्रण विधियाँ परभक्षी की समष्टि नियमन की योग्यता पर

© NCERT not to be republished

आधारित हैं। परभक्षी, स्पर्धी शिकार जातियों के बीच स्पर्धा की तीव्रता कम करके किसी समुदाय में जातियों की विविधता (डाइवर्सिटी) बनाए रखने में भी सहायता करता है। अमेरीकी प्रशांत तट की चट्टानी अंतराज्वारीय (इंटरटाइडल) समुदायों में पाइसैस्टर तारामीन एक महत्त्वपूर्ण परभक्षी है। प्रयोगशाला के बाहर किए गए एक प्रयोग में जब एक बंद अंतराज्वारीय क्षेत्र से सभी तारामीन हटा दी गई तो अंतराजातीय स्पर्धा के कारण एक साल में ही अकशेरूकियों की 10 से अधिक जातियाँ विलुप्त हो गई।

अगर परभक्षी ज्यादा ही दक्ष है और अपने शिकार का अतिदोहन करता है तो हो सकता है शिकार विलुप्त हो जाए और इसके बाद खाने के अभाव में परभक्षी भी विलुप्त हो जाएगा। यही कारण है कि प्रकृति में परभक्षी 'विवेकी' हैं। परभक्षण के प्रभाव को कम करने के लिए शिकारी जातियों ने विभिन्न रक्षा विधियाँ विकसित कर ली हैं। कीटों और मेंढकों की कुछ जातियों परभक्षी द्वारा आसानी से पहचान लिए जाने से बचने के लिए गुप्तरूप से रंगीन (छद्मावरण) होती हैं । कुछ शिकार जातियाँ विषैली होती हैं और इसलिए परभक्षी उन्हें नहीं खाते। मॉनार्क तितली के शरीर में विशेष रसायन होने के कारण यह अपने परभक्षी (पक्षी) के लिए बहुत की अरूचिकर, यानी स्वाद में खराब है। यह दिलचस्प है कि तितली इस रसायन को अपनी इल्ली (कैटरपिलर) अवस्था में विषैली खरपतवार खाकर प्राप्त करती है।

पौधों के लिए शाकाहारी प्राणी परभक्षी हैं। लगभग 25 प्रतिशत कीट *पादपभक्षी* (फाइटोफैगस) हैं अर्थात् वे पादप रस और पादपों के अन्य भाग खाते हैं। पादपों के लिए यह समस्या विशेष रूप से गंभीर है; क्योंकि वे अपने परभक्षियों से दूर नहीं भाग सकते जैसा कि प्राणी कर सकते हैं। इसलिए पादपों ने शाकाहारियों से बचने के लिए आश्चर्यजनक रूप से आकारिकीय और रासायनिक रक्षाविधियाँ विकसित कर ली हैं। रक्षा के सबसे सामान्य आकारिकीय साधन कांटे (ऐकेशिया, कैक्टस)। बहुत से पादप ऐसे रसायन उत्पन्न और भंडारित करते हैं जो खाए जाने पर शाकाहारियों को बीमार कर देते हैं, पाचन का संदमन करते है, उनके जनन को भंग कर देते हैं या मार तक देते हैं। आपने परित्यक्त खेतों में उग रही *कैलोट्रोपिस* खरपतवार अवश्य देखी होगी। यह पौधा अत्यधिक विषैला हृदय ग्लाइकोसाइड उत्पन्न करता है और इसी कारण आपने कभी भी किसी पशु या बकरी को इस पौधे को चरते हुए नहीं देखा होगा। रासायनिक पदार्थों की व्यापक किस्में; जिन्हें हम पौधों से व्यापारिक पैमाने पर निष्कर्षित करते हैं (निकोटीन, कैफीन, क्वीनीन, स्ट्रिकनीन, अफीम, आदि)। वे पादपों द्वारा उत्पन्न होते हैं। वास्तव में ये रसायन चारकों (ग्रेजर) से बचने की रक्षाविधियाँ हैं।

(ख) ***स्पर्धा*** — जब डार्विन ने प्रकृति में जीवन-संघर्ष और योग्यतम की उत्तरजीविता के बारे में कहा तो वह निश्चयी (क़ायल) था कि जैव विकास में अंतरजातीय

© NCERT not to be republished

स्पर्धा एक शक्तिशाली बल है। आमतौर पर यह माना जाता है कि स्पर्धा उस समय शुरू होती है जब निकट रूप से संबंधित जातियाँ उन्हीं संसाधनों के लिए स्पर्धा करती हैं जो सीमित हैं, लेकिन यह पूरी तरह से सच नहीं है। पहली बात तो यह है कि ये असंबंध जातियाँ भी एक ही संसाधन के लिए स्पर्धा कर सकती हैं। उदाहरण के लिए दक्षिण अमेरीका की कुछ उथली झीलों में आगंतुक फ्लेमिंगो और वहीं की आवासी मछलियाँ साझा आहार, झील में प्राणिप्लवक के लिए स्पर्धा करती हैं। दूसरी बात है, स्पर्धा के संसाधनों का सीमित होना आवश्यक है। बाधा स्पर्धा में एक जाति की अशनदक्षता दूसरी जाति की बाधाकारी और संदमनी उपस्थिति के कारण घट सकती है। भले ही संसाधन (आहार और स्थान) पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों। इसलिए, स्पर्धा को एक ऐसे प्रक्रम के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें एक जाति की योग्यता (वृद्धि की इंट्रींजिक दर 'r' के रूप में मापित) दूसरी जाति की उपस्थिति में महत्त्वपूर्ण रूप से घट जाती है। प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों में यह दर्शाना अपेक्षाकृत आसान है, जैसा कि गॉसे और दूसरे पारिस्थिकविज्ञों ने किया, कि जब संसाधन सीमित होते हैं तो स्पर्धीरूप से उत्तम जातियाँ अंततः दूसरी जातियों को विलुप्त कर देगी, लेकिन प्रकृति में इस प्रकार के स्पर्धी बहिष्कार के साक्ष्य हमेशा निर्णायक नहीं होते। लेकिन कुछ मामलों में ठोस और स्वीकार्य परिस्थितिजन्य साक्ष्य मिलते तो हैं। गैलापैगो द्वीप में बकरियाँ लाई जाने के बाद एबिंग्डन कुछ एक दशक (10वर्ष) में ही विलुप्त हो गए जिसका स्पष्ट कारण था। बकरियों की अत्यधिक चारण दक्षता, प्रकृति में स्पर्धा होने का दूसरा प्रमाण 'स्पर्धी मोचन' है। स्पर्धीरूप से उत्तम जाति की उपस्थिति के कारण जिस जाति का वितरण छोटे से भौगोलिक क्षेत्र तक प्रतिबंधित हो गया है। स्पर्धी जाति को प्रयोगात्मक रूप से हटा दिए जाने पर उसकी वितरण परास नाटकीय ढंग से फैल जाती है। कॉनेल के परिष्कृत क्षेत्र प्रयोगों ने दर्शाया कि स्कॉटलैंड के चट्टानी समुद्र तटों पर बड़े और स्पर्धीरूप से उत्तम बार्नेकल *बैलेनस* की अंतरज्वारीय क्षेत्र में प्रमुखता है और इसने छोटे बार्नेकल *चैथेमैलस* को उस क्षेत्र से निकाल दिया। आमतौर पर, माँसाहारियों (कार्निवोर) की अपेक्षा शाकाहारी और पादप अधिक प्रतिकूलतः प्रभावित होते हैं।

गॉसे *'स्पर्धी अपवर्जन नियम'* यह बतलाता है कि एक ही तरह के संसाधनों के लिए स्पर्धा करने वाली दो निकटतम से संबंधित जातियाँ अनंतकाल तक साथ-साथ नहीं रह सकती और स्पर्धीरूप से घटिया जाति अंततः विलुप्त कर दी जाएगी। ऐसा तभी होगा जब संसाधन सीमाकारी होंगे अन्यथा नहीं। अधिक वर्तमान अध्ययन स्पर्धा के ऐसे घोर सामान्यीकरण की पुष्टि नहीं करते। वे प्रकृति में अंतराजातीय स्पर्धा होने को नकारते तो नहीं पर वे इस ओर ध्यान दिलाते हैं स्पर्धा सामना करने वाली जातियाँ ऐसी क्रियाविधि

© NCERT not to be republished

विकसित कर सकती हैं जो बहिष्कार की बजाय सह-अस्तित्व को बढ़ावा दे। ऐसी एक क्रियाविधि 'संसाधन विभाजन' है। अगर दो जातियाँ एक ही संसाधन के लिए स्पर्धा करती हैं तो उदाहरण के लिए वे अशन (आहार) के लिए भिन्न समय अथवा भिन्न चारण प्रतिरूप चुनकर स्पर्धा से बच सकती हैं। मैक आर्थर ने दिखाया कि एक ही पेड़ पर रह रहीं फुदकी (वार्बलर) की पाँच निकटत: संबंधित जातियाँ स्पर्धा से बचने में सफल रहीं और पेड़ की शाखाओं और वितान पर कीट शिकार के लिए तलाशने की अपनी चारण गतिविधियों में व्यावहारिक भिन्नताओं के कारण साथ - साथ रह सकीं।

(ग) ***परजीविता*** — यह मानते हुए कि जीवन के परजीवी प्रणाली में रहने और खाने की मुफ्त व्यवस्था है तो यह आश्चर्य की बात नहीं है कि परजीविता, पादपों से लेकर उच्चकोटि कशेरूकियों तक इतने अधिक वर्गिकीय समूहों में विकसित हुआ है। अनेक परजीवी परपोषी-विशिष्ट के रूप में विकसित हुए हैं (वे परपोषी की केवल एक ही जाति पर परजीवी जीवन बिताते हैं), इस प्रकार परपोषी और परजीवी दो सह-विकसित होते हैं; अर्थात् एक ही परपोषी जाति के साथ सफल होने के लिए अगर परपोषी परजीवी को अस्वीकार करने या प्रतिरोध करने के विशेष साधन विकसित करता है तो परजीवी को उन साधनों को निष्प्रभावी और व्यर्थ करने के लिए साधन विकसित करने होंगे। अपनी जीवन शैली के अनुरूप परजीवी ने विशेष अनुकूल विकसित किए जैसे कि अनावश्यक संबंधी अंगों का अभाव परपोषी से चिपकने के लिए आसंजी अंगों या चूषकों की उपस्थिति पाचन तंत्र का लोप तथा उच्च जनन क्षमता। परजीवियों का जीवन चक्र प्राय: जटिल होता है जिसमें एक या दो मध्यस्थ पोषक अथवा रोगवाहक होते हैं जो इसके प्राथमिक परपोषी के परजीवीकरण को सुगम बनाते हैं। मानव यकृत पर्णाभ (लिवर फ्लूक) (पर्णाभ कृमि परजीवी — ट्रिमेटोड पैरासाइट) अपने जीवन चक्र को पूरा करने के लिए दो मध्यस्थ पोषकों जैसे घोंघा और मछली पर निर्भर करता है। मलेरिया परजीवी को दूसरे परपोषियों पर फैलने के लिए रोगवाहक (मच्छर) की आवश्यकता पड़ती है। अधिकांश परजीवी, परपोषी को हानि पहुँचाते हैं; परपोषी की उत्तरजीविता, वृद्धि और जनन को कम कर सकते हैं और उसके समष्टि घनत्व को घटा सकते हैं। वे परपोषी को कमजोर बनाकर उसे, परभक्षण के लिए अधिक असुरक्षित बना देते हैं। *क्या आप ऐसा मानते हैं कि एक आदर्श परजीवी, परपोषी को हानि पहुँचाए बिना, पनप सकने योग्य होना चाहिए? तब प्राकृतिक वरण ने ऐसे पूरी तरह से अहानिकारक परजीवियों का विकास क्यों नहीं किया?*

परपोषी जीव की बाह्य पृष्ठ पर अशन (आहार पूर्ति) करने वाले परजीवी, *बाह्य परजीवी* (एक्टोपैरासाइट) कहलाते हैं। इसके प्रसिद्ध उदाहरण मानवों पर जूँ के समूह और कुत्तों पर चिचिंड़ियाँ (टिक्स) हैं। अनेक समुद्री मीन

बाह्य परजीवी अरित्रपादों (कॉपिपोड्स) द्वारा ग्रस्त हैं। *कस्कुटा* (अमरबेल) एक परजीवी पौधा है जो सामान्यत: बाड़ पादपों पर वृद्धि करता है। विकास प्रक्रिया के दौरान इसका पर्णहरित और पत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। यह जिस पोषी पादप पर रहता है उसी से अपना पोषण लेता है। मादा मच्छर को परजीवी नहीं माना जाता हालाँकि जनन के लिए इसको हमारे रक्त की आवश्यकता पड़ती है। *क्या आप बता सकते हैं क्यों?*

इसके विपरीत, अंत: परजीवी (एंडोपैरासाइट) वे हैं जो परपोषी के शरीर में भिन्न स्थलों यकृत, वृक्क, फुप्फुस, लाल रुधिर कोशिका, आदि पर रहते हैं। उनके आकारिकीय और शारीरिक लक्षण अत्यधिक सरलीकृत होते हैं जबकि उनके जनन शक्ति को बल देते हैं।

पक्षियों में *अंड परजीविता* (ब्रूड पैरासिटिज्म), परजीविता का लुभावना उदाहरण है जिसमें परजीवी पक्षी अपने अंडे परपोषी के घोंसले में देता है और परपोषी को उन अंडों को सेने (इंक्युबेट) देता है। विकास प्रक्रिया के दौरान, परजीवी पक्षी के अंडे साइज और रंग में परपोषी के अंडों के सदृश विकसित हो गए ताकि परपोषी पक्षी द्वारा विजातीय अंडों को पहचान लिए जाने और घोंसले से उन्हें निकाल दिए जाने की संभावना कम हो जाए। अपने आस पास के पार्क में प्रजनन ऋतु (बसंत से ग्रीष्म ऋतु) के दौरान कोयल की गतिविधियों का पीछा कीजिए और अंड परजीविता को होते हुए देखिए।

(घ) ***सहभोजिता*** — यह ऐसी पारस्परिक क्रिया है जिसमें एक जाति को लाभ होता है और दूसरी को न हानि न लाभ होता है। आम की शाखा पर *अधिपादप* (एपीफाइट) के रूप में उगने वाला ऑर्किड और ह्वेल की पीठ को आवास बनाने वाले बार्नेकल को फायदा होता है जबकि आम के पेड़ और ह्वेल को उनसे कोई लाभ नहीं होता। पक्षी बगुला और चारण पशु निकट साहचर्य में रहते हैं। यदि आप कृषि फार्म वाले ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं तो आपको यह दृश्य देखने को मिलेगा। सहभोजिता का यह उत्कृष्ट उदाहरण है। जहाँ पशु चरते हैं उसके पास ही बगुले भोजन प्राप्ति के लिए रहते हैं क्योंकि जब पशु चलते हैं तो वनस्पति को हिलाते हैं और उसमें से कीट बाहर निकालते हैं। बगुले उन कीटों को खाते हैं अन्यथा वनस्पतिक कीटों को ढूँढ़ना और पकड़ना बगुले के लिए कठिन होता। सहभोजिता का दूसरा उदाहरण समुद्री ऐनिमोन दंशन स्पर्शक (स्टिंगिंग टेंटेकल) होते हैं, जिसमें उनके बीच रहने वाली क्लाउन मछली का है। मछली को परभक्षियों से सुरक्षा मिलती है जो दंशन स्पर्शकों से दूर रहते हैं। क्लाउन मछली से ऐनिमोन को कोई लाभ मिलता हो ऐसा नहीं लगता।

(ङ) ***सहोपकारिता*** — इस पारस्परिक क्रिया से परस्पर क्रिया करने वाली दोनों जातियों को लाभ होता है। कवक और प्रकाश संश्लेषी शैवाल या सायनोबैक्टीरिया के बीच घनिष्ठ सहोपकारी (म्यूच्युऑलिस्टिक) संबंध का उदाहरण लाइकेन

© NCERT not to be republished

(अ)

(ब)

चित्र 13.6 अंजीर और बर्र के बीच पारस्परिक-क्रिया दिखाते हुए (अ) बर्र द्वारा परागित अंजीर पुष्प (ब) अंजीर के फल में बर्र द्वारा दिए गए अंडे

में देखा जा सकता है। इसी प्रकार कवकों और उच्चकोटि पादपों की जड़ों के बीच कवकमूल (माइकोराइजी) साहचर्य है। कवक, मृदा से अत्यावश्यक पोषक तत्वों के अवशोषण में पादपों की सहायता करते हैं जबकि बदले में पादप, कवकों को ऊर्जा-उत्पादी कार्बोहाइड्रेट देते हैं।

सहोपकारिता के सबसे शानदार और विकास की दृष्टि से लुभावने उदाहरण पादप-प्राणी संबंध में पाए जाते हैं। पादपों को अपने पुष्प परागित करने और बीजों के प्रकीर्णन के लिए प्राणियों की सहायता चाहिए। स्पष्ट है कि पादप को जिन सेवाओं की अपेक्षा प्राणियों से है उसके लिए 'शुल्क' तो देना होगा। पुरस्कार अथवा शुल्क के रूप में परागणकारियों (पॉलिनेटर) को पराग (पॉलन) और मकरंद (नेक्टर) तथा प्रकीर्णकों को रसीले और पोषक फल देते हैं। लेकिन परस्पर लाभकारी तंत्र की 'धोखेबाजी' से रक्षा होनी चाहिए, उदाहरण के लिए, ऐसे प्राणी जो परागण में सहायता किए बिना ही मकरंद चुराते हैं। अब आप देख सकते हैं कि पादप-प्राणी पारस्परिक क्रिया में सहोपकारियों के लिए प्राय: *'सह-विकास'* क्यों शामिल है, अर्थात् पुष्प और इसके परागणकारी जातियों के विकास एक दूसरे से मजबूती से जुड़े हुए हैं। अंजीर के पेड़ों की अनेक जातियों में बर्र की परागणकारी जातियों के बीच मजबूत संबंध है (चित्र 13.6)। इसका अर्थ यह है कि कोई दी गई अंजीर जाति केवल इसके 'साथी' बर्र की जाति से ही परागित हो सकती है, बर्र की दूसरी जाति से नहीं। मादा बर्र फल को न केवल अंडनिक्षेपण (अंडे देने) के लिए काम में लेती है; बल्कि फल के भीतर ही वृद्धि कर रहे बीजों को डिंबकों (लार्वी) के पोषण के लिए प्रयोग करती है। अंडे देने के लिए उपयुक्त स्थल की तलाश करते हुए बर्र अंजीर पुष्पक्रम (इनफ्लोरेसेंस) को

© NCERT not to be republished

परागित करती है। इसके बदले में अंजीर अपने कुछ परिवर्धनशील बीज, परिवर्धनशील बर्र के डिंबकों को, आहार के रूप में देती है।

आर्किड पुष्प प्रतिरूपों की आश्चर्यचकित कर देने वाली विविधता दर्शाते हैं जिसमें से अनेक सही परागणकारी कीट (भ्रमरों और गुंज मक्षिकाओं) को आकर्षित करने के लिए विकसित हुए हैं ताकि इसके द्वारा निश्चितरूप से परागण हो सके (चित्र 13.7)। सभी आर्किड यह पुरस्कार पेश नहीं करते। ऑफ्रिस नाम भूमध्य सागरीय मेडिटेरेनियन आर्किड मक्षिका (बी) के एक जाति परागण कराने के लिए 'लैंगिक कपट' (सेक्सुअल डिसीट) का सहारा लेता है। इस पुष्प की एक पंखुड़ी साइज, रंग और चिह्नों में मादा मक्षिका से मिलती-जुलती है। नर मक्षिका इसे मादा समझकर इसकी ओर आकर्षित होती है, पुष्प के साथ 'कूट (छद्म) मैथुन' (स्यूडोकपुलेट) करती है। इस प्रक्रम के दौरान इस पर पुष्प से पराग झड़कर उस पर गिरते हैं जब वही मक्षिका दूसरे पुष्प से 'कूट (छद्म) मैथुन' करती है तो यहाँ शरीर पर लगे पराग डालती है और इस प्रकार पुष्प को परागित करती है। मगर विकास के दौरान किसी भी कारण से मादा मक्षिका का रंग-प्रतिरूप जरा-सा भी बदल जाता है तो परागण की सफलता कम रहेगी अत: अर्किड पुष्प अपनी पंखुड़ी को मादा मक्षिका के सदृश बनाए रखते हैं।

चित्र 13.7 आर्किड पुष्प का मक्खी द्वारा परागण

सारांश

पारिस्थितिकी (इकोलॉजी) जीवों की अपने पर्यावरण के अजीवी (भौतिक-रासायनिक कारकों) और जैविक घटकों (अन्य जातियों) के संबंधों का अध्ययन है। यह जीव विज्ञान की शाखा है और जीव विज्ञानीय संगठन के चार स्तरों से संबंधित है - जीव, समष्टि, समुदाय और जीवोम (बायोम)।

ताप, प्रकाश, जल और मृदा पर्यावरण के सबसे महत्त्वपूर्ण भौतिक कारक है जिनके प्रति जीव विभिन्न प्रकार से अनुकूलित हैं। जीवों द्वारा आंतरिक पर्यावरण (होमियोस्टैसिस) को स्थिर रखने से इष्टतम कार्य निष्पादन हो सकता है, लेकिन परिवर्तनशील बाह्य पर्यावरण के संदर्भ में केवल कुछ ही जीव (नियामक) होमियोस्टेटिस के लिए सक्षम हैं। जीव अपने आंतरिक पर्यावरण का आंशिक रूप से नियमन कर लेते हैं अथवा केवल उनके अनुरूप कर लेते हैं। कुछ अन्य जातियों ने स्थान प्रवासन अथवा समय (ग्रीष्म निष्क्रियता, शीत निष्क्रियता और उपरति/क्रमश: ऐस्टीवेशन, हाइबर्नेशन और डायपाज) में प्रतिकूल परिस्थितियों से बचने के लिए अनुकूलन विकसित कर लिए हैं।

© NCERT not to be republished

प्राकृतिक वरण द्वारा विकासीय परिवर्तन समष्टि स्तर पर होता है और इसलिए समष्टि पारिस्थितिकी, पारिस्थितिकी का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। समष्टि किसी दी गई जाति के व्यष्टियों का समूह है जो सीमांकित भौगोलिक क्षेत्र में समान संसाधनों के लिए स्पर्धा करते हैं या उन संसाधनों में जन्म और मृत्यु-दरें, लिंग अनुपात और आयु-वितरण, आदि गुण होते हैं जो व्यष्टियों में नहीं होते। समष्टि में नरों और मादाओं के भिन्न आयु वर्ग का अनुपात प्रायः आयु पिरामिड के रूप में भौगोलिकतः दर्शाया जाता है। इसका आकार यह बताता है कि क्या समष्टि स्थिर है, बढ़ रही है या घट रही है।

समष्टि पर किसी भी कारक का पारिस्थितिक प्रभाव आमतौर पर उसकी साइज में प्रतिबिंबित होता है, जिसे जाति के अनुसार विभिन्न तरीकों (संख्या, जीवभार, आवरण प्रतिशत, आदि) से व्यक्त किया जा सकता है।

समष्टियाँ जन्म और आप्रवासन से बढ़ती हैं तथा मृत्यु और उत्प्रवासन से घटती हैं। जब संसाधन असीमित होते हैं तो वृद्धि प्रायः चरघातांकी है लेकिन जब संसाधन उत्तरोत्तर सीमाकारी होते जाते हैं तब वृद्धि प्रतिरूप लॉजिस्टिक (संभार तंत्रीय) हो जाती है। दोनों मामले में, वृद्धि अंततः पर्यावरण की पोषण क्षमता से सीमित होती है। प्राकृतिक वृद्धि की इंट्रीनिजक दर (r) किसी समष्टि का वृद्धि करने की जन्मजात शक्ति की माप है।

प्रकृति में भिन्न जातियों की समष्टियाँ आवास में पृथक नहीं रहती; बल्कि कई तरह से पारस्परिक क्रिया करती हैं। दो जातियों के बीच पारस्परिक इन क्रियाओं को परिणाम के आधार पर स्पर्धा (दोनों जातियों को हानि होती है), परभक्षण और परजीविता जिसमें एक जाति को लाभ होता है जबकि दूसरी को हानि, सहभोजिता जिसमें एक को लाभ पहुँचता है और दूसरी अप्रभावित रहती है अंतरजातीय परजीविता जिसमें एक को हानि होती है और दूसरा अप्रभावित रहता है तथा सहोपकारिता जिसमें दोनों जातियों को लाभ होता है। परभक्षण एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रक्रम है जिसके द्वारा पोषी ऊर्जा अंतरण सुगम होता है और कुछ परभक्षी अपनी शिकार समष्टियों को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। पादपों ने शाकाहार के विरूद्ध आकारिकीय और रासायनिक विविध रक्षाविधियाँ विकसित की हैं। स्पर्धा में, ऐसा समझा जाता है कि उत्तम स्पर्धी घटिया स्पर्धी को विलुप्त कर देता है (स्पर्धी बहिष्कार सिद्धांत), लेकिन अनेक निकट संबंधित जातियों ने विभिन्न क्रियाविधियाँ विकसित कीं, जो उनके सह-अस्तित्व को सुगम बनाती हैं। कुछ प्रकृति में सहोपकारिता के कुछ सबसे आकर्षक मामले पादप-परागणकारी पारस्परिक क्रिया में देखे जा सकते हैं।

अभ्यास

1. शीत निष्क्रियता (हाइबर्नेशन) से उपरति (डायपाज) किस प्रकार भिन्न है?
2. अगर समुद्री मछली को अलवणजल (फ्रेशवाटर) की जलजीवशाला (एक्वेरियम) में रखा जाता है तो क्या वह मछली जीवित रह पाएगी? क्यों और क्यों नहीं?
3. लक्षण प्ररूपी (फीनोटाइपिक) अनुकूलन की परिभाषा दीजिए। एक उदाहरण दीजिए।

© NCERT not to be republished

4. अधिकतर जीवधारी 45^0 सेंटी. से अधिक तापमान पर जीवित नहीं रह सकते। कुछ सूक्ष्मजीव (माइक्रोव) ऐसे आवास में जहाँ तापमान 100^0 सेंटी. अधिक है, कैसे जीवित रहते हैं?
5. उन गुणों को बताइए जो व्यष्टियों में तो नहीं पर समष्टियों में होते हैं।
6. अगर चरघातांकी रूप से (एक्पोनेन्शियली) बढ़ रही समष्टि 3 वर्ष दोगुने साइज की हो जाती है, तो समष्टि की वृद्धि की इंट्रीनिजक दर (r) क्या है?
7. पादपों में शाकाहारिता (हर्बिवोरी) के विरूद्ध रक्षा करने की महत्त्वपूर्ण विधियाँ बताइए।
8. ऑर्किड पौधा, आम के पेड़ की शाखा पर उग रहा है। ऑर्किड और आम के पेड़ के बीच पारस्परिक क्रिया का वर्णन आप कैसे करेंगे?
9. कीट पीड़कों (पेस्ट/इंसेक्ट) के प्रबंध के लिए जैव-नियंत्रण विधि के पीछे क्या पारिस्थितिक सिद्धांत है?
10. निम्नलिखित के बीच अंतर कीजिए –
    (क) शीत निष्क्रियता और ग्रीष्म निष्क्रियता (हाइबर्नेशन एंड एस्टीवेशन)
    (ख) बाह्योष्मी और आंतरोष्मी (एक्टोथर्मिक एंड एंडोथर्मिक)
11. निम्नलिखित पर संक्षित टिप्पणी (नोट) लिखिए –
    (क) मरुस्थल पादपों और प्राणियों का अनुकूलन
    (ख) जल की कमी के प्रति पादपों का अनुकूलन
    (ग) प्राणियों में व्यावहारिक (बिहेवियोरल) अनुकूलन
    (घ) पादपों के लिए प्रकाश का महत्त्व
    (च) तापमान और पानी की कमी का प्रभाव तथा प्राणियों का अनुकूलन
12. अजीवीय (एबायोटिक) पर्यावरणीय कारकों की सूची बनाइए।
13. निम्नलिखित का उदाहरण दीजिए –
    (क) आतपोद्भिद (हेलियोफाइट)
    (ख) छायोद्भिद ...... स्कियोफाइट
    (ग) सजीवप्रजक (विविपेरस) अंकुरण वाले पादप
    (घ) आंतरोष्मी (एंडोथर्मिक) प्राणी
    (च) बाह्योष्मी (एक्टोथर्मिक) प्राणी
    (छ) नितलस्थ (बेंथिक) जोन का जीव
14. समष्टि (पॉपुलेशन) और समुदाय (कम्युनिटी) की परिभाषा दीजिए।
15. निम्नलिखित की परिभाषा दीजिए और प्रत्येक का एक-एक उदाहरण दीजिए —
    (क) सहभोजिता (कमेंसेलिज़्म)
    (ख) परजीविता (पैरासिटिज़्म)
    (ग) छद्मावरण (कैमुफ्लॉज)
    (घ) सहोपकारिता (म्युचुऑलिज़्म)
    (च) अंतरजातीय स्पर्धा (इंटरस्पेसिफिक कंपीटीशन)

© NCERT not to be republished

16. उपयुक्त आरेख (डायग्राम) की सहायता से लॉजिस्टिक (संभार तंत्र) समष्टि (पॉपुलेशन) वृद्धि का वर्णन कीजिए।

17. निम्नलिखित कथनों में परजीविता (पैरासिटिज़्म) को कौन सा सबसे अच्छी तरह स्पष्ट करता है –
    (क) एक जीव को लाभ होता है।
    (ख) दोनों जीवों को लाभ होता है।
    (ग) एक जीव को लाभ होता है दूसरा प्रभावित नहीं होता है।
    (घ) एक जीव को लाभ होता है दूसरा प्रभावित होता है।

18. समष्टि (पॉपुलेशन) की कोई तीन महत्वपूर्ण विशेषताएँ बताइए और व्याख्या कीजिए।

© NCERT not to be republished

अध्याय 14

पारितंत्र

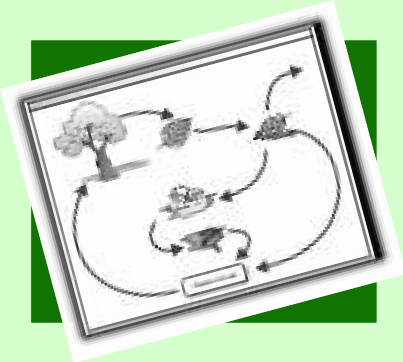

14.1 पारितंत्र संरचना एवं क्रियाशीलता

14.2 उत्पादकता

14.3 अपघटन

14.4 ऊर्जा प्रवाह

14.5 पारिस्थितिक पिरामिड

14.6 पारिस्थितिक अनुक्रम

14.7 पोषक चक्र

14.8 पारितंत्र सेवाएँ

पारितंत्र को प्रकृति की एक क्रियाशील ईकाई के रूप में देखा जाता है, जहाँ पर जीवधारी आपस में तथा आस पास के भौतिक पर्यावरण के साथ परस्पर क्रिया करते हैं। पारितंत्र का आकार एक छोटे से तालाब से लेकर एक विशाल जंगल या महासागर तक हो सकता है। कई पारिस्थितिकी वैज्ञानिक संपूर्ण जीवमंडल को विश्व (ग्लोबी) पारितंत्र के रूप में देखते हैं, जिसमें पृथ्वी के सभी स्थानीय पारितंत्र समाहित होते हैं। चूँकि यह तंत्र बहुत विशाल एवं जटिल है अत: अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसे दो आधारभूत श्रेणियों- मुख्यत: **स्थलीय** एवं **जलीय** में बाँटा गया है। जंगल, घास के मैदान तथा मरूस्थल आदि कुछ स्थलीय पारितंत्र तथा झीलें, तालाब, दलदली क्षेत्र, नदियाँ एवं ज्वार नदमुख (एस्टुअरी) आदि कुछ जलीय पारितंत्र के उदाहरण हैं। मानव निर्मित पारितंत्र के रूप में शस्यभूमि एवं जलजीवशाला को माना जा सकता है।

हम सबसे पहले, पारितंत्र की संरचना को देखेंगे ताकि निवेश (उत्पादकता), ऊर्जा का स्थानांतरण (आहार श्रृंखला / जाल, पोषण चक्र) तथा निर्गम (निम्नीकरण एवं ऊर्जा क्षति) का अवगमन (अवबोध) कर सकें। इसके साथ ही हम चक्रों, श्रृंखलाओं, जाल तंत्रों के संबंधों को भी देखेंगे-जोकि तंत्र के अंतर्गत प्रवाहित इन ऊर्जाओं के परिणामस्वरूप पैदा हुए हैं।

© NCERT not to be republished

14.1 पारितंत्र संरचना एवं क्रियाशीलता

अध्याय 13 में आपने पर्यावरण के विभिन्न घटकों के बारे में अध्ययन किया, जिसमें दोनों जैविक एवं अजैविक घटक शामिल हैं। आपने पढ़ा है कि किस प्रकार से जैविक एवं अजैविक घटक व्यक्तिगत रूप से एक-दूसरे को तथा अपने आस पास के वातावरण को प्रभावित करते हैं। आइए! अब इन घटकों को और अधिक समेकित (संयुक्त) रूप से देखें तथा यह जाने कि पारितंत्र के इन घटकों के अंतर्गत ऊर्जा प्रवाह कैसे संपन्न होता है।

जैविक एवं अजैविक घटकों की परस्पर क्रियाओं के फलस्वरूप एक भौतिक संरचना विकसित होती है, जो प्रत्येक प्रकार के पारितंत्र की विशिष्टता है। एक पारितंत्र की पादप एवं प्राणि प्रजातियों की पहचान एवं गणना इसकी प्रजातियों के संघटन (कंपोजीशन) को प्रकट करता है। विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रजातियों के ऊर्ध्वाधर वितरण को **स्तरविन्यास** कहते हैं। उदाहरणार्थ एक जंगल में वृक्ष सर्वोपरि ऊर्ध्वाधर स्तर, झाड़ियाँ द्वितीयक स्तर तथा जड़ी-बूटियाँ एवं घास निचले (धरातलीय) स्तर पर निवास करते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र में सारे घटक एक इकाई के रूप में तब क्रियाशील दिखते हैं; जब आप निम्न पहलुओं पर दृष्टि डालते हैं-

(क) उत्पादकता
(ख) अपघटन
(ग) ऊर्जाप्रवाह और
(घ) पोषण चक्र।

एक जलीय पारितंत्र के गुण धर्म (प्रकृति) को समझने के लिए आइए एक छोटे तालाब को उदाहरण स्वरूप लेते हैं। यह एक औचित्यपूर्ण स्वपोषी और अपेक्षित रूप से सरल उदाहरण है जो हमें एक जलीय पारितंत्र में यहाँ तक की जटिल-पारस्परिकता (अन्योन्यक्रियाओं) को समझने में सहायक है। एक तालाब उथले पानी वाला एक जल-निकाय है जिसमें एक पारितंत्र के सभी मूलभूत घटक बेहतर ढंग से प्रदर्शित होते हैं। पानी एक अजैविक घटक है जिसमें कार्बनिक एवं अकार्बनिक तत्त्व तथा प्रचुर मृदा निक्षेप तालाब की तली में जमा होते हैं। सौर निवेश, ताप का चक्र, दिन की अवधि (लंबाई) तथा अन्य जलवायुवीय परिस्थितियाँ समूचे तालाब की क्रियाशीलता की दर को नियमित करते हैं। स्वपोषी घटक जैसे पादप लवक, कुछ काई (शैवाल) तथा प्लवक एवं निमग्न तथा किनारों पर सीमांत पादप तालाब के किनारों पर पाए जाते हैं। उपभोक्ताओं का प्रतिनिधित्व प्राणिप्लवक तथा स्वतंत्र प्लवी एवं तलीय वासी जीव स्वरूपों द्वारा पारितंत्र किया जाता है। अपघटक के उदाहरण कवक एवं जीवाणु हैं जो विशेष रूप से तालाब की तली में प्रचुरता से पाए जाते हैं। यह तंत्र किसी भी पारितंत्र (और कुल मिलाकर जीवमंडल) की सभी प्रक्रियाओं को निष्पादित करते हैं अर्थात् स्वपोषियों द्वारा सूर्य की विकिरण ऊर्जा के उपभोग से अकार्बनिक तत्त्वों को कार्बनिक तत्त्वों में बदलना, विभिन्न स्तरों के परपोषितों द्वारा स्वपोषकों का भक्षण, मृत जीवों की सामग्रियों का अपघटन एवं खनिजीकरण कर स्वपोषकों के लिए मुक्त करना इस घटना की पुनरावृत्ति बारंबार होती रहती है। ऊर्जा की एकदिशीय गतिशीलता उच्च पोषी स्तरों की ओर तथा पर्यावरण में इसका अपव्यय और ऊष्मा के रूप में हानि होती है।

© NCERT not to be republished

14.2 उत्पादकता

किसी भी पारितंत्र की क्रियाशीलता एवं उसके स्थायी रहने के लिए सौर ऊर्जा के निरंतर निवेश (इनपुट) की आधारभूत आवश्यकता है। **प्राथमिक उत्पादन** प्रकाश संश्लेषण के दौरान पादपों द्वारा एक निश्चित समयावधि में प्रति ईकाई क्षेत्र द्वारा उत्पन्न किए गए जैव मात्रा या कार्बनिक सामग्री की मात्रा है। इसे भार (g^{-2}) या ऊर्जा ($K\ cal\ m^{-2}$) के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। जैव मात्रा के उत्पादन की दर को **उत्पादकता** कहते हैं। इसे $g^{-2}\ yr^{1}$ या $(K\ cal\ m^{-2})\ yr^{-1}$ (ऊर्जा) के रूप में व्यक्त किया जा सकता है, जिससे विभिन्न पारितंत्रों की उत्पादकता की तुलना की जा सकती है। इसे सकल या कुल प्राथमिक उत्पादकता तथा नेट प्राथमिक उत्पादकता में विभाजित किया जा सकता है। एक पारिस्थितिक तंत्र की **सकल प्राथमिक उत्पादकता** प्रकाश संश्लेषण के दौरान कार्बनिक तत्त्व की उत्पादन दर होती है। सकल प्राथमिक उत्पादकता की एक महत्त्वपूर्ण मात्रा पादपों में श्वसन द्वारा उपयोग की जाती है। यदि हम सकल प्राथमिक उत्पादकता से श्वसन के दौरान हुई क्षति को घटा देते हैं तो हमें **नेट प्राथमिक उत्पादकता** प्राप्त होती है।

जी.पी.पी – आर = एन.पी.पी.

नेट प्राथमिक उत्पादकता परपोषितों की खपत (शाकभक्षी या अपघटक के रूप में) के लिए उपलब्ध जैव मात्रा होती है। **द्वितीयक उत्पादकता** को उपभोक्ताओं ने नए कार्बनिक तत्त्वों के निर्माण की दर के रूप में परिभाषित किया है।

प्राथमिक उत्पादकता एक सुनिश्चित क्षेत्र में पादप प्रजातियों के निवास पर निर्भर करती है। ये विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय कारकों, पोषकों की उपलब्धता तथा पादपों की प्रकाश संश्लेषण क्षमता पर भी निर्भर करती है। इसलिए ये विभिन्न प्रकार के पारितंत्रों में भिन्न-भिन्न होती है। संपूर्ण जीव मंडल की वार्षिक कुल प्राथमिक उत्पादकता का भार कार्बनिक तत्त्व (शुष्क भार) के रूप में लगभग 170 बिलियन टन आँका गया है। यद्यपि पृथ्वी के धरातल का लगभग 70 प्रतिशत भाग समुद्रों द्वारा ढका हुआ है, फिर भी बावजूद इनकी उत्पादकता केवल 55 बिलियन टन है। शेष मात्रा भूमि पर उत्पन्न होती है। *अपने शिक्षक के साथ महासागरों की निम्न उत्पादकता के प्रमुख कारणों के बारे में चर्चा कीजिए।*

14.3 अपघटन

आपने शायद सुना होगा कि केंचुओं को किसान के मित्र के रूप में संबोधित किया जाता है। ऐसा इसलिए है; क्योंकि ये जटिल कार्बनिक पदार्थों खंडन करने के साथ-साथ भूमि को भुरभुरा बनाने में मदद करते हैं। उसी प्रकार अपघटक जटिल कार्बनिक सामग्री को अकार्बनिक तत्वों जैसे- कार्बन डाईऑक्साइड, जल एवं पोषकों में खंडित करने में सहायता करते हैं और इस प्रक्रिया को **अपघटन** कहते हैं। पादपों के मृत अवशेष -जैसे पत्तियाँ, छाल, फूल तथा प्राणियों (पशुओं) के मृत अवशेष, मलादि सहित **अपरद** (डेट्राइटस) बनाते हैं, जोकि अपघटन के लिए कच्चे पदार्थों का काम करते हैं। अपघटन की प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण चरण खंडन, निक्षालन, अपचयन, ह्यूमस भवन (बनना), खनिजी भवन हैं।

© NCERT not to be republished

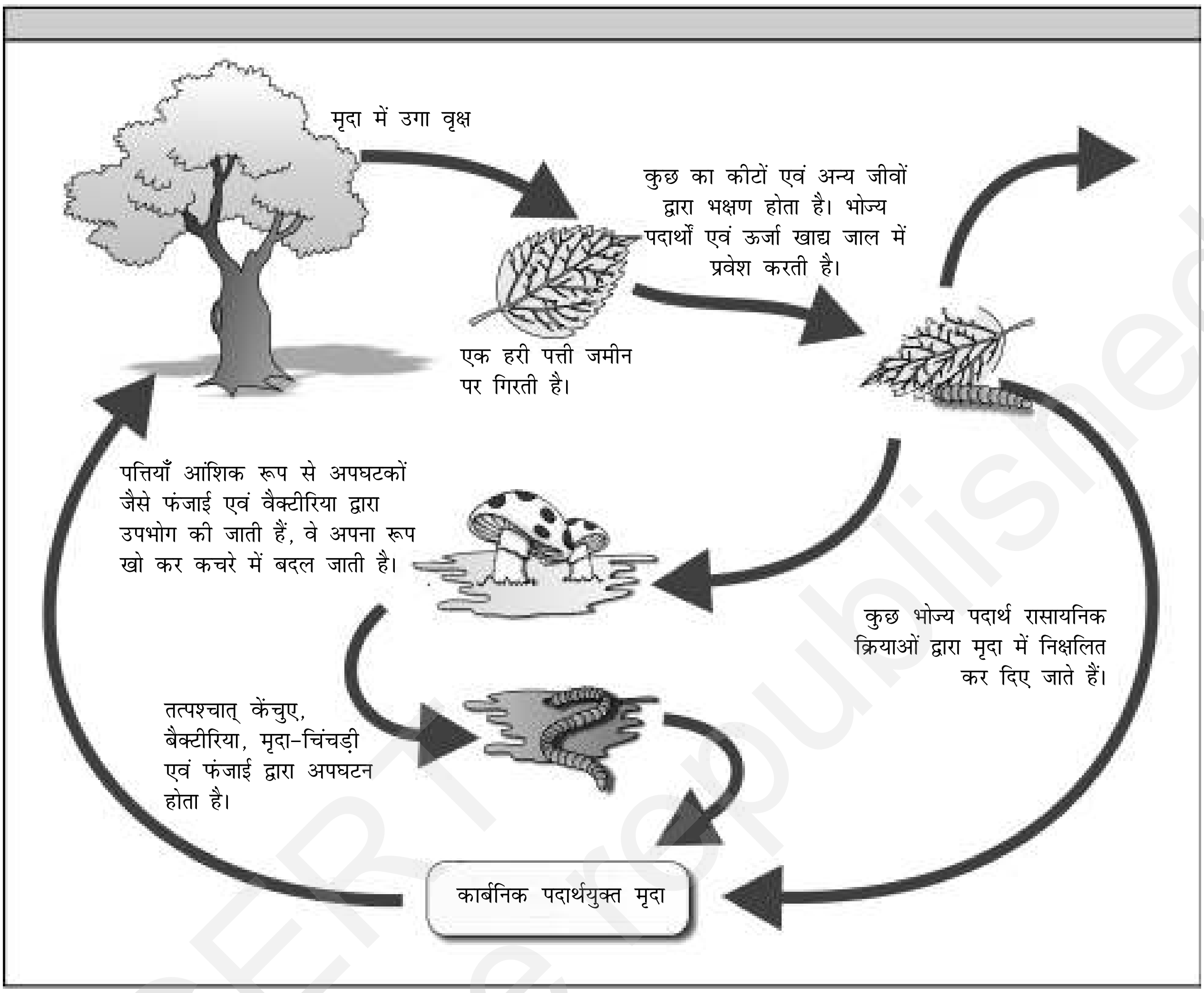

चित्र 14.1 एक स्थलीय पारितंत्र में अपघटन चक्र का आरेखीय निरूपण

अपरदाहारी (जैसे कि केंचुए) अपरद को छोटे-छोटे कणों में खंडित कर देते हैं। इस प्रक्रिया को **खंडन** कहते हैं। **निक्षालन** प्रक्रिया के अंतर्गत जल-विलेय अकार्बनिक पोषक भूमि मृदासंस्तर में प्रविष्ट कर जाते हैं और अनुपलब्ध लवण के रूप में अवक्षेपित हो जाते हैं। बैक्टीरियल (जीवाणुवीय) एवं कवकीय एंजाइंस अपरदों को सरल अकार्बनिक तत्त्वों में तोड़ देते हैं। इस प्रक्रिया को **अपचय** कहते हैं।

यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि उपर्युक्त अपघटन की समस्त प्रक्रियाएँ अपरद पर समानांतर रूप से लगातार चलती रहती हैं। (चित्र 14.1) ह्यूमीफिकेशन और मिनरेलाइजेशन की प्रक्रिया अपघटन के दौरान मृदा में संपन्न होती है। **ह्यूमीफिकेशन** के द्वारा एक गहरे रंग के क्रिसटल रहित तत्त्व का निर्माण होता है जिसे **ह्यूमस** कहते हैं जोकि सूक्ष्मजैविक क्रिया के लिए उच्च प्रतिरोधी होता है और इसका अपघटन बहुत ही धीमी गति से चलता है। स्वभाव (प्रकृति) में कोलाइडल होने के कारण यह पोषक के भंडार का काम करता है। ह्यूमस पुनः कुछ सूक्ष्मजीवों द्वारा खंडित होता है और जो **खनिजीकरण** नामक प्रक्रिया द्वारा अकार्बनिक पोषक उत्पन्न होते हैं उन्हें मुक्त करता है।

© NCERT not to be republished

अपघटन एक प्रक्रिया है जिसमें ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। अपघटन की दर जलवायुवीय घटकों तथा अपरद के रासायनिक संघटनों द्वारा निर्धारित होती है। एक विशिष्ट जलवायुवीय परिस्थिति में; यदि अपरद काइटिन तथा लिग्निन से भरपूर होता है तब अपघटन दर धीमी होती हैं, यदि अपरद नाइट्रोजन तथा जलविलेय तत्त्वों जैसे चीनी आदि से भरपूर होता है तब यह तेज होती है। ताप एवं मृदा की नमी बहुत ही महत्त्वपूर्ण जलवायुवीय घटक है जो मृदा के सूक्ष्मजीवों की क्रियाओं द्वारा अपघटन की गति को नियमित करते हैं। गरम एवं आर्द्र पर्यावरण में अपघटन की गति तेज होती है जबकि निम्न ताप एवं अवायुजीवन अपघटन की गति को धीमा करती है जिसके परिणाम स्वरूप कार्बनिक पदार्थों का भंडार जमा हो जाता है।

14.4 ऊर्जा प्रवाह

गहरे समुद्र के जलतापीय पारितंत्र को छोड़कर पृथ्वी पर सभी पारिस्थितिक तंत्रों के लिए एक मात्र ऊर्जा स्रोत सूर्य है। आपतित सौर विकिरण का 50 प्रतिशत से कम भाग प्रकाश **संश्लेषणात्मक सक्रिय विकिरण** में प्रयुक्त होता है। हम जानते हैं कि पादप एवं प्रकाश संश्लेषण तथा रसायनी संश्लेषण जीवाणु (स्वपोषी) सूर्य की विकरित ऊर्जा को सरल अकार्बनिक पदार्थों से आहार तैयार करने में लगाते हैं। पादप केवल 2-10 प्रतिशत प्रकाश संश्लेषणात्मक सक्रिय विकिरण का प्रग्रहण करते हैं और यही आंशिक मात्रा की ऊर्जा संपूर्ण विश्व का संपोषण करती है। अत: यह जानना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि पादपों द्वारा संग्रहण की गई सौर ऊर्जा एक पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न जीवों के माध्यम से किस प्रकार प्रवाहित होती है। पृथ्वी के सभी जीव आहार के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादकों पर निर्भर रहते हैं। अत: आप पायेंगे कि सूर्य से उत्पादकों की ओर और फिर उपभोक्ता की ओर ऊर्जा का प्रवाह एकदिशीय होता है। *क्या इसमें ऊष्मा गतिक का प्रथम सिद्धांत निहित है?*

पारिस्थितिक तंत्र ऊष्मा गतिक के दूसरे सिद्धांत से अवमुक्त नहीं हैं। उन्हें निरंतर ऊर्जा की आपूर्ति की आवश्यकता होती है ताकि वे अपेक्षित अणुओं को संश्लेषित कर बढ़ती हुई अव्यवस्थापन के प्रति सर्व-व्यापी प्रवृत्ति से संघर्ष कर सकें।

पारिस्थितिक तंत्र की शब्दावली में हरे पादप को **उत्पादक** कहा जाता है। स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में शाकी एवं काष्ठीय पादप प्रमुख उत्पादक हैं। इसी प्रकार विभिन्न प्रजातियाँ जैसे-पादपप्लवक, काई और बड़े पादप जलीय पारिस्थित तंत्र के प्राथमिक उत्पादक हैं।

आपने खाद्य शृंखलाओं तथा जालों (बेब्स) के बारे में पढ़ा है जो कि प्रकृति में विद्यमान हैं। पादप (या उत्पादक) से प्रारंभ होकर खाद्य शृंखला या जाल इस प्रकार से बने होते हैं कि प्रत्येक प्राणी जो एक पादप से आहार ग्रहण करता है या अन्य प्राणी पर निर्भर करता है और बदले में वह किसी अन्य के लिए आहार बनाता है। इस परस्पर अंतर निर्भरता के कारण शृंखला जाल (वेब) की रचना होती है। किसी भी जीव द्वारा आबद्ध (ग्रहण) की गई ऊर्जा सदैव के लिए संचित नहीं रहती है। उत्पादक द्वारा आबद्ध

© NCERT not to be republished

की गई ऊर्जा या तो उपभोक्ता को भंज दी जाती है या वह जीव मृत हो जाती है। एक जीव की मृत्यु अपरद खाद्य शृंखला / जाल की शरुआत होती है।

सभी जीव अपनी आहार आवश्यकता के लिए (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से) पादपों पर निर्भर करते हैं। अतः इन्हें **उपभोक्ता** तथा परपोषित भी कहा जाता है और यदि वे उत्पादक, पादपों से आहारपूर्ति करते हैं तब उन्हें प्राथमिक उपभोक्ता कहा जाता है और अगर एक पशु दूसरे पशु (वह पशु जो पेड़ों को या उसके उत्पाद को खाता है) को खाता है, उसे द्वितीयक उपभोक्ता कहा जाता है। ठीक उसी प्रकार से आप तृतीयक उपभोक्ता भी हो सकते हैं। निश्चित ही प्राथमिक उपभोक्ता **शाकाहारी** या **शाकभक्षी** होंगे। स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में कुछ सामान्य शाकाहारी, कीट-पतंगे, पक्षी तथा स्तनधारी पशु तथा जलीय पारिस्थितिक तंत्र में मृदकवची (मोलस्क) होते हैं।

वे उपभोक्ता, जो शाकाहारी जीवों से आहारपूर्ति करते हैं, वे मांसाहारी या मांसभक्षी होते हैं या इन्हें **प्राथमिक मांसभक्षी** कहना अधिक उपयुक्त होगा (यद्यपि द्वितीयक उपभोक्ता)। वे पशु, जो आहार हेतु प्राथमिक मांसभक्षियों पर निर्भर करते हैं उन्हें **द्वितीयक मांसभक्षी** के रूप में नामित किया गया है।

एक साधारण खाद्य शृंखला यहाँ दिखाई गई है —

घास ------▶ बकरी ------▶ मनुष्य ------▶
(उत्पादक) (प्राथमिक उपभोक्ता) (द्वितीयक उपभोक्ता)

एक अन्य प्रकार की खाद्य शृंखला को **अपरद खाद्य शृंखला** के नाम से जाना जाता है जो मृत कार्बनिक सामग्री से प्रारंभ होती है। यह **अपघटकों** से बना होता है जोकि मुख्यतः कवक एवं बैक्टीरिया के रूप में परपोषित जीव होते हैं। ये मृत कार्बनिक सामग्री या अपरदों के खंडन द्वारा अपेक्षित ऊर्जा एवं पोषण प्राप्त करते हैं। इन्हें **मृतपोषी या पूर्तिजीवी** (मृतः अपघटन) के नाम से भी जाना जाता है। अपघटक पाचक एंजाइम्स स्रवित करते हैं, जो मृत जीवों तथा व्यर्थ सामग्री को साधारण, अकार्बनिक पदार्थों में तोड़ डालते हैं, जो बाद में उन्हीं के द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं।

जलीय पारितंत्र में चारण खाद्य शृंखला ऊर्जा प्रवाह का महत्त्वपूर्ण साधन है। इसके विरुद्ध, स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में जी एफ सी की तुलना में अपरद खाद्य शृंखला द्वारा कहीं अधिक ऊर्जा प्रवाहित होती है। कुछ स्तरों पर अपरद खाद्य श्रृंखला को चारण (चराई) खाद्य शृंखला से जोड़ा जा सकता है। अपरद खाद्य शृंखला के कुछ जीव, चारण खाद्य शृंखला-पशुओं के शिकार बन जाते हैं और एक प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में कुछ जीव-जंतु जैसे काकरोच (तिलचट्टे) एवं कौवे आदि सर्वभक्षी होते हैं। खाद्य शृंखलाओं का यह प्राकृतिक अंतरसंबंध एक **आहार जाल (फूडवेब)** का निर्माण करता है।

आहारपूर्ति संबंधों के अनुसार सभी जीवों का प्राकृतिक वातावरण या एक समुदाय में अन्य जीवों के साथ एक स्थान होता है। सभी जीव अपने पोषण या आहार के स्रोत के आधार पर आहार शृंखला में एक विशेष स्थान ग्रहण करते हैं, जिसे (ट्राफिक लेवेल) **पोषण स्तर** के नाम से जाना जाता है। उत्पादक प्रथम पोषण स्तर में आते हैं, शाकाहारी

© NCERT not to be republished

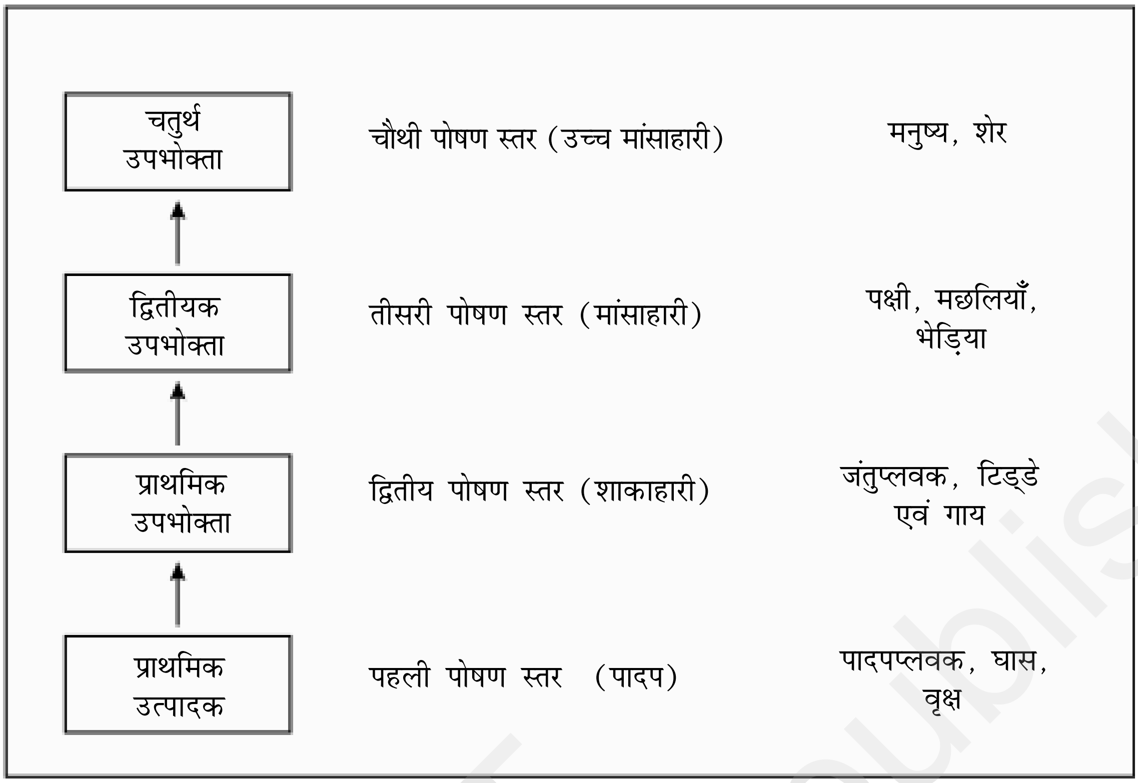

चित्र 14.2 एक पारिस्थितिक तंत्र में पोषण स्तर का आरेखीय निरूपण

(प्राथमिक उपभोक्ता) दूसरी एवं मांसाहारी (द्वितीयक उपभोक्ता) तीसरे पोषण स्तर से संबद्ध होते हैं। (चित्र 14.2)

यहाँ पर ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उत्तरोत्तर पोषण स्तरों पर ऊर्जा की मात्रा घटती जाती है। जब कोई जीव मरता है तो वह अपरद या मृत जैवमात्रा में बदल जाता है जो अपघटकों के लिए एक ऊर्जा स्रोत के रूप में काम करता है। प्रत्येक पोषण स्तर पर जीव अपनी ऊर्जा की आवश्यकता के लिए निम्न पोषण स्तर पर निर्भर रहता है।

एक विशिष्ट समय पर प्रत्येक पोषण स्तर का जीवित पदार्थ की कुछ खास मात्रा होती है, जिसे **स्थित शस्य या खड़ी फसल** कहा जाता है। स्थित शस्य को जीवित जैविकों की मात्रा **(जैवमात्रा)** या इकाई क्षेत्र में संख्या से मापा जाता है। एक प्रजाति की जैवमात्रा को ताजे या शुष्क भार के रूप में व्यक्त किया जाता है। एक जैवमात्रा का मापन शुष्क भार के शब्दों में किया जाय तो वह अधिक विशुद्ध होगा। *क्यों?*

चारण खाद्य शृंखला में पोषण स्तरों की संख्या प्रतिबंधित होती है इस तरह से ऊर्जा प्रवाह का स्थानांतरण 10 प्रतिशत कम होता है और प्रत्येक निम्न पोषण स्तर से ऊपर का पोषण स्तर पर केवल 10 प्रतिशत ऊर्जा प्रवाहित होती है। प्रकृति में यह संभव है कि कई स्तर हों जैसे कि चरण खाद्य शृंखला में उत्पादक, शाकभक्षी, प्राथमिक मांसभक्षी, द्वितीयक मांसभक्षी आदि (चित्र 14.3)। क्या आप सोच सकते हैं कि इस प्रकार अपरद खाद्य शृंखला की कोई सीमा है?

© NCERT not to be republished

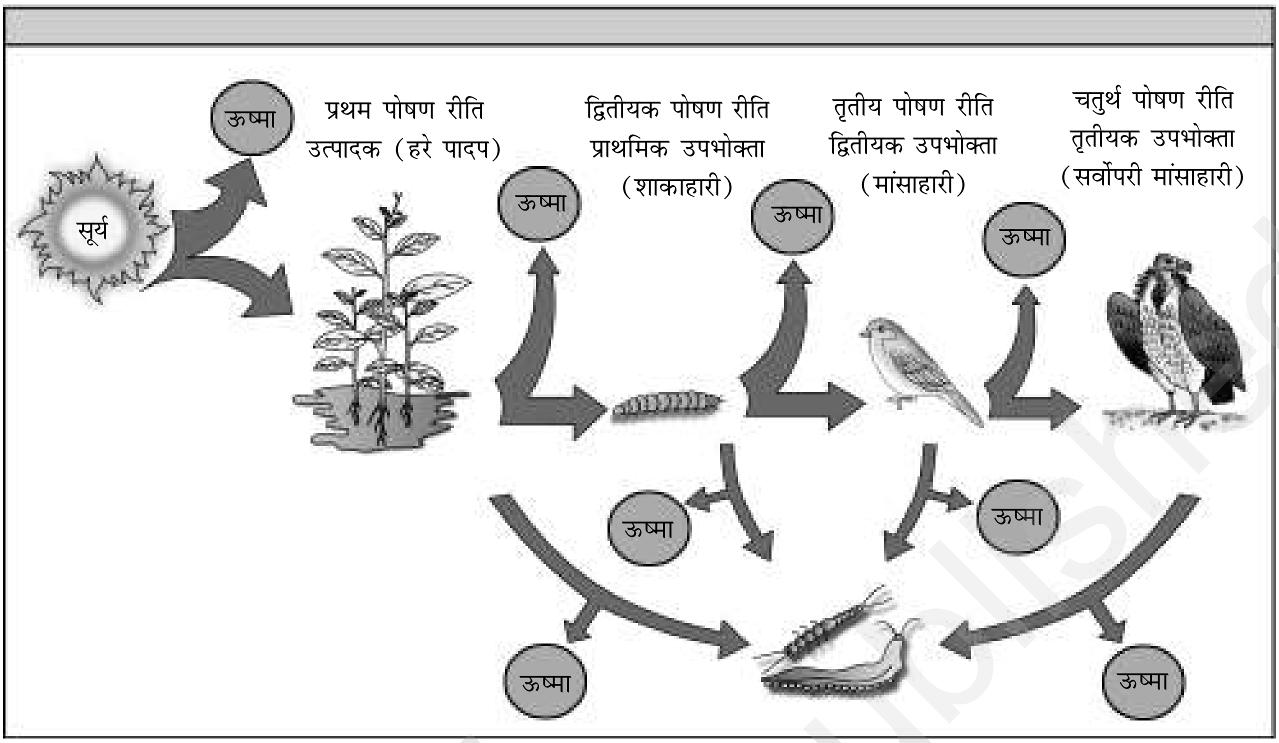

चित्र 14.3 विभिन्न पोषण स्तरों में से होता हुआ ऊर्जा का प्रवाह

14.5 पारिस्थितिक पिरैमिड (सूची स्तंभ)

आप पिरैमिड के आकार से निश्चित ही परिचित होंगे। पिरैमिड का आधार चौड़ा (विस्तृत) एवं शिखाग्र की ओर सँकरा होता जाता है। विभिन्न पोषण रीतियों पर जीवों के बीच चाहे आप एक खाद्य या ऊर्जा संबंध जोड़े तो आपको पिरैमिड के समान आकार मिलेगा। इस संबंध को संख्या, जैव मात्रा या ऊर्जा के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। प्रत्येक पिरैमिड के आधार का प्रतिनिधित्व उत्पादक या पहली पोषण स्तर करता है जबकि शिखर का प्रतिनिधित्व तृतीयक पोषण स्तर या सर्वोच्च उपभोक्ता करता है। तीन पारिस्थितिक पिरैमिड जिनका आमतौर पर अध्ययन किया जाता है, वे हैं (क) संख्या का पिरैमिड (ख) जैवमात्रा का पिरैमिड और (ग) ऊर्जा का पिरैमिड। विस्तृत जानकारी के लिए चित्र 14.4 अ, ब, स और द देखें।

ऊर्जा, मात्रा या अंश, जैवमात्रा या संख्याओं की किसी भी गणना में पोषण स्तर के सभी जीवों को शामिल किया जाना चाहिए। यदि हम किसी पोषण स्तर के कुछ व्यष्टियों को ही गणना में लेते हैं तो हमारे द्वारा किया गया कोई भी व्यापकीकरण सत्य नहीं होगा। इसके साथ ही एक प्रदत्त जीव एक ही समय एक से अधिक पोषणरीतियों में अधिष्ठित हो जाएगा। हमें यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि पोषण स्तर एक क्रियात्मक स्तर का प्रतिनिधित्व करता है न कि किसी प्रजाति का। एक प्रदत्त प्रजाति, एक ही समय पर एक ही पारिस्थितिक तंत्र में एक से अधिक पोषण रीतियों में अधिष्ठित हो सकती है; उदाहरण के लिए एक गौरेया जब बीज, फल व मटर खाती है तो वह प्राथमिक उपभोक्ता

है किंतु जब वह कीटों एवं केंचुओं को खाती है, तब वह द्वितीयक उपभोक्ता होती है। *क्या आप यह विवरण दे सकते हैं कि एक खाद्यशृंखला में मनुष्य कितनी पोषणरीतियों का प्रयोग करता है?*

अधिकतर पारिस्थितिक तंत्रों में संख्याओं, ऊर्जा तथा जैव मात्रा के सभी पिरैमिड आधार से ऊपर की ओर होते हैं। अर्थात् शाकाहारियों की अपेक्षा उत्पादकों की संख्या एवं जैव मात्रा अधिक होती है और इसी तरह से शाकाहारियों की संख्या एवं जैव मात्रा

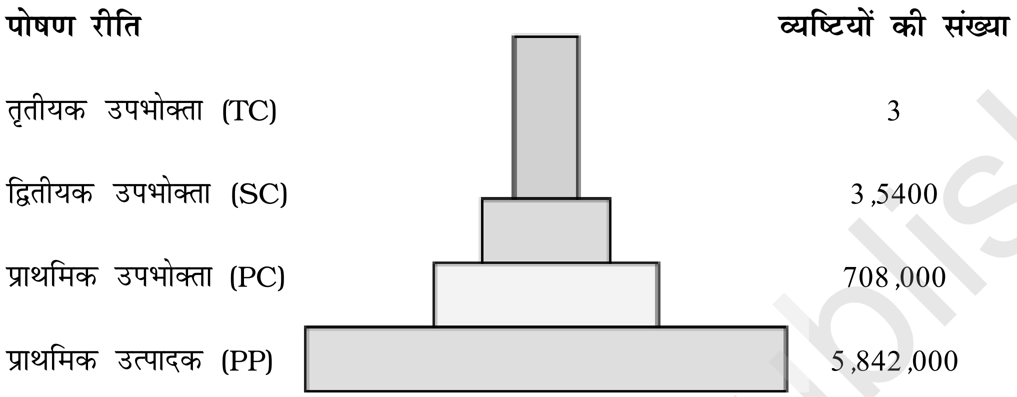

चित्र 14.4 (अ) एक घास के मैदान की पारिस्थितिक तंत्र का पिरैमिड लगभग 6 मिलियन पादपों के उत्पादन पर आधारित पारिस्थितिक तंत्र में समर्थित केवल 3 मांसाहारी जीव हैं।

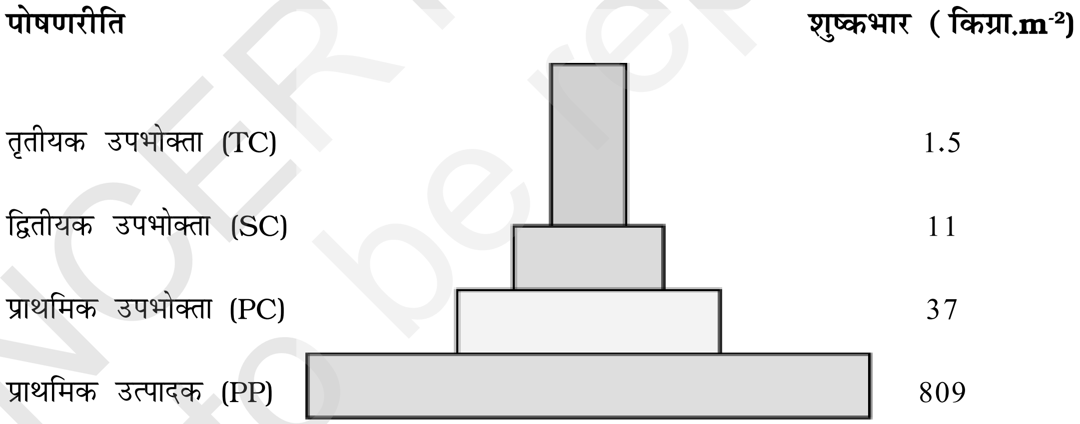

चित्र 14.4 (ब) एक जैव मात्रा का पिरैमिड शीर्ष पोषण स्तर पर एक तीव्र गिरावट दर्शाता है। एक दलदली पारिस्थितिक तंत्र से आंकड़े

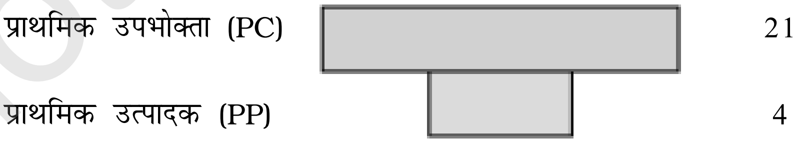

चित्र 14.4 (स) जैव मात्रा का उल्टा पिरैमिड प्राणीप्लवक की व्यापक खड़ी फसल को समर्थित करती पादप प्लवक की छोटी खड़ी फसल।

© NCERT not to be republished

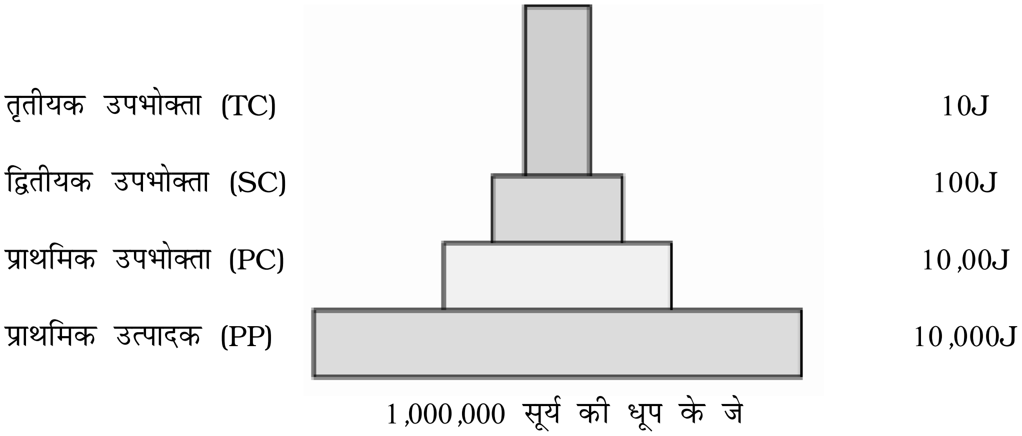

चित्र 14.4 द ऊर्जा का एक आदर्श पिरैमिड चित्र 14.4-अ-ब पारिस्थितिक पिरैमिड (PP) प्राथमिक उत्पादक, (PC) प्राथमिक उपभोक्ता (SC) द्वितीयक उपभोक्ता, (TC) तृतीयक उपभोक्ता

मांसाहारियों की अपेक्षा अधिक होती है। इसी प्रकार से निम्न पोषण स्तर में ऊर्जा की मात्रा ऊपरी पोषण स्तर से अधिक होती है।

इस व्यापकीकरण में कुछ अपवाद हैं; यदि आप एक बड़े वृक्ष पर आहार प्राप्त करने वाले कीटों की संख्या की गणना करें तो आपको कैसा पिरैमिड प्राप्त हो सकता है। अब उसमें उन छोटे कीटों पर निर्भर छोटे पक्षियों की गणना करें, इसके साथ ही कीटभक्षी पक्षियों पर निर्भर बड़े पक्षियों की गणना करें। अब आप प्राप्त आंकड़ों पर चित्र बनाएँ।

समुद्र में जैव मात्रा (भार) के पिरैमिड भी प्राय: उल्टे होते हैं, क्योंकि मछलियों की जैवमात्रा पादपप्लवकों की जैव मात्रा से बहुत अधिक होती है। *क्या यह एक विरोधाभास नहीं है? आप इसकी व्याख्या कैसे करेंगे?*

ऊर्जा पिरैमिड सदैव खड़ी अवस्था में होता है, कभी उल्टा नहीं हो सकता, क्योंकि जब ऊर्जा किसी विशेष पोषण स्तर से अग्र पोषण स्तर में पहुँचती है, तो हर स्तर पर ऊष्मा के रूप में ऊर्जा का ह्रास होता है। ऊर्जा पिरैमिड का प्रत्येक स्तंभ उस पोषण स्तर में किसी विशेष समय पर अथवा प्रति इकाई क्षेत्र वार्षिक ऊर्जा का द्योतक है। यद्यपि, पारिस्थितिकी पिरैमिड की कुछ सीमाएँ हैं, जैसे कि पिरैमिड में ऐसी जातियों का समावेश भी होता है, जोकि दो या अधिक भोजन स्तरों से संबंधित हो सकता है। इससे एक साधारण आहार श्रृंखला बनती है, जो कि प्रकृति में विद्यमान नहीं होती है, इसमें आहार जाल का समावेश नहीं है। पारिस्थितिकी तंत्र में एक प्रमुख भूमिका निभाने के अतिरिक्त मृत जीवियों को पारिस्थितिकी पिरामिड में कोई स्थान प्राप्त नहीं है।

14.6 पारिस्थितिक अनुक्रमण

आपने अध्याय-13 में समष्टि और समुदाय के लक्षणों, और पर्यावरण में उनकी अनुक्रिया तथा किस प्रकार ये अनुक्रियाएँ एक वैयक्तिक अनुक्रिया से भिन्न हैं, का अध्ययन किया होगा। चलो, हम समय के साथ सामुदायिक अनुक्रिया के अन्य पहलूओं पर विचार करें।

© NCERT not to be republished

सभी समुदायों का महत्त्वपूर्ण लक्षण पर्यावरण के बदलते स्वरूप के साथ इसके संगठन एवं संरचना में निरंतर परिवर्तन होते रहना है। यह परिवर्तन क्रमबद्ध और भौतिक पर्यावरण के परिवर्तन के सामांतर होता है। अंततः यह परिवर्तन एक समुदाय को गठित करता है, जो कि पर्यावरण से संतुलन के नजदीक है और इसे **चरम समुदाय** कहा जाता है। एक सुनिश्चित क्षेत्र की प्रजाति संरचना में उचित रूप से आंकलित परिवर्तन को **पारिस्थितिक अनुक्रमण** कहते हैं। अनुक्रमण के दौरान कुछ प्रजातियाँ एक क्षेत्र में नयी बस्ती बसा लेती हैं और इनकी जनसंख्या अनगिनत हो जाती है, जबकि दूसरी प्रजातियों की जनसंख्या घटती चली जाती है, और यहाँ तक कि अदृश्य हो जाती है।

समुदाय का संपूर्ण क्रम, जो दिए हुए क्षेत्र में सफलतापूर्वक परिवर्तित होता है, उसे **क्रमक** कहते हैं। विशेष परिवर्तनशील समुदायों को क्रमकी चरण या क्रमकी समुदाय कहा जाता है। अनुक्रमिकीय क्रमकी चरणों में, जीवों की प्रजातियों की भिन्नता, जीव और प्रजातियों की जनसंख्या वृद्धि, साथ ही संपूर्ण जैव मात्रा में वृद्धि जैसे परिवर्तन होते हैं।

संसार के निर्वतमान समुदाय धरती पर जीवोत्पत्ति के पश्चात् लाखों वर्षों के अनुक्रमण के फलस्वरूप उत्पन्न हुए हैं। वास्तव में अनुक्रमण एवं विकास उस समय सामांतर प्रक्रियाएँ थीं।

अतः अनुक्रमण एक प्रक्रिया है, जो वहाँ शुरू होती है, जहाँ कोई सजीव नहीं होते, अथवा कोई ऐसा क्षेत्र जहाँ कभी कोई सजीव नहीं रहा हो, उदाहरण के लिए नग्न पत्थर, या फिर ऐसा क्षेत्र जहाँ के सभी जीव, जो कभी वहाँ रहते थे, किसी प्रकार से नष्ट (लुप्त) हो गए। पहले को प्राथमिक अनुक्रमण कहते हैं, जबकि दूसरे को द्वितीयक अनुक्रमण के रूप में जाना जाता है।

प्राथमिक अनुक्रमण पाए जाने वाले क्षेत्रों का अनुक्रम है- तुरंत (नया) ठंडा लावा, नग्न पत्थर, नवविकसित तालाब या जलाशय। नये जीवीय समुदाय की संस्थापना सामान्यतः धीमी होती है। विविध जीवों के जीवीय समुदाय की संस्थापना से पूर्व, वहाँ उपजाऊ मिट्टी अवश्य होनी चाहिए। अधिकतर जलवायु की निर्भरता के आधार पर, प्राकृतिक रूप से उपजाऊ मिट्टी के उत्पादन में कई सौ से कई हजार वर्ष लग जाते हैं।

द्वितीयक अनुक्रमण ऐसे क्षेत्र में प्रारंभ होता है जहाँ प्राकृतिक जीवीय समुदाय निरस्त हो गए हैं, जैसे कि पूरी तरह से छोड़ी गई कृषि योग्य भूमि, जले या कटे वन, बाढ़ से प्रभावित जमीन। जबकि कुछ मिट्टी या अवसाद इनमें उपस्थित रहते हैं, अनुक्रमण की क्रिया प्राथमिक अनुक्रमण की अपेक्षा तेज होती है।

साधारणतया पारिस्थितिक अनुक्रमण का विवरण वानस्पतिक परिवर्तन पर केंद्रित होता है। जबकि बाद में ये वानस्पतिक परिवर्तन, विभिन्न प्रकार के जानवरों के खाद्य और शरण स्थल पर प्रभाव डालते हैं। अतः जैसे-जैसे अनुक्रमण बढ़ता है, जानवरों के प्रकार एवं संख्या तथा अपघटक भी बदलते हैं।

किसी भी समय प्राथमिक अथवा द्वितीयक अनुक्रमण को प्राकृतिक अथवा मानव जनित विघ्न/बाधाओं (जैसे आग, जंगलों का काटना इत्यादि) द्वारा क्रमक अवस्था को प्राथमिक अवस्था में बदला जा सकता है। इन बाधाओं से ऐसी नयी स्थितियाँ/अवस्थाएँ पैदा हो जाती हैं, जिनसे नयी जातियों को प्रोत्साहन मिलता है तथा अन्य जातियाँ हतोत्साहित होती है, अथवा निष्कासित हो जाती हैं।

© NCERT not to be republished

14.6.1 पादपों का अनुक्रमण

आवास की प्रकृति के आधार पर — चाहे वह पानी हो (या बहुत गीला क्षेत्र) अथवा बहुत शुष्क क्षेत्र - पौधों के इस अनुक्रमण को क्रमशः जलारंभी अथवा शुष्कतारंभी कहते हैं। **जलारंभी अनुक्रमण** जलमग्न क्षेत्रों में होता है और अनुक्रमण श्रेणी हाइड्रिक से समोद्भिक परिस्थिति की ओर अग्रसरित होती हैं। इसके विपरीत **शुष्कतारंभी अनुक्रमण** शुष्क क्षेत्रों में होता है और यह श्रेणी शुष्कता से समोद्भिक परिस्थिति की ओर बढ़ता है। अतः जलारंभी एवं शुष्कतारंभी, दोनों ही अनुक्रमण मध्यम जल परिस्थिति न तो बहुत शुष्क (जीरिक) और न बहुत जलीय।

वह प्रजाति, जो खाली एवं नग्न क्षेत्र पर आक्रमण करती है, उन्हें **मूल अन्वेषक** प्रजाति कहा जाता है। प्रायः लाइकेन चट्टानों पर प्राथमिक अनुक्रमण करते हैं, जो चट्टानों को पिघलाने के लिए अम्ल का स्राव करते हैं तथा अपरदन एवं मृदा निर्माण में सहायक होते हैं। बाद में ये बहुत छोटे पौधों जैसे ब्रायोफाइट के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं, जो मृदा की कम मात्रा में भी अपनी पकड़ बनाये रखने में सक्षम हैं। समय के साथ उनका स्थान बड़े पौधों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। अंततः कई चरणों के बाद एक स्थिर चरमावस्था पर वन समुदाय का निर्माण होता है। जब तक पर्यावरण नहीं बदलता है, चरमसीमा समुदाय स्थिर रहता है। समय के साथ मरूस्थलीय आवास समोद्भिदीय में परिवर्तित हो जाते हैं।

जल में प्राथमिक अनुक्रमण में, लघु पादपप्लवक मूल अंवेषक होते हैं, ये समय के साथ मुक्त रूप से तैरने वाले आवृतबीजीयों द्वारा तत्पश्चात् जड़ीय जलोद्भिद्, प्रतृण, घास और अंततः पेड़ों द्वारा प्रतिस्थापित किए जाते हैं। अंततः वन ही पुनः चरमसीमा समुदाय होंगे। समय के साथ जलकाय स्थलीय पारितंत्र में परिवर्तित हो जाती है (चित्र 14.5)।

द्वितीयक अनुक्रमण में, प्रजाति का आक्रमण मृदा की स्थिति जल की उपलब्धता, पर्यावरण, तथा बीज या अन्य उपस्थित प्रवर्ध्य पर निर्भर करती है। यद्यपि पहले से मृदा विद्यमान है, यहाँ अनुक्रमण दर बहुत तेज होती है और चरमावस्था तेजी से प्राप्त हो जाती है।

समझने के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि अनुक्रमण, विशेषरूप से प्राथमिक अनुक्रमण एक बहुत धीमी प्रक्रिया है, जो चरमावस्था तक पहुँचने में शायद हजारों वर्ष लगाए। दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह समझना है कि सभी अनुक्रमण चाहे पानी में हो या भूमि पर एक ही प्रकार से चरम समुदाय मीजिक की ओर अग्रसर होता है।

14.7 पोषक चक्रण

आपने कक्षा 11 में पढ़ा है कि जीवों को लगातार वृद्धि, प्रजनन एवं विभिन्न कायिक क्रियाओं को संपन्न करने के लिए लगातार पोषकों के संभरण की आवश्यकता होती है। मृदा में विद्यमान पोषकों की मात्रा; जैसे कि कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, कैल्सियम आदि को **स्थायी अवस्था** के रूप में संदर्भित किया जाता है। यह विभिन्न प्रकार के पारितंत्र में भिन्न होती है और साथ ही मौसम पर आधारित होती है।

© NCERT not to be republished

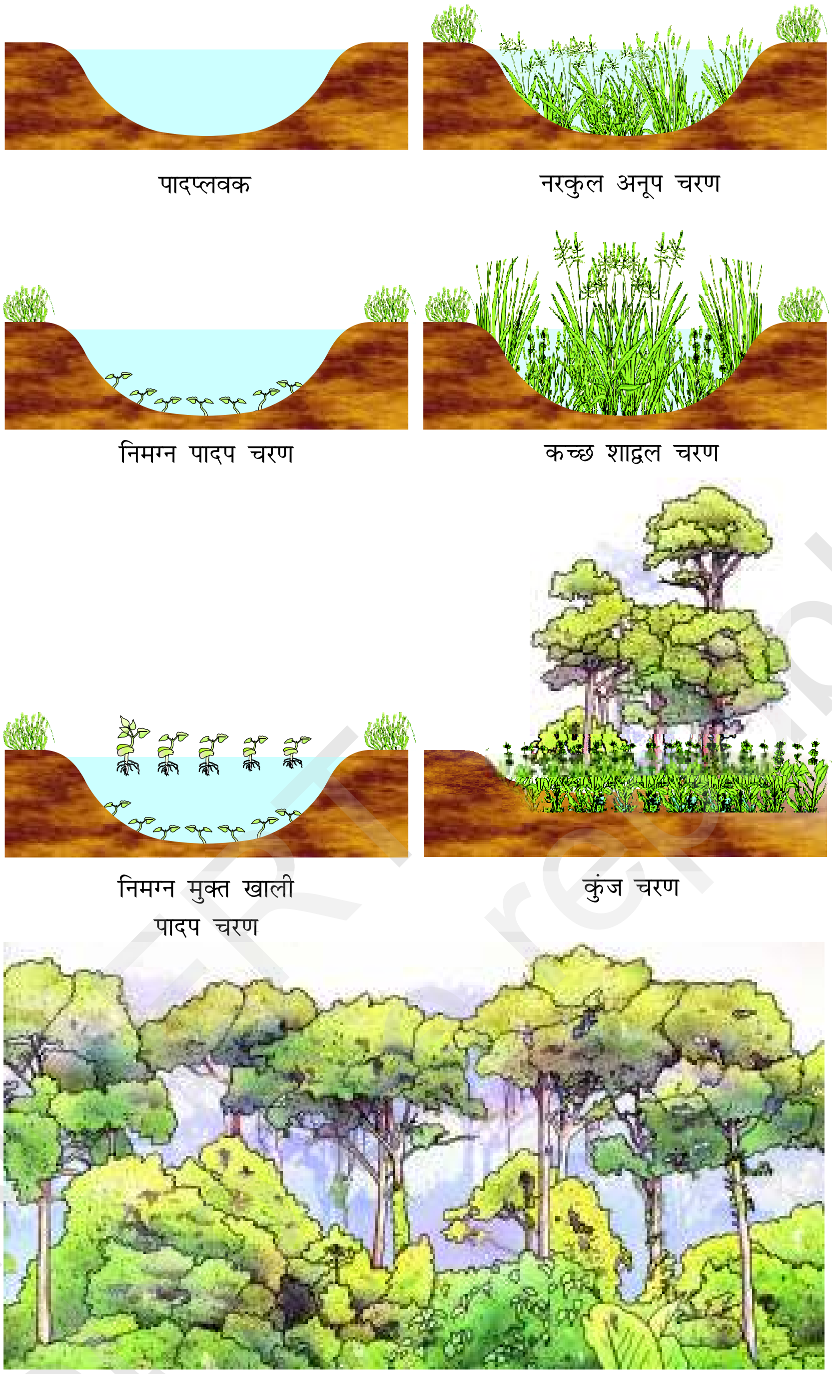

चित्र 14.5 जीवमंडल में कार्बन चक्र का सरलीकृत मॉडल

यह समझना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि पारितंत्र से पोषक कभी समाप्त नहीं होते हैं। ये बार-बार पुन: चक्रित होते हैं एवं अनंत काल तक चलते रहते हैं। एक पारितंत्र के विभिन्न घटकों के माध्यम से पोषक तत्त्वों की गतिशीलता को **पोषक चक्र** कहा जाता

© NCERT not to be republished

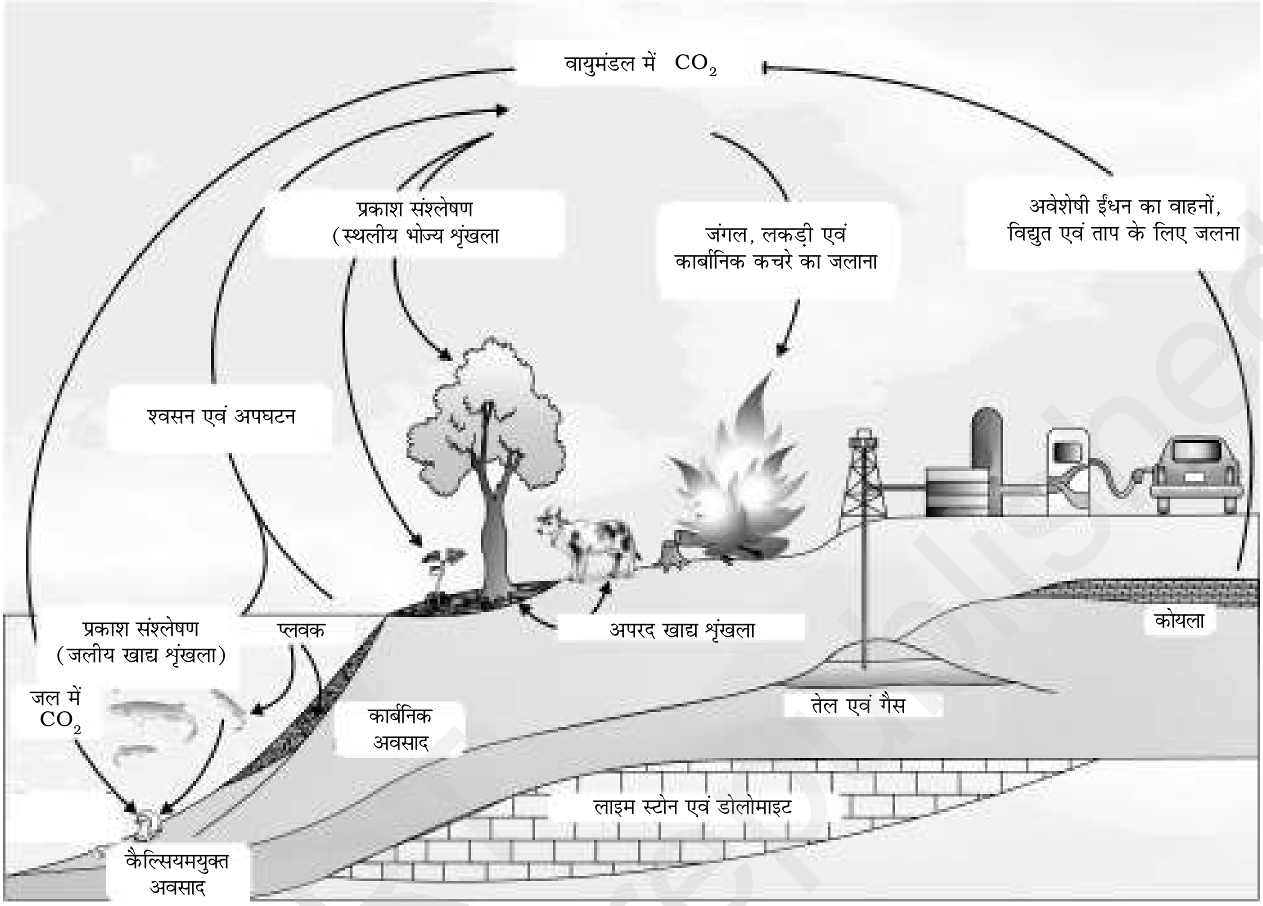

चित्र 14.6 भूमंडल में कार्बन-चक्र का सरलीकृत मॉडल

है। पोषक चक्र का एक अन्य नाम **जैव भू रसायन चक्र** (जैव सजीव जीवन, भू चट्टानें, हवा, पानी) है। पोषक चक्र दो प्रकार के होते हैं (क) **गैसीय** और (ख) **अवसादी** या **तलछटी**। गैसीय प्रकार के पोषक चक्र (जैसे नाइट्रोजन, कार्बनचक्र) के भंडार वायुमंडल में विद्यमान होते हैं तथा अवसादी चक्र (जैसे- सल्फर एवं फॉस्फोरस चक्र) के भंडार धरती के पटल (पपड़ी) में स्थित होते हैं। पर्यावरणीय घटक जैसे कि मिट्टी, आर्द्रता, पी एच, ताप आदि वायुमंडल में पोषकों के मुक्त होने की दर तय करते हैं। एक भंडार की क्रियाशीलता, कमी को पूरा करने के लिए होती है जोकि अंतर्वाह एवं बर्हि:वाह की दर के असंतुलन के कारण संपन्न होती है।

आपने कक्षा 11 में, नाइट्रोजन चक्र का विस्तृत अध्ययन किया था। यहाँ पर हम कार्बन तथा फॉस्फोरस चक्रों के बारे में चर्चा कर रहे हैं।

14.7.1 पारितंत्र-कार्बन चक्र

जब आप सजीवों की संरचना का अध्ययन करेंगे तो पायेंगे कि जीवों के शुष्क भार का 49 प्रतिशत भाग कार्बन से बना होता है और जल के पश्चात् यही आता है। यदि हम

© NCERT not to be republished

भूमंडलीय कार्बन की पूर्ण मात्रा की ओर ध्यान दें तब हम देखेंगे कि समुद्र में 71 प्रतिशत कार्बन विलेय के रूप में विद्यमान है। यह सागरीय कार्बन भंडार वायुमंडल में कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा को नियमित करता है (चित्र 14.6)। *क्या आप जानते हैं कि कुल भूमंडलीय कार्बन का केवल एक प्रतिशत भाग वायुमंडल में समाहित है?*

जीवाश्मी ईंधन भी कार्बन के एक भंडार का प्रतिनिधित्व करता है। कार्बन चक्र वायुमंडल, सागर तथा जीवित एवं मृतजीवों द्वारा संपन्न होता है। एक अनुमान के अनुसार जैव मंडल में प्रकाश संश्लेषण के द्वारा प्रतिवर्ष $4x10^{13}$ किग्रा. कार्बन का स्थिरीकरण होता है। एक महत्त्वपूर्ण कार्बन की मात्रा Co_2(कार्बन डाईआक्साइड) के रूप में उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के श्वसन क्रिया के माध्यम से वायुमंडल में वापस आती है। इसके साथ ही भूमि एवं सागरों के कचरा सामग्री एवं मृत कार्बनिक सामग्री की अघटन प्रक्रियाओं के द्वारा भी कार्बन डाईआक्साइड की काफी मात्रा अपघटकों द्वारा छोड़ी जाती है। यौगिकीकृत कार्बन की कुछ मात्रा अवसादों में नष्ट होती है और संचरण द्वारा निकाली जाती है। लकड़ी के जलाने, जंगली आग एवं जीवाश्मी ईंधन के जलने के कारण, कार्बनिक सामग्री, ज्वालामुखीय क्रियाओं आदि अतिरिक्त स्रोतों द्वारा वायुमंडल में कार्बन डाईआक्साइड को मुक्त किया जाता है।

कार्बन चक्र में मानवीय क्रियाकलापों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। तेजी से जंगलों का विनाश तथा परिवहन एवं ऊर्जा के लिए जीवाश्मी ईंधनों को जलाने आदि से महत्त्वपूर्ण रूप से वायुमंडल में कार्बनडाईआक्साइड को मुक्त करने की दर बढ़ी है, (अध्याय 16 में ग्रीनहाउस (पौधाघर) प्रभाव देखें)।

14.7.2 पारितंत्र-फॉस्फोरस चक्र

फॉस्फोरस जैविक झिल्लियाँ, न्यूक्लिक एसिड (अम्ल) तथा कोशिकीय ऊर्जा स्थानांतरण प्रणाली का एक प्रमुख घटक है। अनेक प्राणियों को अपना कवच, अस्थियाँ एवं दाँत आदि बनाने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। फॉस्फोरस का प्राकृतिक भंडारण चट्टानों में है जो कि फॉस्फेट के रूप में फॉस्फोरस को संचित किए हुए हैं। जब चट्टानों का अपक्षय होता है तो थोड़ी मात्रा में ये फॉस्फेट भूमि के विलयन में घुल जाते हैं एवं उन्हें पादपों की जड़ों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। शाकाहारी और अन्य जानवर इन तत्त्वों को पादपों से ग्रहण करते हैं (चित्र 14.7)। कचरा उत्पादों एवं मृत जीवों को फॉस्फोरस विलेयक जीवाणुओं द्वारा अपघटित करने पर फॉस्फोरस मुक्त किया जाता है। कार्बन चक्र की भाँति पर्यावरण में फॉस्फोरस को श्वसन द्वारा अवमुक्त नहीं किया जाता है। *क्या आप कार्बन चक्र एवं फॉस्फोरस चक्र के बीच कुछ विभेदों का पता कर सकते हैं?*

यहाँ पर फॉस्फोरस एवं कार्बन चक्र के बीच दो व्यापक अंतर हैं। पहला बरसात के द्वारा वायुमंडल में फॉस्फोरस का निवेश, कार्बन निवेश की अपेक्षा बहुत कम होता है। दूसरा, जीवों और पर्यावरण के बीच फॉस्फोरस का गैसीय विनिमय बिल्कुल नगण्य होता है।

© NCERT not to be republished

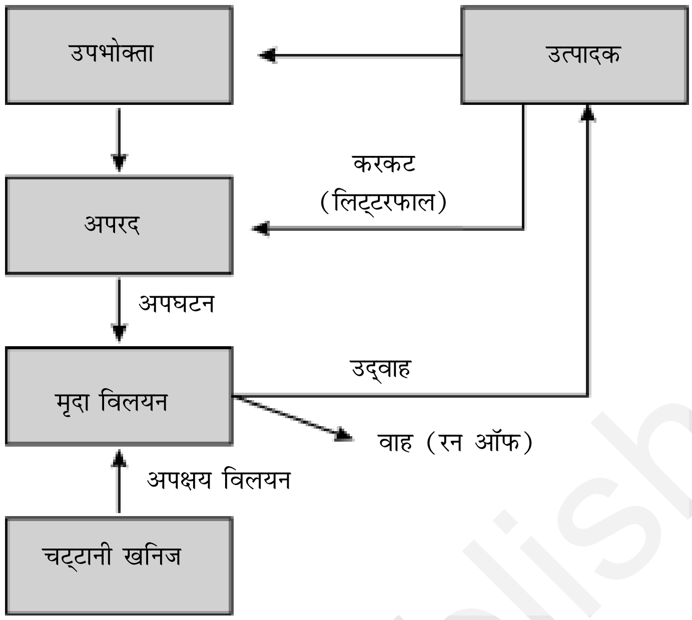

चित्र 14.7 एक स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में फॉस्फोरस चक्र का सरलीकृत मॉडल

14.8 पारितंत्र सेवाएँ

एक स्वस्थ पारितंत्र आर्थिक, पर्यावरणीय तथा सौंदर्यात्मक वस्तुएँ एवं सेवाओं के विस्तृत परिसर का आधार है। पारितंत्र प्रक्रिया के उत्पादों को **पारितंत्र सेवाएँ** के नाम से जाना जाता है; उदाहरण के लिए, एक स्वस्थ वन पारितंत्र की भूमिका वायु एवं जल को शुद्ध बनाना, सूखा एवं बाढ़ों की घटाना, पोषकों को चक्रित करना, भूमि को उर्वर बनाना, जंगली जीवों को आवास उपलब्ध कराना, जैव विविधता को बनाए रखना, फसलों का परागण करने में सहायता करना, कार्बन के लिए भंडारण स्थल उपलब्ध कराना और साथ ही सौंदर्यात्मक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य प्रदान करना आदि है। यद्यपि जैव विविधता की इन सेवाओं का मूल्यांकन करना एक कठिन कार्य है, परंतु यह मानना उपयुक्त है कि जैव विविधता को एक ऊँची कीमत की पर्ची प्रदान की जानी चाहिए।

रॉबर्ट कोंसटैंजा एवं उनके साथियों ने हाल ही में, प्रकृति के जीवन समर्थक (आधारीय) सेवाओं की एक कीमत निर्धारित करने का प्रयास किया है। शोधकर्ताओं ने इस मूलभूत पारिस्थितिक तंत्र की सेवाओं की एक वर्ष की कीमत औसतन 33 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर तय की है, जिसे व्यापक तौर पर अनुदत्त भाव (लापरवाही) से लिया जाता है क्योंकि वह मुफ्त प्राप्त है। यह मूल्य वैश्विक सकल उत्पाद (जी.एन.पी.) की कीमत का लगभग तीन गुना ज्यादा है जोकि 18 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर है।

विभिन्न पारितंत्र सेवाओं की कुल लागत में से 50 प्रतिशत केवल मृदा संरचना (भूमि गठन) के लिए हैं जबकि शेष सेवाएँ जैसेकि पोषक चक्रण तथा मनोरंजन आदि प्रत्येक 10 प्रतिशत से कम भागीदारी रखती हैं। वन्य जीवन के लिए जलवायु नियमन तथा वास की लागत लगभग प्रत्येक के लिए 6 प्रतिशत है।

© NCERT not to be republished

सारांश

पारितंत्र प्रकृति की एक क्रियाशील ईकाई है और उसमें निर्जीव एवं सजीव घटक समाहित हैं। अजीवीय घटकों के अंतर्गत अकार्बनिक सामग्री जैसे हवा, पानी, एवं मिट्टी जबकि सजीव घटकों के अंतर्गत उत्पादक, उपभोक्ता एवं अपघटक आते हैं। प्रत्येक पारितंत्र की एक विशिष्ट भौतिक संरचना होती है जो निर्जीव एवं सजीवों के बीच परस्पर क्रिया का परिणाम है। एक पारितंत्र की दो महत्त्वपूर्ण विशिष्टताएँ- प्रजाति संघटन एवं स्तर विन्यास होती हैं। सभी जीवों का पारितंत्र में अपने पोषण स्रोत के आधार पर एक स्थान निश्चित होता है।

उत्पादकता, अपघटन, ऊर्जा प्रवाह तथा पोषक चक्र एक पारितंत्र की चार महत्त्वपूर्ण क्रियाएँ होती हैं। प्राथमिक उत्पादकता, उत्पादक की जैव मात्रा, उत्पादन या सौर ऊर्जा की ग्रहण की दर होती है। इसके दो प्रकार हैं— ग्रास प्राथमिक उत्पादकता तथा नेट प्राथमिक उत्पादकता। जैविक पदार्थ की कुल उत्पादकता या सौर ऊर्जा संग्रहण की दर को ग्रास प्राथमिक उत्पादकता कहते है। इसके साथ ही उत्पादकता के उपयोग के पश्चात् शेष बची जैव मात्रा या ऊर्जा को नेट प्राथमिक उत्पादकता (एन.पी.पी.) कहते हैं। द्वितीयक उत्पादकता उपभोक्ता द्वारा खाद्य ऊर्जा के सर्वांगीकरण की दर होती है। अपघटन में, अपरद के जटिल कार्बनिक घटकों को अपघटकों द्वारा कार्बन डाईऑक्साइड, जल तथा अकार्बनिक पोषकों में द्वारा बदला जाता है। अपघटन में तीन प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं जोकि मुख्यत: अपरदों का खंडन, निक्षालन एवं अपचय हैं।

ऊर्जा प्रवाह एकदिशीय होता है। पहले, पादप सौर ऊर्जा को ग्रहण करते हैं इसके बाद आहार उत्पादक से अपघटक को स्थानांतरित किया जाता है। प्रकृति में भिन्न पोषण स्तर के जीव आहार या **ऊर्जा संबंधों** हेतु एक दूसरे से परस्पर जुड़कर खाद्य श्रृंखला का गठन करते हैं। पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न घटकों के माध्यम से पोषक तत्त्वों की गतिशीलता एवं भंडारण को पोषक चक्र कहते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा पोषकों का बार- बार उपयोग होता है। पोषक चक्र दो प्रकार के होते हैं: गैसीय एवं अवसादी। गैसीय प्रकार के चक्र (कार्बन) हेतु भंडार वायुमंडल या जलमंडल होता है, जबकि पृथ्वी की पटल (पपड़ी) अवसादी प्रकार के (फॉस्फोरस) पोषक का भंडार होती है। पारितंत्रीय प्रक्रिया के उत्पादों को पारितंत्र सेवा का नाम दिया गया है। जैसेकि जंगलों द्वारा वायु एवं जल का शुद्धीकरण। जैविक समुदाय गतिक है और बीते समय के साथ परिवर्तित होता है। ये परिवर्तन क्रमश: अनुक्रमित हैं और पारिस्थितिकी अनुक्रमण की संरचना करते हैं। अनुक्रमण का प्रारंभ पायनीयर (अग्रणी) जाति द्वारा खाली जैव विहीन क्षेत्रों पर प्रवेश के साथ होता है, जो बाद में उनके उत्तराधिकारियों का मार्ग प्रशस्त करती है और अंतत: एक अचल चरम समुदाय का निर्माण होता है। चरम समुदाय पर्यावरण के अपरिवर्तित होने तक स्थिर रहता है।

अभ्यास

1. रिक्त स्थानों को भरो।
   (क) पादपों को .... कहते हैं; क्योंकि कार्बन डाईऑक्साइड का स्थिरीकरण करते हैं।

© NCERT not to be republished

(ख) पादप द्वारा प्रमुख पारितंत्र का पिरैमिड (सं॰ का) (..................) प्रकार का है।
(ग) एक जलीय पारितंत्र में, उत्पादकता का सीमा कारक .... है।
(घ) हमारे पारितंत्र में सामान्य अपरदन .... हैं।
(च) पृथ्वी पर कार्बन का प्रमुख भंडार .... है।

2. एक खाद्य शृंखला में निम्नलिखित में सर्वाधिक संख्या किसकी होती है–
(क) उत्पादक
(ख) प्राथमिक उपभोक्ता
(ग) द्वितीयक उपभोक्ता
(घ) अपघटक

3. एक झील में द्वितीय (दूसरी) पोषण स्तर होता है–
(क) पादपप्लवक
(ख) प्राणिप्लवक
(ग) नितलक (बैनथॉस)
(घ) मछलियाँ

4. द्वितीयक उत्पादक हैं–
(क) शाकाहारी (शाकभक्षी)
(ख) उत्पादक
(ग) मांसाहारी (मांसभक्षी)
(घ) उपरोक्त कोई भी नहीं

5. प्रासंगिक सौर विकिरण में प्रकाश संश्लेषणात्मक सक्रिय विकिरण का क्या प्रतिशत होता है?
(क) 100%
(ग) 50%
(ग) 1-5%
(घ) 2-10%

6. निम्नलिखित में अंतर स्पष्ट करें —
(क) चारण खाद्य शृंखला एवं अपरद खाद्य शृंखला
(ख) उत्पादन एवं अपघटन
(ग) ऊर्ध्ववर्ती (शिखरांश) व अधोवर्ती पिरैमिड

7. निम्नलिखित में अंतर स्पष्ट करें —
(क) खाद्य शृंखला तथा खाद्य जाल (बेब)
(ख) लिटर (कर्कट) एवं अपरद
(ग) प्राथमिक एवं द्वितीयक उत्पादकता

8. पारिस्थितिक तंत्र के घटकों की व्याख्या करें।

9. पारिस्थितिकी पिरैमिड को परिभाषित करें तथा जैवमात्रा या जैवभार तथा संख्या के पिरैमिडों की उदाहरण सहित व्याख्या करें।

10. प्राथमिक उत्पादकता क्या है? उन कारकों की संक्षेप में चर्चा करें जो प्राथमिक उत्पादकता को प्रभावित करते हैं।

© NCERT not to be republished

11. अपघटन की परिभाषा दें तथा अपघटन की प्रक्रिया एवं उसके उत्पादों की व्याख्या करें।
12. एक पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह का वर्णन करें।
13. एक पारिस्थितिक तंत्र में एक अवसादीय चक्र की महत्त्वपूर्ण विशिष्टताओं का वर्णन करें।
14. एक पारिस्थितिक तंत्र में कार्बन चक्रण की महत्त्वपूर्ण विशिष्टताओं की रूप रेखा प्रस्तुत करें।

© NCERT not to be republished

अध्याय 15

जैव विविधता एवं संरक्षण

15.1 जैव विविधता

15.2 जैव विविधता सरंक्षण

यदि दूर स्थित आकाशगंगा से कोई अन्यग्रही (ऐलियन) आया हुआ हमारे ग्रह पृथ्वी पर भ्रमण करे, तब सबसे पहले जो बात उसको अचंभित करेगी, वह शायद हमारे जीवन की अति विशाल विविधता होगी। हम मानव के लिए भी ग्रह पर उपस्थित जीवित विभिन्न जातियाँ (स्पीशीज़) जिनके साथ हम रहते हैं, हमें आश्चर्यचकित किए बिना नहीं छोड़ती। सामान्य मनुष्य मुश्किल से विश्वास करेगा कि हमारी पृथ्वी पर 20,000 चीटियों की जातियाँ, 3,00,000 बीटिल (भृंग), 28,000 मत्स्य जातियाँ तथा 20,000 से अधिक अधिपादप (ऑरकिड) की जातियाँ हैं। पारिस्थितिकविद् तथा जैवविकास वैज्ञानिक इस विविधता के महत्त्व को कुछ आवश्यक प्रश्न पूछ कर समझने की कोशिश कर रहे हैं; जैसे कि इतनी विभिन्न जातियाँ क्यों हैं? क्या यह महान विविधता पृथ्वी के इतिहास में पहले से उपस्थित थी? ये सब विचित्रताएँ कहाँ से आईं? जीव मंडल के लिए यह विविधता क्यों और कैसे महत्त्वपूर्ण है? यदि यह विविधता कम होती तो क्या जीव मंडल का कार्य अलग होता? मानव जीवन इस विविधता से किस प्रकार लाभांवित है?

15.1 जैव विविधता

हमारे जैवमंडल में न केवल जाति (स्पीशीज़) स्तर पर वरन् जैवीय संगठन के सभी स्तर पर कोशिकाओं के वृहत् अणु से लेकर जीवोम

© NCERT not to be republished

(बायोम) तक बहुत विविधता मिलती है। जैव विविधता शब्द सामाजिक जीववैज्ञानिक एडवर्ड विलसन द्वारा जैविक संगठन के प्रत्येक स्तर पर उपस्थित विविधता को दर्शाने के लिए प्रचलित किया गया है। इसमें से अति महत्त्वपूर्ण निम्न है —

(क) ***आनुवंशिक विविधता***– एक जाति आनुवंशिक स्तर पर अपने वितरण क्षेत्र में बहुत विविधता दर्शा सकती है। हिमालय की विभिन्न श्रेणियों में उगने वाला औषधीय पादप *राऊवोल्फीया वोमिटोरिया* की आनुवंशिक विविधता उसके द्वारा उत्पादित सक्रिय रसायन रेसरपिन की क्षमता तथा सांद्रता से संबंधित हो सकती है। भारत में 50 हजार से अधिक आनुवंशिक रूप में भिन्न धान की तथा 1000 से अधिक आम की जातियाँ हैं।

(ख) ***जातीय (स्पीशीज़) विविधता***– यह भिन्नता जाति स्तर पर है। उदाहरणार्थ–पश्चिमी घाट की उभयचर जातियों की विविधता पूर्वी घाट से अधिक है।

(ग) ***पारिस्थितिकीय (इकोलोजिकल) विविधता***– यह विविधता पारितंत्र स्तर पर है, जैसे कि भारत के रेगिस्तान, वर्षा वन, गरान (मैंग्रोव), प्रवात्व भित्ति (कोरल रीफ), आर्द्र भूमि, ज्वारनदमुख (एस्युएरी) तथा एल्पाइन शाद्वल (मीडोज) की पारितंत्र विभिन्नता स्कैंडीनेवियाई देश नार्वे से अधिक है।

प्रकृति की इस समृद्ध जैव विविधता को एकत्र होने में विकास के लाखों वर्ष लगे, लेकिन जातीय क्षति यदि इसी दर से जारी रही तब हम इस संपदा को दो शताब्दी से भी कम समय में खो सकते हैं। आजकल संसार के अधिकतर लोगों के लिए इस ग्रह पर हमारे जीवन तथा रख-रखाव के लिए जैव-विविधता व इसका संरक्षण एक अत्यावश्यक और महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय मुद्‌दा बना हुआ है।

15.1.1 पृथ्वी तथा भारत में कितनी जातियाँ (स्पीशीज़) हैं?

अब तक खोजी तथा नामित जातियों के प्रकाशित साक्ष्यों एवं तथ्यों से हम जानते हैं कि आज तक कितनी जातियाँ अंकित की गई हैं, लेकिन पृथ्वी पर कितनी जातियाँ हैं इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं हैं। आई.यू.सी.एन. (इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजरवेशन ऑफ नेचर एंड नेचुरल रिसोर्सेस) (2004) के अनुसार; अब तक दर्शायी गई जंतु व पादपों की कुल संख्या 1.5 मिलियन से कुछ अधिक है। लेकिन हमें यह ज्ञात नहीं है कि अभी और कितनी जातियों की खोज तथा व्याख्या शेष है। आंकलन में बहुत विभिन्नताएँ हैं तथा उनमें से कुछ शैक्षिक अनुमान मात्र हैं कि वर्गिकी समूह की जातियों की खोज उष्ण कटिबंधीय (ट्रॉपिकल) देशों की अपेक्षा शीतोष्ण (टेंपरेट) देशों में अधिक पूर्ण है। यह सोचकर कि प्रबल रूप में उष्ण कटिबंध की बहुत सी जातियों की खोज शेष है। वैज्ञानिकों ने गहन रूप से अध्ययन किए गए कीटों के समूह की उष्ण कटिबंधीय व शीतोष्ण जातियों की सांख्यिकीय तुलना कर उनके परिणामों के अनुपात को जंतु व पादपों में अनुमानित कर पृथ्वी की कुल जातियों का आंकलन किया। कुछ चरम आंकलन की परास 20–25 मिलियन है, लेकिन रोबर्ट मेए द्वारा दिया गया एक अधिक संतुलित तथा वैज्ञानिक रूप से शुद्ध आंकलन वैश्विक जातीय विविधता को लगभग 70 लाख (7 मिलियन) तक मानता है।

© NCERT not to be republished

आइए! पृथ्वी की जैवविविधता के कुछ रोचक पहलुओं को वर्तमान में उपलब्ध जातीय सूचियों के आधार पर देखें। सभी आकलित जातियों में से 70 प्रतिशत से अधिक जंतु हैं, जबकि शैवाल, कवक, ब्रायोफाइट, आवृत्तबीजी तथा अनावृत्तबीजियों जैसे पादपों को मिलाकर 22 प्रतिशत से अधिक नहीं हैं। जंतुओं में कीट सबसे अधिक समृद्ध जातीय वर्ग समूह है, जो संपूर्ण जातियों के 70 प्रतिशत से अधिक है। इसका अर्थ यह है कि इस ग्रह में प्रत्येक 10 जंतुओं में 7 कीट हैं। पुनः कीटों की इस अत्यधिक विविधता को हम कैसे समझाएँ? संसार में कवक जातियों की कुल संख्या, मछली, उभयचर (एम्फीबिया), सरीसृप (रेप्टाइल) तथा स्तनधारियों (मैमल्स) से अधिक है। चित्र 15.1 में कुछ मुख्य वर्गक (टैक्सा) की जातियों की जैव-विविधता को दर्शाया गया है।

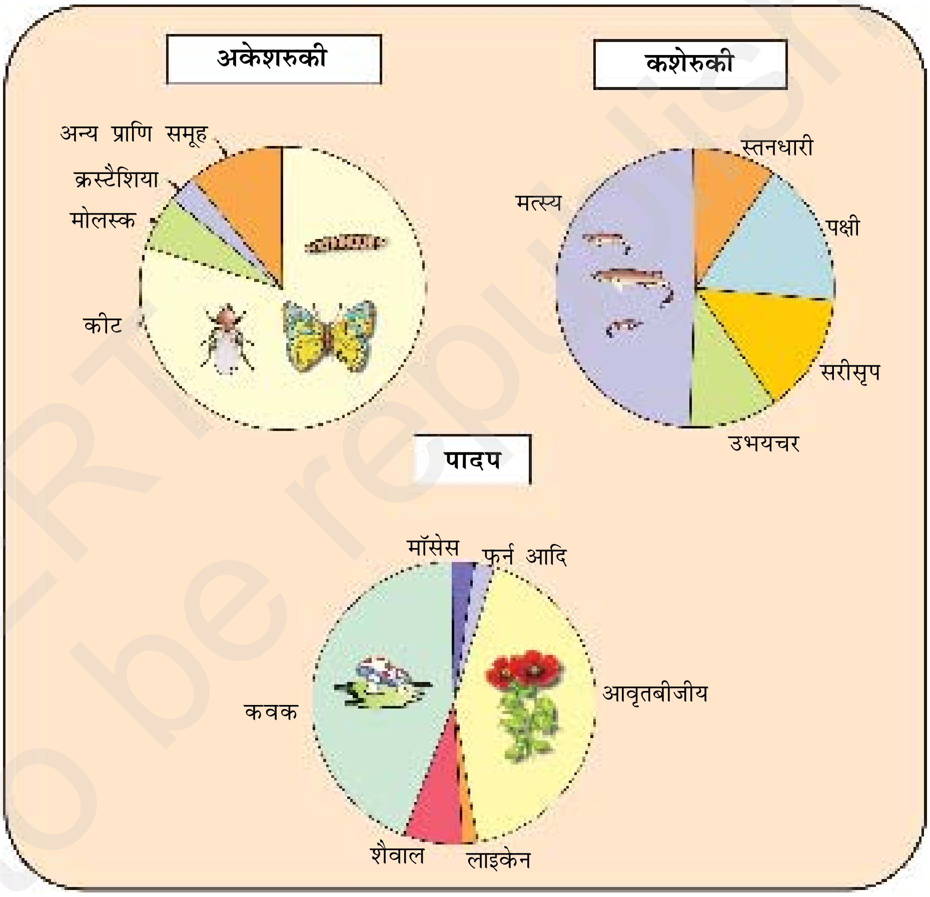

चित्र 15.1 वैश्विक जैव विविधता का प्रतिनिधित्व- अकशेरूकी, कशेरूकी तथा पादप जाति के वर्गकों की अनुपातिक संख्या

यह बात ध्यान में होनी चाहिए कि ये आंकलन (प्रोकैरियोट) की संख्या नहीं बताते। जीववैज्ञानिकों को यह पक्का विश्वास नहीं है कि प्रोकैरियोटिक जातियों की संख्या कितनी हो सकती है। समस्या यह है कि पारंपरिक वर्गीकरण के तरीके सूक्ष्मजीवों को

© NCERT not to be republished

पहचाननें के लिए उचित नहीं हैं तथा बहुत सी जातियाँ प्रयोगशाला में संवर्धन योग्य (कल्चरेबल) नहीं हैं। यदि इन जातियों को समझाने के लिए जैव रासायनिक अथवा आण्विक तरीके अपनाते हैं, तब इनकी विविधता लाखों में पहुँच सकती है।

यद्यपि भारत का भूमिक्षेत्र विश्व का केवल 2.4 प्रतिशत है। लेकिन इसकी वैश्विक जातीय विविधता 8.1 प्रतिशत है। यही कारण है कि संसार के 12 महाविविध देशों में भारत भी एक है। भारत में लगभग 45000 पादप जातियाँ तथा इससे दो गुना से अधिक जंतु जातियों को अभिलिखित किया जा चुका है। वास्तव में अभी कई जीवित जातियों की खोज तथा उनका नाम दिया जाना शेष है? यदि रार्बट मेए के वैश्विक आँकलन को स्वीकार करें, तब अभी तक कुल 22 प्रतिशत जातियों की ही खोज हुई है। इस अनुपात से भारत की विविधता का आंकलन करें तो 1,00,000 से अधिक पादप तथा 3,00,000 से अधिक जंतु जातियों की खोज तथा वर्णन होना शेष है। क्या हम कभी अपने देश की संपूर्ण जैविक संपदा की खोज कर सकेंगे? सोचिए इस कार्य को पूर्ण करने के लिए कितनी प्रशिक्षित मानव शक्ति (वर्गीकरणविद्) तथा समय की आवश्यकता होगी। यह स्थिति और भी अधिक भयावह हो सकती है, जब हम महसूस करते हैं कि बहुत सी जातियाँ खोज करने से पहले ही विलुप्त हो रहीं हैं। प्रकृति का जैविक पुस्तकालय उसमें संग्रहित पुस्तकों के शीर्षकों के सूचीबद्ध करने से पहले ही विनष्ट हो रहा है।

15.1.2 जैव विविधता के प्रतिरूप (पैटर्न)

(क) ***अक्षांशीय प्रवणता***- जंतु व पादपों की विविधता संपूर्ण विश्व में समान न होकर असमान वितरण दर्शाती है। बहुत से जंतु व पौधों के समूह में रोचक विविधता मिलती है जिसमें मुख्य रूप से अक्षांशों पर विविधता में क्रमबद्ध प्रवणता (उतार-चढ़ाव) है। सामांयत: भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर जाति विविधता घटती जाती है। केवल कुछ ही अपवादों को छोड़कर उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र (अक्षांशीय सीमा 23.5 डिग्री उत्तर से 23.5 डिग्री दक्षिण तक) में शीतोष्ण या ध्रुव प्रदेशों से अधिक जातियाँ पाई जाती हैं। भूमध्य रेखा के समीप स्थित कोलम्बिया में 1400 पक्षी जातियाँ हैं, जबकि न्यूयार्क, जो कि 41 डिग्री उत्तर में है, 105 पक्षी जातियाँ व ग्रीनलैंड के 71डिग्री उत्तर में केवल 56 पक्षी जातियाँ हैं। भारत में, जिसका अधिकतर भूभाग उष्ण कटिबंध क्षेत्र में है, 1200 से अधिक पक्षी जातियाँ हैं। इक्वाडोर के उष्ण कटिबंध के वन क्षेत्र में, जैसे कि इक्वाडोर, संवहनी पौधों की जातियाँ यू.एस.ए. के मध्य पश्चिम में स्थित शीतोष्ण क्षेत्र के वनों से 10 गुना अधिक है। दक्षिणी अमेरिका के अमेजन उष्ण कटिबंध वर्षा वनों की जैवविविधता पृथ्वी पर सबसे अधिक है। यहाँ पर 40 हजार पादप जातियाँ, 3000 मत्स्य, 1300 पक्षी, 427 स्तनधारी, 427 उभयचर, 378 सरीसृप तथा 1 लाख पच्चीस हजार से अधिक अकशेरुकी जातियों का आवास है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इन वर्षा वनों में अभी भी कम से कम 2 लाख कीट जातियों की खोज तथा पहचान शेष हैं।

© NCERT not to be republished

उष्ण कटिबंध क्षेत्र में ऐसा क्या विशेष है, जिसके कारण उसमें सबसे अधिक जैव-विविधता है? पारिस्थितिक तथा जैव विकासविदों ने बहुत सी परिकल्पनाएँ की हैं जिनमें से कुछ मुख्य निम्न है- (क) जाति उद्‌भवन (स्पीशिएशन) आमतौर पर समय का कार्य है। शीतोष्ण क्षेत्र में प्राचीन समय से बार-बार हिमनदन (ग्लेशिएशन) होता रहा जबकि उष्ण कटिबंध क्षेत्र लाखों वर्षों से अपेक्षाकृत अबाधित रहा है, इसी कारण जाति विकास तथा विविधता के लिए बहुत समय मिला। (ख) उष्ण कटिबंध पर्यावरण शीतोष्ण पर्यावरण, से भिन्न तथा कम मौसमीय परिवर्तन दर्शाता है। यह स्थिर पर्यावरण निकेत विशिष्टीकरण (निकस्पेशिएलाइजेशन) को प्रोत्साहित करता रहा जिसकी वजह से अधिकाधिक जाति विविधता हुई। (ग) उष्ण कटिबंध क्षेत्रों में अधिक सौर ऊर्जा उपलब्ध है जिससे उत्पादन अधिक होता है जिससे परोक्ष रूप से अधिक जैवविविधता का होती है।

(ख) ***जातीय क्षेत्र संबंध***- जर्मनी के महान प्रकृतिविद् व भूगोलशास्त्री अलेक्जेंडर वॉन हम्बोल्ट ने दक्षिणी अमेरीका के जंगलों के गहन अन्वेषण के समय दर्शाया कि कुछ सीमा तक किसी क्षेत्र की जातीय समृद्धि अन्वेषण क्षेत्र की सीमा बढ़ाने के साथ बढ़ती है। वास्तव में, जाति समृद्धि और वर्गकों (अनावृत्तबीजी पादप, पक्षी, चमगादड़, अलवणजलीय मछलियाँ) की व्यापक किस्मों के क्षेत्र के बीच संबंध आयताकार अतिपरवलय (रेक्टेंगुलर हाइपरबोल) होता है (चित्र 15.2)। लघुगणक पैमाने पर यह संबंध एक सीधी रेखा दर्शाता है जो कि निम्न समीकरण द्वारा प्रदर्शित है —

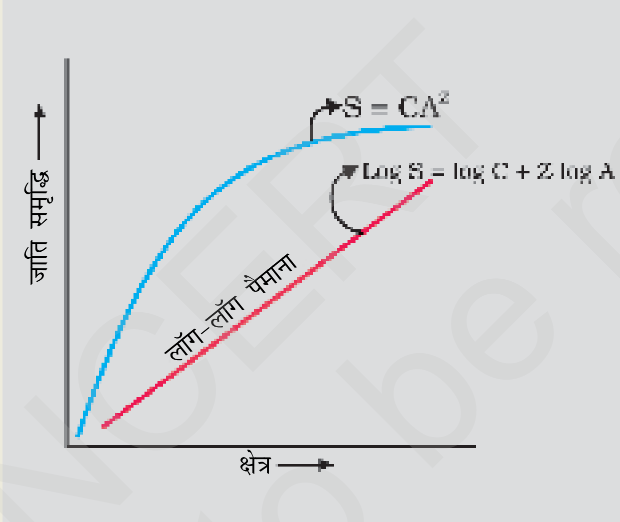

चित्र 15.2 जातीय और संबंध का प्रदर्शन: लॉग पैमाने पर संबंध रेखीय हो जाते हैं।

$$\log S = \log C + Z \log A$$

जहाँ पर S = जातीय समृद्धि, A= क्षेत्र

Z = रेखीय ढाल (समाश्रयण गुणांक रिग्रेशन कोएफिशिएंट),

C= Y - अंत: खंड (इंटरसेप्ट)

पारिस्थितिक वैज्ञानिकों ने बताया कि Z का मान 0.1 से 0.2 परास में होता है भले ही वर्गीकी समूह अथवा क्षेत्र (जैसेकि ब्रिटेन के पादप, कैलिफोर्निया के पक्षी या न्यूयार्क के मोलस्क) कुछ भी हो। समाश्रयण रेखा (रिग्रेसन लाइन) की ढलान आश्चर्यजनकरूप से एक जैसी होती है। लेकिन यदि हम किसी बड़े समूह, जैसे संपूर्ण महाद्वीप, के जातीय क्षेत्र संबंध का विश्लेषण करते हैं तब ज्ञात होता है कि समाश्रयण रेखा की ढलान तीव्र रूप से तिरछी खड़ी है (Z का मान की परास 0.6 से 1.2 है)।

उदाहरणार्थ–विभिन्न महाद्वीपों के उष्ण कटिबंध वनों के फलाहारी पक्षी तथा स्तनधारियों की रेखा की ढलान 1.15 है। इस संदर्भ में तिरछी खड़ी ढलान का क्या अर्थ है?

15.1.3 जातीय विविधता का पारितंत्र में महत्त्व

क्या किसी समुदाय में जातियों की संख्या पारितंत्र के कार्यो को वास्तव में प्रभावित करती है? यह ऐसा प्रश्न है, जिसका पारिस्थितिकविद् उचित उत्तर नहीं दे पा रहे हैं। बहुत से दशकों तक पारिस्थितिकविदों का विश्वास था कि जिस समुदाय में अधिक जातियाँ होती हैं वह पारितंत्र कम जाति वाले समुदाय से अधिक स्थिर रहता है। एक जैवी समुदाय के लिए सटीक स्थिरता क्या है? एक स्थिर समुदाय की उत्पादकता में साल दर साल अधिक अंतर नहीं होना चाहिए। यह समय-समय पर आने वाली प्राकृतिक या मानव निर्मित बाधाओं को रोकनेवाला तथा विदेशी (ऐलियन) जातियों के आक्रमण को रोकनेवाला भी होना चाहिए। हम नहीं जानते कि ये गुण जातीय समृद्धि से किस प्रकार संबंधित हैं, लेकिन डेविड टिलमैन द्वारा प्रयोगशाला के बाहर के भूखंडों पर लंबे समय तक पारितंत्र (इकोसिस्टम) के प्रयोग इस बारे में कुछ प्रारंभिक उत्तर देते हैं। टिलमैन ने पाया कि उन भूखंडों ने जिन पर अधिक जातियाँ थीं, साल दर साल कुल जैवभार में कम विभिन्नता दर्शायी। उन्होंने अपने प्रयोगों में यह भी दर्शाया कि विविधता में वृद्धि से उत्पादकता बढ़ती है।

यद्यपि हम पूर्ण रूप से यह नहीं जानते कि कैसे जातीय समृद्धि पारितंत्र अच्छा बनाए रखने में सहयोग प्रदान करती है। हम यह समझते तथा महसूस करते हैं कि समृद्ध जैवविविधता केवल अच्छे पारितंत्र के लिए ही आवश्यक नहीं है, बल्कि इस ग्रह पर मानव जीवन को जीवित रखने के लिए भी आवश्यक है। इस समय जब हम जातियों को भयावह गति से खो रहे हैं, तब प्रश्न उठता है कि यदि कुछ जातियाँ लुप्त हो जाएँ तो क्या वास्तव में इसका हम पर प्रभाव पड़ेगा? यदि पश्चिमी घाट के पारितंत्र से वृक्षों पर पाए जाने वाले मेंढक की जाति हमेशा के लिए विलुप्त हो जाए तब क्या वहाँ को पारितंत्र कम क्रियाशील होंगे? यदि पृथ्वी पर 20 हजार चींटी जातियों के स्थान पर केवल 15 हजार जातियाँ ही रहें, तब हमारा जीवन किस प्रकार प्रभावित होगा?

इन सीधे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है, लेकिन स्टैंडफोर्ड के पारिस्थितिकविद् पॉल एहरलिक द्वारा उपयोग की गई 'रिवेट पोपर परिकल्पना' से हम एक सही विचार प्रस्तुत कर सकते हैं। एक वायुयान (पारितंत्र) के हजारों रिवेटों (जातियाँ) द्वारा सभी भागों को जोड़ा जाता है। यदि वायुयान का हर यात्री अपने साथ एक रिवेट (कीलक) को ले जाने लगे (जाति विलुप्त का कारण), तब आरंभ में जहाज की सुरक्षा प्रभावित नहीं होगी, लेकिन यदि और अधिक रिवेट हटा लिये जाएँ, तब कुछ समय बाद जहाज खतरनाक रूप से कमजोर हो जाएगा। साथ-साथ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि कौन सा रिवेट हटाया गया है। जहाज के पंख का रिवेट हटाना हवाई सुरक्षा की दृष्टि से जहाज के अंदर सीट व खिड़कियों के रिवेट हटाने से अधिक महत्त्वपूर्ण है। यहाँ जहाज के पंख के रिवेट को पारितंत्र की मुख्य जातियों से तुलना की गई है।

© NCERT not to be republished

15.1.4. जैव विविधता की क्षति

जबकि यह संदेहपूर्ण है कि क्या (जाति उद्भवन द्वारा) कुछ नई जातियाँ पृथ्वी की जातियों में सम्मलित होती हैं, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि उनकी निरंतर हानि होगी। हमारे ग्रह पर जैव संपदा भंडार में तेजी से हानि हो रही है। इसके लिए मानव क्रियाकलाप मुख्य कारण है। मानव द्वारा प्रशांत उष्ण कटिबंधिय द्वीपों पर आवासीय बस्तियाँ स्थापित करने से वहाँ के मूल पक्षियों की 2 हजार से अधिक जातियाँ विलुप्त हो गई हैं। आई.यू.सी.एन. की लाल सूची (2004) के साक्ष्यों के अनुसार पिछले 500 वर्षो में 784 जातियाँ (338 कशेरुकी, 359 अकशेरुकी तथा 87 पादप) लुप्त हो गयी हैं। नयी विलुप्त जातियों में मॉरीशस की डोडो, अफ्रीका की क्वैगा, आस्ट्रेलिया की थाइलेसिन, रूस की स्टेलर समुद्री गाय एवं बाली, जावा तथा कैस्पियन के बाघ की तीन उपजातियाँ शामिल हैं। पिछले 20 वर्षो में 27 जातियाँ विलुप्त हो गयी हैं। आँकड़ों का सावधानी पूर्वक विश्लेषण दर्शाता है कि जातियाँ वर्गको (टैक्सा) के विलोपन यादृच्छिक (रैंडम) नहीं हैं जैसे की उभयचर समूह अधिक विलुप्त हुए हैं। इस भयानक कथा के संदर्भ में एक तथ्य यह भी है कि विश्व की 15,500 से भी अधिक जातियाँ विलुप्ति के कगार पर हैं। इस समय 12 प्रतिशत पक्षी, 23 प्रतिशत स्तनधारी, 32 प्रतिशत उभयचर तथा 31 प्रतिशत आवृत्तबीजी की जातियाँ विलुप्ति के कगार पर हैं।

जीवाश्म (फॉसिल) अभिलेखों के माध्यम से पृथ्वी पर जीवन के इतिहास के अध्ययन से हमने जाना कि जातियों की बड़े पैमाने पर जैसी हानि हम आजकल देख रहे हैं वैसी मानव के आगमन से पहले भी हुई हैं। लगभग तीन करोड़ (3 बिलियन) वर्ष पहले जबसे पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति तथा विविधरूपेण (डाइवर्सिफीकेशन) हुआ है, पृथ्वी पर 5 बार जातियों के व्यापक विलोपन की घटना देख चुके हैं। अब जो 'छठा विलोपन' प्रगति पर है। वह पहली पाँच घटनाओं से किस प्रकार भिन्न होगा? अंतर केवल दर में है। आज जातियों की विलोपन दर मानव के अस्तित्व से पूर्व होने वाले विलोपन की अपेक्षा 100 से 1000 गुणा अधिक तीव्र आँकी गई हैं। इस तीव्र दर के लिए हमारे क्रिया-कलाप उत्तरदायी हैं। पारिस्थितिकविदों की चेतावनी है कि यदि यही दर जारी रही तो 100 वर्षों में ही पृथ्वी की आधी जातियाँ विलुप्त हो जायेंगी।

सामान्यत: किसी क्षेत्र की जैवविविधता की हानि होने से (क) पादप उत्पादकता घटती है (ख) पर्यावरणीय समस्याओं, जैसे सूखा आदि, के प्रति प्रतिरोध (रेजिस्टेंस) में कमी आती है (ग) कुछ पारितंत्र की प्रक्रियाओं जैसे पादप उत्पादकता, जल उपयोग, पीड़क और रोग चक्रों की परिवर्तनशीलता बढ़ जाती है।

जैव विविधता की क्षति के कारण– जातीय विलोपन की बढ़ती हुई दर जिसका विश्व सामना कर रहा है वह मुख्यरूप से मानव क्रियाकलापों के कारण है। इसके चार मुख्य कारण हैं (निम्न उपशीर्षकों में इसका वर्णन किया गया है)–

(क) ***आवासीय क्षति तथा विखंडन***– यह जंतु व पौधे के विलुप्तीकरण का मुख्य कारण है। उष्ण कटिबंधीय वर्षा-वनों से होने वाली आवासीय क्षति का सबसे अच्छा उदाहरण है। एक समय वर्षा वन पृथ्वी के 14 प्रतिशत क्षेत्र में फैले

© NCERT not to be republished

थे; लेकिन अब 6 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र में नहीं हैं। ये इतनी तेजी से नष्ट हो रहे हैं कि जब तक आप इस अध्याय को पढ़ेंगे हजारों हेक्टेयर वर्षा वन समाप्त हो चुके होंगे। विशाल अमेजन वर्षा-वन, (जिसे विशाल होने के कारण 'पृथ्वी का फेफड़ा' कहा जाता है)। उसमें संभवत: करोड़ों जातियाँ (स्पीशीज़) निवास करती हैं। इस वन को सोयाबीन की खेती तथा जानवरों के चारागाहों के लिए काटकर साफ कर दिया गया है। संपूर्ण आवासीय क्षति के अलावा प्रदूषण के कारण भी आवास में खंडन (फ्रैग्मैंटेशन) हुआ है, जिससे बहुत सी जातियों के जीवन को खतरा उत्पंन हुआ है। जब मानव क्रियाकलापों द्वारा बड़े आवासों को छोटे-छोटे खडों में विभक्त कर दिया जाता है तब जिन स्तनधारियों और पक्षियों को अधिक आवास चाहिए तथा प्रवासी (माइग्रेटरी) स्वभाव वाले कुछ प्राणी बुरी तरह प्रभावित होते हैं जिससे समष्टि (पॉपुलेशन) में कमी होती है।

(ख) ***अतिदोहन***- मानव हमेशा भोजन तथा आवास के लिए प्रकृति पर निर्भर रहा है, लेकिन जब 'आवश्यकता' 'लालच' में बदल जाती है। तब इस प्राकृतिक संपदा का अधिक दोहन (ओवर एक्सप्लाइटेशन) शुरू हो जाता है। मानव द्वारा अति दोहन से पिछले 500 वर्षों में बहुत सी जातियाँ (स्टीलर समुद्री गाय, पैसेंजर कबूतर) विलुप्त हुई हैं। आज बहुत सारी समुद्री मछलियों आदि की जनसंख्या शिकार के कारण कम होती जा रही हैं जिसके कारण व्यावसायिक महत्त्व की जातियाँ खतरे में हैं।

(ग) ***विदेशी जातियों का आक्रमण***- जब बाहरी जातियाँ अनजाने में या जानबूझकर किसी भी उद्देश्य से एक क्षेत्र में लाई जाती हैं तब उनमें से कुछ आक्रामक होकर स्थानिक जातियों में कमी या उनकी विलुप्ति का कारण बन जाती हैं। जैसे जब नील नदी की मछली (नाइल पर्च) को पूर्वी अफ्रीका की विक्टोरिया झील में डाला गया तब झील में रहने वाली पारिस्थितिक रूप से बेजोड़ सिचलिड मछलियों की 200 से अधिक जातियाँ विलुप्त हो गईं। आप गाजर घास *(पार्थेनियम)*, *लैंटाना*, और हायसिंथ *(आइकार्निया)* जैसी आक्रामक खरपतवार जातियों से पर्यावरण को होने वाली क्षति और हमारी देशज जातियों के लिए पैदा हुए खतरे से अच्छी तरह से परिचित हैं। मत्स्य पालन के उद्देश्य से अफ्रीकन कैटफिश **कलैरियस गैरीपाइनस** मछली को हमारी नदियों में लाया गया; लेकिन अब ये मछली हमारी नदियों की मूल अशल्कमीन (कैटफिश जातियों) के लिए खतरा पैदा कर रही हैं।

(घ) ***सहविलुप्तता***- जब एक जाति विलुप्त होती है तब उस पर आधारित दूसरी जंतु व पादप जातियाँ भी विलुप्त होने लगती हैं। जब एक परपोषी मत्स्य जाति विलुप्त होती है तब उसके विशिष्ट परजीवियों का भी वही भविष्य होता है। दूसरा उदाहरण विकसित (कोइवाल्वड) परागणकारी (पॉलिनेटर) सहोपकारिता (म्यूचुआलिज़्म) का है जहाँ एक (पादप) के विलोपन से दूसरे (कीट) का विलोपन भी निश्चित रूप से होता है।

© NCERT not to be republished

15.2 जैव विविधता संरक्षण

15.2.1 हमें जैवविविधता को क्यों संरक्षित करना चाहिए?

इसके बहुत से स्पष्ट तथा अस्पष्ट कारण हैं, जो कि समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है जैसे संकुचित संकीर्णतः उपयोगी, व्यापकरूप से स्वार्थ उपयोगी व नैतिक।

जैव विविधता के संरक्षण के लिए संकीर्णरूप से उपयोगी तर्क स्पष्ट हैं। जैसे मानव को प्रकृति से प्रत्यक्ष रूप से अनगिनत आर्थिक लाभ हैं जैसे- खाद्य (अनाज, दालें, फल आदि) ईंधन, रेशा, इमारती सामान, औद्योगिक उत्पाद जैसाकि टैनिन, स्नेहक (लुब्रिकैंट), रंजक (डाई), रेजिन, इत्र आदि तथा औषधीय उत्पाद। विश्व बाजार में बिक रही 25 प्रतिशत से अधिक औषधियाँ पादपों से बनाई जाती हैं। 25,000 से अधिक पादप जातियाँ विश्व के लोगों द्वारा पारंपरिक दवाइयाँ बनाने में उपयोग हो रही हैं। यह किसी को ज्ञात नहीं है कि कितने और नए औषधीय महत्त्व के पादपों की उष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों में खोज होना शेष है। जैव संभावना से समृद्ध राष्ट्र इसका और अधिक लाभ उठा सकते हैं। यदि अधिक से अधिक संसाधनों का जैवी-अन्वेषण (आर्थिक महत्त्व के उत्पादों, आणविक, आनुवंशिक तथा जाति स्तर पर) किया जाए।

व्यापकरूप से उपयोग संबंधी तर्क कहता है कि प्रकृति द्वारा प्रदान की गई जैवविविधता की अनेक पारितंत्र सेवाओं में मुख्य भूमिका है। तीव्र गति से नष्ट हो रहा अमेजन वन पृथ्वी के वायुमंडल को लगभग 20 प्रतिशत ऑक्सीजन प्रकाश संश्लेषण द्वारा प्रदान करता है। क्या प्रकृति द्वारा प्रदान की गई इस सेवा का हम अर्थिक मूल्य आंक सकते हैं? अपने किसी पड़ोसी अस्पताल में एक ऑक्सीजन सिलेंडर पर होने वाले खर्च से आप इसका अनुमान लगा सकते हैं। परागण, जिसके बिना पौधे फल तथा बीज नहीं दे सकते, पारितंत्र की दूसरी ऐसी सेवा है जो परागणकारियों जैसे मधुमक्खियाँ, गुंज मक्षिका, पक्षी तथा चमगाड़ द्वारा की जाती है। *प्राकृतिक परागणकारियों की अनुपस्थिति में परागण को पूरा करने की लागत कितनी होगी?* हम प्रकृति से अन्य अप्रत्यक्ष सौंदर्यात्मक लाभ उठाते हैं- वनों में घूमते समय, बसंत ऋतु में पूरी खिले हुए फूलों को निहारते समय या प्रातः बुल-बुल के गीतों का आनन्द। क्या हम ऐसे चीजों की कोई कीमत लगा सकते हैं?

जैव विविधता संरक्षण के **नैतिक** तर्क का संबंध पृथ्वी ग्रह पर उपस्थित उन लाखों जंतु, पादप व सूक्ष्मजीव जातियों से है, जिनके साथ हम रहते हैं। दार्शनिक व आध्यात्मिक रूप से हमें यह समझने की आवश्यकता है कि प्रत्येक जाति का अपना नैज मूल्य (इंट्रिंजिक वैल्यू) होता है, भले ही इसका हमारे लिए चालू या आर्थिक मूल्य न हो। हमारी नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि हम उनकी देखरेख करें और इस जैविक धरोहर को आने वाली पीढ़ी के लिए अच्छी हालत में रखें।

15.2.2 जैवविविधता को हम कैसे संरक्षित करें?

जब हम संपूर्ण पारितंत्र को सुरक्षित तथा संरक्षित करते हैं तब इसकी जैवविविधता के सभी स्तर भी संरक्षित तथा सुरक्षित हो जाते हैं। एक बाघ को सुरक्षित रखने के लिए सारे

© NCERT not to be republished

जंगल को सुरक्षित रखना होता है। यह स्वस्थाने (इन सिटू) संरक्षण कहते हैं। जब कभी किसी जीव को विलोपन के संकट से बचाने के लिए त्वरित सहायता की आवश्यकता होती है तब इस स्थिति को हम वाह्य स्थाने (एक्स सिटू) संरक्षण कहते हैं।

स्वस्थाने *(इन सिटू)* संरक्षण- विकास तथा संरक्षण के बीच टकराव का सामना करते हुए भी बहुत से देश अपनी सारी जैविक संपदा के संरक्षण को अस्वाभाविक और आर्थिक रूप से व्यावहारिक नहीं समझते। जितने संरक्षण के साधन उपलब्ध हैं, उनसे सभी विलोपन से बचाने के लिए जितनी जातियाँ है उनको बचाना दूर की बात है। भूमंडलीय स्तर पर इस समस्या की ओर कुछ श्रेष्ठ संरक्षणविदों ने ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने अधिकतम सुरक्षा के लिए कुछ 'जैवविविधता हॉट-स्पॉट' पहचाने हैं। जैवविविधता हॉट-स्पॉट वे क्षेत्र होते हैं, जहाँ पर जातीय समृद्धि बहुत अधिक और उच्च स्थानिकता (एंडेमिज़्म) होती है जातियाँ अन्य स्थानों पर नहीं होती है। सर्वप्रथम 25 जैवविविधता हॉट-स्पॉट चिह्नित किए गए थे, तत्पश्चात् इस सूची में 9 हॉट-स्पॉट और सम्मलित किए गए। संसार में कुल 34 जैव विविधता हॉट-स्पॉट हैं (चित्र 15.2)। ये हॉट-स्पॉट त्वरित आवासीय क्षति के क्षेत्र भी हैं। इनमें से 3 हॉट-स्पॉट पश्चिमी घाट और श्रीलंका, इंडो-वर्मा व हिमालय हैं जो हमारे देश की असाधारण रूप से उच्च जैवविविधता को दर्शाते हैं। यद्यपि जैवविविधता के सारे हॉट-स्पॉट आपस में मिलकर संसार का दो प्रतिशत से भी कम है परंतु इन क्षेत्रों में आवासित जातियों की संख्या अत्यधिक है तथा इन हॉट-स्पॉट की विशेष सुरक्षा द्वारा विलोपन की दर को 30 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।

भारत में पारिस्थितिकत: अद्वितीय और जैवविविधता-समृद्ध क्षेत्रों को राष्ट्रीय उद्यानों, वन्यजीव अभ्यारणों, जीवमंडल आरक्षितियों (बायोस्फीयर रिजर्व) के रूप में कानूनी सुरक्षा प्रदान की गई है। अब भारत में 14 जीवमंडल संरक्षित क्षेत्र, 90 राष्ट्रीय उद्यान तथा 448 वन्य जीव अभ्यारण हैं। भारत में सांस्कृतिक व धार्मिक परंपरा का इतिहास जो प्रकृति की रक्षा करने पर जोर देता है। बहुत सी संस्कृतियों में वनों के लिए अलग भूभाग छोड़े जाते थे और उनमें सभी पौधों तथा वन्यजीवों की पूजा की जाती थी। इस तरह के पवित्र उपवन या आश्रय मेघालय की खासी तथा जयंतिया पहाड़ी, राजस्थान की अरावली, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र के पश्चिमी घाट व मध्यप्रदेश की सरगूजा, चंदा व बस्तर क्षेत्र है। मेघालय के पवित्र उपवन बहुत सी दुर्लभ व संकटोत्पन्न पादपों की अंतिम शरणस्थली हैं।

***बाह्यस्थाने* (एक्स सीटू) संरक्षण** — इस संरक्षण में संकटोत्पन्न पादपों तथा जंतुओं को उनके प्राकृतिक आवास से अलग एक विशेष स्थान पर उनकी अच्छी देखभाल की जाती है और सावधानी पूर्वक संरक्षित किया जाता है। जंतु उद्यान, वनस्पतिय उद्यान तथा वन्य जीव सफारी पार्कों का यही उद्देश्य है। ऐसे बहुत से जंतु है जोकि वनों में विलुप्त हो गए हैं, लेकिन जंतु उद्यानों में सुरक्षित हैं। आजकल संकटोत्पन्न जातियों को परिबद्ध घेरे में रखने के बजाय बाह्य स्थाने संरक्षण दिया जाता है। अब संकटग्रस्त जातियों के युग्मकों (गेमीट) को जीवित व जननक्षम स्थति में निम्नताप परिक्षण (क्रायोपिजरवेशन) तकनीकों के द्वारा लंबे समय तक परिरक्षित किया जा सकता है अंडों को पात्रे (in vitro) निषेचित किया जा सकता है और पादपों का ऊतकीय संवर्धन विधि द्वारा प्रवर्धन

© NCERT not to be republished

(प्रोपेगेशन) किया जा सकता है। व्यापारिक महत्त्व के पौधों के विभिन्न आनुवंशिक प्रभेदों (स्ट्रेन) के बीज लंबे समय तक बीज बैंक में रखे जा सकते हैं।

जैवविविधता के लिए कोई राजनैतिक परिसीमा नहीं है। इसलिए इसका संरक्षण सभी राष्ट्रों का सामूहिक उत्तरदायित्व है। वर्ष 1992 में रियोडिजिनरियो में हुई 'जैवविविधता' पर ऐतिहासिक सम्मेलन (पृथ्वी) में सभी राष्ट्रों का आवाहन किया गया कि वे जैवविविधता संरक्षण के लिए उचित उपाय करें उनसे मिलने वाले लाभों का इस प्रकार उपयोग करें कि वे लाभ दीर्घकाल तक मिलते रहें। इसी क्रम में सन् 2002 में दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग में सतत् विकास पर विश्वशिखर-सम्मेलन हुआ, जिसमें विश्व के 190 देशों ने शपथ ली कि वे सन् 2010 तक जैवविविधता की जारी क्षति दर में, वैश्विक, प्रादेशिक व स्थानीय स्तर पर महत्त्वपूर्ण कमी लायेंगे।

सारांश

लगभग 3.8 बिलियन वर्ष पहले पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति के समय से पृथ्वी पर जीवों में बहुत अधिक विविधीकरण हुआ है। जैवविविधता, जैवीय संगठन के सभी स्तरों में उपस्थित कुल विविधता को दर्शाती है। इनमें से आनुवंशिक, जातीय तथा पारितंत्र विविधता अधिक महत्त्वपूर्ण हैं और सभी संरक्षण के प्रयास, इन सभी स्तरों पर विविधता को सुरक्षित करने के उद्देश्य से किए गए हैं।

संसार में 15 लाख से अधिक जातियों के साक्ष्य एकत्रित किए जा चुके हैं, लेकिन पृथ्वी पर लगभग 60 लाख जातियाँ खोज तथा नामकरण के इंतजार में हैं। जिन जातियों को नाम दिए जा चुके हैं उनमें 70 प्रतिशत से अधिक जंतु है इनमें भी लगभग 70 प्रतिशत कीट है। इसमें कवकों की संख्या सभी कशेरुक प्राणियों की तुलना में अधिक है। भारत लगभग 45,000 पादप जातियों तथा इससे दोगुनी जंतु जातियों के साथ विश्व के 12 महाविविधता वाले देशों में एक है।

पृथ्वी पर जातीय विविधता समान रूप से वितरित नहीं है, बल्कि एक रोचक प्रतिरूप (पैटर्न) दर्शाती है। यह साधारणतया उष्ण कटिबंध क्षेत्र में सबसे अधिक तथा ध्रुवों की तरफ घटती जाती है। उष्ण कटिबंध क्षेत्र में जातीय समृद्धि की महत्त्वपूर्ण कारण इस प्रकार हैं- उष्ण कटिबंध क्षेत्रों में विकास के लिए समय अधिक मिला, इन्हें पर्यावरण संबंधी स्थिरता मिली तथा इस क्षेत्र को अधिक सौर ऊर्जा प्राप्त हुई जिससे अधिक उत्पादकता होती है। जातीय-समृद्धि किसी प्रदेश के क्षेत्र पर आधारित होती है। जाति - क्षेत्र संबंध सामान्यत: एक आयतकार-अतिपरवलयिक कार्य है।

ऐसा माना जाता है कि उच्च विविधता वाले समुदाय कम परिवर्तनशील, अधिक उत्पादक तथा जैविक आक्रमण के प्रति अधिक प्रतिरोधी होते हैं। पृथ्वी का जीवाश्म इतिहास प्राचीन समय के व्यापक विलोपन को दर्शाता है, लेकिन वर्तमान विलोपन की दर प्राचीन दर से 100-1000 गुना अधिक है जोकि मुख्य रूप से मानव क्रिया कलापों की देन है। वर्तमान समय में लगभग 700 जातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं और 15,500 से अधिक (जिसमें 650 से अधिक भारत से हैं) जातियाँ वर्तमान समय में विलोपन के संकट

© NCERT not to be republished

का सामना कर रही हैं। आजकल अधिक विलोपन दर के कारण हैं- आवासीय (विशेषत: वन) क्षति, एवं खंडन, अति दोहन, जैविक आक्रमण तथा सहविलोपन।

पृथ्वी की समृद्ध जैवविविधता मानव जीवन के लिए प्राणाधार है। जैव विविधता को संरक्षित करने के मुख्य कारण संकीर्णरूप से उपयोग, व्यापकरूप से उपयोग तथा नैतिक हैं। पारितंत्र से हमें, प्रत्यक्ष लाभ जैसे- भोजन, रेशा, ईंधन, लड़की और औषधियों के अलावा बहुत से अप्रत्यक्ष लाभ भी प्राप्त होते हैं, जैसे कि परागण, पीड़क नियंत्रण, जलवायु तथा बाढ़ नियंत्रण आदि। पृथ्वी की जैवविविधता की अच्छी तरह देखभाल करना तथा उसको अपनी अगली पीढ़ी को प्रदान करना हमारा नैतिक कर्तव्य है।

जैवविविधता संरक्षण स्वस्थाने (इन सीटू) तथा बाह्य स्थाने (एक्स सीटू) होता है। स्वस्थाने में संकटापन्न जातियों को उनके प्राकृतिक आवास में सुरक्षित रखा जाता है, जिससे कि सारा पारितंत्र सुरक्षित रह सके। आजतक संसार के 34 'जैवविविधता वाले हॉट-स्पॉट' को गहन संरक्षण प्रयास के लिए चुना जा चुका है, जिनमें से तीन-पश्चिमी घाट-श्रीलंका, हिमालय तथा इंडोवर्मा-भारत के जैवविविधता-समृद्धि क्षेत्र में आते हैं। हमारे देश के स्वस्थाने संरक्षण के प्रयास 14 जीव मंडल संरक्षित क्षेत्र, 90 राष्ट्रीय उद्यान, 450 से अधिक वन्यजीव अभ्यारण व बहुत से पवित्र उपवनों के द्वारा प्रतिबिंबित होते हैं। वाह्य स्थाने संरक्षण के अंतर्गत संकटग्रस्त जातियों का प्राणी उद्यानों तथा पादपउद्यानों में पात्रे, (इन विट्रो), निषेचन, ऊतक संवर्धन प्रवर्धन तथा युग्मक के निम्नताप परिरक्षण जैसी विधियाँ आती हैं।

अभ्यास

1. जैवविविधता के तीन आवश्यक घटकों (कंपोनेंट) के नाम बताइए?
2. पारिस्थितिकीविद् किस प्रकार विश्व की कुल जातियों का आंकलन करते हैं?
3. उष्ण कटिबंध क्षेत्रों में सबसे अधिक स्तर की जाति-समृद्धि क्यों मिलती हैं? इसकी तीन परिकल्पनाएँ दीजिए?
4. जातीय - क्षेत्र संबंध में समाश्रयण (रिग्रेशन) की ढलान का क्या महत्त्व हैं?
5. किसी भौगोलिक क्षेत्र में जाति क्षति के मुख्य कारण क्या हैं?
6. पारितंत्र के कार्यों के लिए जैवविविधता कैसे उपयोगी है?
7. पवित्र उपवन क्या हैं? उनकी संरक्षण में क्या भूमिका है?
8. पारितंत्र सेवा के अंतर्गत बाढ़ व भू-अपरदन (सॉयल-इरोजन) नियंत्रण आते हैं। यह किस प्रकार पारितंत्र के जीवीय घटकों (बायोटिक कंपोनेंट) द्वारा पूर्ण होते हैं?
9. पादपों की जाति विविधता (22 प्रतिशत) जंतुओं (72 प्रतिशत) की अपेक्षा बहुत कम है; क्या कारण है कि जंतुओं में अधिक विविधता मिलती है?
10. क्या आप ऐसी स्थिति के बारे में सोच सकते हैं, जहाँ पर हम जानबूझकर किसी जाति को विलुप्त करना चाहते हैं? क्या आप इसे उचित समझते हैं?

© NCERT not to be republished

अध्याय 16

पर्यावरण के मुद्दे

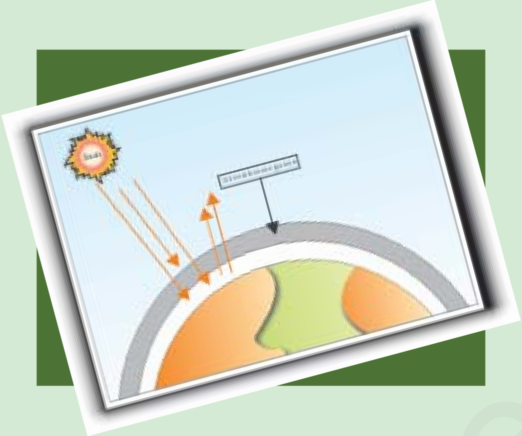

16.1 वायु प्रदूषण एवं इसका नियंत्रण

16.2 जल प्रदूषण एवं उसका नियंत्रण

16.3 ठोस अपशिष्ट

16.4 कृषि-रसायन एवं उनके प्रभाव

16.5 रेडियो सक्रिय अपशिष्ट

16.6 ग्रीनहाउस प्रभाव एवं विश्वव्यापी उष्णता

16.7 समतापमंडल में ओजोन अवक्षय

16.8 संसाधन के अनुचित उपयोग एवं अनुचित अनुरक्षण द्वारा निम्नीकरण

16.9 वनोन्मूलन

गत सौ वर्ष में मनुष्य की जनसंख्या में भारी बढ़ोतरी हुई है। इसके कारण अन्न, जल, घर, बिजली, सड़क, वाहन और अन्य वस्तुओं की माँग में भी वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर काफी दबाव पड़ रहा है और वायु, जल तथा भूमि प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। हमारी आज भी आवश्यकता है कि विकास की प्रक्रिया को बिना रोके अपने महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधनों को खराब होने (निम्नीकरण) और इनको अवक्षय को रोकें और इसे प्रदूषित होने से बचाएँ।
प्रदूषण (पॅलूशन) — प्रदूषण वायु, भूमि, जल या मृदा के भौतिक, रासायनिक या जैवीय अभिलक्षणों का एक अवांछनीय परिवर्तन है। अवांछनीय परिवर्तन उत्पन्न करने वाले कारकों को प्रदूषक (प्लूटेंट) कहते हैं। पर्यावरण के प्रदूषण को नियंत्रित तथा इसकी संरक्षा करने एवं हमारे पर्यावरण की गुणवत्ता सुधारने के लिए भारत सरकार द्वारा **पर्यावरण (संरक्षा) अधिनियम, 1986** पारित किया गया है।

16.1 वायु प्रदूषण और इसका नियंत्रण

हम श्वसन संबंधी आवश्यकताओं के लिए वायु पर निर्भर करते हैं। वायु प्रदूषक सभी जीवों को क्षति पहुँचाते हैं। वे फसल की वृद्धि एवं उत्पाद कम करते हैं और इनके कारण पौधे अपरिपक्व अवस्था में मर जाते हैं। वायु प्रदूषक मनुष्य और पशुओं के श्वसन तंत्र पर काफी हानिकारक प्रभाव डालते हैं। ये हानिकारक प्रभाव प्रदूषकों की सांद्रता उद्भासन-काल और जीव पर निर्भर करते हैं।

© NCERT not to be republished

ताप विद्युत संयंत्रों के धूम्र स्तंभ (स्मोकस्टैकस), कणिकीय धूम्र और अन्य उद्योगों से हानिकर गैसें जब नाइट्रोजन, ऑक्सीजन आदि के साथ (पारटिकुलेट) और गैसीय वायु प्रदूषक भी निकलते हैं। वायुमंडल में इन अहानिकारक गैसों को छोड़ने से पहले इन प्रदूषकों को पृथक करके या निस्यांदित (फिल्टर्ड) कर बाहर निकाल देना चाहिए।

कणिकीय पदार्थो को निकलने के कई तरीके हैं; सबसे अधिक व्यापक रूप से जो तरीका अपनाया जाता है वह है (चित्र 16.1) स्थिर **वैद्युत अवक्षेपित्र** (इलैक्ट्रोस्टैटिक प्रेसिपेटेटर) है, जो ताप विद्युत सन्यंत्र के निर्वात्तक (इगजॉस्ट) में मौजूद 99 प्रतिशत

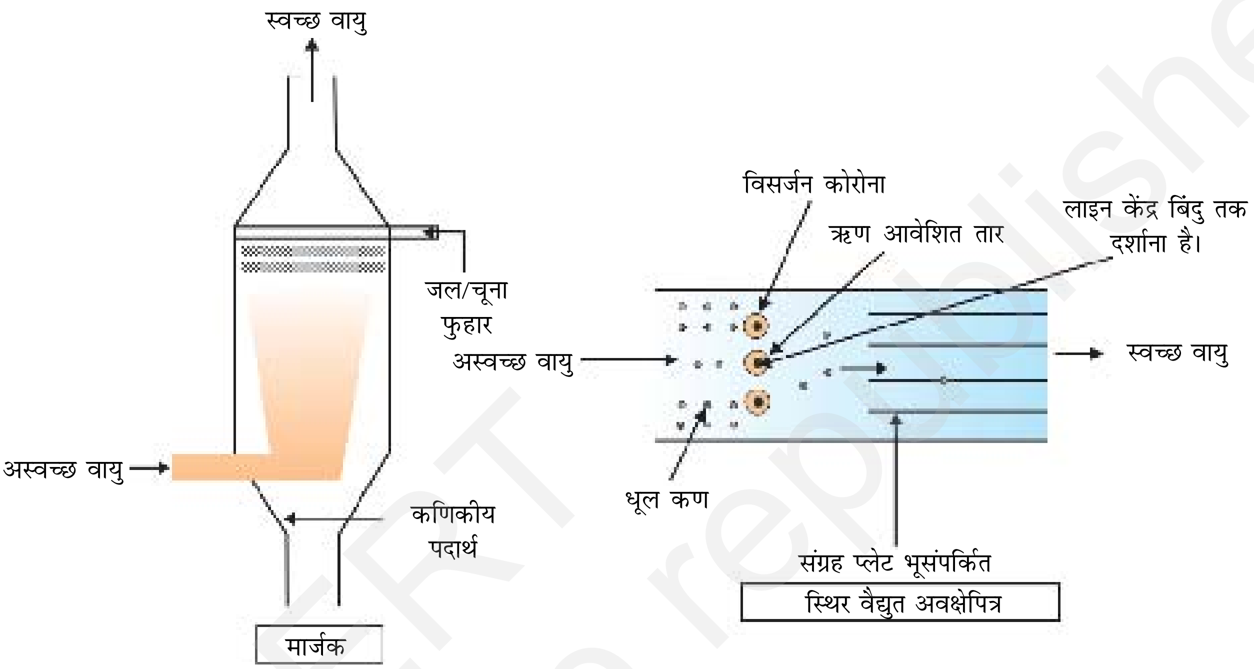

चित्र 16.1 मार्जक एवं स्थिर वैद्युत अवक्षेपित्र

कणिकीय पदार्थों को हटा देता है। इसमें एक इलैक्ट्रोड तार होता है जिससे होकर हजारों वोल्ट गुजरता है जो कोरोना उत्पन्न करता है और इससे इलैक्ट्रॉन निकलते हैं। ये इलैक्ट्रॉन धूल के कणों से सट जाते हैं और इन्हें ऋण आवेश (नेगेटिव चार्ज) प्रदान करते हैं। संचायक पट्टिकाएँ नीचे की ओर आ जाती हैं और आवेशित धूल कणों को आकर्षित करती हैं। पट्टिकाओं के बीच वायु वेग (वेलॉसिटि) काफी कम होना चाहिए जिससे कि धूल नीचे गिर जाए। मार्जक (स्क्रबर) नामक संरचना (चित्र 16.1) सल्फर डाइऑक्साइड जैसी गैसों को हटा सकती है। मार्जक में यह निर्वात जल या चूने की फुहार से होकर गुजरता है। हाल ही हमने कणिकीय पदार्थ, जो बहुत ही छोटे होते हैं और अवक्षेपित्र द्वारा हटाए नहीं जा सकते, के खतरों को अनुभव किया है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (सी पी सी बी) के अनुसार 2.5 माइक्रोमीटर या कम व्यास के आकार (पी एम 2.5) के कणिकीय पदार्थ मानव स्वास्थ्य के लिए सबसे अधिक नुकसानदेह हैं। सांस अंदर लेते

© NCERT not to be republished

समय ये सूक्ष्म कणिकीय पदार्थ फेफड़ों के भीतर चले जाते हैं और इनसे जैसे श्वसन संलक्षण उत्तेजना, शोथ और फेफड़ों की क्षति तथा अकाल मृत्यु हो सकती है।

खासकर महानगरों में स्वचालित वाहन वायुमंडल प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं। जैसे-जैसे सड़कों पर वाहनों की संख्या बढ़ती है यह समस्या अन्य शहरों में भी पहुँच रही है। स्वचालित वाहनों का रखरखाव उचित होना चाहिए। उनमें सीसा रहित पेट्रोल या डीजल का प्रयोग होने से उत्सर्जित प्रदूषकों की मात्रा कम हो सकती है। उत्प्रेरक परिवर्तक (कैटालिटिक कनवर्टर) में कीमती धातु, प्लैटिनम-पैलेडियम और रोडियम लगे होते हैं जो उत्प्रेरक (कैटेलिस्ट) का कार्य करते हैं। ये परिवर्तक स्वचालित वाहनों में लगे होते हैं जो विषैले गैसों के उत्सर्जन को कम करते हैं। जैसे ही निर्वात उत्प्रेरक परिवर्तक से होकर गुजरता है अद्ग्ध हाइड्रोकार्बनडाईऑक्साइड और जल में बदल जाता है और कार्बन मोनोऑक्साइड तथा नाइट्रिक ऑक्साइड क्रमशः कार्बन डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन गैस में परिवर्तित हो जाता है। उत्प्रेरक परिवर्तक युक्त मोटर वाहनों में सीसा रहित (अनलेडेड) पेट्रोल का उपयोग करना चाहिए; क्योंकि सीसा युक्त पेट्रोल उत्प्रेरक को अक्रिय करता है।

16.1.1 वाहन वायु प्रदूषण का नियंत्रण — दिल्ली में किया गया एक अध्ययन

वाहनों की संख्या काफी अधिक होने के कारण दिल्ली में वायु प्रदूषण का स्तर देश में सबसे अधिक है। यहाँ पर वाहनों की संख्या गुजरात और पश्चिम बंगाल में कुल मिलाकर जितने वाहन हैं या उससे अधिक है। सन् 1990 के एक आँकड़ो के अनुसार दिल्ली का स्थान विश्व के 41 सर्वाधिक प्रदूषित नगरों में चौथा है। दिल्ली में वायु प्रदूषण का मामला इतना खतरनाक हो गया कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका (पी आई एल) दायर की गई। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसकी कड़ी निंदा की गई और न्यायालय ने भारत सरकार से एक निश्चित अवधि में उचित उपाय करने का आदेश दिया साथ ही, यह भी आदेश दिया कि सभी सरकारी वाहनों यानी बसों में डीजल के स्थान पर **संपीडित प्राकृतिक गैस (सीएनजी)** का प्रयोग किया जाए। वर्ष 2002 के अंत तक दिल्ली की सभी बसों को सीएनजी में परिवर्तित कर दिया गया। आप पूछ सकते हैं। कि सीएनजी डीजल से बेहतर क्यों है। इसका उत्तर है कि वाहन में सीएनजी सबसे अच्छी तरह जलता (burn) है और बहुत ही कम मात्रा में जलने से बच जाता है जबकि डीजल या पेट्रोल के मामले में ऐसा नहीं है। इसके अलावा यह पेट्रोल या डीजल से सस्ता है। चोर इसकी चोरी नहीं कर सकता और पेट्रोल तथा डीजल की तरह इसे अपमिश्रित नहीं किया जा सकता। सीएनजी में परिवर्तित करने में मुख्य समस्या इसे वितरण स्थल/पंप तक ले जाने के लिए पाइप लाइन बिछाने की कठिनाई को लेकर और इसकी अबाधित सप्लाई करने की है। साथ ही साथ दिल्ली में वाहन प्रदूषण को कम करने के जो अन्य उपाय किए गए हैं वे ये हैं पुरानी गाड़ियों को धीरे-धीरे हटा देना, सीसा रहित पेट्रोल और डीजल का प्रयोग, कम गंधक (सल्फर) युक्त पेट्रोल और डीजल का प्रयोग, वाहनों में उत्प्रेरक परिवर्तकों का प्रयोग, वाहनों के लिए कठोर प्रदूषण स्तर लागू करना आदि।

भारत सरकार ने एक नयी वाहन ईंधन नीति के तहत यहाँ के शहरों में वाहन प्रदूषण को कम करने के लिए मार्गदर्शी सिद्धांत निर्धारित किया है। ईंधन के लिए अधिक कठोर

© NCERT not to be republished

मानक बनाए गए हैं ताकि पेट्रोल और डीजल ईंधनों में धीरे–धीरे गंधक और एरोमेटिक की मात्रा कम की जाए। उदाहरण के लिए, यूरो II मानक के अनुसार डीजल और पेट्रोल में गंधक भी नियंत्रित कर क्रमशः 305 और 150 पार्ट्स प्रति मिलियन (पी पी एम) करना चाहिए। संबंधित ईंधन में एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन 42 प्रतिशत पर सीमित करना चाहिए। मार्गदर्शी के अनुसार पेट्रोल और डीजल में गंधक को कम कर 50 पी पी एम पर लाकर लक्ष्य को 35 प्रतिशत के स्तर पर लाना चाहिए। ईंधन के अनुरूप वाहन के इंजनों में भी सुधार करना पड़ेगा। भारत स्टेज II, जो यूरो–II मानक के तुल्य है, और जो अभी दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई, बंगलोर, हैदराबाद, अहमदाबाद, पुणे, सूरत, कानपुर और आगरा में लागू है। वह 1 अप्रैल 2005 से पूरे देश में सभी स्वचालित वाहनों में लागू किया जाना चाहिए। 1 अप्रैल 2005 से ऊपर वर्णित सभी ग्यारहों शहरों में सभी स्वचालित वाहनों और ईंधन, पेट्रोल और डीजल के लिए उत्सर्जन मानक यूरो–III होना चाहिए था और 1 अप्रैल 2010 के लिए यह यूरो–IV निर्धारित किया गया है। देश के अन्य सभी भागों में 2010 तक यूरो–III मानक लागू करने का लक्ष्य रखा गया है।

दिल्ली में किए गए इस प्रयासों को धन्यवाद, जिसके कारण यहाँ की वायु की गुणवत्ता में काफी सुधार हुआ। एक आँकलन के अनुसार सन 1997–2005 तक दिल्ली में Co और So_2 के स्तर में काफी गिरावट आई है।

भारत में **वायु प्रदूषण निरोध एवं नियंत्रण अधिनियम** 1981 में लागू हुआ, लेकिन इसमें 1987 में संशोधन कर शोर को वायु प्रदूषण के रूप में सम्मिलित किया गया। **शोर** (नॉइज) एक अवांछित उच्च स्तर ध्वनि है। हम आनंद और मनोरंजन के लिए तेज ध्वनि के आदी हो गए हैं, लेकिन यह नहीं सोचते कि इसके कारण मानव में मनोवैज्ञानिक और कार्यकीय या शरीर क्रियात्मक विकार (डिसऑर्डर) पैदा होते हैं। जितना बड़ा शहर उतना ही बड़ा उत्सव और उतना ही अधिक शोर! किसी जेट वायुयान या रॉकेट के उड़ान के समय उत्पन्न अति उच्च ध्वनि स्तर 150 डेसिबल या इससे अधिक स्तर की ध्वनि को थोड़े ही समय तक सुनने से कर्ण–पटह (इअर ड्रम) क्षतिग्रस्त हो सकता है। इस प्रकार व्यक्ति की सुनने की क्षमता सदा के लिए नष्ट हो सकती है। शहरों की अपेक्षाकृत निम्न ध्वनि स्तर के दीर्घकालिक उद्भासन के कारण भी हमारी सुनने की क्षमता स्थायी रूप से क्षतिग्रस्त हो सकती है। शोर के कारण अनिद्रा, हृद–स्पंद (हर्ट बीटिंग) का बढ़ जाना, श्वसन के तरीके में परिवर्तन आदि से मनुष्य पीड़ित हो सकता है, जिसके कारण वह काफी तनाव की स्थिति में रहता है।

यह जानते हुए कि शोर प्रदूषण के कई खतरनाक प्रभाव होते हैं, क्या आप अपने आस पास के अनावश्यक ध्वनि प्रदूषण के स्रोत का पता लगा सकते हैं, जिसे किसी को आर्थिक हानि पहुँचाए बिना तत्काल कम किया जा सकता है? हमारे उद्योगों में ध्वनि–अवशोषक पदार्थ का प्रयोग कर या ध्वनि ढककर इसे कम किया जा सकता है। अस्पताल और स्कूल के आस पास हॉर्न–मुक्त जोन का सीमांकन, पटाखे और लाउडस्पीकर के लिए अनुमेय ध्वनि–स्तर, लाउडस्पीकर के लिए समय–सीमा तय करके, ताकि उसके बाद इसका प्रयोग नहीं किया जा सकता है, आदि के बारे में कठोर कानून बनाकर और उसे लागू कर ध्वनि प्रदूषण से अपनी रक्षा कर सकते हैं।

© NCERT not to be republished

16.2 जल प्रदूषण एवं इसका नियंत्रण

संपूर्ण विश्व में मनुष्य जलाशयों में सभी प्रकार के अपशिष्ट का निपटान कर इसका दुरुपयोग कर रहा है। हम यह मान लेते हैं कि जल सब कुछ बहाकर ले जाएगा। ऐसा करते समय हम यह नहीं सोचते कि जलाशय हमारे साथ-साथ अन्य सभी जीवों के लिए जीवन का आधार है। *क्या आप बता सकते हैं कि हम नदियों और नालों में क्या-क्या बहा देते हैं?* विश्व के अनेक भागों में तालाब, झील, सरिता (या धारा) नदी, ज्वारनदमुख (ऐस्चुएरी) और महासागर के जल प्रदूषित हो रहे हैं। जलाशयों की स्वच्छता को कायम रखने के महत्त्व को समझते हुए भारत सरकार ने **1974 में जल प्रदूषण निरोध एवं नियंत्रण अधिनियम** पारित किया है ताकि हमारे जल संसाधनों को प्रदूषित होने से बचाया जा सके।

16.2.1 घरेलू वाहित मल और औद्योगिक बहि:स्राव

नगरों और शहरों में जब हम अपने घरों में जल का काम करते हैं तो सभी चीजों को नालियों में बहा देते हैं। क्या आपको कभी आश्चर्य हुआ है कि हमारे घरों से निकलने वाला वाहित मल कहाँ जाता है? क्या समीपस्थ नदी में ले जाकर डालने या इसमें मिलने से पूर्व वाहित मल का उपचार किया जाता है? केवल 0.1 प्रतिशत अपद्रव्यों (इम्प्यूरीटीज) के कारण ही घरेलू वाहित मल मानव के उपयोग के लायक नहीं रहता है। (चित्र 16.2) आप वाहित मल उपचार-सन्यत्र के बारे में अध्याय 10 में पढ़ चुके हैं। ठोस पदार्थों को निकालना अपेक्षाकृत आसान है लेकिन विलीन लवण, जैसे नाइट्राइट, फॉस्फेट और अन्य पोषकों तथा विषैले धातु आयनों और कार्बनिक यौगिक को निकालना कठिन है। घरेलू मल में मुख्य रूप से जैव निम्नीकरणीय कार्बनिक पदार्थ होते हैं जिनका अपघटन (डिकम्पोजिशन) आसानी से होता है। हम अभारी हैं जीवाणु (बैक्टीरिया) और अन्य सूक्ष्म जीवों के जो इन जैव पदार्थों का उपयोग कार्यद्रव (सब्सट्रेट) के रूप में भी करके अपनी संख्या में वृद्धि कर सकते हैं और इस प्रकार ये वाहित मल के कुछ अवयवों का उपयोग करते हैं। वाहितमल जल जीव रासायनिक ऑक्सीजन आवश्यकता (**बायोकेमिकल ऑक्सीजन डिमांड/बी ओ डी**) माप कर जैव पदार्थ की मात्रा का आकलन किया जा सकता है। *क्या आप बता सकते हैं कि यह किस प्रकार किया जाता है?* सूक्ष्मजीव से संबंधित अध्याय में आप बी ओ डी, सूक्ष्मजीवों और जैव निम्नीकरणीय पदार्थ के परस्पर संबंध के बारे में पढ़ चुके हैं।

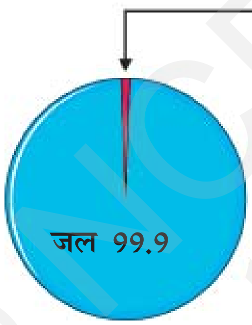

अपद्रव्य 0.1 प्रतिशत

1. निलंबित ठोस जैसे बालू, गाद और चिकनी मिट्टी
2. कोलॉइडी पदार्थ जैसे मल पदार्थ (फीकल मैटर), जीवाणु, वस्त्र और कागज के रेशे
3. विलीन पदार्थ, जैसे पोषक (नाइट्रेट, अमोनिया, फॉस्फेट, सोडियम, कैल्सियम)

चित्र 16.2 अपशिष्ट जल संघटन

© NCERT not to be republished

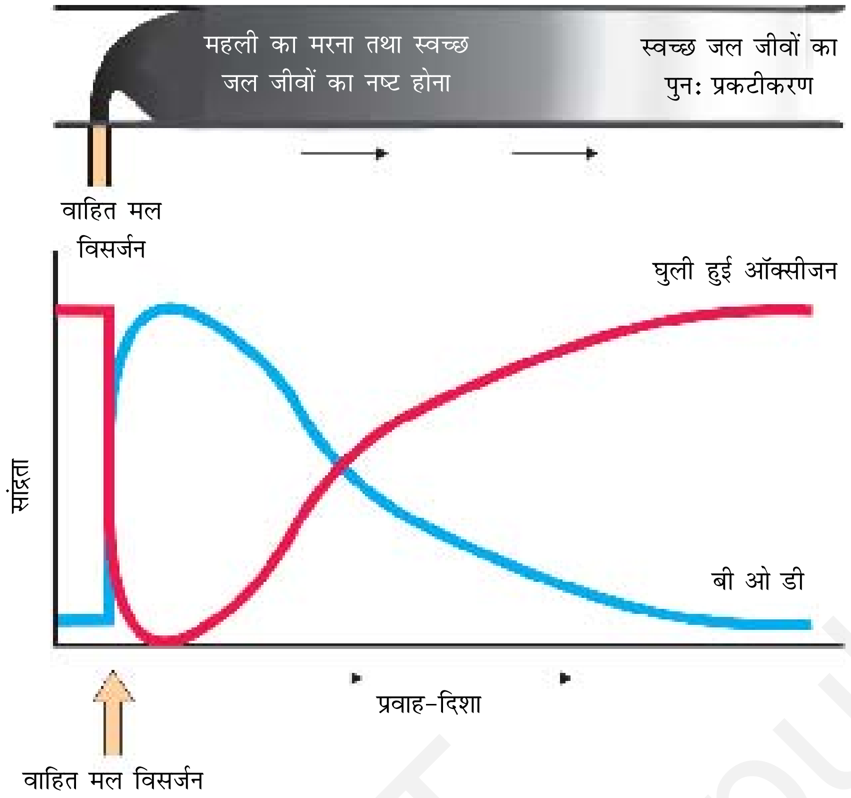

चित्र 16.3 नदी के कुछ महत्त्वपूर्ण लक्षणों पर वाहित मल विसर्जन का प्रभाव

चित्र 16.3 में कुछ परिवर्तन दर्शाए गए हैं जिन्हें नदी में वाहित मल के विसर्जन के पश्चात् देख जा सकता है। अभिवाही जलाशय में जैव पदार्थों के जैव निम्नीकरण (बायोडिग्रेडेशन) से जुड़े सूक्ष्मजीव ऑक्सीजन की काफी मात्रा का उपभोग करते हैं। इसके स्वरूप वाहितमल विसर्जन स्थल पर भी अनुप्रवाह (डाउनस्ट्रीम) जल में घुली ऑक्सीजन की मात्रा में तेजी से गिरावट आती है और इसके कारण मछलियों तथा अन्य जलीय जीवों की मृत्युदर में वृद्धि हो जाती है।

जलाशयों में काफी मात्रा में पोषकों की उपस्थिति के कारण **प्लवकीय** (मुक्त-प्लावी) शैवाल की अतिशय वृद्धि होती है इसे **शैवाल प्रस्फुटन** (अल्गल ब्लूम) कहा जाता है (चित्र 16.4)। इसके कारण जलाशयों का रंग विशेष प्रकार का हो जाता है। शैवाल प्रस्फुटन के कारण जल की गुणवत्ता घट जाती है और मछलियाँ मर जाती हैं। कुछ प्रस्फुटनकारी शैवाल मनुष्य और जानवरों के लिए अतिशय विषैले होते हैं।

आपने नीलाशोण (मोव) रंग के सुंदर फूलों को देखा होगा जो जलाशयों में काफी चित्ताकर्षक आकार के प्लावी पौधों पर होते हैं। ये पौधे अपने सुंदर फूलों के कारण भारत में उगाए गए थे, लेकिन अपनी अतिशय वृद्धि के कारण तबाही मचा रहे हैं। ये पौधे हमारी हटाने की क्षमता से कहीं अधिक तेजी से वृद्धि कर, हमारे जलमार्गों (वाटर वे) को

चित्र 16.4 शैवाल प्रस्फुटन का चित्रमय दृश्य

अवरुद्ध कर। ये जल हायसिंथ (*आइकोर्निया केसिपीज*) पादप हैं जो विश्व के सबसे अधिक समस्या उत्पन्न करने वाले जलीय खरपतवार (वीड) हैं और जिन्हें बंगाल का आतंक भी कहा जाता है। ये पादप सुपोषी जलाशयों में काफी वृद्धि करते हैं और इसके पारितंत्र गति को असंतुलित कर देते हैं।

हमारे घरों के साथ-साथ अस्पतालों के वाहित मल में बहुत से अवांछित रोगजनक सूक्ष्मजीव हो सकते हैं और उचित उपचार के बिना इसको जल में विसर्जित करने से कठिन रोग- जैसे पेचिश (अतिसार), टाइफाइड, पीलिया (जांडिस), हैजा (कोलरा) आदि हो सकते हैं।

घरेलू वाहित मल की अपेक्षा उद्योगों, जैसे पेट्रोलियम, कागज उत्पादन, धातु निष्कर्षन (एक्सट्रेक्सन) एवं प्रसंस्करण (प्रोसेसिंग), रासायनिक-उत्पादन आदि के अपशिष्ट जल में प्राय: विषैले पदार्थ, खासकर भारी धातु (ऐसे तत्त्व जिनका घनत्व >5 ग्राम/सेमी^{3}, जैसे पारा, कैडमियम, ताँबा, सीसा आदि) और कई प्रकार के कार्बनिक यौगिक होते हैं।

उद्योगों के अपशिष्ट जल में प्राय: विद्यमान कुछ विषैले पदार्थों में जलीय खाद्य शृंखला **जैव आवर्धन (बायोमैग्निफिकेशन)** कर सकते हैं । जैव आवर्धन का तात्पर्य है, क्रमिक पोषण स्तर (ट्रॉफिक लेबल) पर आविषाक्त की सांद्रता में वृद्धि का होना। इसका कारण है जीव द्वारा संग्रहित आविषालु पदार्थ उपापचयित या उत्सर्जित नहीं हो सकता और इस प्रकार यह अगले उच्चतर पोषण स्तर पर पहुँच जाता है। यह परिघटन पारा एवं डीडीटी के लिए सुविदित है। चित्र 16.5 में जलीय खाद्य शृंखला में डीडीटी का जैव आवर्धन दर्शाया गया है।

इस प्रकार क्रमिक पोषण स्तरों पर डीडीटी की सांद्रता बढ़ जाती है। यदि जल में यह सांद्रता 0.003 पी पी बी (ppb=पार्टस पर बिलियन) से आरंभ होती है तो अंत में जैव आवर्धन के द्वारा मत्सयभक्षी पक्षियों में बढ़कर 25 पीपीएम हो जाती है। पक्षियों में

© NCERT not to be republished

डीडीटी की उच्च सांद्रता कैल्सियम उपापचय को नुकसान पहुँचाती है जिसके कारण अंड-कवच (एग शेल) पतला हो जाता है और यह समय से पहले फट जाता है जिसके कारण पक्षि-समष्टि (बर्ड पोपुलेशन) यानी इनकी संख्या में कमी हो जाती है।

सुपोषण (यूट्रॉफिकेशन) झील का प्राकृतिक काल-प्रभावन (एजिंग) दर्शाता है यानी झील अधिक उम्र की हो जाती है। यह इसके जल की जैव समृद्धि के कारण होता है। तरुण (कम उम्र की) झील का जल शीतल और स्वच्छ होता है। समय के साथ-साथ, इसमें सरिता के जल के साथ पोषक तत्त्व जैसे नाइट्रोजन और फॉस्फोरस आते रहते हैं जिसके कारण जलीय जीवों में वृद्धि होती रहती है। जैसे-जैसे झील की उर्वरता बढ़ती है वैसे-वैसे पादप और प्राणि जीवन प्राणि बढ़ने लगते हैं और कार्बनिक अवशेष झील के तल में बैठने लगते हैं। सैकड़ों वर्षों में इसमें जैसे-जैसे साद (सिल्ट) और जैव मलवे (आर्गेनिक मलवा) का ढेर लगता जाता है वैसे-वैसे झील उथली और गर्म होती जाती है। झील के ठंडे पर्यावरण वाले जीव के स्थान पर उष्णजल जीव रहने लगते हैं। कच्छ पादप उथली जगह पर जड़ जमा लेते हैं और झील की मूल द्रोणी (बेसिन) को भरने लगते हैं उथले झील में अब कच्छ (marsh) पादप उग आते हैं और मूल झील बेसिन उनसे भर जाता है। कालांतर में झील काफी संख्या में प्लावी पादपों (दलदल/बॉग) से भर जाता है और अंत में यह भूमि में परिवर्तित हो जाता है। जलवायु, झील का साइज और अन्य कारकों के अनुसार झील का यह प्राकृतिक काल-प्रभावन हजारों वर्षों में होता है। फिर भी मनुष्य के क्रिया कलाप, जैसे उद्योगों और घरों के बहि:स्राव (एफ्लुअंट) काल-प्रभावन प्रक्रम में मूलत: तेजी ला सकते हैं। इस प्रक्रिया को संवर्ध (कल्चरल) या **त्वरित सुपोषण (एक्सिलरेटेंड यूट्रॉफिकेशन)** कहा जाता है। गत शताब्दी में पृथ्वी के कई भागों के झील का वाहित मल और कृषि तथा औद्योगिक अपशिष्ट के कारण तीव्र सुपोषण हुआ है। इसके मुख्य संदूषक नाइट्रेट और फॉस्फोरस हैं जो पौधों के लिए पोषक का कार्य करते हैं। इनके कारण शैवाल की वृद्धि अति उद्दीपित होती है जिसकी वजह से अरमणीक मलफेन (स्कम) बनते तथा अरुचिकर गंध निकलती हैं। ऐसा होने से जल में विलीन ऑक्सीजन जो अन्य जल-जीवों के लिए अनिवार्य (वाइटल) है, समाप्त हो जाती है। साथ ही झील में बहकर आने वाले अन्य प्रदूषक संपूर्ण मत्स्य समष्टि को विषाक्त कर सकता है। जिनके अपघटन के अवशेष से जल में विलीन ऑक्सीजन की मात्रा और कम हो जाती है। इस प्रकार झील वास्तव में घुट कर मर सकती है।

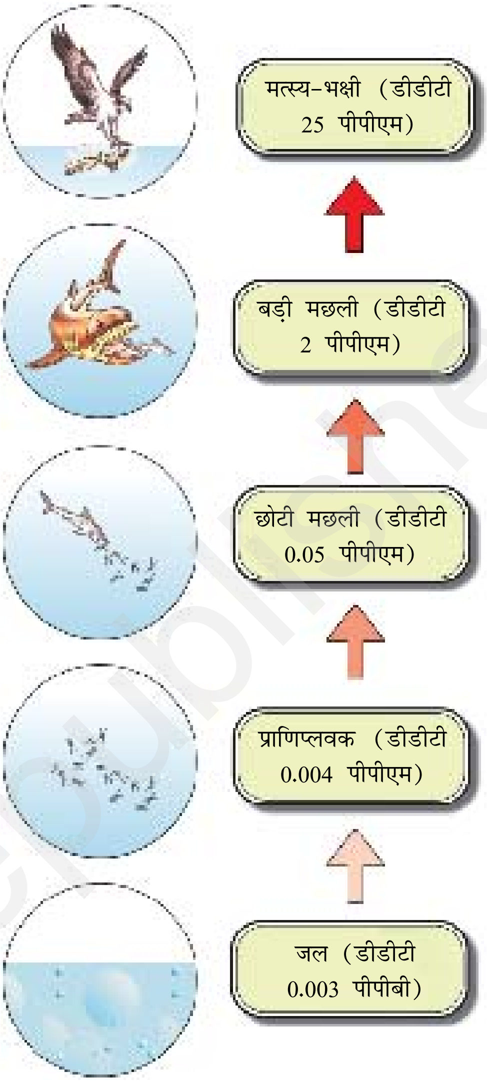

चित्र 16.5 जलीय खाद्य शृंखला में डी डी टी का जैव आवर्धन

विद्युत उत्पादी यूनिट यानी तापीय विद्युत् सन्यंत्रों से बाहर निकलने वाले तप्त (तापीय) अपशिष्ट जल दूसरे महत्त्वपूर्ण श्रेणी के प्रदूषक हैं। तापीय अपशिष्ट जल में उच्च तापमान

© NCERT not to be republished

के प्रति संवेदनशील जीव जीवित नहीं रह पाते या इसमें उनकी संख्या कम हो जाती है लेकिन अत्यंत शीत-क्षेत्रों में इसमें पौधों तथा मछलियों की वृद्धि अधिक होती है।

16.2.2 एकीकृत अपशिष्ट जल उपचार: केस अध्ययन

वाहित मल सहित अपशिष्ट जल का उपचार एकीकृत ढंग से कृत्रिम और प्राकृतिक दोनों प्रक्रमों को मिला-जुलाकर किया जा सकता है। इस प्रक्रम का प्रयास कैलीफोर्निया के उत्तरी तट पर स्थित अर्काटा शहर में किया गया। हमबोल्ट स्टेट यूनीवर्सिटी के जीव वैज्ञानिकों के सहयोग से शहर के लोगों ने प्राकृतिक तंत्र के अंतर्गत एकीकृत जल उपचार प्रक्रम तैयार किया गया। जलोपचार का कार्य दो चरणों में किया जाता है (क) परांपरागत अवसादन, जिसमें निस्यंदन और क्लोरीन द्वारा उपचार किया जाता है। इस चरण के बाद भी खतरनाक प्रदूषक जैसे भारी धातु, काफी मात्रा में घुले रूप में रह जाते हैं। इसे दूर करने के लिए एक नवीन प्रक्रिया अपनाई गई, और (ख) जीव वैज्ञानिकों ने लगभग 60 हेक्टेयर कच्छ भूमि में आपस में जुड़े हुए छह कच्छों (मार्शेस) की एक शृंखला विकसित की। इस क्षेत्र में उचित पादप, शैवाल, कवक और जीवाणु छिड़के गए जो प्रदूषकों को निष्प्रभावी, अवशोषित और स्वांगीकृत (एसिमिलेट) करते हैं। इसलिए कच्छों से होकर गुजरने वाला जल प्राकृतिक रूप से शुद्ध हो जाता है।

कच्छ एक अभयारण्य की तरह कार्य करता है यहाँ उच्च स्तरीय जैव विविधता, और मछलियाँ, जानवर और पक्षी वास करते हैं। इस आश्चर्यजनक परियोजना की देखभाल तथा सुरक्षा नागरिकों के एक समूह, फ्रेंड्स ऑफ आर्कटा मार्श (एफ ओ ए एम) द्वारा की जाती है।

अब तक हमारी यह धारणा रही है कि अपशिष्ट को दूर करने के लिए जल यानी वाहित मल के निर्माण की जरूरत होती है। लेकिन मानव अपशिष्ट, उत्सर्ग (एक्सक्रीटा) यानी मल-मूत्र के निपटान के लिए यदि जल जरूरी न हो तो क्या होगा? क्या आप अनुमान लगा सकते हैं कि यदि टॉयलेट को फ्लश न करना पड़े तो जल की कितनी बचत होगी? वास्तव में यह एक वास्तविकता है।

मानव उत्सर्ग (मलमूत्र) के हैंडलिंग (निपटान) के लिए पारिस्थितिक स्वच्छता एक निर्वहनीय तंत्र है जिसमें शुष्क टॉयलेट कंपोस्टिंग का प्रयोग किया जाता है। मानव अपशिष्ट निपटान के लिए यह व्यावहारिक, स्वास्थ्यकर और कम लागत का तरीका है। यहाँ ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है कि कंपोस्ट की इस विधि से मानव मलमूत्र (उत्सर्ग) का पुनश्चक्रण कर एक संसाधन (प्राकृतिक उर्वरक) के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। इससे रासायनिक खाद की आवश्यकता कम हो जाती है। केरल के कई भागों और श्रीलंका में 'इकोसैन' शौचालयों (टायलेट) का प्रयोग किया जा रहा है।

16.3 ठोस अपशिष्ट

ठोस अपशिष्ट में वे सभी चीज़ें सम्मिलित हैं जो कूड़ा-कचरा में फेंक दी जाती हैं। **नगरपालिका के ठोस-अपशिष्ट** में घरों, कार्यालयों, भंडारों, विद्यालयों आदि से रद्दी में

© NCERT not to be republished

फेंकी गई सभी चीज़ें आती हैं जो नगरपालिका द्वारा इकट्ठा की जाती हैं और उनका निपटान किया जाता है। नगरपालिका के ठोस अपशिष्ट में आमतौर पर कागज, खाद्य अपशिष्ट, काँच, धातु, रबड़, चमड़ा, वस्त्र आदि होते हैं। इनको जलाने से अपशिष्ट के आयतन में कमी आ जाती है। लेकिन यह सामान्यत: पूरी तरह जलता नहीं है और खुले में इसे फेंकने से यह चूहों और मक्खियों के लिए प्रजनन स्थल का कार्य करता है। **सैनिटरी लैंडफिल्स** खुले स्थान में जलाकर ढेर लगाने के बदले अपनाया गया था। सैनिटरी लैंडफिल में अपशिष्ट को संहनन (कॉम्पैक्शन) के बाद गड्ढा या खाई में डाला जाता है और प्रतिदिन धूल-मिट्‌टी (डर्ट) से ढँक दिया जाता है। यदि आप किसी शहर या नगर में रहते हैं तो क्या आपको मालूम है कि सबसे नजदीकी लैंडफिल स्थल कहाँ है? वास्तव में लैंडफिल्स भी कोई अच्छा हल नहीं है क्योंकि खासकर महानगरों में कचरा (गार्बेज) इतना अधिक होने लगा है कि ये स्थल भी भर जाते हैं। इन लैंडफिल्स से रासायनों के भी रिसाव का खतरा है जिससे कि भौम जल संसाधन प्रदूषित हो जाते हैं।

इन सब का एक मात्र हल है कि पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति हम सभी को अधिक संवेदनशील होना चाहिए। हमारे द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है — (क) जैव निम्नीकरण योग्य (बायोडिग्रेडेबल) (ख) पुनश्चक्रण योग्य और (ग) जैव निम्नीकरण अयोग्य। यह महत्त्वपूर्ण है कि उत्पन्न सभी कचरे की छंटाई की जाए। जिस कचरे का प्रयोग या पुनश्चक्रण किया जा सकता है उसे अलग किया जाए। कचराबीन या गुदड़िया (रैग पिकर) पुनश्चक्रण किए जाने वाले पदार्थों को अलग कर एक बड़ा काम करता है। जैव निम्नीकरणीय पदार्थों को जमीन में गहरे गड्ढे में रखा जा सकता है और प्राकृतिक रूप में अपघटन के लिए छोड़ दिया जाता है। इसके पश्चात् केवल अजैव निम्नीकरणीय निपटान के लिए बच जाता है। हमारा मुख्य लक्ष्य होना चाहिए कि कचरा कम उत्पन्न हो लेकिन इसके स्थान पर हम लोग अजैवनिम्नीकरणीय उत्पादों का प्रयोग अधिक करते जा रहे हैं। किसी अच्छी गुणवत्ता की खाद्य सामग्री का तैयार (ready-made) पैकेट, जैसे बिस्कुट का पैकेट उठाकर उसकी पैकिंग को देखें और क्या आप पैकिंग के कई रक्षात्मक तहों को देखते हैं? उनमें से एक तह प्लास्टिक की होती है। हम अपनी दैनिक प्रयोग में आने वाली चीजों, जैसे दूध और जल को भी पॉलीबैग में पैक करने लगे हैं। शहरों में फल और सब्जियाँ भी सुंदर पॉलीस्टेरीन और प्लास्टिक पैक में कर दी जा सकती हैं। हमें इनकी काफी कीमत चुकानी पड़ती है और हम करते क्या हैं? पर्यावरण को काफी प्रदूषित करने में योगदान दे रहे हैं। पूरे देश में राज्य सरकारें प्रयास कर रही हैं कि प्लास्टिक का प्रयोग कम हो और इनके बदले पारि-हितैषी या मैत्री पैकिंग का प्रयोग हो। हम जब सामान खरीदने जाएँ तो कपड़े का थैला या अन्य प्राकृतिक रेशे के बने कैरी-बैग लेकर जाएँ और पॉलिथीन के बने थैले को लेने से मना करें।

16.3.1 प्लास्टिक अपशिष्ट के उपचार संबंधी अध्ययन

बंगलौर में प्लास्टिक की बोरी के उत्पादनकर्ता, 57 वर्षीय अहमद खान ने प्लास्टिक अपशिष्ट की सतत् बढ़ती हुई समस्या का एक आदर्श हल ढूँढ लिया है। वह पिछले 20 वर्षों से प्लास्टिक की बोरियाँ बना रहा है। लगभग 8 वर्ष पहले उसने महसूस किया कि

© NCERT not to be republished

प्लास्टिक अपशिष्ट एक वास्तविक समस्या है। उसकी कंपनी ने पुनश्चक्रित परिवर्तित प्लास्टिक का पॉलिब्लेंड नामक एक महीन पाउडर तैयार किया।

इस मिश्रण को बिटुमेन के साथ मिश्रित किया गया जिसका प्रयोग सड़क बनाने में किया जाता है। अहमद खान ने आर.वी. इंजीनियरिंग कॉलेज और बंगलौर सिटी कार्पोरेशन के सहयोग से बिटुमेन और पॉलिब्लेंड के सम्मिश्रण (ब्लैंड) का प्रयोग सड़क बनाते समय किया तो पाया कि बिटुमेन का जल विकर्षक-(रिपेलेंट) गुण बढ़ गया और इसके कारण सड़क की आयु तीन गुना अधिक हो गई। पॉलिब्लेंड बनाने के लिए कच्चे माल के रूप में किसी प्लास्टिक फिल्म अपशिष्ट का प्रयोग किया जाता है। प्लास्टिक अपशिष्ट के लिए कचरा-चुनने वालों को जहाँ 0.40 रुपए प्रति किलोग्राम मिलता था, अब खान से उन्हें 6 रुपए प्रति किलोग्राम मिलने लगा है।

बंगलौर में खान की तकनीक का प्रयोग कर वर्ष 2002 तक लगभग 40 किलोमीटर सड़क का निर्माण हो चुका है। वहाँ पर अब खान को पॉलिब्लेंड तैयार करने के लिए जल्द ही प्लास्टिक अपशिष्ट की कमी पड़ने लगेगी। पॉलिब्लेंड की खोज के लिए आभार मानना चाहिए कि अब हम प्लास्टिक अवशिष्ट के दमघोंटू दुष्प्रभाव से अपने को बचा सकते हैं।

अस्पताल से खतरनाक अपशिष्ट निकलते हैं जिसमें विसंक्रामक डिसिंफेक्टेंट और अन्य हानिकर रसायन तथा रोगजनक सूक्ष्म जीव भी होते हैं। इस प्रकार के अपशिष्ट की सावधानीपूर्वक उपचार और निपटान की आवश्यकता होती है। अस्पताल के अपशिष्ट के निपटान के लिए भस्मक (इंसिनेरेटर) का प्रयोग अत्यंत आवश्यक है।

ऐसे कंप्यूटर और इलेक्ट्रॉनिक सामान जो मरम्मत के लायक नहीं रह जाते हैं इलेक्ट्रॉनिक अपशिष्ट (ई-वेस्ट्स) कहलाते हैं। ई-अपशिष्ट को लैंडफिल्स में गाड़ दिया जाता है या जलाकर भस्म कर दिया जाता है। विकसित देशों में उत्पादित ई-अपशिष्ट का आधे से अधिक भाग विकासशील देशों, खासकर चीन, भारत तथा पाकिस्तान में निर्यात किया जाता है जबकि ताँबा, लोहा, सिलिकॉन, निकल और स्वर्ण जैसे धातु पुनश्चक्रण (रीसाइक्लिंग) प्रक्रियाओं द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। विकसित देशों में ई-अपशिष्ट के पुनश्चक्रण की सुविधाएँ तो उपलब्ध हैं; लेकिन विकासशील देशों में यह कार्य प्राय: हाथ से किया जाता है। इस प्रकार इस कार्य से जुड़े कर्मियों पर ई-अपशिष्ट में मौजूद विषैले पदार्थों का प्रभाव पड़ता है। ई-अपशिष्ट के उपचार का एक मात्र हल पुनश्चक्रण है, यदि इसे पर्यावरण-अनुकूल या हितैषी तरीके किया जाए।

16.4 कृषि-रसायन और उनके प्रभाव

हरित क्रांति के चलते फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए अजैव (अकार्बनिक) उर्वरक (इनआर्गेनिक फर्टिलाइजर) और पीड़कनाशी का प्रयोग कई गुना बढ़ गया है और अब पीड़कनाशी, शाकनाशी, कवकनाशी (फंगीसाइड) आदि का प्रयोग काफी होने लगा है। ये सभी अलक्ष्य जीवों (नॉन-टारगेट आर्गेनिज्म), जो मृदा पारितंत्र के महत्त्वपूर्ण घटक हैं, के लिए विषैले हैं। क्या आप सोच सकते हैं कि स्थानीय पारितंत्र में उन्हें जैव आवर्धित (बायोमैग्निफाइड) किया जा सकता है? हम जानते हैं कि कृत्रिम उर्वरकों की मात्रा को

© NCERT not to be republished

बढ़ाते जाने से जलीय पारितंत्र बनाम सुपोषण (यूट्रॉफिकेशन) पर क्या असर होगा। इसलिए कृषि वर्तमान समस्याएँ अत्यंत गंभीर हैं।

16.4.1 जैव खेती — केस अध्ययन

एकीकृत जैव खेती चक्रीय एवं शून्य अपशिष्ट (जीरो वेस्ट) वाली है। इसमें एक प्रक्रम से प्राप्त अपशिष्ट अन्य प्रक्रमों के लिए पोषक के रूप में काम में आता है। इसके कारण संसाधन का अधिकतम उपयोग संभव है और उत्पादन की क्षमता भी बढ़ती है। रमेश चंद्र डागर नामक सोनीपत, हरियाणा का किसान भी यही कर रहा है। वह मधुमक्षिका पालन, डेयरी प्रबंधन, जल संग्रहण (वाटर हार्वेस्टिंग), कंपोस्ट बनाने और कृषि का कार्य शृंखलाबद्ध प्रक्रमों में करता है जो एक दूसरे को संभालते हैं और इस प्रकार यह एक बहुत ही किफायती और दीर्घ-उपयोगी प्रक्रम बन जाता है। उस फसल के लिए रासायनिक उर्वरक के प्रयोग की कोई आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि पशुधन के उत्सर्ग (मल-मूत्र) यानी गोबर का प्रयोग खाद के रूप में किया जाता है। फसल अपशिष्ट का प्रयोग कंपोस्ट बनाने के लिए किया जाता है जिसका प्रयोग प्राकृतिक उर्वरक के रूप में या फार्म की ऊर्जा की आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्राकृतिक गैस के उत्पादन में किया जा सकता है। इस सूचना के प्रसार और एकीकृत जैव खेती के प्रयोग में सहायता प्रदान करने के लिए डागर ने हरियाणा किसान कल्याण क्लब बनाया है जिसकी वर्तमान सदस्य संख्या 5000 कृषक है।

16.5 रेडियो सक्रिय अपशिष्ट

आरंभ में न्यूक्लीय ऊर्जा को विद्युत उत्पादन के मामले में गैर-प्रदूषक तरीका माना जाता था। बाद में यह पता चला कि न्यूक्लीय ऊर्जा के प्रयोग में दो सर्वाधिक खतरनाक अंतर्निहित समस्याएँ हैं। पहली समस्या आकस्मिक रिसाव की है जैसा कि थ्री माइल आयलैंड और चेरनोबिल की घटनाओं में हुआ था। इसकी दूसरी समस्या रेडियोसक्रिय अपशिष्ट के सुरक्षित निपटान की है।

न्यूक्लीय अपशिष्ट से निकलने वाला विकिरण जीवों के लिए बेहद नुकसानदेह होता है क्योंकि इसके कारण अति उच्चदर से उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) होते हैं। न्यूक्लीय अपशिष्ट विकिरण की ज्यादा मात्रा (डोज) घातक यानी जानलेवा (लीथल) होती है लेकिन कम मात्रा के कारण कई विकार होते हैं। इसका सबसे अधिक बार-बार होने वाला विकार कैंसर है। इसलिए न्यूक्लीय अपशिष्ट अत्यंत प्रभावकारी प्रदूषक है और इसके उपचार में अत्यधिक सावधानी की जरूरत है।

यह सिफारिश की गई है कि परवर्ती भंडारण का कार्य उचित रूप में कवचित पात्रों में चट्टानों के नीचे लगभग 500 मीटर की गहराई में पृथ्वी में गाड़कर करना चाहिए। यद्यपि, निपटान की इस विधि के बारे में भी लोगों का कड़ा विरोध है।

आप क्यों सोचते हैं कि निपटान के इस तरीके से काफी लोग सहमत नहीं हैं? इस बारे में आप ऐसा क्यों सोचते हैं?

© NCERT not to be republished

16.6 ग्रीनहाउस प्रभाव और विश्वव्यापी उष्णता

'ग्रीनहाउस प्रभाव' शब्द की उत्पति एक ऐसी परिघटना से हुई है जो पौधघर (ग्रीन हाउस) में होती है। क्या आपने कभी पौधघर देखा है? यह एक छोटा ग्लास का घर जैसा होता है जिसका उपयोग खासकर शीत ऋतु में पौधों को उगाने के लिए किया जाता है। ग्लास पैनल प्रकाश को अंदर तो आने देता है लेकिन ताप को बाहर नहीं निकलने देता। इसलिए पौधघर ठीक उसी तरह गर्म हो जाता है जैसा कि कुछ घंटों के लिए धूप में पार्क कर दी गई कार का भीतरी भाग गर्म हो जाता है।

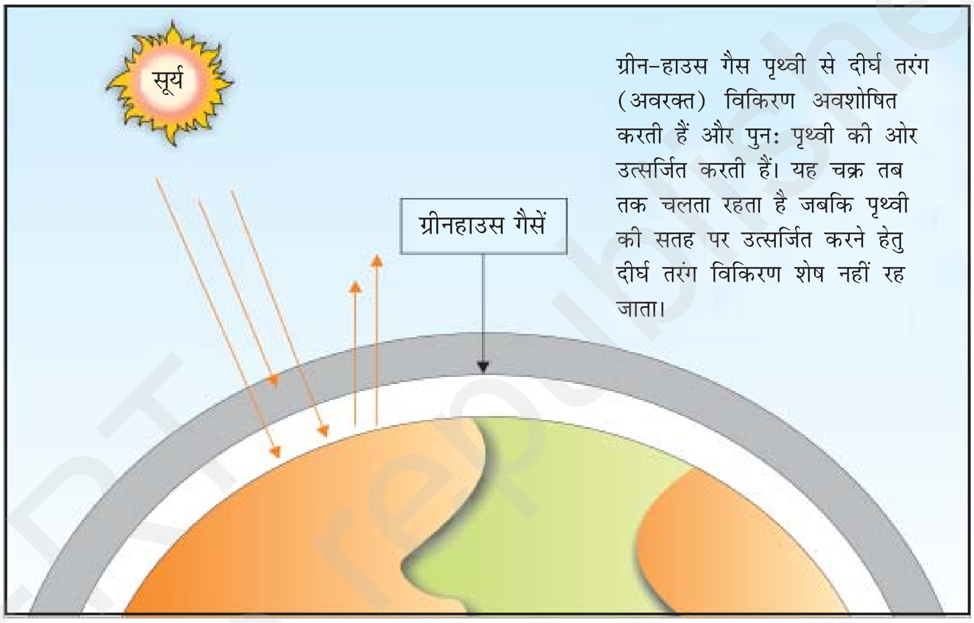

चित्र 16.6 सबसे बाहरी वायुमंडल पर सूर्य प्रकाश-ऊर्जा

ग्रीनहाउस प्रभाव प्राकृतिक रूप से होने वाली परिघटना है जिसके कारण पृथ्वी की सतह और वायुमंडल गर्म हो जाता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि यदि ग्रीनहाउस प्रभाव नहीं होता तो आज पृथ्वी की सतह का औसत तापमान 15 डिग्री सेंटीग्रेड रहने के बजाय ठंडा होकर-18 (शून्य से नीचे) डिग्री सेंटीग्रेड रहता। ग्रीनहाउस प्रभाव को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि सबसे बाहरी वायुमंडल में पहुँचने वाली सूर्य की ऊर्जा का क्या होता है (चित्र 16.6)। पृथ्वी की ओर आने वाले सौर विकिरण का लगभग एक चौथाई भाग बादलों और गैसों से परावर्तित (रिफ्लेक्ट) हो जाता है और दूसरा चौथाई भाग वायुमंडलीय गैसों द्वारा अवशोषित हो जाता है। लगभग आधा आगत (इनकमिंग) सौर विकिरण पृथ्वी की सतह पर पड़ता है और उसे गर्म करता है इसका (इंफ्रारेड रेडिएशन) कुछ भाग परावर्तित होकर लौट जाता है। पृथ्वी की सतह अंतरिक्ष में अवरक्त विकिरण के रूप में ऊष्मा (हीट) उत्सर्जित करती है। लेकिन इसका केवल बहुत छोटा भाग (टाइनी फ्रैक्शन) ही अंतरिक्ष में जाता है क्योंकि इसका अधिकांश भाग

© NCERT not to be republished

वायुमंडलीय गैसों (यानी कार्बन डाइऑक्साइड, मेथेन, जलवाष्प, नाइट्रस ऑक्साइड और क्लोरोफलुरो कार्बनों) के द्वारा अवशोषित हो जाता है। इन गैसों के अणु (मॉलिक्यूल्स) ऊष्मा ऊर्जा (हीट इनर्जी) विकिरित करते हैं और इसका अधिकतर भाग पृथ्वी की सतह पर पुनः आ जाता है और इसे फिर से गर्म करता है। यह चक्र अनेकों बार होता रहता है। इस प्रकार पृथ्वी की सतह और निम्नतर वायुमंडल गर्म होता रहता है। ऊपर वर्णित गैसों को आमतौर पर ग्रीनहाउस गैस कहा जाता है (चित्र 16.7); क्योंकि इनके कारण ही ग्रीनहाउस प्रभाव पड़ते हैं।

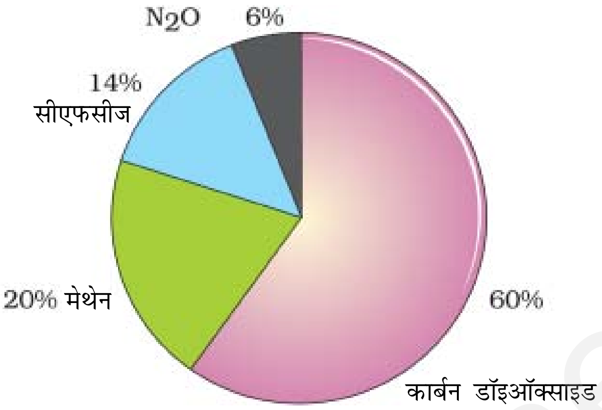

चित्र 16.7 पूर्ण विश्वव्यापी उष्णता के लिए विविध ग्रीन हाउस गैसों का सापेक्षिक योगदान

ग्रीनहाउस गैसों के स्तर में वृद्धि के कारण पृथ्वी की सतह का ताप काफी बढ़ जाता है जिसके कारण विश्वव्यापी उष्णता होती है। गत शताब्दी में पृथ्वी के तापमान में 0.6 डिग्री सेंटीग्रेड वृद्धि हुई है। इसमें से अधिकतर वृद्धि पिछले तीन दशकों में ही हुई है। एक सुझाव के अनुसार सन् 2100 तक विश्व का तापमान 1.4–5.8 डिग्री सेंटीग्रेड बढ़ सकता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि तापमान में इस वृद्धि से पर्यावरण में हानिकारक परिवर्तन होते हैं; जिसके परिणामस्वरूप विचित्र जलवायु-परिवर्तन (जैसे कि E1 तीनों प्रभाव) होते हैं। इसके फलस्वरूप ध्रुवीय टिम टोपियों और अन्य जगहों, जैसे हिमालय की हिम चोटियों का पिघलना बढ़ जाता है। कई वर्षों बाद इससे समुद्र-तल का स्तर बढ़ेगा जो कई समुद्रतटीय क्षेत्रों को जलमग्न कर देगा। वैश्विक उष्णता से होने वाले परिवर्तनों का कुल परिदृश्य अभी भी सक्रिय अनुसंधान का विषय है।

हम लोग विश्वव्यापी उष्णता को किस प्रकार नियंत्रित कर सकते हैं? इसका उपाय है; जीवाश्म ईंधन के प्रयोग को कम करना, ऊर्जा दक्षता में सुधार करना, वनोन्मूलन को कम करना तथा वृक्षारोपण और मनुष्य की बढ़ती हुई जनसंख्या को कम करना। वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रयास भी किए जा रहे हैं।

16.7 समतापमंडल में ओजोन अवक्षय

आपने इसके पहले रसायन विज्ञान की 11 वीं की पाठ्यपुस्तक में 'खराब' ओजान के बारे में पढ़ा है जो निम्नतर वायुमंडल (क्षोभमंडल/ट्रॉपोस्फीयर) में बनता है और जिससे पौधों और प्राणियों को नुकसान पहुँचा है। वायुमंडल में 'अच्छा' ओजोन भी होता है जो इसके ऊपरी भाग यानी **समतापमंडल** (स्ट्रैटोस्फीयर) में पाया जाता है। यह सूर्य से निकलने वाले पराबैंगनी विकिरण (अल्ट्रावायलेट रेडिएशन) को अवशोषित करने वाले कवच का काम करता है। सजीवों के डीएनए और प्रोटीन खास कर पराबैंगनी (यू वी) किरणों को अवशोषित करते हैं और इसकी उच्च ऊर्जा इन अणुओं के रासायनिक आबंध (केमिकल बाण्डस) को भंग करते हैं। इस प्रकार पराबैंगनी किरणें सजीवों के लिए बेहद

© NCERT not to be republished

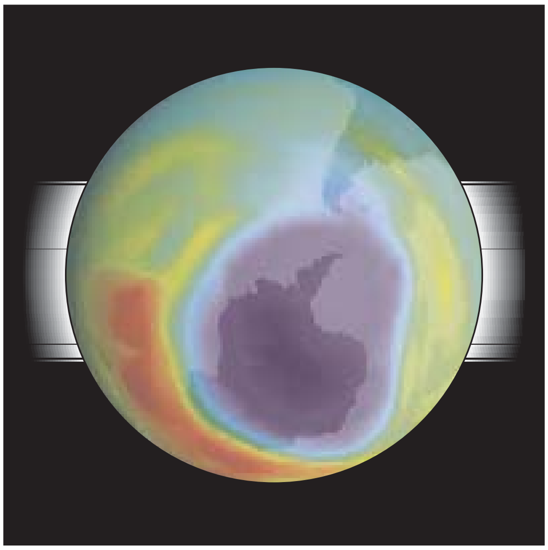

चित्र 16.8 ओजोन छिद्र एन्टार्कटिका के ऊपर वह क्षेत्र है जो बैंगनी रंग से दर्शाया गया है जबकि ओजोन स्तर सबसे पतला है। ओजोन की मोटाई डॉबसन यूनिट (ध्यानपूर्वक स्केल को देखें जो हल्के बैंगनी यानी वायलेट से लाल रंग) में दर्शाया गया है। एन्टार्कटिका के ऊपर ओजोन छिद्र प्रतिवर्ष अगस्त के उत्तरार्ध और अक्तूबर के प्रारंभ में बनता है। साभार: नासा (एन ए एस ए)

हानिकारक हैं। वायुमंडल के निचले भाग से लेकर शिखर तक वे वायु स्तंभ (कॉलम) में ओजोन की मोटाई **डॉबसन यूनिट** (डीयू) में मापी जाती है।

आण्विक ऑक्सीजन पर पराबैंगनी किरणों की क्रिया के फलस्वरूप ओजोन गैस सतत् बनती रहती है और समतापमंडल में इसका आण्विक ऑक्सीजन में निम्नीकरण (डिग्रडेशन) भी होता रहता है। समतापमंडल में ओजोन के उत्पादन और अवक्षय निम्नीकरण में संतुलन होना चाहिए। हाल में, क्लोरोफ्लुरोकार्बन (सी एफ सीज/CFCs) के द्वारा ओजोन निम्नीकरण बढ़ जाने से इसका संतुलन बिगड़ गया है। वायुमंडल के निचले भाग में उत्सर्जित CFCs ऊपर की ओर उठता है और यह समतापमंडल में पहुँचता है। समतापमंडल में पराबैंगनी किरणें उस पर कार्य करती हैं जिसके कारण C1 परमाणु का मोचन (रिलीज) होता है। C1 के कारण ओजोन का निम्नीकरण होता है जिनके कारण आण्विक ऑक्सीजन का मोचन होता है। इस अभिक्रिया में C1 परमाणु का उपभोग नहीं होता है; क्योंकि यह सिर्फ उत्प्रेरक का कार्य करता है। इसलिए समतापमंडल में जो भी क्लोरोफ्लुरोकार्बन जुड़ते जाते हैं उनका ओजोन स्तर पर स्थायी और सतत् प्रभाव पड़ता है। यद्यपि समतापमंडल में ओजोन का अवक्षय विस्तृत रूप से होता रहता है लेकिन यह अवक्षय ऐंटार्कटिक क्षेत्र में खासकर विशेषरूप से अधिक होता है। इसके फलस्वरूप यहाँ काफी बड़े क्षेत्र में ओजोन की परत काफी पतली हो गई है जिसे सामान्यता: **ओजोन छिद्र** (ओजोन होल) कहा जाता है (चित्र 16.8)। पराबैंगनी -बी (यूवी-बी) की अपेक्षा छोटे तरंगदैर्ध्य (वेवलैंथ) युक्त पराबैंगनी (यूवी) विकिरण पृथ्वी के वायुमंडल द्वारा लगभग पूरा का पूरा अवशोषित हो जाता है बशर्ते कि ओजोन स्तर ज्यों का त्यों रहे। लेकिन यूवी-बी डी एन ए को क्षतिग्रस्त करता है और उत्परिवर्तन हो सकता है। इसके कारण त्वचा में बुढ़ापे के लक्षण दिखते हैं, इसकी कोशिकाएँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं और विविध प्रकार के त्वचा कैंसर हो सकते हैं। हमारे आँख का स्वच्छमंडल (कॉर्निया) यूवी-बी विकिरण का अवशोषण करता है। इसकी उच्च मात्रा के कारण कॉर्निया का शोथ हो जाता है। जिसे **हिम अंधता** (स्नो-ल्माइंडनेश) मोतियाबिंद आदि कहा जाता है। इसके उद्भासन से स्थायी रूप से क्षतिग्रस्त हो सकता है।

ओजोन अवक्षय के हानिकर प्रभाव को देखते हुए सन् 1987 में मॉन्ट्रियल (कनाडा) में एक अंतर्राष्ट्रीय संधि पर हस्ताक्षर हुए जिसे **मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल** कहा जाता है। यह संधि 1989 से प्रभावी हुई। ओजोन अवक्षयकारी पदार्थों के उत्सर्जन पर नियंत्रण के लिए बाद में और कई अधिक प्रयास किए गए तथा और प्रोटोकॉल में विकसित और विकासशील देशों के लिए अलग-अलग निश्चित दिशा निर्देश जोड़े गए जिससे कि सी.एफ.सी. और अन्य ओजोन अवक्षयकारी रसायनों के उत्सर्जनों को कम किया जाए।

© NCERT not to be republished

16.8 संसाधन के अनुचित प्रयोग और अनुचित अनुरक्षण द्वारा निम्नीकरण

प्राकृतिक संसाधनों का निम्नीकरण न केवल प्रदूषकों की क्रिया के कारण होता है बल्कि संसाधनों के उपयोग करने के जो अनुचित तरीके हैं उनके कारण भी होता है।

मृदा अपरदन और मरुस्थलीकरण — सबसे ऊपरी मृदा के उर्वर होने में सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं लेकिन मनुष्य के क्रियाकलापों जैसे अधिक खेती करने,अबाधित चराई, वनोन्मूलन और सिंचाई के घटिया तरीकों के कारण यह शीर्ष स्तर काफी आसानी से हटाया जा सकता है जिसके कारण शुष्क भूमि-खंड बन जाते हैं। कालांतर में जब ये भूमि-खंड आपस में जुड़ जाते हैं तो मरुस्थल (डेजर्ट) का निर्माण होता है। पूरे विश्व में यह माना जाता है कि मरुस्थलीकरण, खासकर बढ़ते हुए नगरीकरण (शहरीकरण) के कारण, आजकल एक मुख्य समस्या है।

जलाक्रांति और मृदा लवणता — जल के उचित निकास के बिना सिंचाई के कारण मृदा में जलाक्रांति (वाटर लॉगिंग) होती है। फसल को प्रभावित करने के साथ-साथ इससे मृदा की सतह पर लवण आ जाता है। तब यह लवण भूमि की सतह पर एक पर्पटी (क्रस्ट) के रूप मे जमा हो जाता है या पौधों की जड़ों पर एकत्रित होने लगता है। लवण की बढ़ी हुई मात्रा फसल की वृद्धि के लिए नुकसानदेह है और कृषि के लिए बेहद हानिकर है। जलाक्रांति और लवणता कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जो हरित क्रांति के कारण आई हैं।

16.9 वनोन्मूलन

वन प्रदेश का वन-रहित क्षेत्रों में रूपांतरण करना वनोन्मूलन (डीफोरेस्ट्रेशन) कहा जाता है। एक आकलन के अनुसार शीतोष्ण क्षेत्र में केवल एक प्रतिशत वन नष्ट हुए हैं, जबकि उष्णकटिबंध में लगभग 40 प्रतिशत वन नष्ट हो गए हैं। भारत में खासकर निर्वनीकरण की वर्तमान स्थिति काफी दयनीय है। 20 वीं सदी के प्रारंभ में भारत के कुल क्षेत्रफल के लगभग 30 प्रतिशत भाग में जंगल थे। सदी के अंत तक यह घटकर 19.4 प्रतिशत रह गया। भारत की राष्ट्रीय वन नीति (1988) में सिफारिश की गई है कि मैदानी इलाकों में 33 प्रतिशत जंगल क्षेत्र होने चाहिए और पर्वतीय क्षेत्रों में 67 प्रतिशत जंगल क्षेत्र होने चाहिए।

वनोन्मूलन किस प्रकार होता है? इसके लिए कोई एक कारण नहीं है। बल्कि मनुष्य के कई कार्य वनोन्मूलन यानी वनों के उन्मूलन में सहायक होते हैं। वनोन्मूलन का एक मुख्य कारण है कि वन प्रदेश को कृषि भूमि में बदला जा रहा है जिससे कि मनुष्य की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए भोजन उपलब्ध हो सके। वृक्ष, इमारती लकड़ी (टिंबर), काष्ठ-ईंधन, पशु-फार्म और अन्य कई उद्देश्यों के लिए काटे जाते हैं। काटो और जलाओ कृषि (**स्लैश एवं बर्न कृषि**) (एग्रिकल्चर) जिसे आमतौर पर भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में **झूम खेती (कल्टिवेशन)** कहा जाता है, के कारण भी वनोन्मूलन हो रहा है। काटो एवं जलाओ कृषि में कृषक जंगल के वृक्षों को काट देते हैं और पादप-अवशेष

© NCERT not to be republished

को जला देते हैं। राख का प्रयोग उर्वरक के रूप में तथा उस भूमि का प्रयोग खेती के लिए या पशु चरागाह के रूप में किया जाता है। खेती के बाद उस भूमि को कई वर्षों तक वैसे ही खाली छोड़ दिया जाता है ताकि पुनःउर्वर हो जाए। कृषक फिर अन्य क्षेत्रों में जाकर इसी प्रक्रिया को दोहराता है।

वनोन्मूलन के परिणाम क्या-क्या हैं? इसके मुख्य प्रभावों में से एक है कि वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की सांद्रता बढ़ जाती है; क्योंकि वृक्ष जो अपने जैवभार (बायोमास) में काफी अधिक कार्बन धारण कर सकते थे; वनोन्मूलन के कारण नष्ट हो रहे हैं। वनोन्मूलन के कारण आवास नष्ट होने से जैव-विविधता (बायोडाइवर्सिटी) में कमी होती है। इसके कारण जलीय चक्र (हाइड्रोलॉजिकल साइकल) बिगड़ जाता है, मृदा का अपरदन होता है और चरम मामलों में इसका मरुस्थलीकरण (डेजर्टिफिकेशन) यानी मरुभूमि में परिवर्तित हो सकता है।

पुनर्वनीकरण (रीफॉरेस्टेशन) वह प्रक्रिया है जिसमें वन को फिर से लगाया जाता है जो पहले कभी मौजूद था और बाद में उसे नष्ट कर दिया गया। निर्वनीकृत क्षेत्र में पुनर्वनीकरण प्राकृतिक रूप से भी हो सकता है। फिर भी, वृक्ष रोपण कर इस कार्य में तेजी ला सकते हैं। ऐसा करते समय उस क्षेत्र में पहले से मौजूद जैव विविधता का भी उचित ध्यान रखा जाता है।

16.9.1 वन-संरक्षण में लोगों की भागीदारी - एक अध्ययन

भारत में इसका लंबा इतिहास है। सन् 1731में राजस्थान में जोधपुर नरेश ने एक नए महल के निर्माण के लिए अपने एक मंत्री से लकड़ी का इंतजाम करने के लिए कहा। राजा के मंत्री और कर्मी एक गाँव, जहाँ बिश्नोई परिवार के लोग रहा करते थे, के पास के जंगल में वृक्ष काटने के लिए गए। बिश्नोई परिवार की अमृता नामक एक महिला ने अद्भुत साहस का परिचय दिया। वह महिला पेड़ से चिपक कर खड़ी हो गई और उसने राजा के लोगों से कहा कि वृक्ष को काटने से पहले मुझे काटने का साहस करो। उसके लिए वृक्ष की रक्षा अपने जीवन से कहीं अधिक बढ़कर है। दुःख की बात है कि राजा के लोगों ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया और पेड़ के साथ-साथ अमृता देवी को भी काट दिया। उसके बाद उसकी तीन बेटियों तथा बिश्नोई परिवार के सैकड़ों लोगों ने वृक्ष की रक्षा में अपने प्राण गवाँ दिए। इतिहास में कहीं भी इस प्रकार की प्रतिबद्धता की कोई मिसाल नहीं है जबकि पर्यावरण की रक्षा के लिए मनुष्य ने अपना बलिदान कर दिया हो। हाल ही में, भारत सरकार ने **अमृता देवी बिश्नोई वन्यजीव संरक्षण पुरस्कार देना शुरू किया है।** यह पुरस्कार ग्रामीण क्षेत्रों के ऐसे व्यक्तियों या सामुदायों को दिया जाता है जिन्होंने वन्यजीवों की रक्षा के लिए अद्भुत साहस और समर्पण दिखाया हो। आपने हिमालय के गढ़वाल के **चिपको आंदोलन** के बारे में सुना होगा। सन् 1974 में ठेकेदारों द्वारा काटे जा रहे वृक्षों की रक्षा के लिए इससे चिपक कर स्थानीय महिलाओं ने काफी बहादुरी का परिचय दिया। विश्वभर में लोगों ने चिपको आंदोलन की सराहना की है।

स्थानीय समुदायों की भागीदारी के महत्त्व को महसूस करते हुए भारत सरकार ने 1980 के दशक में **संयुक्त वन प्रबंधन** (ज्वाइंट फॉरेस्ट मैनेजमेंट/जे एफ एम) लागू

© NCERT not to be republished

किया जिससे कि स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर काफी अच्छी तरह से वनों की रक्षा और प्रबंधन का कार्य किया जा सके। वनों के प्रति उनकी सेवाओं के बदले ये समुदाय विविध प्रकार के वनोत्पाद (फारेस्ट प्रोडक्ट्स) जैसे फल, गोंद, रबड़, दवाई आदि प्राप्तकर लाभ उठाते हैं। इस प्रकार वन का संरक्षण निर्वहनीय तरीके (सस्टेनेबल) से किया जा सकता है।

सारांश

पर्यावरण प्रदूषण और महत्त्वपूर्ण संसाधनों से संबद्ध मुख्य समस्याएँ, स्थानीय, क्षेत्रीय स्तर से लेकर विश्व स्तर पर अलग-अलग हैं। वायु प्रदूषण मुख्य रूप से उद्योगों तथा स्वचालित वाहनों में जीवाश्म ईंधनों, जैसे कोयला तथा पेट्रोलियम के जलने से होता है। ये मनुष्य, जानवरों तथा पौधों के लिए हानिकर हैं इसलिए हमारे आस पास के वायु को स्वच्छ रखने के लिए इनको हटाना जरूरी है। घरेलू वाहित मल, जो जलाशयों के प्रदूषण का सर्वाधिक सामान्य स्रोत है, के कारण घुली हुई ऑक्सीजन कम हो जाती है लेकिन अभिग्राही जल के जैव रासायनिक ऑक्सीजन की आवश्यकता बढ़ जाती है। घरेलू वाहित मल में पोषक तत्त्व, खासकर नाइट्रोजन और फॉस्फोरस अधिक होते हैं। इसके कारण सुपोषण और बुरी तरह से शैवाल स्फुटन होते हैं। औद्योगिक अपशिष्ट जल में प्राय: विषैले रासायनिक, खासकर भारी धातु और जैव यौगिक काफी अधिक होते हैं। औद्योगिक अपशिष्ट जल जीवधारियों के लिए नुकसानदेह हैं। नगरपालिका के ठोस अपशिष्ट भी समस्याएँ उत्पन्न करते हैं और इनका निपटान लैंडफिलों में अवश्य करना चाहिए। खतरनाक अपशिष्ट जैसे पुराने बेकार जहाज, रेडियोसक्रिय अपशिष्ट और ई-अपशिष्ट के निपटान के लिए अतिरिक्त प्रयासों की जरूरत होती है। मृदा प्रदूषण मुख्य रूप से कृषि रसायनों (जैसे पीड़कनाशी) और इसके ऊपर डाले गए ठोस अपशिष्टों के निक्षालितकों (लीचेट्स) के कारण होता है।

वैश्विक प्रकृति की दो मुख्य पर्यावरणीय समस्याएँ हैं; ग्रीनहाउस के बढ़ते हुए प्रभाव, जिसके कारण पृथ्वी पर गर्मी बढ़ रही है, और समतापमंडल (स्ट्रैटोस्फीयर) में ओजोन का अवक्षय हो रहा है। ग्रीनहाउस प्रभाव की वृद्धि मुख्य रूप से कार्बन डाइऑक्साइड और CFCs के उत्सर्जन में वृद्धि के कारण और वनोन्मूलन के कारण भी होती है। इसके कारण जल वृष्टि के स्वरूप तथा वैश्विक तापमान में भारी परिवर्तन हो सकता है। साथ ही, यह जीवधारियों को काफी नुकसान भी पहुँचा सकता है। समतापमंडल में ओजोन, का अवक्षय CFCs के उत्सर्जन के कारण होता है। जो पराबैंगनी विकिरण के हानिकर प्रभाव से हमारी रक्षा करता है, इसके कारण त्वचा कैंसर, उत्परिवर्तन और अन्य विकारों के बढ़ने की संभावना अधिक होती जा रही है।

अभ्यास

1. घरेलू वाहित मल के विभिन्न घटक क्या हैं? वाहित मल के नदी में विसर्जन से होने वाले प्रभावों की चर्चा करें।

© NCERT not to be republished

2. आप अपने घर, विद्यालय या अपने अन्य स्थानों के भ्रमण के दौरान जो अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं, उनकी सूची बनाएँ। क्या आप उन्हें आसानी से कम कर सकते हैं? कौन से ऐसे अपशिष्ट हैं जिनको कम करना कठिन या असंभव होगा?

3. वैश्विक उष्णता में वृद्धि के कारणों और प्रभावों की चर्चा करें। वैश्विक उष्णता वृद्धि को नियंत्रित करने वाले उपाय क्या हैं?

4. कॉलम अ और ब में दिए गए मदों का मिलान करें

कॉलम 'अ' **कॉलम 'ब'**

—

© NCERT not to be republished

पूरक पाठ्य सामग्री

इकाई छः – अध्याय 1; 1.1, पृष्ठ 6, प्रथम पैरा के अंत में

विषम परिस्थितियों में *अमीबा* अपने पादाभ संकुचित कर लेता है तथा अपने परिक्षेत्र में एक त्रिस्तरीय कठोर आवरण स्रावित करता है जिसे पुटी (सिस्ट) कहते हैं। इस परिघटना को **पुटीभवन** कहते हैं। अनुकूल परिस्थितियों के पुनरागमन पर पुटीकृत *अमीबा* बहुखंडन द्वारा विभाजित होता है तथा अनेक सूक्ष्म अमीबा अथवा बीजाणु अमीबाभ (Pseudopodiospores) उत्पन्न करता है। पुटी की भित्ति के फट जाने से ये बीजाणु परिक्षेत्र के माध्यम में विमोचित हो जाते हैं। इनसे अनेक अमीबा विकसित होते हैं। इस अभिक्रिया को **बीजाणुजनन** कहते हैं।

इकाई छः – अध्याय 1; 1.1, पृष्ठ 7, द्वितीय पैरा के अंत में

कुछ जीवों में यदि शरीर अनेक टुकड़ों में विभक्त हो जाता है तो प्रत्येक भाग (टुकड़ा) वृद्धि करके नए जीव में विकसित हो जाता है जो संतति उत्पत्ति में सक्षम होते हैं (उदाहरणतः हाइड्रा)। यह भी अलैंगिक जनन की एक विधि है जिसे **पुनरुद्भवन** कहते हैं।

इकाई सात – अध्याय 5; पृष्ठ 93 (परिच्छेद 5.3.4 के रूप में)

बहुजीनी वंशागति

मेंडल के अध्ययन में मुख्यतः उन विशेषकों (लक्षणों) का वर्णन किया गया था जिनके स्पष्ट विकल्पी रूप होते हैं, जैसे कि पुष्प का रंग जो या तो बैंगनी होता है अथवा श्वेत।

© NCERT not to be republished

परंतु, यदि आप अपने आस-पास चारों ओर देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि ऐसे अनेक लक्षण हैं जो उतने स्पष्ट नहीं हैं तथा प्रवणता में फैले हुए हैं। उदाहरणत: मनुष्यों में हमें केवल लंबे अथवा बौने लोगों के दो विभक्त स्पष्ट विकल्प दृष्टिगत नहीं होते परंतु हमें ऊँचाई (लंबाई) के सभी संभावित परास मिलते हैं। इसे विशेषक (लक्षण) सामान्यत: तीन अथवा अधिक जीनों द्वारा नियंत्रित करते हैं। अत: इन्हें बहुजीनी लक्षण कहते हैं। अनेक जीनों के शामिल होने के अतिरिक्त बहुजीनी वंशागति में पर्यावरण के प्रभाव को भी परखा जाता है। मानव त्वचा का रंग इसका एक अन्य उदाहरण है। बहुजीनी विशेषक (लक्षण) में फीनोटाइप में प्रत्येक अलील का अपना योगदान होता है, अर्थात् प्रत्येक अलील का प्रभाव योजी होता है। इसे भलीभाँति समझने के लिए आइए, कल्पना करें कि तीन जीन A, B, C मनुष्यों में त्वचा के रंग के लिए उत्तरदायी हैं। प्रभावी स्वरूप (अलील) A, B तथा C त्वचा के गहरे रंग का नियमन करते हैं तथा अप्रभावी कारक a, b तथा c त्वचा के उजले रंग के लिए उत्तरदायी हैं। सभी प्रभावी अलील (AABBCC) के जीनोटाइप का रंग सबसे गहरा होगा तथा सारे अप्रभावी अलील (aabbcc) के जीनोटाइप की त्वचा का रंग सबसे हलका होगा। जैसा कि अपेक्षित है, तीन प्रभावी अलील तथा तीन अप्रभावी अलील वाले जीनोटाइप की त्वचा का रंग इनका मध्यवर्ती होगा। इस प्रकार जीनोटाइप में प्रत्येक प्रकार के अलील की उपस्थिति उस व्यक्ति की त्वचा के गहरे अथवा हलके रंग का निर्धारण करेगी।

इकाई सात - अध्याय 5; पृष्ठ 93 (परिच्छेद 5.3.5 के रूप में)

बहुप्रभाविता

हमने अब तक एक दृश्य प्रारूप (फीनोटाइप) अथवा अभिलक्षण के प्रभाव के विषय में ही जाना है। परंतु ऐसे भी दृष्टांत हैं जहाँ एक एकल जीन अनेक दृश्य प्रारूप (फीनोटाइप) लक्षणों को प्रकट कर सकता है। ऐसे जीन को बहुप्रभावी जीन कहते हैं। अधिकतर मामलों में बहुप्रभाविता का मुख्य कारण एक जीन का उपापचयी परिपथ पर प्रभाव है जिससे विभिन्न दृश्य प्रारूप (फीनोटाइप) लक्षण उत्पन्न होते हैं। मनुष्य में होने वाली फेनिलकीटोमेह व्याधि इसका एक उदाहरण है। यह रोग फेनिल-ऐलेनीन हाइड्रॉक्सीलेज नामक एंजाइम के लिए उत्तरदायी जीन में उत्परिवर्तन (एकल जीन उत्परिवर्तन) के कारण होता है। यह अनेक दृश्य प्रारूपिक लक्षणों (फीनोटाइपिक लक्षणों) मानसिक मंदन, बालों के कम होने तथा त्वचीय रंजन द्वारा अभिव्यक्त होता है।

इकाई सात - अध्याय 5; 5.4, पृष्ठ 95 नए पैरा के रूप में, दूसरी पंक्ति के बाद

मधुप (मधुमक्खी) में लिंग निर्धारण

मधुमक्खी में लिंग निर्धारण उस मधुप द्वारा प्राप्त क्रोमोसोम (गुणसूत्र) समुच्चय की संख्या पर निर्भर करता है। एक शुक्राणु एवं अंड के युग्मन से उत्पन्न संतति एक मादा (रानी

© NCERT not to be republished

तथा श्रमिक मधुप) में विकसित होते हैं, तथा एक अनिषेचित अंड, अनिषेचकजनन (पार्थेनोजिनेसिस) द्वारा पुंमधुप (नर-ड्रोन) में विकसित होते हैं। इसका अर्थ यह है कि नर (पुंमधुप) में क्रोमोसोम की संख्या मादा मधुप की अपेक्षा आधी होती है। मादा मधुप द्विगुणित होती है जिसमें 32 क्रोमोसोम होते हैं तथा पुंमधुप अगुणित अर्थात् 16 क्रोमोसोम से युक्त होते हैं, इसे अगुणित-द्विगुणिता लिंग निर्धारण प्रणाली कहते हैं तथा इसके विशिष्ट अभिलक्षण होते हैं। जैसे कि नर समसूत्री विभाजन द्वारा शुक्राणु उत्पादित करते हैं (चित्र 5.13)। उनके पिता नहीं होते। अतः उनके पुत्र (नर संतति) नहीं हो सकते हैं परन्तु उनके दादा होते हैं तथा पोते हो सकते हैं।

इकाई सात – अध्याय 5; 5.6.2, पृष्ठ 97, द्वितीय पैरा के बाद

वर्णांधता

यह लिंग सहलग्न अप्रभावी विकार है। यह विकार लाल अथवा हरे वर्ण संवेदी शंकु के त्रुटिपूर्ण होने के कारण होता है। परिणामतः व्यक्ति लाल एवं हरे वर्ण (रंग) में विभेद नहीं कर पाता। यह विकार X-क्रोमोसोम पर स्थित कुछ जीनों में उत्परिवर्तन के कारण आता है। लगभग 8% पुरुषों एवं मात्र 0.4% नारियों में यह विकार पाया जाता है। इसका कारण है, लाल-हरी वर्णांधता के लिए उत्तरदायी जीनों का X-क्रोमोसोम पर उपस्थित होना। नर (पुरुष) की कोशिकाओं में केवल एक X-क्रोमोसोम होता है, परंतु नारियों में दो X-क्रोमोसोम होते हैं। किसी ऐसे जीन की वाहक नारी के पुत्र के वर्णांध होने की संभावना 50% है क्योंकि X-संलग्न जीन अप्रभावी है। अतः विषमयुग्मजी जननी स्वयं वर्णांध नहीं होती है। इसका अर्थ यह है कि इसका प्रभाव दूसरे विकल्पी अलील के प्रभावी होने के कारण निरुद्ध हो जाता है। पुत्री (मादा संतति) सामान्यतः वर्णांध नहीं होगी, जब तक कि माँ वाहक एवं पिता वर्णांध न हो।

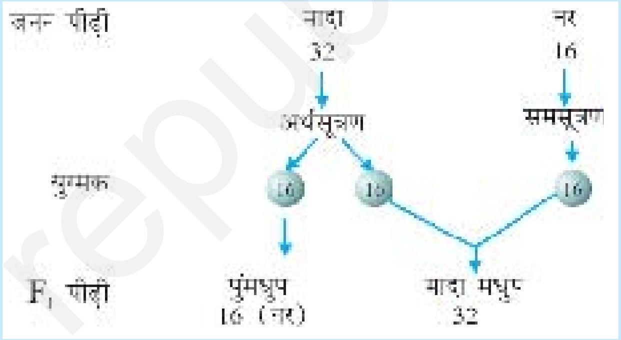

चित्र 5.13 मधुमक्खी में लिंग निर्धारण।

इकाई सात – अध्याय 5; 5.6.2, पृष्ठ 98, द्वितीय पैरा के बाद

थैलासीमिया

यह भी एक अलिंग क्रोमोसोम संलग्न अप्रभावी जीन रक्त विकार है जो जनकों से संतति को वंशानुगत प्राप्त होता है, जबकि जनक युगल के दोनों सदस्य अप्रभावी जीन के वाहक (अथवा विषम युग्मजी) होने के कारण अप्रभावित रहते हैं। यह विकार या तो उत्परिवर्तन अथवा विलोपन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है जिसमें हीमोग्लोबिन बनाने वाले ग्लोबिन की किसी एक शृंखला (á एवं â) की संश्लेषण दर में कमी आ जाती है। परिणामतः विकृत हीमोग्लोबिन का संश्लेषण होता है तथा रक्ताल्पता (एनीमिया) हो जाती है जो इस

© NCERT not to be republished

रोग का अभिलक्षण है। थैलासीमिया रोग का वर्गीकरण इस आधार पर किया जाता है कि हीमोग्लोबिन अणु की कौन-सी शृंखला प्रभावित हुई है। á थैलासीमिया में á-ग्लोबिन शृंखला का उत्पादन प्रभावित होता है जबकि â-थैलासीमिया में â-ग्लोबिन शृंखला प्रभावित होती है। á-थैलासीमिया रोग का नियंत्रण प्रत्येक जनक के क्रोमोसोम 16 पर दो सन्निकट लग्न जीन HBA1 एवं HBA2 द्वारा नियंत्रित होता है तथा यह चार विकल्पी एलील (जीनों) में से किसी एक अथवा अधिक जीनों के उत्परिवर्तन अथवा विलोपन (हट जाने) के कारण अभिलक्षित होता है। जितने अधिक जीन प्रभावित होंगे, उतनी ही कम मात्रा में अल्फा-ग्लोबिन संश्लेषित होगा; जबकि â-थैलासीमिया प्रत्येक जनक के क्रोमोसोम 11 स्थित एकल जीन द्वारा नियंत्रित होता है तथा यह रोग एक अथवा दोनों जीनों के उत्परिवर्तन के कारण होता है। थैलासीमिया विकार, दात्र कोशिका अरक्तता (सिकल सेल एनीमिया रोग से इस रूप में भिन्न है कि पहले वाला रोग एक परिमाणात्मक समस्या है जिसमें ग्लोबिन अणु अत्यल्प मात्रा में संश्लेषित होते हैं जबकि दूसरा विकृत ग्लोबिन संश्लेषण की गुणात्मक समस्या है।

इकाई सात – अध्याय 7; 7.3, पृष्ठ 140, प्रथम पैरा के अंत में

विकास के लिए भ्रूणात्मक समर्थन भी अर्नेस्ट हेकल द्वारा प्रस्तावित किया गया। ये प्रमाण कुछ विशिष्ट संरचनाओं के प्रेक्षण पर आधारित थे जो सभी कशेरुकी जीवों के भ्रूण में उभयनिष्ठ रूप से पाए जाते हैं, परंतु वयस्क जंतुओं में अनुपस्थित होते हैं। उदाहरणत: मनुष्य सहित सभी कशेरुकी जंतुओं के भ्रूण में सिर के ठीक पीछे अवशेषी गलफड़ों की शृंखला विकसित होती है। गलफड़े केवल मत्स्य में ही क्रियाशील होते हैं तथा किसी अन्य वयस्क कशेरुकी जंतुओं में अनुपस्थित होते हैं परंतु यह प्रस्ताव कार्ल-अर्नेस्ट बेयर द्वारा सावधानीपूर्वक किए गए गहन अध्ययन के आधार पर अस्वीकार कर दिया गया। उसने देखा कि भ्रूण कभी भी अन्य जंतुओं की वयस्क अवस्थाओं से नहीं गुज़रता।

इकाई दस – अध्याय 13; 13.1, पृष्ठ 240, द्वितीय पैरा के बाद 13.1 के अंत में

प्रत्येक जीव का उन परिस्थितियों का एक निश्चित परास होता है जिसे वह सहन कर सकता है। उपयोग किए जाने वाले संसाधनों की विविधता तथा पारितंत्र में उसकी एक विशिष्ट क्रियात्मक भूमिका होती है। यह सब सामूहिक रूप से उसका **निकेत** बनाते हैं।

इकाई दस – अध्याय 15; 15.22, पृष्ठ 291, द्वितीय पंक्ति, 'संकट' शब्द के बाद

वे जीव जिनके निकट भविष्य में वन से विलुप्त होने का बहुत अधिक संकट (खतरा) है)

© NCERT not to be republished

टिप्पणी

© NCERT
not to be republished

टिप्पणी

© NCERT
not to be republished